हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ६८

॥ श्रीः ॥

रसार्णवम्

नाम

रसतन्त्रम्

विमर्शाख्य 'रसचन्द्रिका' हिन्दीव्याख्यया

'भागीरथी' टिप्पण्या हिन्दी-अंगरेजी-शब्दकोशैश्च विभूषितम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

८८

रसार्णवम्

नाम

रसतन्त्रम्

(पार्वतीपरमेश्वरसंवादात्मकम्)

विमर्शाख्य 'रसचन्द्रिका' हिन्दीव्याख्यया

'भागीरथी' टिप्पण्या हिन्दी-अंगरेजी-शब्दकोशैश्च विभूषितम्

व्याख्याकारः—

डा० इन्द्रदेव त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्यः

बी. आई. एम. एस., डी. एस-सी. (आ०)

चिकित्साधिकारी, (ग्रामीण स्वास्थ्य) उ. प्र.

टिप्पणीकारः—

पण्डित तारादत्तपन्तः आयुर्वेदाचार्यः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

१९७८

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०३५
मूल्य : Rs. 85/-

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ६३१४५

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

HARIDAS SANSKRIT SERIES
88

RASĀRṆAVAM
OR
RASATANTRAM

A SEMI DIALOGUE BETWEEN PARVATI & PARAMESVARA

Edited

WITH 'RASACHANDRIKA' HINDI COMMENTARY

By

Dr. INDRADEO TRIPATHI B. I. M. S., D. Sc. (A)

And

BHAGIRATHI NOTES By

Pt. TARADATTA PANTA AYURVEDACHARYA

Chowkhamba Sanskrit Series Office

VARANASI-221001

1978

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box 8, Varanasi–221001 (India)

Phone : 63145

Second Edit'on

1978

Price Rs. [redacted]-00

Also can be had from

Chaukhamba Amarabharati Prakashan

Oriental Publishers & Book-Sellers

Post Box No. 138

K. 37/118, Gopal Mandir Lane Varanasi–221001

(INDIA)

आशीर्वचन

श्री इन्द्रदेव त्रिपाठी कृत रसार्णव की रसचन्द्रिका नामक हिन्दी व्याख्या को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। बड़े ही लगन, परिश्रम व धैर्य के साथ इसकी टीका की गई है। यह ग्रंथ रसग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ व प्राचीन है। इसकी प्रति दुर्लभ हो गई थी। कलकत्ता के एशियाटिक सोसाइटी ने इसका संस्कार करके छपवाया था। इसके बाद यह पुनः ग्रंथ दुर्लभ हो गया था। चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस ने श्री तारादत्त पन्त के संपादकत्व में पुन मूल मात्र छपाया था। वह भी संस्करण दुर्लभ हो गया था।

इस वार श्री इन्द्रदेव जी ने बहुत परिश्रम करके इसकी हिन्दी व्याख्या भी कर दी है। इसके पारिभाषिक शब्द बहुत ही दुरूह हैं। फिर भी इन्होंने हिम्मत न हारी और लगे रहे। अंत में इसकी पूर्णता हुई।

प्राचीनता—रसशास्त्र की सर्वप्राचीन ग्रंथ होने से इसका बड़ा महत्व है। आज के प्रयोग में आने वाले सब ग्रन्थों में इसका अंश संगृहीत मिलता है। रसरत्नसमुच्चय, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसकामधेनु में इसके बहुत से अंश संगृहीत हैं।

माधवाचार्य की सूची में रसार्णव का नाम है। सर पी० सी० राय ने १९१० में एसियाटिक सोसाइटी की प्रति के आधार पर इसकी प्रति का प्रकाशन एशियाटिक सोसाइटी आफ वेंगाल से कराया था।

लेखक का परिचय—इस ग्रंथ का लेखन कब हुआ और किसने लिखा इसका पता नहीं चलता। ग्रन्थ के साहित्य से पता चलता है कि यह ग्रन्थ शिव सम्प्रदाय के किसी विद्वान् ने लिखा है। शिव सम्प्रदाय ईस्वीय सन् से कई सौ वर्ष पूर्व हुआ था और भैरव व पार्वती के प्रश्न व उत्तर के रूप में लिखा मिलता है।

विवरण—इसमें १८ पटल है। प्रत्येक पटल के अंत में इस प्रकार लिखा है "इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवरससंहितायां तन्त्रावतारो

नाम प्रथमः पटलः।" इसमें क्रमशः प्रथम पटल में—पारद उत्पति, द्वितीय में—गुरु शिष्य चयन, तृतीय में—मंत्र न्यास, चतुर्थ में—यंत्र व मूषा निर्माण, पंचम में—नियमन से क्रामण पर्यन्त विवरण, षष्ठ में—अभ्रक शोधन सप्तम में—महारस उपरस का शोधन मारण, अष्टम में—धातुरंजन क्रिया, नवम पटल में—रससाधक विड का उपयोग, दशम में—रस लक्षण शोधन मारणादि। एकादश में—पारद का चारण व जारण, द्वादश में—रसबंध, त्रयोदश में पारद वद्ध की क्रिया, चतुर्दश में—वज्रवंध, पंचदश में—रसोपरस पारदवंध, षोडश में—पारद का द्रावण व जारण, सप्तदश में—लोहबंध के प्रकार, अष्टादश में—पारद से खेचरी गति का विवरण मिलता है। संक्षेप में पारद संबंधी पूर्वज्ञान का विवरण है। इसे तन्त्र का स्वरूप दिया गया है। अतः कहीं-कहीं अति गुप्त व विचित्र वर्णन है। इस तन्त्र की विशेषता यह है कि इसमें धातुरंजन पारद से लौह वेधकर स्वर्ण बनाने के बीजों का सुन्दर वर्णन है जो अन्यत्र नहीं मिलता—

पारद का जारण अभ्रक सत्व के साथ करके पारद में वेध शक्ति उत्पन्न करने की अद्‌भुत विधियाँ हैं। काञ्चन बनाने के बड़े सरल योग इसमें वर्णित हैं प्रयोग करके देखना चाहिए। धातुओं के जारण में विशेष प्रकार की रश्मि का वर्णन प्रथम बार इसमें ही मिलता है।

रससाहित्य में रसार्णव ही प्रथम ग्रंथ मिलता है जिसमें आद्यंत रस को शक्तिशाली बनाने के योग मिलते हैं। इससे इसकी विशदता का वर्णन मिलता है। यह तन्त्र युग की रससंहिता का तन्त्रावतार है जो प्रत्येक अध्याय के अंत में लिखा मिलता है।

समय—ईस्वीय सन् से ६०० वर्ष पूर्व शैव संप्रदाय के सिद्धों का वर्णन मिलता है। इसके बाद बौद्ध सिद्धों ने इसका पता लगाकर सीखा। इसमें स्वर्णविध का विवरण स्वतन्त्र व प्रायोगिक मिलता है। स्वर्ण, चांदी व ताम्र से सरलता से बन जाता था। अतः रसविद्ध स्वर्ण का इसमें स्वच्छन्द विवरण मिलने से ईस्वी सन् से पूर्व का है। सर. पी.सी. राय ६०० से ११०० ईस्वी सन् में इसकी उत्पत्ति मानते हैं। अन्य विद्वान् ईस्वी सन् के बाद इसका समय मानते हैं। श्री प्रियव्रत शर्मा १२वीं शताब्दी का मानते हैं परन्तु उनके पास इसका कोई प्रमाण नहीं है। अतः इसका काल ईस्वीय सन् से पूर्व का ही मानना चाहिए। इस ग्रन्थ की टीका करके इन्द्रदेव जी ने एक रसग्रन्थ का जीर्णोद्धार किया है। साथ ही चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस के अधिकारी गुप्त बन्धु भी धन्यवाद

के पात्र हैं जिन्होंने विपुल धन राशि इसके जीर्णोद्धार में लगाया है। इन्द्रदेव जी एक धीर, गंभीर व मननशक्तिसम्पन्न व्यक्ति हैं। कई ग्रन्थों की टीका इन्होंने की है और कई रस ग्रन्थों की दुर्गम पुस्तकों की टीका कर भी रखी है जिसका प्रकाशन धीरे-धीरे होगा।

श्री इन्द्रदेवजी स्वास्थ्य विभाग के एक अधिकारी हैं और इनकी श्रद्धा ग्रंथों को प्रकाशित करना है जिसकी आवश्यकता है।

इनकी यह टीका सुन्दर है किन्तु कहीं-कहीं पर औषधि का नाम यथावत रख देने से पूरा विवरण ज्ञान लक्ष्य से दूर रह गया सा है। जिसका प्रधान कारण उन दीव्य औषधियों के आधुनिक नामकरण का अभाव है। अस्तु इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। आशा है, इनकी लेखनी से ऐसे ही साहित्य का सर्जन होगा। इनके दीर्घायु होने की हमारी शुभाकांक्षा है ताकि दुरूह व दुर्लभ ग्रंथों का प्रकाशन होता रहे। धन्यवाद—

भूतपूर्व आयुर्वेद विभागाध्यक्ष
सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि०
वाराणसी
दि० ३०-५-७८

—विश्वनाथ द्विवेदी

प्रस्तावना

सिद्धिनन्दन मिश्र

रीडर एवं विभागाध्यक्ष
रसशास्त्र एवं भैषज्य कल्पना
आयुर्वेद महाविद्यालय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

"आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम्"

आयुर्वेद विज्ञान के अन्तर्गत रसशास्त्र अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आयुर्वेद जब कि ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट है, ठीक इसके विपरीत रस-शास्त्र भगवान् आशुतोष शिव द्वारा उपदिष्ट बताया जाता है। भारतीय रसशास्त्र का मुख्य स्तम्भ पांरद है। पारद को शम्भुबीज अर्थात् शिव द्वारा उत्पन्न माना जाता है। भारतीय रसशास्त्र का चरमोत्कर्ष बौद्ध काल के पूर्व से लेकर १३वीं शताब्दी तक माना जाता है। बौद्धकाल से पूर्व शैव मत का अत्यधिक प्रचार था। जिस तरह चरकादि ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर सम्भाषा परिषद् (विचार गोष्ठी) का आयोजन बताया गया है, ठीक उसी प्रकार अन्य शास्त्रों में भी समयानुकूल परिपाटी के अनुसार विचार गोष्ठियाँ हुआ करती होंगी। यद्यपि रसशास्त्र में ऐसी गोष्ठियों का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है तथापि किसी विषय पर लोगों के विचार का आदान प्रदान तो होता ही होगा।

चरक संहिता में आयुर्वेदावतरण में बताया गया है कि ऋषियों, महर्षियों और ब्राह्मणों को तपस्या, व्रत, उपवास और अध्ययनादि के लिए जब रोग विघ्नरूप हो गये तब ऋषियों, ब्राह्मणों की एक गोष्ठी में आयुर्वेद सीखने के लिए इन्द्रदेव के पास जाने का निर्णय किया गया।[1]

मानव जीवन के चार उद्देश्य हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति। अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए है। पहले के अनेक महर्षिगण संलग्न थे, क्योंकि वे लोग भोग की अनेक वस्तुओं–धन, शरीर आदि को अनित्य अर्थात् नाशवान् मानते थे अतः शरीर को अजर-अमर (पिण्ड-स्थैर्य) बना कर अनन्त काल तक योगाभ्यास के द्वारा उस सत्-चित्-आनन्द का अनुभव करते हुए मोक्ष की प्राप्ति चाहते थे।[2] यद्यपि मोक्ष प्राप्ति के और

१. विघ्नभूता यदा रोगा प्रादुर्भूता शरीरिणाम्।
तपोपवासाध्ययनं ब्रह्मचर्यं व्रतायुषाम्।

२. इति घनशरीरभोगान् मत्वाऽनित्यान् सदैव यतनीयम्।
मुक्तिस्तस्य ज्ञानात् तच्चाऽभ्यासात् स च स्थिरे देहे॥ (रसेश्वर)

भी अनेक मार्ग एवं उपाय उस समय थे किन्तु वे सब अत्यधिक कष्टप्रद एवं अनिश्चित थे, क्योंकि उसी साधना में प्रायः साधक रोगग्रस्त एवं कालकवलित हो जाते थे। उन साधकों ने सर्वप्रथम पिण्डस्थैर्य के बारे में विचार-चिन्तन एबं अनुसंधान करना प्रारम्भ किया। कालान्तर में सभी मतानुयायियों ने अनन्तकाल के साधना एवं अनुसंधान के बाद एक स्वर से पिण्डस्थैर्य के लिए पारद को ही एक मात्र साधन द्रव्य माना।[1]

पारद में देह स्थिर करने की शक्ति है इसको जानने के बाद वे साधकगण उसे कार्योपयोगी बनाने के लिए पारद पर अनेक क्रियाओं के द्वारा षोडश संस्कार करने लगे। अर्थात् पारद पर विशेष गुणाधान करने लगे। इस कार्य में अभ्रक, माक्षिक, वैक्रान्त, शिलाजतु, सस्यक, चपल, गन्धक, कासीस, स्फटिका, हरताल, मनःशिला, अञ्जन, कंकुष्ठ, रत्नों, धातुओं आदि अनेक द्रव्यों का सहारा लिया। इसी षोडश संस्कार के बाद वेध संस्कार हैं।[2] वेध सस्कार के दो भेद हैं—

१. लोहवेध

२. देहवेध

शरीर को स्थिर करके अजरामर बनाना ही देहवेध था। तथा निकृष्ट धातुओं को उत्कृष्ट धातुओं में परिणत करना ही लोहवेध था।

उन ऋषियों और मुमुक्षुओं की धारणा यह थी कि यदि षोडश संस्कारित पारद निकृष्ट धातुओं को उत्कृष्ट धातुओं में परिणत कर देता है तो यह पारद निश्चित ही मेरे इस जराव्याधियुक्त निकृष्ट शरीर को अजरामररूपी उत्कृष्ट शरीर में परिणत कर देगा। अर्थात् देहवेध की कसौटी के रूप में लोहवेध का उपयोग या परीक्षण किया जाने लगा[3]।

---

१. अपरे माहेश्वराः परमेश्वरतादात्म्यवादिनोऽपि पिण्डस्थैर्ये सर्वाभिमता जीवन्मुक्तिस्सेत्स्यतीत्याख्याय पिण्डस्थैर्योपायं पारदपदवेदनीयं रसमेव सङ्गिरन्ते। (रसेश्वर दर्शन)

२. तस्माज्जीवन्मुक्तिसमीहमानेन योगिना प्रथमम्।
दिव्यातनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसयोगात्॥ (रसहृदय तन्त्र)

३. यथा लोहे तथा देहे कर्त्तव्यः सूतकः सदा।
समानं कुरुते देवि ! प्रत्ययं देहलोहयोः॥
पूर्वं लोहे परीक्षेत ततो देहे प्रयोजयेत्। (रसार्णव)

इसी क्रम से अनेक शताब्दियों तक रसशास्त्र अपनी गति से आगे बढ़ता गया। मुमुक्षुओं को सफलता भी इसी शास्त्र और पारद से मिलने लगी। स्वर्णबीज निर्माण क्रम से सिद्ध पारदबीज को ताम्र, वङ्ग, नाग, आदि हलकी धातुओं पर पिघला कर लेश मात्र प्रक्षेप करने से स्वर्ण रजतादि ऊँची धातुओं में परिणत होता था यह देहवाद की कसौटी थी।

किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में रसशास्त्र का आविष्कार धातुवाद के लिए ही हुआ था। लेकिन तत्कालीन भारत के मुमुक्षु ऋषियों के लिए यह कहना अपमानजनक प्रतीत होता है, क्योंकि वे ऋषिगण जो मुमुक्षु थे उन्हें स्वर्णादि भोगोपभोग वस्तुओं की ओर कोई रुचि या लिप्सा नहीं थी। इस सम्बन्ध में श्री सायणमाधवाचार्य ने स्पष्ट शब्दों में उन्हें फटकारा है।[1] सूक्ष्म एवं तत्त्व द्रष्टा ऋषियों ने पारद और आत्मा को समान रूप से जाना था, जिस तरह आत्मा नित्य अचिन्त्य, और अक्षय शक्ति वाला है, उसी प्रकार पारद भी है। दोनों विषय अति गम्भीर हैं। अतः आत्मज्ञानी और रसतत्त्वज्ञ दोनों सूक्ष्म-दर्शी माने जाते हैं[2]।

रसहृदयतन्त्रकार आचार्य श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य जी ने अपने ग्रन्थ में भी इसी प्रकार ईश्वर के पक्ष में—भगवान् विष्णु को—पीताम्बर धारण किए हैं, जो राक्षस राजावली को जीतने वाले हैं तथा जो गरुड़ पर सवारी करने वाले हैं साथ ही संसार के दुःख दारिद्रय को नष्ट करने वाले हैं उन भगवान् विष्णु की जय हो।

पारद के पक्ष में—अभ्रक एवं गन्धक जीर्ण पारद और नागद्वारा मारित स्वर्ण जो अतिरिक्त वर्ण का होता है, अर्थात् सुवर्ण, नाग आदि को भक्षण करने पर ही पारद को अतिप्रिय होता है। अभ्रक एवं गन्धकजीर्ण पारद जब नाग मारित सुवर्ण का ग्रास लेता है तभी देहवेधोपयोगी बनकर संसार के दुःख दारिद्रय को नाश करने में समर्थ होता है। अतः उस जीर्ण पारद की जय हो[3]।

---

१. न च रसशास्त्रं धातुवादार्थमेवेति मन्तव्यः,
देहवेधद्वारा मुक्तिरेव परमप्रयोजनत्वात्। (रसेश्वर)

२. यथा रसस्तथा ह्यात्मा यथा ह्यात्मा तथा रसः।
आत्मविद् रसविच्चैव द्वाविमौ सूक्ष्मदर्शिनौ॥ (रसोपनिषत्)

३. पीताम्बरोऽथबलिजिन्नागक्षय 'बहलराग गरुडस्य।
जयति स हरिरिव हरजो विदलित् भवदैन्य दुःख भरः॥ (र. हृ. त.)

बौद्ध-काल के पूर्व से ही अधिकांश आध्यात्मिक एवं यौगिक क्रियाएँ रसशास्त्र के माध्यम से होने लगी थीं। साथ ही चतुर्वर्ग की प्राप्ति भी इसी शास्त्र के माध्यम से होने लगी थी। इसके अतिरिक्त अष्टादश संस्कारित पारद दीर्घायुष्य एवं पुनर्युवावस्थाप्रदाता था, साथ ही यह पारद मूर्च्छित एवं बन्धित होने पर क्रमशः जराव्याधिनाशक एवं खेचरी गति को देने वाला भी था[१]।

इसके अतिरिक्त भी परमात्मा और पारद के समत्व की उपमा देकर विषय को बड़ा ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जिस तरह मुमुक्षुओं का ज्ञान प्राप्ति से पूर्व सम्पूर्ण सत्त्वों (जीवात्मादि तत्त्वों) का परमात्मा में लय हो जाता है, ठीक उसी तरह पारद में पञ्चभूतात्मक सभी सत्त्वों का लय हो जाता है[२]।

श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्य ने आगे कहा है कि जिस तरह योगी अपनी सभी वृत्तियों का भगवान् आशुतोष सदाशिव के स्वरूप में लय (लीन) करके अमृतत्व को प्राप्त करते हैं, ठीक उसी तरह अभ्रकजारित पारद में सुवर्ण आदि लोहों का जारण करने पर वह पारद भी अमरता (अमृतत्व) को देने वाला हो जाता है।

इसके पूर्व[३] ही रसहृदयतन्त्रकार ने पारद में सभी पाञ्चभौतिक द्रव्यों का लय प्रकार भी सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है[४]।

कुछ आचार्यों का मत है कि खनिजादि मृत्तिकाओं से कोटि गुणा स्वर्ण है, तथा स्वर्ण से कोटि गुणा रत्न है और मणियों से कोटिगुणा बाण अर्थात् उल्कापात जन्य लोह (जिसे बाण कहा जाता है।) है किन्तु बाण से कोटिगुणा

---

१. धर्मार्थमुपभोगानां नष्टराज्यविवृद्धये !
आयुर्यौवनलाभार्थं मुक्त्यर्थं च मुमुक्षुणाम् ॥ (रसो०)
अपि च दत्ते खे गतिं बद्धः कोऽन्यः सूतात् करुणाकरः। (रस रत्ना०)

२. परमात्मनीव नियतं भवति लयो यत्र सर्वं सत्त्वानाम्।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमरामरं कुरुते ॥ (रस हृ.त.अव.१।१३)

३. अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्तौ योगिनो यथा लीनाः।
तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः ॥ (रसहृदयतंत्र अव. १।१४)

४. काष्ठौषध्यो नागे नागं वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्वे।
शुल्वं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते ॥ (रसहृदयतंत्र अव.१।१२)

पारद है। इस ब्रह्मा की सृष्टि में पारद से बढ़कर गुणज्ञ दूसरा कोई द्रव्य न हुआ है और न होगा[1]।

इस शास्त्र के अनेक प्रमुख आचार्य हुए, जिनके द्वारा निर्मित अनेक महत्व-पूर्ण ग्रन्थ थे, जो काल-क्रम से लुप्त होते गये। उन आचार्यों में प्रमुख रूप में नागार्जुन, व्याडि, गोरक्षनाथ आदि थे।

जैसे प्रमुख ग्रन्थ लुप्त होते गए उसी तरह देहवाद लुप्त हो गया, और काल-क्रम से लोहवाद भी समाप्त हो गया। आज कल रसशास्त्र मात्र चिकित्सोपयोगी रह गया।

रसशास्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की श्रेणी में इन दिनों "रसार्णवम्" का स्थान है। यह ग्रन्थ अपने आप में अकेला है। इस ग्रन्थ के प्रथम पटल में अध्यात्म एवं मोक्ष का विशेष वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ "देवी और भैरव" के प्रश्नोत्तर रूप में पूर्ण है। अधिकांश लोगों की धारणा है कि यह ग्रन्थ कौल परम्परा द्वारा लिखा गया है। किन्तु धृणित व्यवहार और अखाद्य भक्षण से मोक्ष के अभिलाषी व्यक्ति को फटकारते हुए ग्रन्थकार ने कहा है कि यदि मूत्र, पुरीष, रक्त, शुक्रादि भक्षण (कौल परम्परा में ऐसा ही विधान है) से मुक्ति मिल जाय तो कुत्ते और सूअर आदि को सर्वप्रथम मुक्ति मिल जाती।[2] मृत्यु के बाद जो मुक्ति मिलती है उसे निरर्थक बताते हुए रसार्णवकार कहते हैं कि शरीर छूट जाने पर गदहा, बकरा, बैल आदि को योनि बदल जाने के कारण मुक्त हो जाना चाहिए! षड्दर्शन में भी पिण्डपात के बाद मुक्ति बतायी गई है किन्तु वह करामलकवत् प्रत्यक्ष नहीं होता। शरीर के नष्ट होने से सब कुछ नष्ट हो जाता है। अतः यत्नपूर्वक शरीर की रक्षा करनी चाहिए[3]। इसके लिए रस और रसायन विधि बताई गयी है।

---

१. मृदः कोटिगुणं स्वर्णं स्वर्णात्कोटिगुणं मणिः।
मणेः कोटिगुणो वाणो वाणात् कोटिगुणो रसः॥
रसात्परतरं किञ्चिन्न भूतो न भविष्यति।

२. शुक्रमूत्रपुरीषाणां यदि मुक्तिर्निषेवणात्।
किन्तु मुक्ता महादेवि! श्वानशूकरजातयः॥ (रसार्णव)

३. पिण्डपाते च यो मोक्षः स च मोक्षः निरर्थकः।
पिण्डे तु पतिते देवि! गर्दभोऽपि विमुच्यते!
यदि मुक्तिर्भगक्षोभे किन्न मुञ्चन्ति गर्दभाः॥
अजाश्च वृषभाश्चैव किन्न मुक्ता गणाम्बिके।
तस्मात्संरक्षयेत् पिण्डं रसे चैव रसायने॥ (रसार्णव)

रसार्णवकार ने रसकर्म और पवनकर्म की विशेषता बताई है[1]। मद्य, मांस, भग, लिङ्ग (मैथुन) में लिप्त रहने वाला रस साधक को रस की सिद्धियाँ नहीं दिखती है, वे विनष्ट बुद्धि के हैं[2]। उपर्युक्त वर्णनों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि रसार्णवकार कौल परम्परा के विरोधी थे।

ग्रन्थ का काल एवं लेखक

रसार्णव ग्रन्थ में जहाँ समस्याएँ एवं जटिलताएँ ही सर्वत्र हैं वहाँ सबसे बड़ी समस्या ग्रन्थ के काल एवं लेखक के नाम की ही है। यह ग्रन्थ कब लिखा गया तथा इसके लेखक कौन हैं यह प्रश्न अति गम्भीर है। कुछ आचार्यों का यह मत है कि यह ग्रन्थ अतिप्राचीन अर्थात् ४-५ शताब्दी का है, कुछ आचार्य इसके द्रव्यों के आधार पर १२वीं शताब्दी का मानते हैं। किन्तु मेरे विचार से यह ग्रन्थ १०वीं शताब्दी का है ऐसा प्रतीत होता है।

लेखक ने बड़ी सफलता से इस ग्रन्थ में कहीं भी अपना परिचय एवं नाम आदि का कोई उल्लेख नही किया है सर्वत्र पार्वती भैरव के ही प्रश्नोत्तर दिया है, अतः लोगों की धारणा है कि भैरव के नाम से "भैरवानन्द" ही इस ग्रन्थ के लेखक हैं! भैरवानन्द बहुत सिद्ध योगी थे। उनके काल का भी कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। चौथी से १८वीं शती के वीच अनेकों भैरवानन्द हुए हैं। यह एक कल्पना है कोई ठोस प्रमाण नहीं।

रसार्णव की कुछ विशेषताऐं—

चतुर्थ पटल में धातुओं की अग्नि पर ज्वाला परीक्षा इसकी अपनी विशेषता है। सभी रसग्रन्थों में इसी विधि को उलट फेर करके अपना लिया गया है[3]।

---

१. रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा मतः।
मूर्च्छितो हरते व्याधिं मृतो जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां कुर्यात् रसो वायुश्च भैरबिः!। १|२९

२. मद्यं मांसरता नित्यं भगलिङ्गेषु ये रताः।
तेषां विनष्टबुद्धीनां रसज्ञानं सुदुर्लभम्।

३. आवर्तमाने कनके पीता तारे सिता प्रभा।
शुल्वे नीलनिभा तीक्ष्णे कृष्णवर्णा सुरेश्वरि!
वङ्गे ज्वाला कपोताभा नागे मलिन धूमका।
शैले तु धूसरा देवि! आयसे कपिलप्रभा ॥ ४/४९-५०-

जारण संस्कार का भेद विधि इस ग्रन्थ में बड़ी ही विचित्र और स्पष्ट है। रसार्णव की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता पारद भक्षण के लिए अष्टादश पटल में वर्णित है। सर्वप्रथम क्षेत्रीकरण का वर्णन रसग्रन्थ की दृष्टि से यही पर उपलब्ध है। "शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पिर्लोहामया पारद ताप-भक्षम्" ॥ १८/१४. यही वर्णन अष्टाङ्ग संग्रह और वृ. संहिता में भी इसी काम के लिए उद्धरित किया गया है। यद्यपि वे ग्रन्थ क्रमशः ३री और ५वीं शती का है। सम्भवतः यह ग्रन्थ ही प्राचीन हो या वहीं से इस ग्रन्थकार ने भी लिया हो। अस्तु। रसार्णवकार ने रसक्रामणार्थ रससेवन की विधि भी बड़ी ही विचित्र बताई है। इन्हों ने सामान्यजनों और योगियों अथवा ब्रह्मचारियों के लिए क्रामण की अलग-अलग विधियाँ बताई हैं।

१. सामान्य जनोपयोगी

स्त्री योग से पारद का क्रामण सर्वोत्तम बताया है[1]।

२. योगियों और ब्रह्मचारियों के लिये—योगियों और ब्रह्मचारियों के लिए समाधि करण ही क्रामण है[2]।

अष्टादश पटल के रस की अन्तिम सिद्धि के लिए बहुत ही कठिन उपाय बताये गये हैं। विधि यह है कि एक ताम्र के बृहद् कटाह में घृत, तैल लिप्त करके दृढ़ाग्नि प्रज्ज्वलित चूल्हे पर उक्त बड़ा कटाह को तप्त करे निर्धूम होने पर जब खूब तप्त होकर लाल हो जाय तो दिक्पाल की पूजा, कुमारी पूजा, बलि आदि देकर चण्ड, सूर्यादि नक्षत्रों को प्रणाम कर गुरु और शिव को प्रणाम कर उक्त तप्त कटाह में कूद जाय। गुरु के आदेशानुसार परिचारक ऊपर से जलादि पदार्थ डाले। सब द्रव्य कलल रूप हो जायगा। इसके बाद दिव्यालंकार से अलंकृत दिव्य शरीर युक्त वह साधक संदेह निकलेगा। उसी के साथ एक दिव्याङ्गना भी निकलेगी है। जिसके साथ हजारों वर्षों तक सिद्ध लोक में मदविह्वल होकर उपभोग करेगा[3]।

---

१. देहे क्रामति सूतेन्द्रो नात्र कार्या विचारणा।
अवश्यं क्रमते सूतः स्त्रीयोगे क्रामणं परम् ॥ ११५

२. ब्रह्मचर्य्येण वा योगी सदा सेवेत सूतकम्।
समाधि कारणं तच्च क्रामणं परमं मतम् ॥ ११६

३. षट् संगुणित पिण्डं स्यात् ताम्रपात्रं सुशोभनम् ॥
ऊर्द्धं पुरुषमात्रं तु पुरुषार्द्धं तु मण्डलम्।
चतुर्मुखं कृतं काष्ठं तस्योपरि निवेदयेत् ॥

ऐसी अनेक विशेषताएँ इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र भरी पड़ी हैं। अतः रसशास्त्र में पारद की सिद्धि के लिए यह ग्रन्थ सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है।

सर्वप्रथम सर पी० सी० राय कलकत्ता का रसशास्त्रीय जगत उपकृत है जिनके अथक प्रयास और अनुसन्धान पूर्ण संशोधन के फलस्वरूप यह ग्रन्थ विद्वानों एवं रसशास्त्रियों के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। सर पी० सी० राय के अनुसन्धान पूर्ण अंग्रेजी टिप्पणी से इस ग्रन्थ के बहुत अंशों का कुछ भाव प्रकट हुआ। किन्तु कालान्तर में कलकत्ता मुद्रित प्रति अलभ्य होने पर चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी द्वारा १९३९ में संस्कृत टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुआ फिर भी इस ग्रन्थ की जटिलता सुलझ, नहीं हो पायी थी। इन दिनों पुरानी प्रति भी दुष्प्राप्य हो गयी थी।

यह ग्रन्थ भाषार्थ और विषय की दृष्टि से बहुत दुरूह माना जाता है। मूलमात्र प्राप्त होने से इसे न कोई पढ़ने का और न कोई खरीदने का दुःसाहस करता था। यही कारण था कि ३५ वर्षों में मूल ग्रन्थ का प्रथम संस्करण समाप्त हुआ।

सर्वप्रथम इस ग्रन्थ के उदीयमान हिन्दी व्याख्याकार डॉ० इन्द्रदेव त्रिपाठी

सघृतं च महातैलं समभागेन लेपयेत्।
पूजयित्वा कटाहं तु दिक्पालांश्चैव पूजयेत्॥
कुमारीं पूजयेत् पश्चात् दद्याद्दिक्षु बलिं तथा।
धमनं तत्र कुर्वीत चेतुर्द्दिक्षु शनैः शनैः॥ २१५
सुतप्तं च विधातव्यं निर्धूमं च यदा भवेत्।
तदा नत्वा गुरुं देवं चन्द्रार्कादि ग्रहानपि।
नक्षत्राणि च सम्पूज्य आत्मानं तत्र निःक्षिपेत्॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
सुदुर्लभं विजानीयात् सिद्धिरूपं नियोजयेत्।
कललं च भवेत् सर्वं पुरश्चापो बिनिक्षिपेत्।
रक्तवर्णं विजानीयात्तेजस्तेजसि योजयेत्।
मांसपिण्डं भवेत्तत्र वायु तत्रैव निक्षिपेत्।
कान्तवर्णं तदा कार्यं निःक्षिपेत् एवं कपालके।
धमन्तं हेम संकाशं क्षारत्वं तन्तु पादयेत्।
कृत्वा तत्र महारावं हुंकारं सुरपूजितम्।
उत्तिष्ठति न सन्देहो पुष्टाङ्गो भास्करो यथा। इत्यादि

जो अनेक जटिल ग्रन्थों (गद निग्रह, क्षेमकुतूहल, महौषधनिघण्टु आदि) के टीकाकार हैं, जिन्होंने इस दुरूह एवं उपयोगी ग्रन्थ पर व्यख्या करने का निश्चय किया। अतः डा० त्रिपाठी धन्यवाद के पात्र हैं। डॉ० त्रिपाठी जी की व्याख्या से दो लाभ हुए— एक तो अनुपलब्ध यह ग्रन्थ उपलब्ध हो गया—दूसरा दुरूहता से प्रकाशक इस ग्रन्थ को प्रकाशन करने से घबराता था तथा रसशास्त्र का छात्र या अध्यापक इसकी जटिलता से और विवेच्य रस-शास्त्र में गति न होने से पढ़ने से घबराता था। अतः हिन्दी व्याख्या होने से इसकी सभी समस्याऐं स्वयं हल हो गयी हैं। यह तो कहना बहुत ही कठिन है कि इस व्याख्या से इस ग्रन्थ की सभी जटिलताएँ समाप्त हो गई है, किन्तु फिर भी इस व्याख्या से बहुत से विषयों पर प्रकाश पड़ा है। पहले मूल मात्र होने से जो लोग पढ़ने से भयभीत होते थे अब सम्भवतः इसे सभी समादृत करेंगें।

किसी भी जटिल मूल ग्रन्थ विशेष का जो क्रियात्मक हो पहली बार की व्याख्या से उसकी सभी समस्याएँ नहीं सुलझती हैं। अतः "रसार्णवम्" की अनेकों व्याख्या के बाद भी कुछ भेद खुल जाय; भाव स्पष्ट हो जाय, बहुत बड़ी बात होगी। अतः डा० त्रिपाठी जी के इस प्रयास का जितना भी अधिक प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही होगी। अब तक अनेकों विद्वान् रसशास्त्री हुए परन्तु किसी ने भी इस पर अपनी लेखनी नहीं उठायी थी। अतः डॉ० त्रिपाठी जी ने रसशास्त्र साहित्य की अभिवृद्धि कर जो सेवा की है इसके लिए भारतीय रसशास्त्र का पूरा परिवार आपसे उपकृत है।

अब पुनः "चौखम्बा संस्कृत सीरीज" के संचालकों ने इस ग्रन्थ की दुरूहता तथा उपयोगिता समझकर हिन्दी अनुवाद के साथ छापने का निर्णय लेकर रसशास्त्र का बड़ा ही उपकार किया है। अतः वे लोग धन्यवाद के पात्र हैं।

दिनांकः—२५।५।१९७८

निवेदक

सिद्धिनन्दन मिश्र

आत्म-निवेदन

ॐ रसेश्वराय नमः

रस शब्द का इतना व्यापक अर्थ है कि इसके उच्चारण मात्र से ही अनेक अर्थों का बोध होने लगता है। साहित्य मर्मज्ञ रस शब्द से श्रृंगार-हास्यादि नव रसों का बोध करते हैं तो प्राणाचार्य जन रसवैद्य होने से पारद का बोध करते हैं और औषध वैद्य मधुराम्लादि षड् रस का ज्ञान करते हैं। इसकी अनेकार्थता निम्न सूक्ति से स्पष्ट हो जाती है :—

रसो जलं रसो हर्षो रसः श्रृंगारपूर्वकः।
स्वाद्वादिषु च निर्यासे पारदेऽपि रसो विषे॥

यहाँ रस शब्द से रस शास्त्र (पारद) विवक्षित है। रसरत्नसमुच्चयकार ने रस की परिभाषा करते हुए बताया है कि जो सभी धातुओं को अपने में मिला लेता है वह रस है या जो जरा, रोग एवं मृत्यु को नाश करता है वह रस है।

रसशास्त्र का ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन करने पर यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में इस की तीन परम्परायें प्रचलित थीं। उस समय ब्राह्मण परम्परा की रसविद्या मुख्य थी। उसमें से आचार्य नागार्जुन ने नवीन आविष्कार किया और रस के विशेष प्रयोग से ताम्रादि बेध की सरल प्रक्रिया का निर्माण किया और इसके बाद वे बौद्ध धर्मावलम्बी हो गये। इसी समय रसवाद में बौद्ध परम्परा अलग हो गई। नागार्जुन की उदारता के कारण बौद्ध परम्परा का बहुत विकास होने लगा और उन्हें राजकीय सुविधायें भी प्राप्त हुईं। उन्होंने रस क्रिया की दीक्षा देकर सहस्रों शिष्यों को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए देश-विदेशों में भेजा।

ब्राह्मण-परम्परा में रूढ़िवादिता के कारण नवीन विचारों एवं कर्मों को अपने में समुचित स्थान न देने के फलस्वरूप उसे बौद्ध धर्म की तरह राज्याश्रय न मिल सका और नवीनतम आविष्कार का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

इधर नूतन आविष्कारों के चकाचौंध में समाज ने बौद्धों का साथ दिया और उन लोगों ने रसविज्ञान का प्रचार देश-विदेशों में किया। इसी बीच जैनों ने ब्राह्मण एवं बौद्धों के मिश्रित कला को अपनाया और इस विद्या का प्रचार एवं प्रसार पठन-पाठन के द्वारा कराया।

ये तीनों (ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन) परम्परायें द्राविड़ देशीय मोहेश्वर परम्परा से अनभिज्ञ रहीं। यद्यपि अघोरी, अवघड़ एवं नाथ आदि सम्प्रदायों के अनुयायियों ने माहेश्वर परम्परा के प्रयोगों का यत्किंञ्चित्, ज्ञान प्राप्त किया था किन्तु तीनों प्राचीन परम्परा के अनुयायी माहेश्वर परम्परा का ज्ञान न प्राप्त कर सके। क्योकि ये तीनों परम्परायें वाम-मार्गियो के आचरण के बिलकुल विपरीत थीं। ऐसी स्थिति में इन लोगों को माहेश्वर परम्परा के प्रयोगों को प्राप्त किया किन्तु उसका उपयोग समाज कल्याण के लिये न हो सका।

माहेश्वर रसपरम्परा का मुख्य स्थान द्राविड़ है और इसके अन्तर्गत कई सम्प्रदाय हैं। शैव, पाशुपत, लिङ्गायत एवं भैरव सम्प्रदाय आदि इसी के अन्दर आते हैं।

प्रस्तुत "रसार्णव तन्त्र" माहेश्वर परम्परा में भैरव पूजक सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रतीत होता है। इसमें माहेश्वर परम्परा के अनेक योग मिलते हैं। कापालिकक्रम, कापालिकरञ्चन तथा कापालिक योग का अनेक स्थलों पर सह प्रयोग होने से इसको कापालिक माहेश्वर परम्परा का ग्रन्थ कहना चाहिए। इस माहेश्वर मत का आदि प्रवर्तक भगवान् भैरव एवं माता पार्वती हैं और उनके सम्वादात्मक विचार से ही "रसार्णव तन्त्र" का उद्गम हुआ है। कापालिक नाम भगवान् शंकर के शत नामों में आया है। अतः इस रसशास्त्र की अनादिता प्रत्यक्ष प्रतीत होती है। इस ग्रन्थ में भगवती पार्वती ने जीवन्मुक्ति के स्वरूप को जानना चाहा है और श्री भगवान् भैरव ने जीवन्मुक्ति के स्वरूप को बताया है। उन्होने जीवन्मुक्ति का स्वरूप निरूपण करते हुए बताया है कि शरीर का धारण कर्मयोग से होता है और वह कर्मयोग रस[1] (पारद) तथा पवन (प्रणापानादि) वायु है। रस तथा पवन का परिचय देते हुए उन्होंने कहा है कि मूर्च्छित रस एवं पवन रोगसमूह को दूर करता है, मृत होने पर जीवन प्रदान करता है और बद्ध होने पर आकाश में विचरण करने की शक्ति प्रदान करता है। चिर जीवन प्राप्ति एवं आकाश में संचारण करने की सत्य कथायें आज कल भी सजीव हैं।

१. कर्मयोगेन देवेशि ! प्राप्यते पिण्डधारणम्।
रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा मतः॥
मूर्च्छितो हरते व्याधिं मृतः जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां याति रसो वायुश्च भैरवि !॥ (रसा० १-१८-१९)

रस शास्त्र प्राचीन है या मध्यकालीन सिद्धसम्प्रदाय की देन है यह विवादास्पद विषय बना हुआ है। वैदिक काल के इतिहासों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि रसशास्त्र का मूल भूत स्रोत वेद है। इसका विशेष विवेचन ऋग्वेद में मिलता है। अथर्ववेद में भी अनेक स्थलों पर विविध मन्त्रों के द्वारा उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद के मन्त्र में पारद का मानव शरीर की स्वस्थावस्था में प्रवेश कर स्वास्थ्य को अजर-अमर[1] बनाना तथा रुग्णावस्था में प्रवेश कर रोग से मुक्त करने का निर्देश मिलता है। इसके आधार पर रस शास्त्र का मूलभूत स्रोत वेद को प्रमाणित कर सकते हैं।

चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि आर्ष ग्रन्थों में रस (पारद), गन्धक, महारस, उपरस, साधारण रस, रत्न एवं धातु आदि का एकत्र स्वतन्त्र रूप से उपयोग करने का विधान मिलता है। चरक में कुष्ठरोग निवारणार्थ पारद का प्रयोग किया गया है। वाग्भट के समय में भी पारद गन्धक आदि द्रव्यों को शुद्ध कर प्रयोग में लाया जाता था। रसायन प्रकरण में रसरक्तादि धातुओं की वृद्धि एवं आयुष्य के लिये पारद सेवन करने का विधान है। अशुद्ध नाग वंगादि दोष युक्त पारद का सेवन सर्वाङ्ग कुष्ठोत्पादक होने का संकेत मिलता है। अतः प्राचीन काल में भी पारद को शुद्ध करने की अनेक विधियाँ प्रचलित थीं जिनका विस्तार आज के युग में विभिन्न प्रकार से देखने को मिलता है। चरक में गन्धक या स्वर्ण माक्षिक योग से भस्मीभूत पारद का सेवन कुष्ठरोग निवारणार्थ बताया गया है। इसी प्रकार हीरा[2] एवं शिलाजीत का योगराज के साथ प्रयोग मिलता है। मुक्ता[3] प्रवाल, अभ्रक, ताम्र, लौह एवं गन्धक आदि के भस्मों का प्रयोग कामलारोग में किया गया है। इस प्रकार आर्ष ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर रस-रसायन

---

१. ऊँ पक्षी ज्यायान्यः पतति स आविशति पूरुषम्।
तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च॥
(अथर्व.काण्ड ७ अ० ७६ सू० ४)

यहाँ पर पक्षी शब्द रस (पारद) का वाचक हैं, और अक्षित शब्दसे स्वस्थ एवं सुक्षत शब्द से रुग्णावस्था का संकेत किया गया है।

२. वज्रं शिलाजतु सहितं वा योगराजेन।
सर्व व्यधिनिवर्हणमद्यात् कुष्ठी निगृह्य नित्यं च॥
(च० चि० अ० ७)।

का प्रयोग आता है, अतः यह कहना कि रसशास्त्र का प्रारम्भ तन्त्रयुग या सिद्ध सम्प्रदाय के समय से हुआ है यह युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता है। यह कहा जा सकता है कि सिद्ध सम्प्रदाय के समय से इसका प्रचार एवं प्रसार विशेष रूप से बढ़ा है। उन्हीं प्रक्रियाओं को आधुनिक वैज्ञानिकों ने विशिष्ट उपकरणों द्वारा प्रत्यक्ष कर दिया है।

प्राचीन काल में भी रसायन क्रिया के द्वारा पारद-माक्षिक आदि के संयोग से स्वर्ण-रजतादि निर्माण करने की परम्परा प्रचलित थी। जिसके अनेक उदाहरण आज भी विद्यमान हैं। मध्य काल में तो इसका बहुत ही प्रचार था किन्तु समय के प्रभाव से स्वर्ण-आदि निर्माण विधि का ह्रास होता गया और आज कल शास्त्रावशेष कथानक मात्र रह गया है।

शास्त्रावशेष स्वर्ण रजतादि निर्माण विधियों का वर्णन अनेक रसग्रन्थों में मिलता है किन्तु रसार्णव में जैसा विस्तारपूर्वक वर्णन है वैसा अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता।

आजकल रस शास्त्र का उपयोग चिकित्सा के लिए हो रहा है। इसके लिये बड़े-बड़े ग्रन्थों का निर्माण अनुभव के आधार पर किया गया और उनमें रस रसायन के अनेकों योग राम वाण की तरह चमत्कार दिखाते हैं। सद्यः[1] लाभकारी एवं स्वल्प मात्रा में प्रयोज्य होने से सभी प्रकार के औषधों में यह प्रभावशाली है। शुद्ध एवं मृत पारद[2] का प्रयोग करने से रोगी एवं चिकित्सक को तुलादान तथा अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ऐसा स्तावक वचन शास्त्रों में मिलते हैं।

जीवन मुक्तिवाद, देहवाद एवं लौहवाद प्रधान "रसार्णव" अपनी अनोखी शैली एवं प्रक्रिया के कारण अति प्राचीन प्रतीत होता है। इसके

१. अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसंगतः ।
क्षिप्रमारोग्य दायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥

२. रोगिभ्यो यो रसं दत्ते शुद्धपाकसमन्वितः ।
तुलादानाश्वमेधानां फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥
शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं गोकोटिभिः स्वर्ण सहस्रदानात् ।
नृणां भवेत्सूतकदर्शनेन यः सर्वतीर्थेषु कृताभिषेकात् ।
भक्षणं स्पर्शनंदानंध्यानञ्च परिपूजनम् । पञ्चधा रसपूजोक्ता महापातकनाशिनी ।

उद्धरण अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। इससे मिलती-जुलती शैली "रसोपनिषत्" में भी मिलती है किन्तु उसके प्रकार भिन्न हैं। "आनन्दकन्द" एवं "गोरक्ष-संहिता" भी इसी कोटि के ग्रन्थ हैं। वे सभी पार्वती परमेश्वर संवादात्मक है। 'गोरक्ष संहिता शक्ति एवं नीलकण्ठ को पार्वती परमेश्वर का प्रतीक मानकर प्रणयन किया गया है।

रस शास्त्र का ऐतिहासिक अध्ययन करने पर निश्चित काल का ज्ञान नहीं होता किन्तु शैली एवं प्रक्रिया के आधार पर रस वाङ्मय का प्रारम्भ काल होना चाहिए। आ० प्रियव्रत शर्मा जी के 'आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास' के अनुसार इसका वारहवीं शती होता है। इस पर रसवित् बिचार करेंगे।

ग्रन्थ का विषय

रसार्णव अट्ठारह पटलों (प्रकरणों) में विभक्त है। प्रथम पटल में जीवन्मुक्ति विषयक प्रश्नोत्तर तथा रसोत्पत्ति का विवेचन है। द्वितीय पटल में गुरु-शिष्य का लक्षण तथा उनके कर्तव्य का निरूपण किया गया है। तृतीय पटल में रसशाला-निर्माण, मन्त्रविन्यास आदि का क्रम बताया गया है। चतुर्थ पटल में यन्त्र, मूषा आदि तथा अग्नि के नाम एवं लक्षण आदि का विवेचन है। पञ्चम पटल में नियामन एवं क्रामण कर्म का स्वरूप तथा विविध विधियों का दिग्दर्शन कराया गया है। षष्ठ पटल में अभ्रक के भेद, लक्षण एवं संस्कार विधि का निरूपण है। सप्तम पटल में स्वर्णमाक्षिक आदि महारस, गन्धक आदि उपरस, सुवर्ण रजत आदि धातु एवं हीरक आदि रत्नों का शोधन, द्रावय आदि संस्कारों का लक्षण सहित वर्णन है। अष्टम पटल में राग (रंग) की संख्या, रञ्जन क्रिया बिधि एवं बीज साधन विधि का विवेचन है। नवम पटल में बीज के साधन, विडों का निर्माण प्रकार कहा गया है। दशम पटल में रस का लक्षण, शोधन तथा मान परिभाषा का निरूपण किया गया है। एकादश में पारद की चारण-जारण विधि, द्वादश में रस का बन्धन (बाल जारण), त्रयोदश में बद्धजारण तथा चतुर्दश में प्रकारान्तर से वज्रबन्ध का निरूपण है। पञ्चदश पटल में महारस, उपरस तथा लोह आदि के साथ पारद बन्ध तथा षोडश पटल में बद्ध पारद की द्रावण एवं वज्रादि के जारण प्रकार का निरूपण है। सप्तदश पटल में पारद के साथ लोहबेध का प्रकार बताया गया है और अष्टादश पटल में देहबेध खेचरी गति का साधक तथा सिद्धावस्था की प्राप्ति का निरूपण किया गया है। इस प्रकार जीवन्मुक्ति-विषयक प्रश्न से लेकर सिद्ध दशा की प्राप्ति पर्यन्त तक की विविध क्रियाओं का वर्णन किया गया है। बीच-बीच में प्रसंगतः आरोग्य प्रप्ति के साधनों का भी उपाय बताया गया है। यही इस ग्रन्थ की संक्षिप्त विषय वस्तु है।

प्रस्तुत अनुवाद के सम्बन्ध में

प्रस्तुत ग्रन्थ के अनुवाद को लेकर मुझे अतिशय कठिनाई का सामना करना पड़ा था और कभी-कभी तो मन में यह भी विचार उठता था कि इससे बिरत हो जाना चाहिए। यह इसलिये कि इस पर संस्कृत तथा हिन्दी आदि कोई भी व्याख्या मेरे सहयोग के लिए प्राप्त नहीं थी। इसके गूढ रहस्यों के समझने के लिए रसवैद्यों के पदतल की धूलि झारने का अवसर यदा-कदा मिला है और कहीं-कहीं के स्थल को लेकर 'ऊचे चढ़कर देखा घर घर की एक ही लेखा'' वाली उक्ति भी चरितार्थ हो जाती थी। फिर भी हमने आयुर्वेदीय बन्धुओं के शोध-खोज के लिए इस राजमार्ग को एक अनगढ़ रूप दिया है और उन्हीं सहृदय बन्धुओं पर इस अनुवाद की मौलिकता का परीक्षण भार भी सौंप रहा हूँ।

मुझे अनुवाद कार्य में पंडित तारादत्त पन्त सम्पदित पुस्तक तथा उनकी भागीरथी टिप्पणी का कितना उपकार हो पाया है इसे मेरा मन ही जानता है; एतदर्थ उस लेखक के लिए मैं साधुवाद देता हूँ। इसके अतिरिक्त ज्ञाता-ज्ञात जिन महानुभावों की विचार-परिधि से जो भी रस ग्रहण कर सका हूँ उनका मैं चिर ऋणी रहूँगा।

(क) आयुर्वेद मर्मज्ञ गुरुवर श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी भूतपूर्व विभागाध्यक्ष—आयुर्वेदिक कालेज, सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि० वाराणसी का आशीर्वचन मेरे लिए अतिशय प्रोत्साहक है तथा अनुसंधित्सुओं के लिए मार्ग प्रदर्शक है।

मैं डा० गंगा सहाय पाण्डेय जी की चिर ऋणी हूँ जिन्होंने इस कार्य में प्रवृत्त कराकर सेवा करने का अवसर दिया है। साथ ही डा० सहजानन्द तिवारी रसशास्त्र व्याखाता का आभारी हूँ जिनके प्रोत्साहन से इस कार्य को पूरा कर सका हूँ।

(ख) रस वैद्य सिद्धिनन्दन मिश्र जी ने प्रस्तावना लिख कर इस रसार्णव तन्त्र का गौरव बढ़ाया है। एतदर्थ मैं आप का विशेष आभारी हूँ।

अंत में चौखम्बा संस्कृत सीरीज के संचालकों में उदीयमान वरिष्ठ संचालक श्री बिठ्ठलदासजी गुप्त को मैं हार्दिक शुभाशीर्वाद देता हूँ जिन्होंने बड़े ही उत्साह के साथ इस हिन्दी व्याख्या को पाठकों के समक्ष लाने का भगीरथ प्रयास किया है। साथ ही आदरणीय पंडित रामचन्द्र झा महानुभाव का अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी स्नेहमयी दृष्टि में इस 'रसार्णव' का सुन्दर हिन्दी संस्करण प्रकाशित, हो सका है। आशा है इस संस्करण का सर्वत्र स्वागत होगा। भूल-चूक के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

निर्जला एकादशी

वि० सं० २०३५

रसवैद्यपदाम्बुजानुरागी

इन्द्रदेव त्रिपाठी

भूमिका

(प्रथम संस्करण)

रसार्णवमिदं तन्त्रं रसचिकित्सा-ग्रन्थानां मूलभूतम्, श्रीपार्वतीपरमेश्वर-संवादरूपम्, कदा केन कुत्र कथं परमेश्वराल्लब्धमिति नाऽऽलोच्यते, यतः खलु नागार्जुन-भैरवानन्द-नित्यनाथादीनां सिद्धानामुपासनाबलेनेष्टदेवसाक्षात्कारः सम्मत्येव। तेषाञ्च समयः, आर्षसमयानन्तरमेव।

जीवन्मुक्तिश्चास्य तन्त्रस्योद्देश्यभूता।

तत्साधनं रसराजः। स च संस्कारान्नानाविधः सिद्धयश्च भूचरी खेचरी प्रभृतयो नानाविधाः,

अष्टादशपटलात्मकेऽस्मिन् ग्रन्थे क्रमशो विषयाः।

प्रथमे—जीवन्मुक्तिविषयकः प्रश्नः, पारदोत्पत्तिश्च,

द्वितीये—गुरुशिष्यलक्षणम्, तत्कर्त्तव्यञ्च,

तृतीये—मन्त्रन्यासाः,

चतुर्थे—यन्त्रलक्षणानि, मूषालक्षणानि, अग्निनामानि, लक्षणानि च।

पञ्चमे—नियामनादि--क्रामणान्तं कर्म।

षष्ठे—अभ्रकलक्षण-संस्कार-विधिः।

सप्तमे—स्वर्णमाक्षिकादि--महारसानां, गन्धकादीनामुपरसानां, सुवर्णरजतादीनां धातूनां, हीरकादीनां रत्नानाञ्च, शोधनादयो द्रावणादयश्च संस्काराः सलक्षणाः।

अष्टमे—पटले तु–रागसङ्ख्या रञ्जनक्रियाजन्या, बीजसाधनञ्च प्रतिपादितम्।

नवमे—रसे बीजजारण-साधन-भूता 'विडाः'।

दशमे—रसलक्षणं रसशोधनं च, मानपरिभाषा च ।

एकादशे—पारदस्य चारणं जारणञ्च ।

द्वादशे—रसस्य बन्धनम्, (बालजारणा)

त्रयोदशे—बद्धजारणा,

चतुर्दशे—प्रकारान्तरेण वज्रबन्धः,

पञ्चदशे—महारसोपरसलोहैः पारदबन्धः,

षोडशे—बद्धस्य पारदस्य द्रावणं वज्रादिजारणञ्च ।

सप्तदशे—पारदेन लोहवेधः कथं भवतीति–प्रकारः ।

अष्टादशे—पारदेन देहवेधः खेचरी–गति साधकः,

सिद्धावस्था-प्राप्तिः,

एवं जीन्मुक्तिविषयकप्रश्नादारभ्य सिद्धदशाप्राप्तिपर्य्यन्तवर्णनम्, मध्ये २ नीरोगाऽऽवाप्तिवर्णनमानुषङ्गिकमस्मिन्तन्त्रे-इति-रसेश्वरदर्शनमिदमिति न काप्यनुपपत्तिः,

तदिदं ग्रन्थरत्नं पुरा कलिकाता नगरे मुद्रितमासीत्, अधुना तु दुर्लभमिति हेतोः पुनः प्रकाशनाय टिप्पण्या संयोज्य प्रकाशकाय समर्प्यते । आशासेऽनया टिप्पण्या पाठकानां किमपि साहाय्यं स्यादेवेति,

ई० १९३९
वाराणसी }

—तारादत्तपन्तः

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥

रसार्णवम्

सटिप्पण 'रसचन्द्रिका' हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमः पटलः

मङ्गलाचरणम्

यस्मि[1]न् सर्वं यतः सर्वं, यः सर्वं सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नमः॥ १॥

मंगलाचरणः--जिस आधारभूत ईश्वर में माया जन्य सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जिससे सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न होती है, जो कारणरूप होने से संसार का सब कुछ है तथा सभी के लिये है एवं कार्य रूप होने से जगत् रूप में विद्यमान है, उस सम्पूर्णसंसार के आत्मस्वरूप पर ब्रह्म परमात्मा श्री शंकर भगवान् को मेरा नित्यप्रति का नमस्कार है॥ १॥

कैलासशिखरे रम्ये ननारत्नविभूषिते।
नानाद्रुमलताकीर्णे गुप्त[2]सम्बन्धवर्जिते॥ २॥
देवदेवं सुखासीनं नीलकण्ठं त्रिलोचनम्।
प्रणम्य शिरसा देवी पार्वती परिपृच्छति॥ ३॥

जीवनमुक्तिविषयक प्रश्नोत्तर :--अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित विविध प्रकार के बृक्ष तथा लताओं से व्याप्त, आवरण-आदि से रहित मनोरम कैलाश (हिमालय) के शिखर पर सुख पूर्वक बैठे हुए सभी देवों के देव, तीन नेत्र वाले, नीलकण्ठ श्री शंकर भगवान् को अञ्जलि वद्ध सिर से प्रणाम कर पार्वती ने प्रश्न किया॥ २-३॥

प्रणम्य शिरसा देवं शङ्करं लोक-शङ्करम्।
रसार्णवं निरीक्षेऽहं रसेन्द्रज्ञान-सिद्धये॥

१. यस्मिन्=आधारभूते, 'यस्मिन्सर्वाणिभूतानि' इति श्रुतेः, एवं यतो वा-इमानि भूतानि, 'यस्तु सर्वाणिभूतानि' इत्यादयः श्रुतयोऽनुसन्धेयाः। सर्वतः= सर्वस्मै, चतुर्थ्यर्थे तसिः। 'यः सर्वं, कारण-रूपत्वात्। सर्वमयः कार्यरूपत्वात्। ईश्वरे रसे च सङ्गमनीयम्।

२. आवरण-रहिते।

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव महादेव, काल कामाङ्गदाहक ।
कुल[1]कौल-महाकौल सिद्धकौलादिनाशन ! ॥ ४ ॥
त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं सर्वमशेषमवधारितम् ।
यदि तेऽहमनुग्राह्या यद्यहं तव वल्लभा ॥ ५ ॥
सूचिता सर्वतन्त्रेषु या पुन र्न प्रकाशिता ।
जीवन्मुक्तिरियं नाथ ! कीदृशी वक्तुमर्हसि[2] ॥ ६ ॥

पार्वती बोली :-हे सभी देवताओं के देव, सभी देवों में श्रेष्ट, काल तथा कामदेव को नाश करने वाले, कुल, कौल, महाकौल तथा सिद्ध कौल-आदि वाम पन्थियों के भेदों को निराकरण करने वाले शंकर जी ! मैंने आप की प्रसन्नता से सभी ज्ञान-विज्ञान विषयक बातों को सुना तथा उसको निश्शेष समझ लिया। यदि आप की मेरे ऊपर अनुकम्पा है और मैं आप की प्रिय-पत्नी हूं तो सभी तन्त्रों (शास्त्रों) में कही गई किन्तु अश्रुत एवं अप्रकाशित जीवनमुक्ति किस प्रकार की है उसको आप अच्छी तरह बतायें ॥ ४-६ ॥

श्रीभैरव उवाच—

साधु साधु महाभागे ! साधु पर्वतनन्दिनि ! ।
साधु पृष्टं त्वया देवि ? भक्तानां हितकाम्यया ॥ ७ ॥
अ[3]जरामरदेहस्य शिवतादात्म्यवेदनम् ।
जीवन्मुक्तिर्महादेवि ! देवानामपि दुर्लभा ॥ ८ ॥

जीवमुक्ति विषयक प्रश्न को सुनकर श्री भैरव (शंकर) जी बोले :-- हे सौभाग्य शालिनि ! हिमाचल पुत्रि ! पार्वती देवि ! तुमने भक्तों के हित के लिये समुचित प्रश्न किया है। हे महादेवि ! पार्वति ! अजर-अमर देह धारण किये हुए व्यक्ति को शिव तादात्म्य की प्राप्ति ही जीवनमुक्ति है और यह देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ७-८ ॥

पिण्डपाते च यो मोक्षः स च मोक्षो निर[4]र्थकः ।
पिण्डे तु पतिते देवि ! गर्दभोऽपि विमु[5]च्यते ॥ ९ ॥

---

१. कुल-कौलादयो वामाऽऽवर्त्तिनां भेदाः, तन्निरासक ?

२. ताम्-इति शेषः ।

३. अजराऽमर-देहत्व-विशिष्ट-शिवतादात्म्य-प्राप्तिर्जीवन्मुक्तिः, इति लक्षणम् । षष्ठ्याः, विशिष्टत्वमर्थः, विद्लाभे-इत्यस्मान्निष्पन्नस्य, वेदनमित्यस्य प्राप्तिरर्थः ।

४. साधनीभूतेन देहेन फलाऽननुभवात् ।

५. विमुच्यते कर्मकर्त्तरि प्रयोगः ।

यदि मुक्तिर्भगक्षोभे किं न मुञ्चन्ति[1] गर्दभाः।
अजाश्च वृषभाश्चैव किन्न मुक्ता गणाम्बिके ! ॥ १० ॥

मृत्यु के बाद मुक्ति प्राप्ति का निराकरण :—शरीर के नष्ट हो जाने पर मुक्ति होती है जो यह कहा जाता है वह मोक्ष (मुक्ति) निरर्थक है। क्योंकि मोक्ष के साधन रूप शरीर से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । यदि शरीर के नष्ट हो जाने मात्र से ही मुक्ति होती है तो गदहा भी मुक्त हो सकता है। यदि स्थूल शरीर के नाश से मुक्ति होती है तो गदहे क्यों नहीं मुक्त हो जाते। हे अम्बिके ! बकरे और बैल भी योनि त्याग मात्र से क्यों नहीं मुक्त समझे जाते ॥ ९–१० ॥

तस्मात् संरक्षयेत् पिण्डं रसैश्चैव रसायनैः।

मुक्ति के लिये शरीर संरक्षण की आवश्यकता :—शरीर का नष्ट हो जाना मुक्ति नहीं है। मुक्ति के साधन रूप शरीर से ही मुक्ति प्राप्त होती है, अतः रस एवं रसायनों से शरीर की रक्षा करे ॥ १०½ ॥

शुक्र[2]मूत्रपुरीषाणां यदि मुक्तिर्निषेवणात् ॥ ११ ॥
किन्न मुक्ता महादेवि ! श्वानशूकरजातयः।

तामस कौल-महाकौल-आदि वामपन्थियों (औघड़) की मुक्ति का निराकण :—हे महादेवि ! यदि तामस वाम पन्थियों की मुक्ति के अनुसार शुक्र, मूत्र तथा मल के सेवन करने से मुक्ति मानी जाय तो कुत्ता सूकर आदि मलमूत्रादि भक्षक जातियां क्यों न मुक्त समझी जावेगी। अर्थात् उनकी मुक्ति नहीं मानी जाती है ॥ ११½ ॥

षड्दर्शनेऽपि मुक्तिस्तु दर्शिता पिण्डपातने ॥ १२ ॥
करामलकवत् सापि प्रत्य[3]क्षं नोपलभ्यते।
अकथ्यमपि देवेशि ! सद्भावं कथयामि ते ॥ १३ ॥
शून्यपापो मन्त्रयाजी न पिण्डं धारयेत् क्वचि[4]त्।
देवानामपि देवेशि ! दुर्लभं पिण्डधारणम् ॥ १४ ॥
किं पुनर्मानुषाणान्तु धरणीतलवासिनाम्।

षड् दार्शनिकों की मुक्ति का निराकरण :—आस्तिक षड् दर्शनों के आचार्यों ने शरीर के नष्ट हो जाने पर ही मुक्ति स्वीकार किया है, किन्तु

---

१. मुक्ता भवन्ति।

२. तामस-कौल (औघड़) मतं निरस्यति-शुक्रादीनां-निषेवणाद्-यदि मुक्तिरित्यन्वयः।

३. न्यायादावनुमान-गम्या, वेदान्तादौ शब्द-प्रमाण गम्या-अतः प्रत्यक्षं यथा स्यात्तथा नोपलभ्यते।

४. 'भोगेन पापं कुशलेन पुण्यं, कलेवरं कालजवेन हित्वा' इत्युक्तेः।

वह भी हाथ में स्थित आंवला की तरह प्रत्यक्ष मुक्ति का स्वरूप नहीं दिखाई देता, क्योंकि न्यायादिदर्शन में अनुमान गम्य तथा वेदान्तादि में शब्द प्रमाण गम्य मुक्ति सिद्ध की गई है। अतः हे देवताओं मे श्रेष्ठ पार्वति ! अकथनीय भी समुचितभावों (सिद्धान्तों) को तुमसे बताता हूँ। निष्पाप तथा मन्त्र यज्ञ करने वाला कभी भी शरीर को नहीं धारण करता। हे देवेशि ! शरीर को धारण करना देवताओं को भी दुर्लभ है। पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों के लिये शरीर धारण करना तो अत्यन्त ही दुर्लभ है। अर्थात् पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को पुनः मनुष्य शरीर धारण करना सन्दिग्ध है ॥ १२-१४½ ॥

धर्मे नष्टे कुतो धर्मः, धर्मे नष्टे कुतः क्रिया ॥ १५ ॥
क्रियानष्टे कुतो योगः योगे नष्टे कुतो गतिः।
गतिन[1]ष्टे कुतो मोक्षो मोक्षे नष्टे न किञ्चन ॥ १६ ॥
तेन पिण्डो महाभागे ! रक्षणीयः प्रयत्नतः ॥

शरीर मुक्ति का साधन होने से उसकी रक्षा का निर्देश :—शरीर न रहने पर धर्मादि के अभाव में धर्म का सम्पादन कैसे होगा, धर्म के नष्ट होने पर क्रियाये कैसे होगीं, क्रिया के नष्ट होने पर योग कैसे सम्पन्न होगा और योग के अभाव में गति (पुनर्जन्म) कैसे होगी। गति नष्ट होने पर मोक्ष की क्या आवश्यकता होगी और मोक्ष की आवश्यकता न होने पर संसार के सभी कार्य कलाप व्यर्थ हो जायेगे। अर्थात् मोक्ष संपादनार्थ शरीर की आवश्यकता तथा शरीर धारणार्थ मोक्षपदार्थ की सत्ता आवश्यक है। दोने के विद्यमान् रहने पर ही संसारचक्र चल सकता है। अतः हे महाभागे ! सभी प्रकार के प्रयत्नों से शरीर की रक्षा करनी चाहिए ॥ १५-१६½ ॥

श्रीदेव्युवाच—

जीवन्मुक्तिस्वरूपं तु देवदेव ! श्रुतं मया।
तत्प्र[2]त्युपायं मे ब्रूहि यद्यस्ति करुणा मयि ॥ १७ ॥

मुक्ति के उपाय के सम्बन्ध में पार्वती का प्रश्न :—मुक्ति का स्वरूप समझकर पुनः पार्वती ने प्रश्न किया कि हे देवताओं के देव मैंने जीवन मुक्ति का स्वरूप सुन लिया। अब आप जीवन मुक्ति प्राप्ति के उपाय को कहें यदि आप की मेरे ऊपर कृपा हो ॥ १७ ॥

श्रीभैरव उवाच—

कर्मयोगेन देवेशि ! प्राप्यते पिण्डधारणम्।
रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा मतः ॥ १८ ॥

---

१. नाशो नष्टम्, नपुंसके भावेक्तः, क्रिया नाशे, गति नाशे च।
२. तत्प्रति-जीवन्मुक्ति प्रति, उपायम्-इतिच्छेदः। तत्प्राप्त्युपायमित्यर्थः।

भैरव के द्वारा मुक्ति के उपाय का निरूपण :—मुक्ति का उपाय बताते हुए भैरव जी बोले। हे देवेशि ! कर्म योग (क्रिया का संयोग) से ही शरीर की प्राप्ति होती है। कर्म योग दो प्रकार का हे। रस (पारद) तथा पवन (वायु) ॥ १८ ॥

मूर्च्छितो हरते व्याधिं मृतो जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां कुर्य्यात् रसो वायुश्च भैरवि ॥ १९ ॥

मोक्षसाधक के रूप में रस तथा पवन का विवेचन :—हे पार्वती ! रस तथा वायु मूर्च्छित होने पर व्याधि को नाश करते हैं, मृत होने पर जीवन प्रदान करते हैं तथा बद्ध होने पर आकाश में विचरण करने की शक्ति प्रदान करते हैं। अर्थात् रस (पारद) गन्धक, चन्दन, अगरु आदि द्रव्यों के साथ मूर्च्छन संस्कार से सिद्ध रस सिन्दूर आदि के रूप में होकर व्याधि को नाश करता है, स्वयं मृत (भस्म) हो जाने पर मनुष्य को जीवित कर देता है तथा बद्ध (गुटिका) होने पर आकाश में विचरण करने की शक्ति प्रदान करता है। वायु भी मूर्च्छित (प्राणायामादि क्रिया द्वारा) होकर रोग को दूर करता है, यौगिक प्रक्रिया के द्वारा मृत होने पर जीवन प्रदान करता है। बद्ध होने पर आकाश में विचरण करने की शक्ति प्रदान करता है अर्थात् औषधि के योग से पारद को मूर्च्छन किया जाता है, वायु का मूर्च्छन प्रणायामादि विधि के द्वारा प्राण वायु को नियन्त्रित किया जाता है अनेक औषधों के योग से पारद भस्म किया जाता है तथा प्राण वायु को विशिष्ट यौगिक प्रक्रिया से प्रसुप्त कर दिया जाता है। इसी प्रकार कुछ औषधों के योग से पारा को बद्ध किया जाता है तथा प्राण वायुको समाधि आदि उपायों से बद्ध किया जाता है। इस प्रकार मूर्च्छित रस तथा वायु रोग को दूर करते हैं, मृत रस तथा वायु जीवन प्रदान करते हैं तथा बद्ध (गुटकी कृत खेचरी गुटिका) रस तथा वायु आकाश में संचरण करने की शक्ति प्रदान करता है। (प्राण वायु में मूर्च्छन, मृत, एवं बद्ध क्रिया को योग के विशिष्ट ग्रन्थ, (शिवसंहिता आदि ग्रन्थों) में देखना चाहिए)

ज्ञानान्मोक्षः सुरेशानि ! ज्ञानं पवनधारणात्।
तत्र देवि ! स्थिरं पिण्डं यत्र स्थैर्य्यं रसः प्रभुः ॥ २० ॥
अचिराज्जायते देवि ! शरीरमजरामरम्।
मनसश्च यथा ध्यानं रसयोगादवाप्यते ॥ २१ ॥
सत्यं स लभते देवि ! ज्ञानं विज्ञानपूर्व्वकम्।
तस्य मन्त्राश्च सिध्यन्ति योऽश्नाति मृतसूतकम् ॥ २२ ॥

मोक्ष में रस की प्रधानता :—हे देवों के स्वामिनि ! ज्ञान से मोक्ष होता है और पवन (वायु) के धारण करने से ज्ञान होता है। (योग शास्त्र में

प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि उपायों को ज्ञान का साधन बताया गया है) हे देवि ! ज्ञान के लिए शरीर का स्वस्थ रहना आवश्यक है; और शरीर को स्वस्थ रखने में रस ही समर्थ है। हे देवि ! रस के संयोग से शीघ्र ही शरीर अजर-अमर (वृद्धावस्था रहित चिरस्थायी) हो जाता है और रस सेवन से चाञ्चल्यादि दोषरहित मन ध्यान में स्थित हो जाता है। हे देवि ! इस प्रकार समाधिस्थ मन ज्ञान (सम्पूर्ण प्राणियों में एक अव्यक्त भाव को देखना और विभक्त में भी अव्यक्त भाव को देखना) तथा विज्ञान (एक ही मूलभूत अव्यक्त से अलग भिन्न-भिन्न पदार्थों की उत्पत्ति प्रक्रिया का भी विवेचन) पूर्वक सत्य (या सत्व-मन) को प्राप्त करता है और उस की मन्त्र क्रिया भी सिद्ध हो जाती है जो पारद भस्म को सेवन करता है ॥ २०-२२ ॥

यावन्न शक्तिपातस्तु न यावत् पाशकृन्तनम् ।
तावत्तस्य कुतो बु(शु)द्धिः जायते मृतसूतके ॥ २३ ॥

रस प्रवृत्ति में विशेष अवस्था :—जबतक मनुष्य की शक्ति (शरीरबल) का ह्रास न हो जाय और पाश (मोहजाल) का छेदन न हो जाय तब तक पारद सेवन एवं रस ज्ञान में बुद्धि कैसे प्रवृत्त हो सकती है। अर्थात् शारीरिक दौर्बल्य एवं मोह माया से निवृत्त होने पर ही रस विषयक प्रवृत्ति होती है। "रसेन्द्र चिन्ता मणि" में बुद्धि के स्थान पर शुद्धि पाठ मिलता है उस पक्ष में— मारण के लिए गृहीत पारद में जब तक उसकी शक्ति (चाञ्चल्यत्व) का नाश न हो जाय तथा पारद के पाश (नाग वंगादि दोषों) का कृन्तन (छेदन) न हो जाय तब तक (पारद में) शुद्धि कैसे हो सकती है। शुद्ध पारद ही मूर्च्छित, मृत तथा बद्ध होने पर लोकोपकारक होता है ॥ २३ ॥

मद्यमांसरता नित्यं भगलिङ्गेषु ये रताः ।
तेषां विनष्टबुद्धीनां रसज्ञानं सुदुर्लभम् ॥ २४ ॥

जो लोग मद्य मांसादि तामस पदार्थों के सेवन एवं भग-लिङ्ग आदि विषयों में निरन्तर प्रवृत्ति रहते हैं उन विनष्ट बुद्धि वालों के लिए रस क्रिया का ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। अर्थात् मद्यमांसादि तामस भोजन खान-पान से तामस शक्ति की वृद्धि तथा भग-लिङ्गादि में प्रवृत्ति से पाश बन्धन दृढ़ होता है, ऐसी स्थिति में बुद्धि भ्रष्ठ हो जाती है और रस ज्ञान एवं उस के सेवन में प्रवृति नहीं होती है। क्योंकि विषय एवं मायामोह से निवृत्त होने पर ही रस क्रिया में बुद्धि प्रवृत्त होती है ॥ २४ ॥

कुलशासनहीनानां सद्दर्शनमकाङ्क्षिणाम् ।
न सिध्यति रसो देवि! पिबन्ति मृगतृष्णिकाम् ॥ २५ ॥

हे देवि ! जिन मनुष्यों ने सद् गुरुओं (रस दीक्षा गुरुओं) से रस शिक्षा एवं क्रिया विधि की प्राप्ति नहीं की है तथा जो सत्य एवं देव दर्शन से विमुख रहते हैं उनको रस क्रिया की सिद्धि कभी भी नहीं होती है। वे केवल मृग तृष्णा के ही जल पीते हैं। अर्थात् उन को सफलता नहीं मिलती व्यर्थ ही परिश्रम करते हैं ॥ २५ ॥

गोमांसं भक्षयेद्यस्तु पिबेदमरवारुणीम् ।
कुलीनं[1] तमहं मन्ये रसज्ञमपरेऽधमाः ॥ २६ ॥

कुलीनरसज्ञ का लक्षण :—जो व्यक्ति गो मांस को खाता है तथा अमर वारुणी का पान करता है उसे हम कुलीनरसज्ञ मानते है। अन्य अधम हैं।

वक्तव्य :—गो मांस भक्षण तथा अमर वारुणी पान योगियों की एक विशेष प्रक्रिया है। इस को खेचरी[2] मुद्रा कहते हैं। इसमें जिह्वा के अग्र भाग को तालुरन्ध्र में प्रवेश किया जाता है और जिह्वाग्र प्रवेश से उत्पन्न गर्मी के कारण ब्रह्मरन्ध्र से द्रवित ब्रह्मवारि (अमृत या अमर वारुणी) का पान किया जाता है। इस प्रकार गो मांस भक्षण एवं अमर वारुणी पान करने वाला कुलीन रसज्ञ होता है। इस मुद्रा को न करने वाले अधम कोटि के रसज्ञ होते हैं। वेदान्त पक्ष में–जो व्यक्ति गो मांस इन्द्रियों के विषय वासनारूपी मांस को खाता है अर्थात् विषय लोलुप इन्द्रियों को वश में रखता है तथा गुरु के सदुपदेश रूपी अमर वारुणी (अमृत) को पान करता है उस को मैं कुलीन (अच्छे कुल में उत्पन्न) रसज्ञ मानता हूं। इस से भिन्न आचरण करने वाले अधम होते हैं। अथवा-जो गो मांस को खाता है तथा मद्य पान करता है उसको मैं कुलीन (कुत्सित आचार में संलग्न) मानता हूँ और अधम लोग उसे रसज्ञ मानते हैं। पञ्चमकारोपास सम्प्रदायक(औघड़) में मद्य-मांसादि सेवन करना उत्तम सिद्धि प्राप्त करने का साधन माना गया है ॥ २६ ॥

न गर्भः सम्प्रदायाथ रसो गर्भो विधीयते ।
तेनायं लभते सिद्धिं न सिद्धिः सूतकं विना ॥ २७ ॥

---

१. कुत्सिते=कदाचारे लीनं=सक्तं कु·लीनम्=अहं तम्मन्ये, अपरे-अधमास्तु रसज्ञं मन्यन्ते–इत्यन्वयः।

२. कपाल कुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ (योगप्रदीपिका ३।३२)
गो शब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशोहि तालुनि । गोमसिभक्षणं तत्र महापातकनाशनम् ॥ जिह्वाग्रप्रवेशसम्भूतवह्निनोत्पादितः खलु । चन्द्रात्स्रवति यः सारः सः स्यादमरवारुणी । हठयोग—दीपिका ४८–४९

यावन्न हरबीजन्तु भक्षयेत् पारदं रसम्।
तावत्तस्य कुतो मुक्तिः कुतः पिण्डस्य धारणम् ॥ २८ ॥

रस ही गर्भ है ऐसा बताया गया है :—व्यवहार में प्रयुक्त होने वाला गर्भ शरीर गर्भ शब्द का बोधक नहीं है। रस (पारद) ही गर्भ का निर्माण करता है और रस से ही गर्भ की सिद्धि होती है। पारद के विना गर्भ की सिद्धि नहीं हो सकती है। अर्थात् रस ही गर्भ रूप धारण कर उपरस, महारस, धात्वादि को अपने में लीन कर लेता है तत्पश्चात् रससिद्धि प्राप्त होती है और सिद्धरस सेवन करने योग्य हो जाता है। जब तक मनुष्य शंकर के बीज पारद रस का भक्षण नहीं करता है तब तक उस को कैसे मुक्ति होगी और उसका शरीर कैसे स्थिर रहेगा। अर्थात् संस्कृत पारद के भक्षण से मुक्ति की प्राप्ति होती है तथा शरीर चिरकाल तक स्थिर रहता है ॥ २७–२८ ॥

मद्यमांसरताऽप्रज्ञा मोहिताः शिवमायया।
जल्पन्ति च वयं मुक्ता यास्यामः शिव[1]मन्दिरम् ॥ २९ ॥
पिण्डधारणयोगे च निस्पृहा मन्दबुद्धयः।
खण्डज्ञानेन देवेशि ! रञ्जितं सचराचरम् ॥ ३० ॥
स्वदेहे खेचरत्वं च शिवत्व येन लभ्यते।
तादृशे तु रसज्ञाने नित्याभ्यासं कुरु प्रिये ॥ ३१ ॥

अहंकारियों के मुक्ति का निराकरणः—शिव की माया से मोहित मद्य तथा मांस सेवन करने वाले अज्ञानी अहंकार पूर्वक कहते हैं कि हम मुक्त हैं और शिव लोक को चले जायेंगे। अतः वे मन्दबुद्धि वाले शरीर को स्थिर रखने में निस्पृह होते हैं। और हे देवेशि ! थोड़े ही ज्ञान (दम्भ-पाखण्ड) से संसार को वश में कर लेते हैं। हे पार्वति जिस रस ज्ञान से अपने शरीर में आकाश में परिभ्रमण करने की शक्ति तथा शिवत्व (मोक्ष) की प्राप्ति होती है उस प्रकार के रसज्ञान का नित्य प्रति अभ्यास करो ॥ २९–३१ ॥

श्रीदेव्युवाच—

अवतारं रसेन्द्रस्य माहात्म्यं तु सुरेश्वर।
श्रोतुमिच्छामि देवेश वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ ३२ ॥

पारद की उत्पत्ति तथा माहात्म्य के सम्बन्ध में पार्वती का प्रश्नः—हे देवताओं के ईश्वर शंकर जी ! मैं पारद की उत्पत्ति तथा माहात्म्य को सुनना चाहती हूं। हे देवताओं के देव आप रस की उत्पत्ति तथा उसके माहात्म्य को तत्त्व पूर्वक कहें ॥ ३२ ॥

१. शिवलोकम्।

श्रीभैरव उवाच—

साधु पृष्टं महाभागे ! गुह्याद्गुह्यतरं त्वया ।
अनुग्रहकरं ध्यानं लोकानामुपकारकम् ॥ ३३ ॥
त्वं माता सर्वभूतानां पिता चाहं सनातनः ।
द्वयोश्च यो रसो देवि ! म[1]हामैथुनसम्भवः ॥ ३४ ॥
स्वैरतः सम्भवाद्देवि पारदः कीर्तितो महः ।
पारदो गदितो यश्च परार्थं साधकोत्तमः ॥ ३५ ॥
सूतोऽयं मत्समो देवि ! मम प्रत्यङ्गसम्भवः ।
मम देहरसो यस्मात् रसस्तेनायमुच्यते ॥ ३६ ॥

शंकर के द्वारा रस की उत्पत्ति का वर्णन :—रसोत्पत्तिविषयक पार्वती का प्रश्न सुनकर शंकर जी बोले—हे पार्वति ! तुमने अत्यधिक गोपनीय एव उत्तम रस के सम्बन्ध में प्रश्न किया है। इसका ध्यान संसार का उपकार करने वाला तथा अनुग्रह करने वाला है। हे देवि ! तुम सभी प्राणियों की माता हो तथा मैं सनातन पिता हूं। हम दोनों के विशिष्ट संयोग से (अर्थात् मूल-भूत दो तत्त्वों के संयोग से) जो उत्पन्न हुआ है उसे रस कहते हैं। हे देवि ! अपनी इच्छा से उत्पन्न होने के कारण तेजस्वी पारद कहा गया है। जो दूसरों का उपकार करता है उसे उत्तम साधक पारद कहते हैं। हे देवि ! यह सूत (पारद) मेरे शरीर से उत्पन्न होने के कारण मेरे समान ही पूज्य है। यह मेरा शरीर रस है अतः इसे रस कहते हैं ॥ ३३–३६ ॥

दर्शनात् स्पर्शनात् तस्य भक्षणात् स्मरणादपि ।
पूजनाच्च प्रदानाच्च दृश्यते षड्विध फलम् ॥ ३७ ॥

पारद के माहात्म्य का वर्णन :—पारद के दर्शन, स्पर्शन, भक्षण, स्मरण, पूजन तथा दान करने से छः प्रकार के वक्ष्यमाण फल देखे जाते हैं ॥ ३७ ॥

केदारादीनि लिङ्गानि पृथिव्यां यानि कानि च ।
तानि दृष्ट्वा तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनात् ॥ ३८ ॥

पारद के दर्शन का फल :—हे पार्वति ! पृथ्वी पर जितने केदारनाथ, पशुपति नाथ आदि एकादश ज्योतिर्लिङ्ग हैं, उनके दर्शन से जो पुण्य होता है वह पुण्य रस के ही[2] दर्शन से हो जाता है ॥३८॥

चन्दनागुरुकर्पूरकुङ्कुमान्तर्गतो रसः ।
मूर्च्छितः शिवपूजायां शिवसान्निध्यसिद्धये ॥ ३९ ॥

---

१. महामैथुनं मूलतत्त्वयोर्जगज्जनकः-सङ्घर्षः ।

२. शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं गो कोटि दानेन गजेन्द्रकोटिभिः ।
सुवर्णभूदानसमानधर्मं नरो लभेद् सूतकदर्शनेन ॥ (रसेन्द्रमंगल)

पारद स्पर्शन का फल :—चन्दन, अगर कर्पूर तथा केशर आदि सुगन्धित द्रव्यों के साथ मूर्च्छित पारद शिव की पूजा में प्रयोग करने से शिवलोक की प्राप्ति कराने का साधन होता है ॥ ३९ ॥

भक्षणात् परमेशानि ! हन्ति [1]पापत्रयं रसः ।
तथा तापत्रयं हन्ति रोगान् दोषत्रयोद्भवान् ॥ ४० ॥
दुर्लभं ब्रह्मनिष्णातैः प्राप्यते परमं पदम् ।

पारद भक्षण का फल :—हे परमेश्वरि ! पारद भक्षण करने से तीन प्रकार के पाप (कायिक, वाचिक, मानसिक) तीन प्रकार के ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) तथा तीनों दोषों (वात, पित्त, कफ) से उत्पन्न तीन प्रकार के रोगों (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक) को नाश करता है और मनुष्य ब्रह्मज्ञानियों को भी दुर्लभ परम पद को प्राप्त करता है ॥ ४०½ ॥

हृद्व्योमकर्णिकान्तःस्थरसेन्द्रस्य महेश्वरि ! ॥ ४१ ॥
स्मरणान्मुच्यते [2]पापैः सद्यो जन्मान्तरार्जितैः ॥ ४२ ॥

पारद स्मरण का फल :—हे महेश्वरि ! मनुष्य हृदय में अभ्रक को धारण किये हुए पारद के स्मरण से जन्म-जन्मान्तर के उपर्जित पापों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। अर्थात् अभ्रक जारित सिद्ध पारद के स्मरण से जन्म-जन्मान्तर के पापों (रोगों) से मुक्त हो जाता है ॥ ४१-४२ ॥

[3]स्वयम्भूलिङ्गसाहस्रैः यत्फलं सम्यगर्चनात् ।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत् ॥ ४३ ॥

पारद लिंग के पूजन का फल :—नर्मदेश्वर-आदि शंकर के हजारों लिंगों के अच्छी तरह पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है उससे करोड़ गुना फल पारदनिर्मित लिङ्ग के पूजन से होता है ॥ ४३ ॥

अधमः खगवादस्तु विल(ड)वादस्तु मध्यमः ।
उत्तमो मन्त्रवादस्तु रसवादो महोत्तमः ॥ ४४ ॥

पारद के लिङ्ग निर्माण भेद से पूजन में अधमादि फल का निरूपण :—

पारद लिङ्ग का निर्माण अनेक प्रकार से होता है, उसमें खगवाद अर्थात् अभ्रक के सम्बन्ध से निर्मित पारदलिङ्ग का पूजन अधम, विभिन्न विड के

---

१. पापत्रयं = कायिकं, वाचिकं, मानसिकं च, तापत्रयम् = आध्यात्मिकम्, आधिभौतिकम्, आधिदैविकञ्चेति । दोषत्रयोद्भवान् = वातिक पैत्तिक श्लैष्मिकान् ।

२. पापैःकर्तृभिः मुच्यते = त्यज्यते ।

३. स्वयंभूलिङ्गानि = नार्मदेश्वरादीनि ।

साथ निर्मित पारदलिंग का पूजन मध्यम, मन्त्रनिर्मित पारदलिंग का पूजन उत्तम तथा रसवाद अर्थात् रसक (खर्पर या उपरस, महारस आदि) के संयोग से निर्मित पारद के लिङ्ग का पूजन सबसे उत्तम है। अर्थात् पारद का बन्धन तथा रसलिङ्ग का निर्माण चार प्रकार में अभ्रक संमिश्रण से निर्मित रसलिङ्ग अधम, विल (विड) निर्मित रसलिङ्ग मध्यम, मन्त्रनिर्मित रसलिङ्ग उत्तम तथा रस (रसक-खर्पर) संमिश्रण निर्मित रसलिंग महोत्तम (सर्वोत्तम) होता है ॥ ४४ ॥

मन्त्रतन्त्रपरिज्ञाने रसयोगस्य दूषकाः ।
प्रयान्ति नरकं सर्वे छित्त्वा सुकृतसञ्चयम् ॥ ४५ ॥

मन्त्र एवं तन्त्र के ज्ञान हो जाने पर पारद के योगों (प्रयोगों) को दोष दृष्टि से देखने वाले सभी मनुष्य अच्छे कर्तव्यों को नष्ट कर नरक में जाते हैं ॥ ४५ ॥

रसविद्या [1]परा विद्या त्रैलोक्येऽपि सुदुर्ल्लभा ।
भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात् तस्माद्देया गुणान्वितैः । ४६ ॥

रसविद्या के दान का फल :— रस विद्या (रस का ज्ञान एवं उसके समुचित प्रयोग) सबसे उत्तम विद्या (ज्ञान) है और वह तीनों लोक में दुर्लभ है। यह भुक्ति (ऐहलौकिक, ऐश्वर्य, भोग) तथा मुक्ति (सांसारिक दुःख-सुख एवं आवागमन से मोक्ष) देने वाली है। अतः पारद के गुणों को जानने वाले मनुष्य गुणशालि साधक मनुष्यों के लिये रस विद्या का दान करें ॥ ४६ ॥

अस्तीति भाषते कश्चित् कश्चिन्नास्तीति भाषते ।
आस्तिके तु भवेत्सिद्धिः तस्य सिद्ध्यति भूतले ॥ ४७ ॥

पारद में आस्तिक बुद्धि से सिद्धि :—कोई व्यक्ति पारद की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसकी विशेषता (फल) को कहता है, और कोई व्यक्ति उसकी विशेषता को नहीं कहता है। पारद में आस्तिक बुद्धि होने पर उसकी सत्ता को स्वीकार करने वाले व्यक्ति को संसार में सफलता मिलती है ॥४७॥

नास्तिकेनानुभावेन नास्ति नास्तीति यो वदेत् ।
तस्य नास्ति प्रिये सिद्धिर्जन्मकोटिशतैरपि ॥ ४८ ॥

रस निन्दक की दशा :—जो व्यक्ति पारद के विषय में अपने नास्तिक अनुमान के अनुसार पारद की सत्ता एवं उसकी विशेषता को नहीं मानता अर्थात् पारद कुछ नहीं है ऐसा कहता है उसको करोड़ों जन्म में भी पारद के विषय में सिद्धि नहीं मिलती ॥ ४८ ॥

---

१. विद्या द्विविधा परा-अपरा च, तत्र रसविद्या परा=उत्कृष्टा, अन्याः सर्वाः अपरा—इत्यर्थः ।

ब्रह्मज्ञानेन मुक्तोऽसौ पापी यो रसनिन्दकः ।
नाहं त्राता भवे तस्य जन्मकोटिशतैरपि ॥ ४९ ॥
[1]श्वानोऽयं जायते देवि ! यावत् जन्मसहस्रकम् ।
त्रिकोटिजन्मलक्षाणि मार्जारो जायते रसात् ।
रासभो लक्षजन्मानि लक्षजन्मानि वायसः ॥ ५० ॥
कृ[2]मिको लक्षजन्मानि कुक्कुटो जन्मलक्षकम् ।
गृध्रको लक्षजन्मानि यः पापी रसनिन्दकः ॥ ५१ ॥
आलापं गात्रसंस्पर्शं यः कुर्याद्रसनिन्दकैः ।
यावजन्मसहस्रं तु स भवेद्दुःखपीडितः ॥ ५२ ॥

ब्रह्म ज्ञान से अपने को मुक्त समझने वाला जो पापी रसकी निन्दा करता है, उसकी रक्षा करोड़ों जन्म में भी नहीं करता हूँ। हे देवि ! जो पापाचारी पारद की निन्दा करता है वह व्यक्ति हजारों वर्ष तक कुत्ता, करोड़ों वर्ष तक माजार (बिलार), लाख वर्ष तक गदहा, लाख वर्ष तक वायस (कौआ), लाख वर्ष तक कृमि, लाख वर्ष तक मुर्गा तथा लाख वर्ष तक गीध की योनि में रहता है। यो व्यक्ति पारद की निन्दा करने वालों के साथ वार्तालाप करता है तथा छूआछूत करता है वह हजारों वर्ष तक दुःख से पीड़ित रहता है ॥ ४९–५२ ॥

रसवीर्यविपाके च सूतकस्त्वमृतोपमः ।
तेन जन्मजराव्याधीन् हरते सूतकः प्रिये ! ॥ ५३ ॥

पारद के उत्तम गुण का वर्णन :—हे पार्वति ! पारद रस, वीर्य एवं विपाक में अमृत के समान है। इसीसे वह जन्म-मरण तथा जरा (वृद्धावस्था) एवं रोगों को दूर करता है ॥ ५३ ॥

गुरुमाराधयेत् पूर्वं विशुद्धेनान्तरात्मना ।
सम्प्रदायं प्रयच्छन्ति गुरौ तुष्टे मरी[3]चयः ॥ ५४ ॥

[illegible] गुरु की आवश्यकता :—रसज्ञान प्राप्त करने के पहले शुद्ध [illegible]त) से गुरु की आराधना करे। क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने [illegible] (तेजोमयी वाणी) गुरु परम्परागत कार्य-प्रणाली (क्रिया-

---

१. श्वा एव श्वानः, प्रज्ञादिभ्यश्चेति स्वार्थेऽणि सिद्धोऽदन्तः ।

२. कुत्सितः कृमिः कृमिकः, कुत्सितत्वञ्च–अत्यशुद्धजत्वम्, अत्यशुद्धभक्षकत्वञ्च, एवं 'गृध्रक'–इत्यत्रापि ।

३. मरीचयः = किरणानि 'तेजोमयीवाक्' इति श्रुतेः; अत एव–भारविः–निर्याय–विद्याऽथ दिनादिरम्याद्, बिम्बादिवार्कस्यमुखान्महर्षेः । पार्थाननं वह्निकणाऽवदाता, दीप्तिः स्फुरद्पद्ममिवाऽवभासे इति ॥

कौशल) को प्रकाशित करती हैं। अर्थात् आराधना से प्रसन्नगुरु रस-विषयक गूढ़ कार्य-प्रणाली का मार्ग-प्रदर्शन करते हुए सफल बनाता है ॥ ५४ ॥

गुरुसेवां विना कर्म य[1]: कुर्यान्मूढचेतनः ।
स याति निष्फलं कर्म स्वप्नलब्धं धनं यथा ॥ ५५ ॥

जो मूर्ख साधक गुरु की सेवा के बिना (गुरु के द्वारा शिक्षा ग्रहण किये बिना) रस-विषयक कार्य प्रारम्भ करता है वह सफल नहीं होता है, अर्थात् उसके कार्य निष्फल हो जाते हैं। जैसे स्वप्नावस्था में प्राप्तधन निष्फल होता है ॥ ५५ ॥

यः कर्म कुरुते दृष्टं तस्य लाभः पदे पदे ।
कारयेद्र[2]सवादन्तु तुष्टेन गुरुणा प्रिये ॥ ५६ ॥

जो व्यक्ति गुरु के द्वारा दिखाया हुआ एवं उपदेश किया हुआ कर्म करता है उसको पग-पग पर लाभ होता है। अतः हे प्रिये ! संतुष्ट गुरु से रसवाद (रस-तन्त्र सम्बन्धी प्रवचनं) रस संस्कार तथा रस का प्रयोग कराये और उसके उपदेश के अनुसार स्वयं करें ॥ ५६ ॥

सिद्ध्युपायोपदेशोऽय[3]मुभयोर्भोगमोक्षदः ।
रसार्णवं महातन्त्रमिदं परमदुर्लभम् ॥ ५७ ॥
गोप्यं गुरुप्रसादेन लब्धं स्यात् फलसिद्धये ।
लब्ध्वाऽत्र रसकर्माणि नाहङ्कारं समाचरेत् ॥ ५८ ॥
अनुज्ञातश्च गुरुणा लब्ध्वा चाज्ञां 'रसा[4]ङ्कुशीम्' ।
भैरवीं तनुमाश्रित्य[5] साधयेद्रसभैरवम् ॥ ५९ ॥

रसार्णव तन्त्र की प्रशंसा :—यह रस-विषयक सिद्धि के उपायों का उपदेश दोनों लोक (इहलोक तथा परलोक) में भोग (सांसारिक सुख-ऐश्वर्य) एवं मोक्ष (संसाररूप दुःख से छुटकारा) देने वाला है। यह रसार्णव महातन्त्र अत्यन्त दुर्लभ है और गोपनीय है। फल की सिद्धि के लिये इसकी प्राप्ति गुरु की प्रसन्नता से हुई है यहाँ रस कर्म में सफलता को प्राप्त

---

१. यः मूढचेतनः गुरुसेवां बिना कर्म कुर्य्यात सः स्वप्नलब्धं धनं यथाकर्म निष्फलं याति = प्राप्नोति ।

२. रसवादं = रसतन्त्र प्रवचनं रससंस्कारम्, रसप्रयोगञ्च, गुरुणा प्रयोजककर्त्रा कारयेत् गुरूपदिष्टः स्वयं कुर्यात्, न तु पुस्तकपाठ–मात्रेण ।

३. उभयोर्लोकयोः ।

४. रसाङ्कुशीं, रसाऽधिष्ठात्रीं देवीम् ।

५. आश्रित्य = अङ्गन्यासदिना तन्मयीभूत्वा, (देवीभूत्वा देवान् यजतीति श्रुतेः) ।

ब्रह्मज्ञानेन मुक्तोऽसौ पापी यो रसनिन्दकः ।
नाहं त्राता भवे तस्य जन्मकोटिशतैरपि ॥ ४९ ॥
[1]श्वानोऽयं जायते देवि ! यावत् जन्मसहस्रकम् ।
त्रिकोटिजन्मलक्षाणि मार्जारो जायते रसात् ।
रासभो लक्षजन्मानि लक्षजन्मानि वायसः ॥ ५० ॥
कृ[2]मिको लक्षजन्मानि कुक्कुटो जन्मलक्षकम् ।
गृध्रको लक्षजन्मानि यः पापी रसनिन्दकः ॥ ५१ ॥
आलापं गात्रसंस्पर्शं यः कुर्याद्रसनिन्दकैः ।
यावज्जन्मसहस्रं तु स भवेद्दुःखपीडितः ॥ ५२ ॥

ब्रह्म ज्ञान से अपने को मुक्त समझने वाला जो पापी रसकी निन्दा करता है, उसकी रक्षा करोड़ों जन्म में भी नहीं करता हूँ । हे देवि ! जो पापाचारी पारद की निन्दा करता है वह व्यक्ति हजारों वर्ष तक कुत्ता, करोड़ों वर्ष तक माजार (बिलार), लाख वर्ष तक गदहा, लाख वर्ष तक वायस (कौआ), लाख वर्ष तक कृमि, लाख वर्ष तक मुर्गा तथा लाख वर्ष तक गीध की योनि में रहता है । यो व्यक्ति पारद की निन्दा करने वालों के साथ वार्तालाप करता है तथा छूआछूत करता है वह हजारों वर्ष तक दुःख से पीड़ित रहता है ॥ ४९–५२ ॥

रसवीर्यविपाके च सूतकस्त्वमृतोपमः ।
तेन जन्मजराव्याधीन् हरते सूतकः प्रिये ! ॥ ५३ ॥

पारद के उत्तम गुण का वर्णन :—हे पार्वति ! पारद रस, वीर्य एवं विपाक में अमृत के समान है । इसीसे वह जन्म-मरण तथा जरा (वृद्धावस्था) एवं रोगों को दूर करता है ॥ ५३ ॥

गुरुमाराधयेत् पूर्वं विशुद्धेनान्तरात्मना ।
सम्प्रदायं प्रयच्छन्ति गुरौ तुष्टे मरी[3]चयः ॥ ५४ ॥

रसज्ञान में गुरु की आवश्यकता :—रसज्ञान प्राप्त करने के पहले शुद्ध अन्तरात्मा (चित्त) से गुरु की आराधना करे । क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर उनकी किरणें (तेजोमयी वाणी) गुरु परम्परागत कार्य-प्रणाली (क्रिया-

१. श्वा एव श्वानः, प्रज्ञादिभ्यश्चेति स्वार्थेऽणि सिद्धोऽदन्तः ।

२. कुत्सितः कृमिः कृमिकः, कुत्सितत्वञ्च—अत्यशुद्धजत्वम्, अत्यशुद्धभक्षकत्वञ्च, एवं 'गृध्रक'—इत्यत्रापि ।

३. मरीचयः = किरणानि 'तेजोमयीवाक्' इति श्रुतेः; अत एव—भारविः—निर्याय—विद्याऽथ दिनादिरम्याद्, बिम्बादिवार्कस्यमुखान्महर्षेः । पार्थाननं वह्निकणाऽवदाता, दीप्तिः स्फुरद्पद्ममिवाऽवभासे इति ॥

कौशल) को प्रकाशित करती हैं। अर्थात् आराधना से प्रसन्नगुरु रस-विषयक गूढ़ कार्य-प्रणाली का मार्ग-प्रदर्शन करते हुए सफल बनाता है ॥ ५४ ॥

गुरुसेवां विना कर्म य[1]: कुर्यान्मूढचेतनः ।
स याति निष्फलं कर्म स्वप्नलब्धं धनं यथा ॥ ५५ ॥

जो मूर्ख साधक गुरु की सेवा के बिना (गुरु के द्वारा शिक्षा ग्रहण किये बिना) रस-विषयक कार्य प्रारम्भ करता है वह सफल नहीं होता है, अर्थात् उसके कार्य निष्फल हो जाते हैं। जैसे स्वप्नावस्था में प्राप्तधन निष्फल होता है ॥ ५५ ॥

यः कर्म कुरुते दृष्टं तस्य लाभः पदे पदे ।
कारयेद्र[2]सवादन्तु तुष्टेन गुरुणा प्रिये ॥ ५६ ॥

जो व्यक्ति गुरु के द्वारा दिखाया हुआ एवं उपदेश किया हुआ कर्म करता है उसको पग-पग पर लाभ होता है। अतः हे प्रिये ! संतुष्ट गुरु से रसवाद (रस-तन्त्र सम्बन्धी प्रवचनं) रस संस्कार तथा रस का प्रयोग कराये और उसके उपदेश के अनुसार स्वयं करें ॥ ५६ ॥

सिद्ध्युपायोपदेशोऽय[3]मुभयोर्भोगमोक्षदः ।
रसार्णवं महातन्त्रमिदं परमदुर्लभम् ॥ ५७ ॥
गोप्यं गुरुप्रसादेन लब्धं स्यात् फलसिद्धये ।
लब्ध्वाऽत्र रसकर्माणि नाहङ्कारं समाचरेत् ॥ ५८ ॥
अनुज्ञातश्च गुरुणा लब्ध्वा चाज्ञां 'रसा[4]ङ्कुशीम्' ।
भैरवीं तनुमाश्रित्य[5] साधयेद्रसभैरवम् ॥ ५९ ॥

रसार्णव तन्त्र की प्रशंसा :—यह रस-विषयक सिद्धि के उपायों का उपदेश दोनों लोक (इहलोक तथा परलोक) में भोग (सांसारिक सुख-ऐश्वर्य) एवं मोक्ष (संसाररूप दुःख से छुटकारा) देने वाला है। यह रसार्णव महातन्त्र अत्यन्त दुर्लभ है और गोपनीय है। फल की सिद्धि के लिये इसकी प्राप्ति गुरु की प्रसन्नता से हुई है यहाँ रस कर्म में सफलता को प्राप्त

---

१. यः मूढचेतनः गुरुसेवां बिना कर्म कुर्य्यात सः स्वप्नलब्धं धनं यथाकर्म निष्फलं याति = प्राप्नोति ।

२. रसवादं = रसतन्त्र प्रवचनं रससंस्कारम्, रसप्रयोगञ्च, गुरुणा प्रयोजककर्त्रा कारयेत् गुरूपदिष्टः स्वयं कुर्यात्, न तु पुस्तकपाठ-मात्रेण ।

३. उभयोर्लोकयोः ।

४. रसाङ्कुशीं, रसाऽधिष्ठात्रीं देवीम् ।

५. आश्रित्य = अङ्गन्यासदिना तन्मयीभूत्वा, (देवीभूत्वा देवान् यजतीति श्रुतेः) ।

कर अहंकार न करें। अच्छी तरह रस-विषयक ज्ञान प्राप्त कर तथा गुरु से आज्ञा लेकर रसाधिष्टातृ देवी रसाङ्कुशी भैरवी देवी की पूजा कर तथा अंगन्यास आदि के द्वारा भैरवी शरीर के अनुरूप होकर रसभैरव (रसाधिष्टातृ देवशंकर) को सिद्ध करें। अर्थात् रसदेवी पार्वती एवं रसदेव शंकर की पूजा कर रस-क्रिया को प्रारम्भ करे ॥ ५७-५९ ॥

एवमुक्ता रसोत्पत्तिः माहात्म्यञ्च सुरेश्वरि !।
तन्ममाचक्ष्व[1] देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६० ॥

इति श्री पार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससहितायां
तन्त्राऽवतारो नाम प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

प्रथम पटल का उपसंहार :—हे सुरेश्वरि ! पार्वति ! इस प्रकार रस की उत्पत्ति तथा रस के माहात्म्य को मैंने कहा। हे देवेशि ! तुम अब और क्या सुनना चाहती हो वह मुझसे कहो ॥ ६० ॥

रसार्णव तन्त्र में प्रथम पटल समाप्त।

---

१. किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ? तन्मम = समक्षमाचक्ष्व = कथयेति सम्बन्धः। यदन्यदिति तु सरलः पाठः। परन्तु प्रश्नोऽनुद्भूतः स्यात्।

द्वितीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

रसोपदेशदाता च कथं स्याद्वद मे प्रभो ! ।
शिष्यश्चैव कथं देव रसानुष्ठानतत्परः ॥ १ ॥

गुरु-शिष्य के लक्षण सम्बन्धी प्रश्न :—प्रथम पटल के अपने प्रश्न के उत्तर को सुनकर पार्वती बोली । हे प्रभु । हे देव ! रस तन्त्र का उपदेश देने वाला गुरु कैसा होना चाहिए और रस के अनुष्ठान में लगा हुआ शिष्य कैसा होना चाहिए यह बतायें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच—

निःस्पृहो निरहङ्कारो लोभमायाविवर्जितः ।
कुलमार्गरतो नित्य गुरुपूजारतश्च यः ॥ २ ॥
दान्तः शिष्योपदेशज्ञः शक्तिमान् गतमत्सरः ।
धर्मज्ञः सत्यवाक् दक्षः शीलवान् गुणवान् शुचिः ॥ ३ ॥
अनेकरसशास्त्रज्ञो 'रसमण्डप'कोविदः ।
रसदीक्षाविधानज्ञो यन्त्रौषधि-महारसान् ॥ ४ ॥
रा[1]गसंख्यां बीजकलां द्वन्द्वमेलापनं विडम् ।
रञ्जनं सारणं तैलं दलानि क्रामणानि च ॥ ५ ॥
वर्णोत्कर्षं मृदुत्वञ्च जारणं बालवृद्धयोः ।
खेचरीं भूचरीं चैव यो वेत्ति स 'गुरुर्मतः' ॥ ६ ॥

रस गुरु का लक्षण :—पार्वती के प्रश्न को सुनकर शंकर जी बोले हे पार्वति । रसोपदेशक गुरु को निम्नलिखित लक्षणों से युक्त होना चाहिए । जो निष्पृह (किसी चीज की इच्छा न करने वाला), अहंकाररहित, लोभ तथा माया से रहित, अच्छे कुल में उत्पन्न तथा कुल के परम्परागत आचरणों को पालन करने में संलग्न, नित्य प्रति गुरु की पूजा में निरत, उदार, शिष्य के उपदेश वाक्य का ज्ञाता, शक्ति शाली, ईर्ष्या रहित, धर्म जानने वाला, सत्यवादी, कार्य में चतुर, सौम्य स्वभाव वाला, सद्गुणों से युक्त, पवित्र-विचार वाला, अनेक रस शास्त्रों को जानने वाला, रसमण्डप निर्माण का ज्ञान रखने वाला तथा रस सम्बन्धी शिक्षा की विधि को जानने वाला हो और यन्त्र (रस साधन यन्त्र) औषधि, महारस, राग[2]संख्या (रंगों की संख्या)

---

१. रागदयः भूचरीपर्यन्तास्तन्त्रप्रतिपाद्य एव विषया-अग्रे निरूपयिष्यन्ते ॥

२. प्रस्तुत ग्रन्थ के अष्टम पटल में रस, उपरस, धातु आदि के रागों की संख्या दी गई है ।

बीज के प्रकार (शुद्ध स्वर्ण, रजत, हेमाभ्र, ताराभ्र आदि बीज), दो द्रव्यों का संमिश्रण, विड निर्माण, रसरञ्जन, सारण, तैल निर्माण, पत्रनिर्माण, क्रामण, उत्तम वर्ण का निर्माण, द्रव्यों की मृदुता, बाल तथा बद्ध दोनों प्रकार की जारणा (ग्रास देना), खेचरी जारणा (रत्नों का सम्बन्ध कराना) तथा भूचरी जारण (विभिन्न धातुओं का जारण) जानता है वह रस गुरु होने के योग्य है ॥ २-६ ॥

देश[1]कालक्रियाऽभिज्ञो दयादाक्षिण्यसंयुतः ।
लोभ-माया-विनिर्मुक्तो मन्त्रानुष्ठानतत्परः ॥ ७ ॥
सा[2]मुद्रलक्षणोपेतो गम्भीरो गुरुवत्सलः ।
देवाग्नि-योगिनीचक्र-कुलपूजारतः-सदा ।
'शिष्यो' विनीतस्तन्त्रज्ञः सत्यवादी दृढव्रतः ॥ ८ ॥

शिष्य का लक्षण :—देश (स्थान), समय तथा क्रिया को जानने वाला, दया एवं कार्यकुशलता से युक्त, लोभ एवं माया से रहित, मन्त्र जप में तत्पर, सामुद्रशास्त्र (हस्तरेखा ज्ञान) सम्बन्धी लक्षणों से युक्त, गम्भीर, गुरु का प्रिय, देवता, अग्नि, योगिनी, षट्चक्र तथा कुलदेवी की पूजा में हमेशा संलग्न रहने वाला, विनीत, रसतन्त्र का ज्ञाता, सत्यवादी तथा दृढ़व्रत वाला रससिद्ध कर्ता शिष्य होने के योग्य है ॥ ७-८ ॥

ये न[3]राः कुम्भकुद्दाल-ध्वजशङ्खादिलाञ्छितैः ।
करैरधिष्ठिता देवि ! योग्यास्ते 'निधि'साधने ॥ ९ ॥

निधि साधन योग्य मनुष्य का लक्षण :—जो मनुष्य, कुम्भ, फावड़ा, ध्वजा तथा शंख आदि से सज्जित हाथ वाले हो उनको निधि साधन में नियुक्त करना चाहिए ॥ ९ ॥

बलवन्तो महासत्वाः कृष्णरक्तविलोचनाः ।
वक्रघोणाः सदा क्रूराः प्रशस्ता 'विल'साधने ॥ १० ॥

विल साधन योग्य मनुष्य का लक्षण :—जो मनुष्य बलवान्, पराक्रमी कृष्ण तथा रक्तनेत्र वाले, टेढ़े नाक वाले और क्रूर स्वभाव वाले हों उनको "विल" साधन में लगाना चाहिए ॥ १० ॥

निर्मांसमूर्द्ध्वपिण्डीकान् रक्तकेशान् गतालसान् ।
कठिनानुष्णपादांश्च 'धातुवादे' नियोजयेत् ॥ ११ ॥

१. शिष्यलक्षणमाह-देशकाल-इत्यादि ।

२. यत्राऽऽकृतिस्तत्र गुणा वसन्तीति न्यायात्सामुद्रशास्त्रोक्तशुभलक्षणान्यपेक्षितानि ।

३. साधकनां विशेषलक्षणन्याह ये नरा-इत्यारम्य नियोजयेदित्यन्तेन । जितेन्द्रिया इत्यादीनि सामान्यलक्षणानि ।

धातुवाद के योग्य मनुष्य का लक्षण :—मांस रहित उठे हुए ललाट वाले रक्त केश वाले, आलस्य रहित, कठोर तथा शीतल पैर वाले मनुष्य को "धातुवाद" (धातु सम्बन्धी कार्य) में नियुक्त करना चाहिए ॥ ११ ॥

आदौ परीक्षयेद्देवि ! साधकान् सुसमाहितान् ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्चानुक्रमेण तु ॥ १२ ॥

साधक की परीक्षा का निर्देश :—हे पार्वति ! सबसे पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों में उत्तम जाति के क्रम से अच्छी तरह तत्पर साधकों की परीक्षा करें ॥ १२ ॥

जितेन्द्रियाः क्लेशसहा नित्योद्यमसमन्विताः ।
शूराश्च कृतविद्याश्च प्रशस्ताः साधकाः प्रिये ! ॥ १३ ॥

उत्तम साधकों का लक्षण :—हे पार्वति ! जितेन्द्रिय, कष्ट को सहन करने वाले, प्रतिदिन उद्योग में संलग्न, शूर तथा प्रत्यक्ष कार्य में प्रवीण मनुष्य रस सिद्धि में उत्तम साधक हैं ॥ १३ ॥

[1]रसदीक्षाविहीना ये प्रोक्तलक्षणवर्जिताः ।
विप्लावकाः पापरता वर्जयेत्तान् प्रयत्नतः ॥ १४ ॥

अधम साधकों का लक्षण :—जो मनुष्य रस विषयक शिक्षा से रहित प्रशस्त साधको के लक्षण से विहीन, विनाशकारी तथा पाप कार्य में लगे हो उनको साधक कार्य में नहीं नियुक्त करना चाहिए ॥ १४ ॥

दु[2]श्चारिणी दुराचारा निष्ठुरा कलहप्रिया ।
बह्वाशिनी च दुश्चित्ता कोटराक्षी च निर्दया ।
रसनिन्दाकरी या च तां नारीं परिवर्जयेत् ॥ १५ ॥
ईदृशीभिर्वरारोहे सम्पूर्णं क्षितिमण्डलम् ।
न तादृशी भवेन्नारी यादृशी रसबन्धकी ॥ १६ ॥

रस साधन में निषिद्ध नारी :—जो नारी व्यभिचारिणी, दुराचारिणी, निष्ठुर, झगडालू, बहुत खाने वाली, दूषित मन वाली, धसी आँख वाली, निर्दयी तथा रस (पारद) को निन्दा करने वाली हो उसको रस कर्म में नहीं नियुक्त करना चाहिए । हे सुन्दरि ! ऐसी स्त्रियों से सम्पूर्ण संसार भरा हुआ है । इस प्रकार की स्त्री रसबन्धकी (पारद को स्थिर कर अनेक प्रयोगों को सिद्ध करने वाली) नहीं होती है ॥ १५-१६ ॥

का[3]किणी कींकणी नारी तथैव काञ्चिकाञ्चिनी ।
कृष्णपक्षे ऋतुमती सा नारी काकिणी स्मृता ॥ १७ ॥

---

१. साधकत्वे वर्ज्यान्-आह रसदीक्षेति
२. वर्जनीयशिष्या-लक्षणमाह--दुश्चारिणीत्यादिना ।
३. नारीविभागमाह-काकिणीत्यादिना ।

नारियों के भेद तथा लक्षण :—स्त्रियां अनेक प्रकार की होती हैं। काकिणी, कीकणी तथा काञ्चिकाचिनी और पद्मिनी।

काकिणी :—जो स्त्री कृष्ण पक्ष में रजस्वला होती है उसे काकिणी कहते हैं ॥ १७ ॥

उभय[1]पक्षे ऋतुमती सा नारी कीकणी मता ॥ १८ ॥

कीकणी :—जो स्त्री उभयपक्ष (कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष) में रजस्वला होती है उसे कीकणी कहते हैं ॥ १८ ॥

शुक्लपक्षे ऋतुमती सा नारी काञ्चिकाचिनी ॥ १९ ॥

काञ्चिकाचिनी :—जो स्त्री शुक्ल पक्ष में रजस्वला होती है उसे काञ्चिकाचिनीं कहते हैं ॥ १९ ॥

न[2]वयौवनसम्पन्ना सुरूपा चारुहासिनी।
सूक्ष्मकेशा तु या नारी क्षीराऽऽहारप्रिया सदा ॥ २० ॥
प्रियालापकरी नित्यं शिवशास्त्रकथाप्रिया।
पद्माकारं मुखं यस्या दृष्टिरिन्दीवराकृतिः ॥ २१ ॥
दशना वज्रसदृशाः प्रबालसदृशोऽधरः।
यस्याः पयोधरौ देवि ! तुङ्गपीनौ समावुभौ ॥ २२ ॥
अश्वत्थपत्रसदृशः, पीनो यस्या भगः समः।
यत्पादौ मांसलौ स्निग्धौ वर्त्तुलावर्त्तरोमकौ ॥ २३ ॥
श्यामा च मध्ये क्षामा च तन्वी भक्तिपरा शिवे।
'पद्मिनी' सा तु विज्ञेया प्रसन्ना मृगलोचना ॥ २४ ॥
पूर्णिमायाममायां वा पक्षे पक्षे रजस्वला।
षड्भेदा काकिणी नाम्ना पूर्वप्रोक्ता रसप्रदा ॥ २५ ॥
तथैव देवदेवेशि ! रसकर्माणि कारयेत् ॥ २६ ॥

पद्मिनी :—जो स्त्री नवीन यौवन से युक्त, सुन्दर रूप तथा मधुर हसने वाली, सूक्ष्म केश वाली, हमेशा दुग्धाहार को पसन्द करने वाली, प्रिय बात करने वाली, प्रतिदिन शिव की कथा को पसन्द करने वाली, कमल के समान मुख वाली, कुमुदिनी की तरह नेत्र वाली, वज्र के सदृश स्वच्छ दाँत वाली, रक्त प्रवाल की तरह ओठ वाली, जिसके दोनों स्तन उन्नत तथा मोटे हो जिसका भग समान, मोटा तथा पीपर के पत्ता के समान हो, पैर

---

१. क्षीणचन्द्रः, पक्षः। बलचन्द्रः, पूर्णचन्द्रः-इत्यादिना मासस्य त्रयो-भागा अत आह उभयपक्षे-इति, पक्षे २ वा, नवाक्षरः पादः।

२. साधिकाशिष्यालक्षणमाह-नवयौवनेत्यादिना-कारयेदित्यन्तेन।

मांसल, चिकने तथा बटलोही के सदृश आवर्त युक्त बाल वाले हों, श्यामवर्ण वाली, मध्य में कृश तथा पतली हो उसे पद्मिनी कहते हैं। वह प्रसन्न मृग के समान नेत्र वाली तथा पूर्णिमा या आमास्या को प्रत्येक पक्ष में रजस्वला होती है। काकिणी आदि नाम से छः प्रकार के स्त्रियों का भेद पहले कहा जा चुका है ये रस कर्म को करने के योग्य है। हे देवि इसी नारी से रस कर्म को करवाना चाहिए ॥ २०–२६ ॥

यस्य तुष्टो महादेवस्तस्य सिद्धी रसायने।
तस्य हि निर्मला बुद्धिर्निश्चिता रससाधने।
तस्माद्गुरुश्च शिष्यश्च पूर्वोक्तः सिद्धिभाग्भवेत् ॥ २७ ॥

जिसके ऊपर महादेव जी संतुष्ट होते हैं उसी को रसायन कर्म में सफलता प्राप्त होती है और उसी की बुद्धि निर्मल तथा रस को सिद्ध करने में निश्चल होती है। अतः पूर्वोक्त प्रकार के गुरु तथा शिष्य रस कर्म में सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ २७ ॥

श्रीदेव्युवाच—

ईदृशर्लक्षणैः,[1] नारीं कुतः प्राप्नोति साधकः।
यत्र रूपं महादेव ! लक्षणं नाऽत्र विद्यते ॥ २८ ॥
लक्षण त्रिद्यते यत्र भावना नाऽत्र विद्यते।
अथवा रूपहीनाया रूपं केन प्रवर्तते ॥ २९ ॥
लक्षणत्रितयं कुत्र त्वया दृष्टं महेश्वर ! ।
तदेतज्जायते येन तमुपायं वद प्रभो ! ॥ ३० ॥

शुभ लक्षणों से युक्त नारी प्राप्ति विषयक प्रश्न :––पार्वती ने प्रश्न किया कि हे महादेव ! पूर्वोक्त प्रकार के लक्षणों से युक्त नारी को साधक कहाँ से प्राप्त कर सकता है। क्योंकि जिस नारी में रूप होता है उसमें सद्लक्षण नहीं मिलते, जिसमें रूप सद्लक्षण मिलते हैं उसमें अच्छी भावनायें नहीं होतीं। अथवा रूप जिसमें नहीं है उसमें रूप किस प्रकार हो सकता है। हे महेश्वर ! आप ने तीनों लक्षण (रूप भावना तथा सद्लक्षण) किस स्त्री में देखा है। हे प्रभो ये तीनों लक्षण जिस उपाय से प्राप्त होते हैं उसको कहें ॥

श्रीभैरव उवाच—

शृणु देवि ! परं गुह्यं यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
पितुः सदाशिवाज्जातं जन्म यच्चण्डिकोदरे ॥ ३१ ॥
तासां बुद्धिर्भवेद्देवि ! निर्मला रससाधने।
दापयेत्त्वरिता मन्त्रं जपेत्तं दर्पवर्जिता ॥ ३२ ॥

---

१. युक्तामिति शेषः, उपलक्षणे तृतीया।

लक्ष[1]मन्त्रं जपेद्या तु जायते सा सुलक्षणा।
बद्धवा तु खेचरीं मुद्रां जपेत् फेट्कारभैरवीम् ॥ ३३ ॥
ममेयं चण्डिका माता जन्म च त्रिपुरान्तकात्।
कालिकाहं समुद्भूताऽस्मीदृशं संस्मरेत्तु सा ॥ ३४ ॥
भूत भव्यं भविष्यञ्च त्रैलोक्ये कथयेत्तु सा।
सहायास्तादृशास्तस्य[2] यादृशी भवितव्यता ॥ ३५ ॥

नारी में सद्लक्षण की प्राप्ति के लिऐ उपाय का निरूपण :—नारी में सद् लक्षण प्राप्ति विषयक प्रश्न को सुनकर शंकर जी बोले। हे देवि ! देवताओं के लिऐ भी दुर्लभ गोपनीय उपायों को कहता हूँ सुनो। हे देवि ! जो स्त्री अपने को माता चण्डिका के उदर में पिता सदा शिव शंकर जी से उत्पन्न समझती है उसकी रस सिद्धि करने में निर्मल बुद्धि होती है। उसको मन्त्र का उपदेश करे और वह शीघ्रहो घमण्ड रहित होकर उस मन्त्र का जप करे। जो कुलक्षणा स्त्री भी एक लाख मन्त्र जप करती है वह सुलक्षणा हो जाती है। खेचरी मुद्रा में स्थित होकर फट्कार[3] भैरवी मन्त्र का जप करे, और मेरी माता चण्डिका है मेरा जन्म शंकर जी से हुआ हैं तथा मैं कालिका से उत्पन्न हुई हूं ऐसा स्मरण करे। इस प्रकार जप करने वाली स्त्री तीनों लोक में भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान को कहने लगती है। उस की जैसी भवितव्यता होती है वैसे ही उसके सहायक होते हैं ॥ ३१-३५ ॥

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव महादेव ! समस्तज्ञानभाजन।
रसदीक्षां तु पृच्छामि साधकानां हिताय वै ॥ ३६ ॥

पार्वती का रस शिक्षा विषयक प्रश्न :—पार्वती ने प्रश्न किया कि हे देवताओं के देव महादेव ! सम्पूर्ण ज्ञान को जानने वाले आप से साधको के हित के लिऐ मैं रस दीक्षा की विधि जानना चाहती हूँ ॥ ३६ ॥

श्रीभैरव उवाच—

शृणु भैरवि ! यद्भावम्, अपूर्वं वर्णयामि ते।
रसदीक्षाविधानन्तु तस्मान्निगदितं शृणु ॥ ३७ ॥

रस दीक्षा विषयक पार्वती के प्रश्न को सुनकर भैरव जी बोले। हे भैरवि ! तुम से जिस अपूर्व भाव का वर्णन कर रहा हूँ उस कथित दीक्षा विधान को सुनो ॥ ३७ ॥

---

१. या लक्षसंख्याकं, मन्त्रमन्त्रोक्तं जपेत् सा कुलक्षणाऽपि सुलक्षणा, जायते, इतिपूर्वं प्रश्नस्योत्तरम्।

२. लिंग-सामान्ये नपुंसकम्।

३. ऊँ हूं फट् स्वाहा-इति फट्कार भैरवी मन्त्रः।

यत्र राजा नयपरो बलवान् धर्मतत्परः।
मन्त्री च धर्मतत्त्वज्ञो भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ३८ ॥
तत्रेदं कारयेत् कर्म रसबन्धम् रसायनम्।
जना माहेश्वरा यत्र तत्र स्थाने तु कारयेत् ॥ ३९ ॥
कारयेद्विजने स्थाने पशुर्यत्र न विद्यते।
सुगुप्ते सुषमे स्थाने सर्वबाधाविवर्जिते ॥ ४० ॥
प्राकारपरिखोपेते कपाटार्गलरक्षिते।
एकान्ते निर्मले हृद्ये नानापुष्पद्रुमान्विते ॥ ४१ ॥
हंसकारण्डवाकीर्णे चक्रवाकोपशोभिते।
दिव्यौषधिगणोपेते सजले श्यामशाद्वले ॥ ४२ ॥
कुमुदोत्पलकह्लार-कदलीखण्डमण्डिते।
चित्रिते भवनोद्याने कारयेत् परमेश्वरि ! ॥ ४३ ॥

रसबन्ध कर्म के लिये स्थान का निर्देश :—जहाँ पर राजा न्याय करने वाला, बलवान् तथा धार्मिक हो और मन्त्री धर्मतत्वज्ञ, भक्ति एवं श्रद्धा से युक्त हो वहाँ पर रसायन सम्बन्धी रसबन्ध कर्म करावें। जहाँ के मनुष्य शंकर के भक्त हों वहाँ पर रसबन्ध कर्म करावें। जहाँ पर पशु न हों उस निर्जन स्थान में तथा समतल, गुप्त, सभी बाधाओं से रहित प्राकार (चहार दिवारी) तथा परिखा (खाई) से घिरे हुए, किवाड़ तथा अर्गला (सिकड़ी) से सुरक्षित स्थान में रसबन्ध कर्म करावें। हे परमेश्वरि ! एकान्त, निर्मल, हृदय को प्रसन्न करने वाले, अनेक प्रकार के पुष्प के वृक्षों से युक्त, हंस तथा बत्तख से व्याप्त, चकवा चकई से सुशोभित, दिव्य गुण वाले ओषधि वर्ग से युक्त, सजल (जलाशय युक्त), हरे-हरे घास वाले, कुमुद, लाल कमल, सफेद कमल तथा केला वृक्ष समूह से सुशोभित, चित्र-विचित्र भवन निर्मित बगीचे में रसबन्ध कर्म करावें ॥ ३७-४३ ॥

तन्मध्ये देवदेवेशि ! मत्त[1]वारणसंयुतम्।
वातायनसमोपेतमूर्द्ध्वनिर्गामि-धूमकम् ॥ ४४ ॥
रक्त-पताकासंयुक्तं सज्जोपकरणं तथा।
प्रविभक्तौषधितुष-काष्ठाऽरण्योपलाऽऽलयम् ॥ ४५ ॥
समालिखितदि[2]ग्देवं समर्चितविनायकम्।

---

१. कुन्दवृक्षवृतिमत्, उक्ती मत्त-वरणस्तु, प्रक्लिन्न-कट-कुञ्जरे।
क्लीवं प्रासादवीथीनां, कुन्द-वृक्ष वृतावपि ॥ मेदिनी ॥

२. इन्द्रो, वह्निः, पितृपति, नैर्ऋतो, वरुणो, मरुत्, कुबेर, ईशः, पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्।

प्रतिष्ठितमुमेशाभ्यां लोकपालैश्च रक्षितम् ॥ ४६ ॥
निर्मापयेदेकतलं द्वितलं वापि मण्डपम्'।

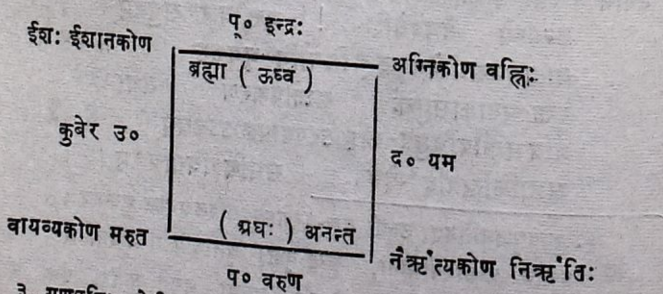
रसबन्ध मण्डप बनाने की विधि :— हे देवताओं की स्वामिनि ! पूर्वोक्त बगीचे के मध्य में मत्तवारण (वारेण्डा-बरामदा) खिड़की तथा धूँआकस एवं लाल पताका से युक्त, सभी रसबन्ध कर्मयोग्य उपकरणों से सुसज्जित, अलग-अलग ओषधि, तुष (धान की भूसी), लकड़ी, जंगली उपलों से भरपूर मकान से युक्त, दिग्देवताओं[2] को यथा स्थान स्थापित कर, अच्छी तरह गणेश की पूजा कर, उमा तथा शंकर की मूर्ति को प्रतिष्ठित कर तथा [3]लोकपालों को सुरक्षा के लिये स्थापित कर, एक तल्ला या दो तल्ला (भूधरा सहित दो तल्ला) रसबन्ध कर्म के लिये मण्डप का निर्माण करावें ॥ ४४-४६½ ॥

अथ पक्षे सिते देवि ! चन्द्रताराबलान्विते ॥ ४७ ॥
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते च लग्ने सौम्यग्रहेक्षिते ।
स्नातः शुक्लाम्बधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ ४८ ॥
मधुसर्पिर्दधिक्षीरतिलैः सम्पूज्य बालिकाः ।
कपिला-गोमयाऽऽलिप्ते हिरण्यकलसाऽऽवृते ॥ ४९ ॥
यवसिद्धार्थकास्तीर्णे गन्धमाल्योपशोभिते ।
तत्रेष्टिकाभिः खचिते करपीठे सुरेश्वरि ! ॥ ५० ॥
शिलापट्टं समुत्कीर्य शिलापट्टार्गलं प्रिये ! ।
न्यासं रसाङ्कुशेनैव कृत्वाङ्गुलिहृदादिषु ॥ ५१ ॥
रसलिङ्गं न्यसेत्तत्र हेम्ना च सहितं प्रिये ! ।
ॐ ह्रीं श्रीं सूतराजस्य मूलमन्त्र उदाहृतः ॥ ५२ ॥

---

१. लोकपालाः, विनायकादयः पञ्च, 'ग्रहमखे द्रष्टव्याः ।

२. दिग्देव—इन्द्र, वह्नि, यम, नैऋर्त, वरुण, मरुत, कुबेर, ईश, ब्रह्मा, अनन्त-इमाः दश दिग्देवताः ।



३. गणपतिः, देवी, वायुः आकाशः, अश्विनी कुमारौ—इमे पञ्च लोकपालाः ।

तस्मिन् रसाङ्कुशीं देवीं मूलेनाऽऽवाहयेत्प्रिये !।
चतुरस्रे तु दिक्पालान् पूजयित्वा बहिः क्रमात् ॥ ५३ ॥
नन्दिनञ्च महाकालं भृङ्गिरीटं महाबलम् ।
कुम्भकर्णञ्च सुग्रीवं भृङ्गीकञ्च दृढायुधम् ॥ ५४ ॥
द्वारे चतुर्द्धा विन्यस्य पूजयेद्दक्षवामयोः ।
शक्रं पूर्वेऽभिसंपूज्य स्कन्दमाग्नेयगोचरे ॥ ५५ ॥
दक्षिणस्यां ततो रुद्रं पवनं नैऋते तथा ।
शिवं पश्चिमभागे तु पावकं वायवे न्यसेत् ।
उमामुत्तरभागे तु व्यापकं चेशगोचरे ॥ ५६ ॥

समय निर्देश के साथ रस लिङ्गन्यासविधि :– हे देवि: ! मण्डप निर्माण के बाद शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा तथा ताराओं के बलवान रहने पर पुण्य तिथि (पौर्णमासी) में शुभग्रहों से दृष्ट शुभ मुहूर्त एवं लग्न में स्नान कर सफेद वस्त्र तथा माला धारण कर तथा चन्दन लगाकर मधु, घृत, दही, दूध एवं तिल से बालिकाओं की पूजा करें। इसके बाद कपिला (अप्रसूता) गाय के गोबर से लीप-पोत ले और उस मण्डप में सोने का कलश लगा दे। यव तथा पीली सरसों से मण्डप को आस्तीर्ण कर गन्ध से सुगन्धित तथा मालाओं से सजा दे। हे सुरेश्वरि ! कर पीठ (परिमाण विशेष–दश हाथ लम्बा तथा दश हाथ चौड़ा) ईटों से निर्मित मण्डप में पत्थर के पट्टियों को बिछाकर पत्थर का किवाड़ तथा सिकड़ी लगा दे। हे प्रिये ! तदनन्तर रसांकुश मन्त्र से करन्यास तथा हृदयादि अंगन्यास कर उस मण्डप में स्वर्ण के साथ रस लिंग को स्थापित करे। हे प्रिये ! "ॐ ह्रीं श्रीं" सूतराज (पारद) का मूल मन्त्र कहा गया है। हे प्रिये ! उसी में रसाङ्कुशी देवीं को पूर्वोक्त रसेश्वर के मूल मन्त्र (ॐ ह्रीं श्रीं) से आवाहित करें। इसके बाद चतुरस्त्र (एक हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा) चौकोर वेदी बनाकर पूर्वादि क्रम से दिक्पालों (इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋंत, वरुण, मरुत, कुबेर तथा ईश) की पूजा कर बाहर क्रम से नन्दिन, महाकाल, भृङ्गिरीट, महाबल, कुम्भकर्ण, सुग्रीव, भृङ्गीक तथा दृढ़ायुध की पूजा करे। इसके बाद दरवाजे पर चार भाग बनाकर बाये तथा दाये पूजा करे। पूर्व में शुक्र आग्नेय कोण में स्कन्द दक्षिण में रुद्र, नैऋंत्य कोण में पवन, पश्चिम भाग में शिव वायव्य कोण में अग्नि, उत्तर भाग में उमा तथा ईशानकोण में व्यापक देव शंकर का न्यास करे ॥४७–५६॥

लेपिका क्षेपिका चैव क्षारिका रञ्जिका तथा ।
लोहटी बन्धकारी च भूचरी मृत्युनाशिनी ॥ ५७ ॥
विभूतिः खेचरी चैव दश दूत्यः क्रमेण च ।
पूज्यास्त्वष्टदले पद्मे ऊर्द्ध्वधस्तु दलेषु च ॥ ५८ ॥

माक्षिको विमलः शैलश्चपलो रसकस्तथा ।
सस्यको गन्धतालौ च पूर्वादिक्रमयोगतः ॥ ५९ ॥
अष्टादशभुजा रुद्राः पञ्चवक्त्रास्त्रियम्ब[1]काः ।
चन्द्रार्द्धशोभिमुकुटा नीलग्रीवा वृषध्वजाः ॥ ६० ॥
स्वस्ववर्णधराः सर्वेऽप्यष्टविद्येश्वरास्तथा ।
पूजनीया महेशानि ! द्वितीयेऽष्टदलाम्बुजे ॥ ६१ ॥

इसके बाद निर्मित अष्टदल कमल में क्रमशः लेपिका, क्षेपिका, सारिका, रञ्जिका, लोहटी, बन्धकारी, भूचरी, मृत्युनाशिनी विभूति तथा खेचरी इन दशदूतियों को उर्ध्व एवं अधः (नीचे) पूजन करे ॥ तदनन्तरं पूर्वादि क्रम से माक्षिक, विमल, शैल (मनःशिला) चपल, रसक (खर्पर), सस्यक, गन्धक तथा हरताल को स्थापित करे। इसके बाद दूसरे अष्टदल कमल में अपने स्वरूप को धारण किये हुए अष्ट विद्याओं के ईश्वर अष्टादश[2]भुज, रूद्र । पञ्चवक्त्र, त्र्यम्बक चन्द्रार्द्धशोभिमुकट, नीलग्रीव, वृषमध्वज तथा महेशान इन देवताओं को स्थापित कर पूजा करे ॥ ५७–६१ ॥

कर्णिकायान्तु पूर्वादि-पूर्वं शक्तिचतुष्टयम् ।
मालिनी हेमशक्तिश्च परा शक्तिर्बला स्मृता ।
अपरा वज्रशक्तिश्च कान्तिर्ज्ञेयं परापरम् ॥ ६२ ॥
मध्ये तासाञ्च शक्तीनां सर्वज्ञं रसभैरवम् ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रियम्बकम् ॥ ६३ ॥
ज्वलत्पिङ्गोग्रनेत्रञ्च ज्वलज्जिह्वाननं तथा ।
ज्वलद्भ्रुवं ज्वलत्केशं दुःप्रेक्ष्यं प्रेतविष्टरम् ॥ ६४ ॥
जटामुकुटसंयुक्तं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ।
व्याघ्रचर्मधरं नागोपवीतं वृषभध्वजम् ॥ ६५ ॥

---

१. त्रियम्बकाः = त्रिलोचनाः, त्रीणि-अम्बकानि नेत्राणि येषामिति विग्रहे समासे सुपोलुकि-इकोयणचीतियणादेशे प्राप्ते छान्दसत्वादियङ्, 'त्रियम्बकं यजामहे' इत्यादेरनुकरणमत्रापि ।

२. मूलपाठ में—अष्टादशभुजा :—आदि में एक के लिए ही बहुवचन किया गया है। सम्भवतः यह सम्मानार्थं में ही प्रयोग हो। महेशानि सम्बोधन के स्थान में महेशानाः पाठ उत्तम हैं। ऐसा मान लेने से आठ अष्टविद्येश्वरों की पूर्ति हो जाती है। अथवा स्त्री लिंग एक वचनान्त शक्ति का प्रतीक मान लेने पर अष्टविद्येश्वरियो की पूर्ति हो सकती हैं किन्तु अष्टविद्येश्वराः शब्द पुंलिंग प्रतिपादक ही ज्ञात होता है।

अष्टादशभुजं देवमीषत्प्रहसिताननम् ।
द्वात्रिंशा[1]र्णेन मनुना पूजयेत् स[2]कलं शिवम् ॥ ६६ ॥
रसेश्वरस्य मन्त्रञ्च कथ्यमानं निबोध मे ॥ ६७ ॥
ॐ ह्रीं क्रीं रसेश्वराय महाकालाय महाबलायाऽघोर-
भैरवाय वज्रवीर क्रोधकङ्काल क्ष्लौः क्ष्लः ॥ ६८ ॥

कर्णिका (कमल नाग) के मध्य में पूर्वादिक्रम से पहले पराशक्ति मालिनी हेमशक्ति तथा बला और अपरा शक्ति वज्रशक्ति इन चार शक्तियों के मध्य में कान्ति से ज्ञेय सबमे उत्तम सर्वज्ञ रसभैरवा स्वच्छ स्फटिक के सदृशवर्ण वाले पांचमुख, तीन नेत्र, प्रकाशमानपिंगल वर्ण के भयंकर नेत्र वाले, प्रकाशमान मुख, जिह्वा भौं एवं केश वाले कष्ट से देखने योग्य, प्रेत विष्टर (मृत शरीर पर बैठने वाले) जटा तथा मुकुट को धारण किये हुए, अर्द्ध चन्द्र युक्त ललाट वाले, व्याघ्र चर्म को धारण किये हुए, सापों का यज्ञो पवीत पहने हुए, वृषभध्वज, अट्ठारह भुजा वाले तथा किञ्चित् हास्य युक्त प्रसन्न मुख वाले देव, अपनी कलाओं से युक्त शंकर को बत्तीस अक्षर वाले (तीन बीज मन्त्र ॐ ह्रीं ह्रीं क्रीं सहित पैंतिस अक्षर वाले मन्त्र से पूजा करे) हे देवि ! मैं रसेश्वर मन्त्र को कह रहा हूँ सुनों । ॐ क्रीं रसेश्वराय महाकालाय महाबलायाऽघोरभैरवाय वज्रवीर क्रोध ककाल क्लौं क्ष्लः ॥६२–६८॥

तस्योत्सङ्गे महादेवीं रत्नाभरणभूषिताम् ।
उत्तप्तहेमरुचिरां पीतवस्त्रां त्रिलोचनाम् ॥ ६९ ।
श्वेतचामरयोर्मध्ये मुक्ताच्छत्रेण शोभिताम् ।
अङ्कुशं चाक्षमालां च दधतीं दक्षहस्तयोः ॥ ७० ॥
पाशाभये च वामाभ्यां चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् ।
रसाङ्कुशीं महादेवीं नीलग्रीवां कृपामयीम् ॥ ७१ ॥
पूजयेद्रससिद्ध्यर्थं विद्यया पञ्चबीजया ।
वाग्भव भुवनेशीञ्च श्रीवीजञ्च सुरेश्वरि ! ॥ ७२ ॥
मादन शक्तिबीजञ्च-विद्या परमदुर्लभा ।

मध्यासीन शिव के गोद में स्थित रत्न एवं आभूषणों से विभूषित, संतप्त स्वर्ण के समान कान्ति वाली, पीले वस्त्र को धारण की हुई, तीन नेत्र वाली सफेद दो चवरों के मध्य में मुक्ता सदृश स्वच्छ छत्र से सुशोभित दाहिने हाथ में अकुश एवं अक्षमाला तथा वाम हस्त में पाश तथा अभय को धारण की हुई,

---

१. अर्णो वर्णः, मनुर्मन्त्रः । ॐ ह्रीं क्रीम् इति-बीज-त्रय-रहितस्य द्वात्रिंश दक्षराणि तत्सहितस्य तु पञ्चत्रिंशदिति बोध्यम् ।

२. कलासहितम् ।

अर्द्धचन्द्र को ललाट में धारण की हुई, नील-ग्रीवा, कृपालु, महादेवी रसाङ्कुशी देवी का रस की सिद्धि के लिए पञ्च बीज विद्या से पूजा करे। हे सुरेश्वरि ! वाग्भव बीज (ऐं) भुवनेशी बीज (ह्रीं) श्रीबीज (श्रीं), मादन बीज (क्लीं) शक्ति बीज (ह्रीं) ये पञ्च बीज है, और ये पञ्च बीज विद्या परम दुर्लभ है ॥ ६९-७२½ ॥

धूपदीपैस्तु नैवेद्यैः पुष्पताम्बूलचन्दनैः ॥ ७३ ॥
शान्तिपाठस्य निर्घोषैः स्तोत्रमङ्गलनिस्वनैः ।
घण्टाटङ्कारसंयुक्तैः पूजां कृत्वा यथाविधि ॥ ७४ ॥
अघोरेण बलिं दद्यात् सर्वविघ्नोपशान्तये ।
भूतेभ्यो यक्षरक्षोभ्यो पिशाचेभ्यश्च यत्नतः ॥ ७५ ॥

पूर्वोक्त प्रकार से स्थापित शिव एवं रसांकुशी महादेवी की धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, पान, चन्दन, शान्ति पाठ (स्वस्तिन इन्द्रो वृद्ध-श्रवाः आदि शान्ति पाठ) के शब्द, स्तोत्र एवं मंगल के स्वर तथा घण्टा की ध्वनि से विधि पूर्वक पूजा कर अघोर[1] मन्त्र से सभी विघ्नों की शान्ति के लिऐ प्रयत्न पूर्वक भूत, यक्ष, रक्ष तथा पिशाचों को बलि चढ़ावे ॥ ७३-७५ ॥

अघोरमन्त्रसंयुक्तमोङ्कारादि-नमोऽन्तकम् ।
सर्वकर्माकरं देवि ! विघ्नोपद्रवनाशनम् ॥ ७६ ॥

हे देवि ॐ कारसे लेकर नमः पर्यन्त अघोर मन्त्र सभी विन्घ एवं उपद्रवों को शान्त करने वाले तथा सभी कर्मों को सफल बनाने वाले हैं ॥ ७६ ॥

यथाशक्ति जपित्वा तु विद्यामेत्र रसाङ्कुशीम् ।
कुण्डं विधाय देवेशि ! योनिचक्रं समेखलम् ॥ ७७ ॥
तत्राऽज्यतिलसंयुक्तं होमं कृत्वा क्रमेण तु ।
कलशं स्थापयेद्देवि पयः पूर्णं फलान्वितम् ॥ ७८ ॥
पञ्चरत्नसमोपेतं वासोभिः परिवेष्टितम् ।
तत्राऽष्टादश विद्याभिरभिमन्त्र्य पृथक् पृथक् ॥ ७९ ॥
गन्धपुष्पादिभिः पूर्णं पल्लवैरुपशोभितम् ।
अर्घ्यपात्रञ्च सम्पूज्य वर्द्धन्याऽभ्युक्ष्य साधकम् ॥ ८० ॥
शतमष्टोत्तरं चैवमर्घ्यपात्रोदकेन तु ।
अभिषिच्य विधानेन कुम्भतोयेन मन्त्रवित् ॥ ८१ ॥
विद्यामुपदिशेद्देवि ! पाठयेद्रससाधकम् ।
कुमारीयोगिनीयोगि-साधकांश्च यथोचितः ॥ ८२ ॥
तर्पयेदन्नपानैश्च जागरं तत्र कारयेत् ।

---

१. अघोर मन्त्रः—अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर-घोर तरेभ्यः । सर्वतः सर्वं सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ॥

हवन कुण्ड का निर्माण तथा हवन विधि :— हे देवशि। इसके बाद पूर्व निर्दिष्ट विधि से यथा शक्ति रसाङ्कुशीविद्या का जप कर तथा मेखला से युक्त योनि चक्रानुसार कुण्ड बनाकर उसमें क्रमशः घी तथा तिल से हवन करें। हे देवि! जल से परिपूर्ण, फल (नारियल का फल) तथा पञ्चरत्नों से युक्त कलश स्थापन करे और वस्त्र से ढक दे। इसके बाद उस कलश के ऊपर अलग अलग अष्टादश विद्या से अभिमन्त्रित कर गन्ध-पुष्प आदि से परिपूर्ण पल्लवों से उपशोभित अर्घ्यपात्र के जल से वर्द्धनी मुद्रा के द्वारा एक सौ आठ वार प्रोक्षण कर मन्त्र को जानने वाला विद्वान् कुम्भ के जल से विधि पूर्वक साधक को अभिसिंचित करें और हे देवि! रस साधक को उपदेश करें तथा पढ़ावे। इसके बाद कुमारी योगिनी तथा कुमार योगी साधकों को उचित अन्न-पान से तृप्त करें और वहीं पर जागरण कराये ॥ ७७-८२½ ॥

एवं विहितदीक्षस्तु साधकः सुरनायिके ! ॥ ८३ ॥
महाभूतमयीं तत्र वर्णपञ्चकसंयुताम्।
पञ्चबीजात्मिकां विद्यां प्राणायामात्मसूत्रके ॥ ८४ ॥
मुद्रां रसाङ्कुशीं बध्वा लक्षमेकं जपेत्प्रिये !।
तस्य सिध्यति देवेशि ! निर्विघ्नं रसभैरवः ॥ ८५ ॥
प्र[1]णवादि-नमोऽन्तस्तु तर्पणान्ते जपः परः।

मन्त्र जप का विधान :—हे सुर नायिके ! इस प्रकार दीक्षितसाधक महा पञ्चभूतमयः पांचवर्णो से युक्त पञ्च बीज (ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं ह्री) वाली रसाङ्कुशी मुद्रा से विद्या को प्राणायाम रूप सूत्र में बाँधकर एक लाख मन्त्र का जप करें। हे देवेशि ! ऐसे साधक को निर्विघ्न रसभैरव सिद्ध हो जाता है। रसेश्वर मन्त्र को तर्पण के अन्त में ॐ से लेकर नमः पर्यन्त जप करें ॥

अ[2]हिंसा चन्दनं सत्यं पुष्पमस्तेयधूपनम् ॥ ८६ ॥
ब्रह्मचर्यं महादीपमप्रतिग्रहघण्टकाम्।
पायसान्नं महेशानि ! सर्वभूतदयात्मकम् ॥ ८७ ॥
संगृह्याऽऽराधयेद्देवीं स भवेत्सिद्धिभाजनम्।
सहस्रं वा शतं वापि त्रिसन्ध्यं संजपेदिमाम् ॥ ८८ ॥

साधक के मानसिक पूजन का प्रकार :—हे मेहशानि ! जो साधक अपने मन में अहिंसा रूपी चन्दन, सत्य रूपीपुष्प, अस्तेय (चोरी न करना) रूपा

---

१. प्रणवादि–नमोन्तं स्यादर्चनान्ते जपः परः। इति पाठान्तरम्। क.।

२. उपासनाङ्गभूतान् यम–नियमान् मानसपूजेपयोगित्वेन, चन्दनादिष्वा-रोप्य नित्यत्वेनोपदिशति संग्राह्याऽऽराधयोदिति—तत्फलं सिद्धिभाजनमिति।

धूप, ब्रह्मचर्यरूपी महादीप, अप्रतिग्रह (दान न लेना) रूपी घण्टी तथा सम्पूर्ण प्राणियों में दया रूपी पायसान्न (खीर-क्षीरसिद्ध भोज्य पदार्थ) को ग्रहण कर रसाङ्कुशी देवी की अराधनां करता है वह रस सिद्धि को प्राप्त करता है। रसाङ्कुशी मन्त्र को तीनों समय एक हजार या एक सौ प्रति दिन जप करें ॥

अस्या आज्ञा-प्रसादेन जायते खेचरो रसः।
दिव्यौषध्यश्च तस्यैव सिध्यन्ति सुरवन्दिते ! ॥ ८९ ॥

जप के फलका निरूपण:—हे देवताओं से अभिनन्दित पार्वति ! इस रसाङ्कुशी देवी की आज्ञा तथा प्रसन्नता से खेचर (आकाश में सञ्चरण कारक) रस सिद्ध हो जाता है और उसी को दिव्य ओषधियां भी प्राप्त होती हैं ॥८९॥

अनङ्कुशं समारुह्य वने मत्तगजं यथा।
तथाऽरसाङ्कुशाभिज्ञो रसेन्द्रं प्राप्य सीदति ॥ ९० ॥

रसाङ्कुश ज्ञान के विना रस सिद्धि प्राप्त होने पर भी हानि :—जिस प्रकार हस्ति वाहक (पीलवान) वन में मत वाले हाथी पर बैठा हुआ अंकुश के बिना अनेक कठिनाइयों को प्राप्त करता है उसी प्रकार रसाङ्कुश को न जानने वाला साधक रस सिद्धि प्राप्त करने पर भी दुःखी होता है ॥ ९० ॥

विद्यया सह मन्तव्यं गुरोः सत्सम्प्रदायिनः।
रसप्रयोगजातन्तु सर्वतः सिद्धिमिच्छता ॥ ९१ ॥

रस सिद्धि के लिये गुरु की आवश्यकता:—रस विद्या में सभी प्रकार की सिद्धि को चाहने वाला साधक रस विद्या के साथ अच्छे सम्प्रदाय वाले सद्गुरु को प्राप्त करे। अर्थात् गुरु के विना सिद्ध रस विद्या का उपयोग न करे ॥९१॥

अथ प्रश्नावताराय पूर्वोक्तं रसभैरवम्।
समाहितमना ध्यायेत् तदालीनं समाचरेत् ॥ ९२ ॥
अनाहते ब्रह्मरन्ध्रे मनः कृत्वा निरामये।
करन्यासं पुरा कृत्वा अङ्गन्यासमनन्तरम्।
यथाशक्ति जपेन्मन्त्रं रसेन्द्रस्य समाहितः ॥ ९३ ॥

रस सिद्धि विषयक प्रश्न का ज्ञान करने के लिये कर्तव्य विधि :—रस-विद्या सम्बन्धी सद्गुरु से उपदेश प्राप्त करने के बाद रससिद्धिविषयक प्रश्न के ज्ञान के लिये पूर्वोक्त प्रकार से सस्थापित रसभैरव का स्थिरमन से साव-धानी पूर्वक ध्यान करें और उनमें निमग्न होकर कार्य करे। निर्विकार अनाहत चक्र तथा ब्रह्मरन्ध्र में मन को लगाकर पहले कर न्यास करे और उसके बाद हृदयादि अङ्गन्यास कर सावधान मन से यथाशक्ति रसेन्द्रमन्त्र का जप करे ॥

चतुष्कोणं पुनः कृत्वा मध्ये षट्कोणमण्डलम्।
हस्तमात्रं द्विहस्तं वा तण्डुलैर्विमलैर्लिखेत् ॥ ९४ ॥

सुगन्धैर्लेपिते स्थाने पूजयेच्चन्दनादिभिः ॥ ९५ ॥

यथाशक्ति रसेन्द्रमन्त्र का जप करने के बाद एक हाथ या दो हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर मण्डप बनाकर उसके मध्य में स्वच्छ चावल से षट्कोण बनावे और सुगन्धित द्रव्यों से लिप्त स्थान में चन्दन, पुष्पमाला आदि पूजन सामग्री से पूजन करे ॥ ९४–९५ ॥

कर्णिकायां न्यसेद्देवि ! पूर्वोक्तं रसभैरवम् ।
षट्कोणे देवताषट्कं महाकालादि विन्यसेत् ॥ ९६ ॥
महाकालं महाबलमघोरं वज्रवीरकम् ।
न्यसेत् क्रोधञ्च कङ्कालं मालामन्त्रैः समर्चयेत् ॥ ९७ ॥

हे देवि ! उस षट्कोण के मध्य में पूर्वोक्त रसभैरव का न्यास करे और षट्कोण में दक्षिणावर्त क्रम से महाकाल आदि (महाकाल, महाबल, अघोर, वज्रबीर, क्रोध तथा कङ्काल) छः देवताओं का न्यास कर माला मन्त्र से पूजन करे ॥ ९६–९७ ॥

ॐ ह्रीं क्रौं व्लैं क्ष्लं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रूः हुं फट्—रसेश्वराय महाकाल-भैरवाय रौद्ररूपाय कृष्णपिङ्गललोचनाय, अवतर २ अवतारय २ जल्प २ जल्पय २ शुभाशुभं कथय २ कथा[१]पय २ महारक्षां कुरु २ रससिद्धिं देहि । इति मालामन्त्राः ।

माला मन्त्र :—ॐ ह्रीं क्रौं श्लं ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट्…………
……… …रससिद्धि देहि । इति माला मन्त्राः । यह माला मन्त्र है ।

करन्यास :—ॐ महाकालभैरवाय अंगुष्ठाभ्यां नमः ॐ महाबल भैरवाय तर्जनीभ्यां नमः, ॐ अघोर भैरवायमध्यमाभ्यां नमः, ॐ वज्रवीर भैरवाय अनामिकाभ्यां नमः, ॐ क्रोध भैरवाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ कङ्काल भैरवाय करतल पृष्ठाभ्यांनमः इस प्रकार प्रत्येक अंगुलियों के साथ स्पर्श करे । ये मन्त्र षडङ्गन्यास तथा पूजन के लिये मूल मन्त्र हैं ।

ॐ महाकालभैरवाय हृदयाय नमः । ॐ महाबलभैरवाय शिरसे स्वाहा । ॐ अघोरभैरवाय शिखायै वौषट् । ॐ वज्रवीरभैरवाय कवचाय हुम् । ॐ क्रोधभैरवाय नेत्राय वौषट् । ॐ कङ्कालभैरवाय अस्त्राय फट् । सर्वत्र स्वाहान्तम् । एवमङ्गन्यासाः । एवमङ्गुलीन्यासान् कुर्यादादौ । एते षडङ्गे, पूजने च मूलमन्त्राः ।

अंगन्यास :—ॐ महाकाल भैरवाय हृदयायनमः स्वाहा …… ॐ महा-कङ्कालभैरवायनमः स्वाहा अस्त्रायफट्, अन्त में सर्वत्र स्वाहा शब्द का प्रयोग करे । इसमें दाहिने हाथ के पांचों अंगुलियों से हृदय आदि अंगों का स्पर्श करे ।

---

१. कथ = वाक्यप्रबन्धे चुरादावनन्तो धातुः, तस्माद् णिचि वृद्धौ कथा–इ-इतिस्थितौ, आपुगागमः इतिशाकटायनः, पाणिन्यादिमते कथय–इत्येवरूपम्, अतोलोपात् ।

एवं न्यासाक्षरैः कूटैः गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ।
पूर्णकुम्भं न्यसेन्मध्ये शरावं तण्डुलैः सह ॥ ९८ ॥
तस्योपरि घृत-दीपं वर्त्तीं मन्त्रैश्च मन्त्रयेत् ॥ ९९ ॥
समानीय कुमारीं तु कुमारं वा सुशोभनम् ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च यथालाभं समानयेत् ।
गन्धपुष्पैर्धूपदीपैः नैवेद्येन च पूजयेत् ॥ १०० ॥
एकैकस्यां न्यसेन्मन्त्रं हृदयाद्याश्च देवताः ॥ १०१ ॥

इस प्रकार कूटन्यास के अक्षरों को उच्चारण करते हुए गन्ध पुष्प आदि पूजन सामग्री से पूजन करे। तदनन्तर षट्कोण के मध्य में जल पूर्ण घड़े को स्थापित करे और उसके ऊपर चावल से पूर्ण शराव (ढकना) रक्खे। तण्डुल पूर्ण शराव के ऊपर घृत की दीपवर्त्ती रख कर मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे तथा 'दीप जला दे'। इसके बाद वहां पर एक, दो, तीन, चार, पांच या जितने सुन्दर कुमार अथवा कुमारियां मिल जांय उनको लाकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य से पूजन करे और एक दो कुमार या कुमारियों के ऊपर मन्त्र तथा हृदयादि देवताओं का न्यास करे ॥ ९८-१०१ ॥

ततो निरीक्ष्य तद्दीपं सर्वांस्तत्र कुमारिकाः ।
पश्यन्ति देवता दीपे कुमारा[1]श्च शुभाऽशुभम् ।
सिद्धिं वाप्यथवाऽसिद्धिं कथयन्ति कुमारिकाः ॥ १०२ ॥
प्रश्नावतारं ज्ञात्वेति रसकर्मणि सञ्चरेत् ॥ १०३ ॥

कुमार या कुमारी पूजन एवं मन्त्र न्यासादि के बाद वहां पर सभी कुमार या कुमारियां दीप को देखकर उस दीप में शुभ कारक या अशुभ कारक देवताओं को देखती हैं और वे कुमारियां रसक्रिया की सिद्धि या असिद्धि को कहती हैं। इस प्रकार प्रश्नावतार के द्वारा सिद्धि का ज्ञान कर रस कर्म में प्रवृत्त होय ॥ १०२-१०३ ॥

यः पुरा देवदेवेशि ! रसेन्द्रे भावितात्मवान् ।
सप्तजन्म-मृतो जातो न त्यजेद्रसभावनाम् ॥ १०४ ॥

रस संस्कार का माहात्म्य :—हे देवताओं की स्वामिनि ! पहले जिसका मन रसेन्द्र (पारद) में लीन हो गया है वह रसेन्द्र की भावना को सात बार जन्म लेने तथा मरने के बाद भी नहीं छोड़ता ॥ १०४ ॥

एवं शुभाशुभं ज्ञात्वा देवताऽनुग्रहान्वितः ।
मण्डपे पूर्ववद्देवीमर्चयित्वा 'रसाङ्कुशीम्' ॥ १०५ ॥

---

१ कुमाराः, वीर्य्योत्पत्तेः प्राक्, कुमारिकाश्चाऽऽर्तवात्प्राक्,–दीपकलिका-मध्ये चिरमेकाग्रतया पश्यन्तो भावनाहूतां देवमूर्त्तिं पश्यन्ति ।

आचार्यमपि सम्पूज्य धूपस्रकचन्दनादिभिः ।
अघोरेण बलिं दत्वा ततः कर्म समाचरेत् ॥ १०६ ॥

रस कर्म प्रारम्भ करने का प्रकार :—ऐसे पूर्वोक्त प्रकार से शुभ एवं अशुभ शकुन जान कर देवताओं के अनुग्रह से युक्त साधक पहले की तरह मण्डप में रसाङ्कुशी देवी का पूजन कर तथा आचार्य को भी धूप, पुष्प माला तथा चन्दन आदि से पूजन कर और अघोर मन्त्र से बलि देकर उसके बाद रस कर्म प्रारम्भ करें ॥ १०५–१०६ ॥

ओषध्यो मण्डपे प्राच्यां रसस्वेदोऽग्निगोचरे ।
दक्षिणस्यां लोहमारो नैर्ऋत्यां पेषणादिकम् ॥ १०७ ॥
द्रुतिक्रिया तु वारुण्यां वायव्ये धमनं प्रिये ! ।
वर्णोत्कर्षस्तु कौवेर्याम् ऐशान्यांरसवेधनम् ॥ १०८ ॥
आसनन्तु गुरोर्मध्ये निवेश्य सुरनायिके ! ।
नियामनादिकं[1] कर्म क्रामणान्तं वरानने ! ।
रसाङ्कुशेन मन्त्रेण कर्त्तव्यं साधकेन[2] तु ॥ १०९ ॥

रस सिद्धि के लिये वस्तुओं को रखने का क्रम :—मण्डप के पूर्व दिशा में ओषधियाँ, आग्नेय दिशा में रस स्वेदन सामग्री, दक्षिण में लोहमार (लौह मारक द्रव्य), नैर्ऋत्य कोण में पेषण आदि पात्र, पश्चिम दिशा में द्रुति क्रिया सामग्री, वायव्य कोण में धमन सामग्री, उत्तर दिशा में वर्ण को बढ़ाने वाली सामग्री तथा ईशान कोण में रस वेधन सामग्री रखें। हे सुरनायके ! साधक मण्डप के मध्य में गुरु का आसन रखकर नियामन आदि से लेकर क्रामणपर्यन्त कर्म रसाङ्कुश मन्त्र से करें ॥ १०७–१०९ ॥

यः पुरा देवदेवेशि ! वर्णितो रसभैरवः ।
सद्योजातं तस्य जानु वामदेवन्तु गुह्यकम् ॥ ११० ॥
अघोरं हृदयं तस्य वक्त्रं तत्पुरुषं स्मृतम् ।
यावद्भ्रूमध्यमीशान—मर्द्धचन्द्रं ललाटकम् ॥ १११ ॥
विन्दुर्देवेशि तस्योर्द्ध्वे विन्दोरूर्द्ध्वे स्थितो नदः[3] ।
ललाटशिरसोर्मध्ये शक्तिस्तत्रैव संस्थिता ॥ ११२ ॥
व्यापिनी ब्रह्मरन्ध्रस्था तस्योर्द्ध्वे तून्मना भवेत् ।
उन्मना उन्मनीभावम् उन्मना पदमव्ययम् ॥ ११३ ॥

रस भैरव के आकृति का वर्णन :—हे देव देवेशि ! जिस भैरव का मैंने पहले वर्णन किया है उसका सद्योजात (शंकर) जानु हैं, वामदेव गुह्याङ्ग

१. नियामनादयो वक्ष्यन्ते, नियामकादिभिरोषधिभिः ।
२. साधकेन कर्त्रा, मन्त्रेण करणेन ।
३. नदनं नदः = नाद इत्यर्थः । घञर्थेकः ।

हैं, अघोर हृदय है और वह पुरुष मुख है। जितना भ्रुमध्य भाग है वह ईशान हैं, अर्द्धचन्द्र ललाट है। हे देवेशि ! ललाट के ऊपर बिन्दु है बिन्दु के ऊपर नद (नाद) स्थित है और वहीं पर ललाट तथा सिर के मध्य में शक्ति स्थित है। वह शक्ति ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सर्व व्यापक है। साधक उसके ऊपर उत्कण्ठापूर्वक मन को लगाये। उन्मनी भाव (उत्कण्ठापूर्वक मन को स्थिर करना) ही उन्मना होना है और उन्मना होना ही अव्यय (निरन्तर एक स्वरूप में रहने वाला) पद (स्थान) है ॥ ११०-११३ ॥

तस्योद्ध्वं परमं सत्यं व्योमस्थायि परात्परम् ।
शून्यं शून्यं पुनः शून्यं त्रिशून्यञ्च निरामयम् ॥ ११४ ॥
नभश्च गगनं व्योम खमाकाशं च केवलम् ।
निष्कलं निर्मलं नित्यं निस्तरङ्गं निरामयम् ॥ ११५ ॥
निष्प्रपञ्चं निराधारं निर्गुणं गु[1]णगोचरम् ।
एवं रूपं सदा ध्यायेत् स्वदेहे रसभैरवम् ॥ ११६ ॥

रस भैरव के ध्यान का स्वरूप :— पूर्वोक्त अव्यय पद के ऊपर स्थित सर्वोत्कृष्ट, सत्य, व्योमस्थायि, सबसे परे, त्रिविध शून्य स्वरूप, निरामय, नभ, गगन, व्योम, ख, एवं आकाश स्वरूप, केवल (एक), कलारहित, निर्मल, नित्य, तरङ्गरहित, निरामय, प्रपञ्चरहित, आधार रहित, निर्गुण तथा स्वयं निर्गुण होते हुए भी गुणों (सत्व रजस् तथा तमो गुण) से शम्पन्न रसगुण दिखाई देने वाले इस प्रकार के स्वरूप युक्त रस भैरव को साधक अपने शरीर में हमेशा ध्यान करें ॥ ११ -११६ ॥

यदा च निश्चलं ध्यायेत् यदा च निश्चलं मनः ।
वह्निमध्ये तदा सूतो बध्यते निश्चलस्तथा ॥ ११७ ॥
यदा च चलति ध्यानं रसो वह्नौ न तिष्ठति ॥ ११८ ॥

रसभैरव में निश्चल ध्यान का फल :—जब साधक निश्चल मन से रस भैरव का ध्यान करता है और उसका मन निश्चल स्थित होता है तब अग्नि के मध्य में पारद पूर्ववत् निश्चल बंध जाता है। अर्थात् चाञ्चल्यदोष रहित एकत्र स्थिर हो जाता है। जब ध्याय चलायमान (चञ्चल) हो जाता है तब पारद अग्नि में स्थिर नहीं रहता ॥ ११७-११८ ॥

मण्डलस्य बहिः रात्रौ सुरामत्स्यामिषादिभिः ।
अर्चयेद् यक्षगन्धर्वान् पिशाचान् राक्षसांस्तथा ॥ ११९ ॥
क्रियाकरणविघ्नाश्च फलविघ्नाश्च कोटिशः ।
सम्भवन्ति तथा तत्तच्छान्त्यै च बटुकेश्वरम् ॥
अर्चानुग्रहषट्कञ्च सम्पूज्यादौ समाचरेत् ॥ १२० ॥

१. स्वयं निर्गुणम्, गुणा गोचराः = विषया यस्य तम् ।

कर्म्मान्ते च पुनर्बालमष्टाष्टकमनुग्रहम् ।
सम्पूज्य विनियुञ्ज्यात्तत् सिद्धद्रव्यन्तु सिद्धिदम् ॥ १२१ ॥

रस सिद्धि में विघ्न करने वाले यक्षराक्षसादि का पूजन प्रकार :—रस कर्म प्रारम्भ करने के पहले रात्रि में मण्डल के बाहर मद्य, मत्स्य तथा मांस आदि के द्वारा यक्ष, गन्धर्व पिशाच तथा राक्षसों की पूजा करे। रसकर्म करने में तथा फलप्राप्ति (रससिद्धि) में करोड़ों विघ्न उपस्थित होते हैं, उनकी शान्ति के लिये वटुकेश्वर तथा अनुग्रहकारक षड् देवताओं का पूजन कर रसकर्म-प्रारम्भ करे। रस कर्म के अन्त में (रस सिद्धि प्राप्त हो जाने पर) पुनः अनुग्रहकारक बालस्वरूप आठ[२] अष्टकों की पूजाकर उन सिद्धि देने वाले सिद्ध-द्रव्यों का विनियोग करे ॥ ११९-१२१ ॥

सिद्धस्तु नाशयेद्वादं तद्देशं तु परित्यजेत् ।
भ्रमेन्माधुकरीं भिक्षां सुसिद्धे तु महारसे ॥ १२२ ॥
प्रमादादुत्थितो विघ्नो रसबन्धे कृते सति ।
रसशान्तिर्विधातव्या रसक्षोभं न कारयेत् ॥ १२३ ॥

रस सिद्धि के बाद का कर्म :—साधक रससिद्धि हो जाने के बाद "वाद" (रससाधन वस्तु) को नष्ट करदे और उस देश को छोड़ दे। महारस के अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर परिभ्रमण करे और मधुकरी भिक्षा लेकर जीवन निर्वाह करे। रसबन्ध करने के बाद प्रमाद से कोई विघ्न उपस्थित हो जाय तो शान्ति विधि से रस की शान्ति करे। रसक्षोभ (रस के सम्बन्ध में उपद्रव) न कराये ॥ १२२-१२३ ॥

रसं न दर्शयेद्देवि नारीहस्ते न पातयेत् ।
नार्य्यै गुह्यं न वक्तव्यं द्रव्यं ताभ्यो हि गोपयेत् ॥ १२४ ॥
परद्रव्यैर्न कर्त्तव्यं परदारान्न संस्पृशेत् ।
परान्नं नैव भुञ्जीत परांश्चैव न विश्वसेत ॥ १२५ ॥
न देयं दुष्टबुद्धीनां गोष्ठीरूपेण याचके ।
अष्टम्यां पौर्णमास्यां च अमावास्यां युगादिषु ॥ १२६ ॥
अयने विषुवे चैव चतुर्दश्यां विशेषतः ।
रसोत्सवं प्रकुर्व्वीत यथावित्तानुसारतः ॥ १२७ ॥

सिद्धरस के संरक्षण के लिये संयम-नियम :—हे देवि ! रस (सिद्ध-पारद) स्त्रियों को न दिखाये और न उनके हाथ में दे। स्त्रियों से गोपनीय द्रव्यों को नहीं कहना चाहिए बल्कि स्त्रियों से गोपनीय द्रव्यों की रक्षा करनी चाहिए। दूसरों के द्रव्यों से रस सिद्ध नहीं करना चाहिए और दूसरों की

स्त्रियों का स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। दूसरों का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिएँ और शत्रुओं का विश्वास भी नहीं करना चाहिए। दुष्टबुद्धिवालों को एक होकर मांगने पर सिद्धरस को नहीं देना चाहिए। अष्टमी, पूर्णमासी, अमावस्या, युग के प्रारम्भ, अथवा विश्वतरेखा पर सूर्य के आनेपर तथा विशेषकर चतुर्दशी में अपने धन तथा शक्ति के अनुसार रसोत्सव करे॥ १२४-१२७॥

एवं रसोत्सवं देवि यः कुर्य्याद्भक्तिसंयुतः।
ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्ति विविधानि च॥ १२८॥
अनेन विधिना यत्र पूजां कुर्वन्ति साधकाः।
न तत्र रोगदौर्गत्यं नेतीयः प्रभवन्ति च॥ १२ ॥
एवं विधां रसे पूजां प्रतिष्ठाप्य यथाविधि।
पश्चात्कर्म्म विधातव्यमात्मनः शुभमिच्छता॥ १३०॥

रसोत्सव करने से लाभ तथा न करने से हानि :—हे देवि इस प्रकार जो व्यक्ति भक्ति-श्रद्धा पूर्वक रसोत्सव करता है उसके अनेक प्रकार के ब्रह्महत्या-आदि पाप नष्ट हो जाते हैं। जहां पर साधक इस विधि से रस की पूजा करता है वहाँ पर रोग, दुर्गति, तथा ईतियों (भय-अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभप्रकोप मूषक-प्रकोप शुकप्रकोप, आसन्नराजभय) का प्रकोप नहीं होता है। इस प्रकार विधिपूर्वक रस पूजा की प्रतिष्ठा कर अपना शुभ चाहने वाला साधक पश्चात् कर्म (बाद का कर्म) करें॥ १२८-१३०॥

अन्यथा कुरुते यस्तु तस्य सिद्धिर्न जायते।
अपायः पापशङ्का च बुद्धिभङ्गो हि जायते॥ १३१॥
अवज्ञा रोगजातञ्च सन्देहश्च पदे पदे।
आलस्याद्गुरुलोभाच्च परस्य कथनेन च।
उत्पन्नमपि विज्ञानं हरन्ति कुलकाः प्रिये॥ १३२॥
दीक्षितो रसकर्म्माणि मन्त्रन्यासविदाचरेत्।

जो साधक इस के बिपरीत कार्य करता है उस को रस सिद्धि नहीं प्राप्त होती और किये कर्म नष्ट हो जाते है, पाप की आशंका होती है तथा बुद्धिभङ्ग (बुद्धिका नाश-पागलपन) हो जाता है। पद पद पर अवज्ञा रोगोत्पत्ति तथा सन्देह होता है। हे प्रिये! आलस्य तथा अधिक लोभ के कारण दूसरों से कहने (प्रचार करने) से उत्पन्न विज्ञान को भी कुलक (रसविघ्न-

---

१. अति वृष्टिरनावृष्टिः शलभाः मूषकाः शुकाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता-ईतयः स्मृताः॥

कारक) गण नष्ट कर देते है। गुरु के द्वारा दीक्षाप्राप्त तथा मन्त्रन्यास को जानने वाला साधक रस कर्म को करे ॥ १३१-१३२½ ॥

तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १३३ ॥

इति श्रीपार्व्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां दीक्षाविधानो नाम द्वितीयः पटलः॥ २ ॥

उपसंहार :—इसके बाद शंकर जो पार्वती से प्रश्न किये कि हे देवेशि तुम और क्या सुनना चाहती हो उसको मुझसे कहो ॥ १३३ ॥

रसार्णव तंत्र में द्वितीय पटल समाप्त ।

तृतीयः पटलः

श्रीदेव्युवाच ।

भगवन् देवदेवेश ! लोकनाथ जगत्पते ।
मन्त्रन्यासं समाचक्ष्व रसकर्म्मोपकारकम् ॥ १ ॥

रस कर्म में मन्त्रन्यासविषयक पार्वती का प्रश्न :—पार्वती ने प्रश्न किया कि हे देवताओं के देव भगवान् लोकनाथ, जगत्स्वामी शंकर जी आप मुझसे मन्त्रन्यासविधि को कहें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच—

पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि मन्त्रमूर्तिं रसाङ्कुशीम् ।
पञ्चमं तु गृहं देवि ! दुर्ल्लभं देवदानवैः ॥ २ ॥
चत्वारः प्रधानगृहाः हंसगृहं तु पञ्चमम् ।
यत्र सिद्धिर्मकारादिः तिष्ठते पञ्चमे गृहे ॥ ३ ॥

पार्वती के मन्त्रन्यास विषयक प्रश्न का उत्तर :—पार्वती के प्रश्न को सुनकर शंकर जी बोले। हे देविः पुनः मैं दूसरी मन्त्रमूर्ति रसङ्कुशी देवी को कहता हूं हे देवि ! पांचवां घर देव तथा दानवों के लिये दुर्लभ है। चार प्रधान घर हैं और पोचवां हंस गृह है जिस पांचवे घर में [1]पञ्च मकारादि सिद्धियाँ रहती हैं ॥ २-३ ॥

लिङ्गाश्रयं यथा रूपं लिङ्गि माया तु लिङ्गिनी ।
गगनेन तु सा ज्ञेया भगरेखा तु पञ्चमे ॥ ४ ॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य बीजं शब्दमनुत्तरम् ।
ह्रींकारञ्चैव क्रींकारं हंसबुद्धिमनन्तरम् ॥ ५ ॥
कालपाशं महामन्त्रं गृह्णीयात्साधकेश्वरः ।
महारम्भे तु तन्मन्त्रं प्रतीहारं रसाङ्कुशीम् ॥ ६ ॥
लक्षमेकं जपेत्तस्य महासिद्धिः प्रवर्त्तते ।

पांचवें घर में अपने स्वरूप में स्थित लिङ्गी शंकर तथा अभ्रकविहित भगरेखाश्रित लिङ्गिनी माया का स्थान समझें। इसके बाद साधकों का गुरु (रसोपदेष्टा) पहले प्रणवमन्त्र (ॐकार) का उच्चारण कर बाद में बीजमन्त्र (ह्रीं क्रीं) का उच्चारण करे। ह्रींकार तथा क्रींकार का

---

(१) औघड़ सम्प्रदाय का पञ्चमकार सेवन विहित कर्म है। जिसके साथ रससिद्ध करने के सम्बन्धमें संकेत मिलता है। इसका विशेष विवरण अन्वेषणीय है।

उच्चारण करने के बाद हंसबुद्धि (सर्वोत्कृष्ट हंस स्वरूप निरञ्जन ज्ञान) को हृदय में स्थिर कर काल[1]पाशमहामन्त्र (क्रीं) को ग्रहण करे। महान् रसकार्य के प्रारम्भ में प्रतिहार (द्वार) स्वरूप कालपाशमन्त्र (क्रीं) तथा रसाङ्कुशी मन्त्र का एक लाख जपकरे। ऐसा करनेसे साधक को उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है ।। ४-६½ ।।

बालवत्सपुरीषं तु ततः केनैव ग्राहयेत् ।। ७ ।।
चिताग्निभस्म तेनेव ग्राहयेत् परमेश्वरि !
क्षेत्रं तदुत्तमं स्थानं रसेन्द्रस्तत्र तिष्ठति ।। ८ ।।
मार्जन्या मार्जयेत्स्थानं कुब्जिकाख्या तु खेचरी ।
द्वात्रिंशदक्षरा देवि ! पञ्चनादेषु संस्थिता ।। ९ ।।

हे परमेश्वरि ! जप के बाद बाल बछड़े का पुरीष (गोबर) किसी से भी मंगाये किन्तु चिता की अग्नि का भस्म जप कर्ता साधक से ही मंगाये। वह उत्तम स्थान है जहां रसेन्द्र (पारद) रहता है। उस स्थान को मार्जनीमुद्रा से मार्जन करें। हे देवि ! बत्तीस अक्षर वाली कुब्जिकाख्या खेचरी मुद्रा पञ्चनाद (ॐ कार) में स्थित है ।। ७-९ ।।

ततः सिद्धाश्च चत्वारः पुरुषाष्टादश स्मृताः ।
अर्थपञ्चकसंयुक्ता ध्यानं स्यात् पञ्चकं पुनः ।। १० ।।
योगिनीषट्कसंयुक्तं सप्तविंशत्क्रमान्वितम् ।
एकाशीतिपदैर्युक्तं पञ्चावरणसंयुतम् ।। ११ ।।
अनेन क्रमयोगेन मार्जनीं परिपूजयेत् ।
अनेन मार्जयेत् क्षेत्रं रसेन्द्रो यत्र तिष्ठति ।। १२ ।।
उपलेपन्तु तत्रैव चण्डघण्टान्तु कारयेत् ।
पूर्वे गृहे तु सा देवी चण्डघण्टा व्यवस्थिता ।। १३ ।।
चण्डभैरविका देवी संस्थिता दक्षिणे गृहे
गोमयं तेन गृह्णीयाल्लेपनार्थं वरानने !
चण्डकापालिनी देवी संस्थिता चोत्तरे गृहे ।
गृहीत्वा चोदकं तेन लेपयेद्भूमिमण्डलम् ।। १५ ।।

रसेन्द्र के स्थान को मार्जन करने के बाद चार सिद्धपुरुष तथा अट्ठारह साधकपुरुष अर्थप[2]ञ्चक से सम्पन्न हो कर पुनः छः

१. आँ ह्रीं क्रीं यं रं लं वं शं षं सं तारान्वितं नमः। इति कालपाशमन्त्रः– (मन्त्रमहोदधिः)

२. अर्थपञ्चक–पञ्चभूत का प्रतीक–हं–आकाश–शब्द, यं–वायु–स्पर्श, रं–अग्नि–रूप, वं–जल–रस, लं–पृथ्वी–गन्ध ये सब अर्थ पञ्चक हैं।

योगिनी[१] सत्ताइस[२] क्रम एक्कासी[३] पद तथा पांचआवरण से युक्त अर्थ पञ्चक का ध्यान करें। इस क्रम से मार्जनी मुद्रा का पूजन करे। वहीं पर उपलेप करे तथा चन्द्रघण्टा बनाये। पूर्वोक्त पाँच कोष्टकगृह के पूर्व गृहमें चन्द्रघण्टा देवी को स्थापित करे, दक्षिण गृहमें चण्डभैरवी देवी को स्थापित करे। हे पार्वति! लेपन के लिये उसी इर से गोबर ग्रहण करे। उत्तर गृहमें चन्द्रकपालिनी देवी को स्थापित करे ॥ १०-१५ ॥

सप्तदशाक्षरां कालीं खल्लपाषाणतो न्यसेत्।
द्वात्रिंशदक्षरं घोरं मर्दके तु नियोजयेत् ॥ १६ ॥
गृह्णीयात् काञ्जिकां देवि! कालपाशेन मन्त्रितः।
एवं सुकर्म्मसंयोगं कुरुते खेचरीकुलम् ॥ १७ ॥

रससाधकपात्रों में मन्त्रों का न्यास :—हे देवि! सत्र[४]ह अक्षर वाली कालीमन्त्र विद्यापत्थर के खरल में न्यास करे। बत्तीस अक्षर वाले घोर[२] मन्त्र को मर्दक (मुसरा) में नियोजन करे। हे देवि! कालपाश मन्त्र (क्रीं) से अभिमन्त्रित कर काञ्जी को ग्रहण करे इसप्रकार अच्छे कर्मो से संयुक्त खेचरी कुल को बनाता है ॥ १६-१७ ॥

अष्टाशीतिसहस्राणि याः स्थिता दिव्यखेच[५]रीः।
ताः सर्व्वाः किङ्क[६]रास्तस्य औषधं पेषयन्ति ताः ॥ १८ ॥

---

१. षड्योगिनी— आं ऐं ओं औं अं अः

२. सत्ताइस क्रम :—पञ्चवर्गमालाको अजपा से आद्यन्त में सम्पुटित करनेपर सप्तविंशतिक्रम बनता है। अजपा मन्त्र–'हं सः' है। हं कु चु टु तु पु सः।

३. एक्कासी पद—वाच्य-वाचक दो रूपों में विभक्त षडध्वमार्ग के अनुसार–वाचक अध्वा–में एक्कासो पद आता है। उस का निम्न प्रकार विवरण है–वाचक–अध्वा–वर्ग, पद, मन्त्र। वाच्य-अध्वा–कला,तत्व, भुवन

४. वर्ग—पचास, पद–एक्कासी, मन्त्र–एकसौ आठ, कला–पाँच, तत्व–छत्तीस, भुवन–दो सौ छप्पन। षडध्व मार्ग को इसके आकर ग्रन्थ शैव-शाक्त दर्शन के माध्यम से जाना जा सकता है।

५. प्रथमार्थे द्वितीया (छान्दसानुकरणम्) पार्वतीपरमेश्वरसम्वादत्वेन-तत्तुल्यत्वात्। अथवा–याः सामग्रीः (ओषधीः) कर्मभूता व्याप्य दिव्यखेचरी स्थिताः ताः सामग्र्यः–अष्टाशीति–सहस्राणि सन्तीत्यर्थः। ता एवाह-राजिकामित्यादिभिः। सर्वत्र देवतात्वारोपः कार्यसिद्धयर्थः।

६. किङ्कराः पुंस्त्वं छन्दोनुरोधात्, 'किङ्कर्यस्तास्तस्य सर्वाः' इति पठितुमुचितम्।

तासां सर्व्वन्तु मन्त्रैकं चतुरक्षरसंयुतम् –"सोहं हंसः;"
सा विद्या खेचरीणां तु नाम्ना तु कुलखेचरी ॥ १९ ॥
राजिकां सैन्धवं न्यस्य सा विद्या कुलखेचरी !
मन्त्रयेत् काञ्जिकां तत्र मन्त्रराजो रशाङ्कुशी ॥ २० ॥
अस्त्रविद्यां जपेत्तत्र या ज्ञाता पूर्व्वभाग्भवेत् !

अस्सी हजार जो दिव्य खेचरी स्थित हैं वे सभी रसभैरव की दासियाँ हैं 'वे उसकी ओषधियों को पीसती है।' उन सभी किंकरियों का चार अक्षरों से युक्त "सोऽहं" हंसः एक ही मन्त्र है। खेचरियों की वह विद्या कुल खेचरी नाम से प्रसिद्ध है। उस कुल खेचरी विद्या को राई तथा सेन्धानमक में न्यास कर काञ्जी तैयार करे इसके बाद वहां पर मन्त्रराजरसेश्वरमन्त्र तथा रसाङ्कुशी अस्त्र विद्या (मन्त्र विद्या) का जप करे। यहां पर जो अस्त्रविद्या को जाननेवाला पहला अधिकारी हो वह जप करे ॥ १८-२०½ ॥

गुडेष्टकान्तु सम्मर्द्य प्रिये तन्मर्दितं रसम् ॥ २१ ॥
का कथा मन्त्रराजस्य न वाक्यं त्रिशिरस्य च।
षडङ्गं योजयेत् तं तु त्वरितं धारयेत् ततः ॥ २२ ॥

हे प्रिये। गुड़ तथा ईंटों का[१] चूर्ण बनाकर उसमें पारद को मल दे और षडङ्ग मिला दे। इसके बाद शीघ्रही रख दे और त्रिशिरामन्त्र (ॐ ह्रीं क्लीं) मन्त्र का न्यास करे ॥ २१–२२ ॥

डामराख्यं महामंन्त्रं धमनीषु नियोजयेत्।
चिन्तामणिमहाविद्यां कवचेषु नियोजयेत् ॥ २३ ॥
चण्डिकाया महामन्त्रं तं तु पात्रे नियोजयेत्।
नवविद्यां वरारोहे विन्यसेत्तुषगोमये ॥ २४ ॥
त्रिपुराभैरवीं देवीं राजिकाकाञ्जिके न्यसेत्।
गुडस्य कालरात्रिस्तु न्यस्तव्या वीरवन्दिते ॥ २५ ॥
त्रिकूटाक्षं त्रिनेत्रं तु अनलस्य तु विन्यसेत्।
उदके विन्यसेद्देवि! चतुरशीति चण्डिका ॥ २६ ॥
क्षेत्रपालमघोरास्त्रं न्यस्तव्यं कोष्ठके प्रिये! ।
महापाशुपतास्त्रन्तु मूषायां च नियोजयेत् ॥ २७ ॥
एतन्मन्त्रगणं देवि रसस्थाने नियोजयेत्।
तदा तु सिद्धयते तस्य साधकस्य फलं प्रिये ॥ २८ ॥

---

१. र-इत्यस्य गुरूच्चाणं कर्तव्यम्, सुश्रवत्वार्थं छन्दसः। पाठ-शाला इतिवत् ईषद्-विश्रान्तिः कर्त्तव्या-इति भावः।

रसमण्डप में स्थित वस्तुओं में मन्त्र न्यास :—डमराख्य मन्त्र को धमनी (वायु नली अग्नि प्रज्वलित करने के लिए नलिकाकार साधन विशेष) में न्यास करे। चिन्तामणिमहाविद्या को कवचों में न्यास करे। चण्डिका के महामन्त्र को रसपात्र में न्यास करे। हे पार्वति ! नवविद्या को तुष तथा गोमय में न्यास करे। त्रिपुराभैरवी देवी को राई तथा काञ्जी में न्यास करे। हे वीरों के वन्दनीय ! कालरात्रि को पिण्ड में न्यास करे। त्रिकूटाक्ष त्रिनेत्र को अग्नि में न्यास करे। हे देवि ! उदक में चौरासी चण्डिकाओं का न्यास करे। हे प्रिये ! अघोरास्त्र क्षेत्रपाल का कोष्ठकों में न्यास करे। महापाशुपतअस्त्र (मन्त्र) को मूषा में न्यास करे। हे देवि ! इन मन्त्रगणों को रस के स्थान में नियुक्त करे। हे प्रिये जब इस प्रकार रस साधन सामग्रियों के ऊपर देवताओं का न्यास कर रसकार्य प्रारम्भ किया जाता है तब साधक को फल प्राप्त होता है। अर्थात् साधक को रस सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २३–२८ ॥

रसाङ्कुशं महामन्त्रं जपेत्तु हृदयान्तरे।
[1]अन्ये ये योगिनीमन्त्राः सर्वान्नारीश्च जापयेत् ॥ २९ ॥
अप्रकाशन्तु तेनैव मन्त्रराजं रसाङ्कुशम्।
अप्रकाशञ्च नारीणां रक्षयेत्प्रणवं तथा।
महासमयविभ्रंशं नारीणां हृदयं यथा ॥ ३० ॥
कुब्जिकाद्यास्तु ये मंत्रा मया ते सम्प्रकाशिताः।
त्रैलोक्यं क्षोभितं तैस्तु न मन्यन्ते मम[2] प्रिये ! ॥ ३१ ॥
रसाङ्कुशेन ज्ञानेन त्रैलोक्यं वश्यतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥

रस सिद्ध करने के समय मन्त्रों के जप के नियम :—रस सिद्ध करते समय साधक रसाङ्कुश महामन्त्र को हृदय में जपे। अन्य सभी योगिनीमन्त्रों को स्त्रियों से जप कराये। साधक मन्त्रराजरसांकुश को मन में जप करे। स्त्रियाँ भी मन में ही मन्त्र जपें किन्तु उनसे प्रणव मन्त्र (ॐकार) की रक्षा करे अर्थात् उनसे प्रणव मन्त्र का उच्चारण न करायें। क्योंकि नारियों का हृदय उचित समय पर परिवर्तनशील होता है। अर्थात् उनके हृदय में कोई बात स्थिर नहीं रहती। हे प्रिये ! कुब्जिका आदि जो मन्त्र है उनको मैंने तुम्हारे लिये प्रकाशित किया है। उन मन्त्रों के द्वारा तीनों लोक क्षुब्ध हैं।

१ अन्ये ये योगिनी मन्त्राः, 'तान्' सर्वान् मन्त्रान्, नारीः कर्मभूताः जापयेत् शब्दकर्मकत्वाद् द्विकर्मकत्वम्। पूर्वोक्तलक्षणलक्षितनारीद्वारा जपं कारयेदित्यर्थः।

२ आज्ञामिति शेषः कथं पुनस्तेषांवश्यत्वमित्याह रसाङ्कुशेनेति।

वे मेरे वश में भी नहीं हैं। वे रसाङ्कुश ज्ञान से ही तीनों लोक में वशीभूत होते हैं ।। २६-३२ ।।

मंत्रन्यासमिति ज्ञात्वा यंत्रमूषाग्नि मानवित्।
कुर्वाणो रसकर्म्माणि सिद्धि प्राप्नोति साधकः ।। ३३ ।।

इति श्रीपार्व्वतीपरमेश्वरसम्वादे रसार्णवे रससंहितायाम्
मंत्रन्यासो नाम तृतीयः पटलः ।। ३ ।।

उपसंहार :—इस प्रकार मन्त्र न्यास को जानकर यन्त्र, मूषा, अग्नि तथा मान (परिमाण) को जानने वाला साधक रस कर्मों को करता हुआ रस सिद्धि को प्राप्त कराता है।

रसार्णव तंत्र में तृतीय पटल समाप्त।

चतुर्थः पटलः

श्रीदेव्युवाच ।

यन्त्रमूषाग्निमानानि न ज्ञात्वा मन्त्रवेद्यपि ।
किं करोति [1]महादेव ! तानि मे वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

[2]रसोपरसलोहानि वसनं काञ्जिकं विडम् ।

यन्त्र, मूषा, अग्नि एवं परिमाण विषयक पार्वती का प्रश्न :--यन्त्र, मूषा अग्नि तथा मान को जानने वाला साधक को ही रससिद्धि होती है इस बात को सुनकर पार्वती ने प्रश्न किया । हे महादेव । मन्त्र को जानने वाला भी साधक यन्त्र, मूषा, अग्नि तथा मान ज्ञान के बिना क्या कर सकता है । अतः यन्त्र-मूषा आदि के स्वरूप को मेरे लिए प्रकाशित करें ॥ १ ॥

धमनी-लोहयन्त्राणि खल्लपाषाणमर्दकम् ॥ २ ॥
कोष्ठिका वक्रनालं च गोमयं सारमिन्धनम् ।
मृन्मयानि च यन्त्राणि मुषलोलूखलानि च ॥ ३ ॥
संडसी-पट्टसंदंशं [3]मृत्पात्रायःकटोरकम् ।
प्रतिमानानि च तुला-च्छेदनानि कषोपलम् ॥ ४ ॥
वंशनाली-लोहनाली-मूषाङ्गारांस्तथौषधीः ।
स्नेहाम्ललवणक्षार-विषाण्युपविषाणि च ॥ ५ ॥
एवं संगृह्य सम्भारं कर्म्मयोगं समाचरेत् ॥ ६ ॥

रसकार्य में शंकर के द्वारा सम्भार (वस्तुकलाप) का निरूपण :--पार्वती का यन्त्र, मूषा, के सम्बन्ध में प्रश्न सुनकर शंकर जी बोले । हे पार्वति । रस[4],

---

१. हे महादेव ? मन्त्रवेदी-अपि यन्त्र-मषाऽग्निनामानि न ज्ञात्वा (सहसुपेति समासः, अतो न लोपो न) अविज्ञाय, किं करोति = किं करोतु = किं कर्तुं शक्नुयात्, किमपि न इति हेतोः मे मह्यं तानि यन्त्रादीनि वक्तु-मर्हसि कृपया कथय–इत्यर्थः ।

२. रसः पारदः । उपरसाः = गन्धकादयः, लोहाः सुवर्णादय षट्-एतानि साध्यानि । वसनादीनि साधनानि-इति बोध्यम् ।

३. मृत्पात्रञ्च–अयः कटोरकञ्चेति द्वन्द्वः । (कपोरकमिति क्वचित्पाठः)

४. पारद ।

उपरस[१], लोह,[२] वस्त्र, काञ्जी, विड धमनी (अग्नि प्रज्वलित करने की नली), लोहा के यन्त्र, खल, पाषाण, मर्दक (लाढ़िया), कोष्ठिका (भट्ठी,) वक्र-नली (टेढ़ी नली), गोबर का इन्धन (उपले) मिट्टी के यन्त्र, मूसल, ओखली, संड़सी, पट्टसंदेश (चिमटा) मिट्टी का पात्र, लोहे का कटोरा, प्रतिमान, (बांट), तुला (तराजू) छेदन (छेदनेवाला चाकू आदि) कषोपल (कसौटी का पत्थर), वास की नली, मूषा (ढालने वाला यन्त्र) अंगार, ओषधि, स्नेह[३], अम्ल[४], लवण[५], क्षार[६], विष[७] तथा उपविष[८], इन सब सम्भार (वस्तु समूह) को ग्रहण कर कर्मयोग (रसकर्म) प्रारम्भ करे ॥ २–६ ॥

द्रवद्रव्येण[९] भाण्डस्य पूरिताद्धोंदरस्य च।
मुखे तिर्य्यक्कृते भाण्डे रसं सूत्रेण लम्बितम्।
तं स्वेदयेत् तलगतं 'दोलायन्त्रमिति' स्मृतम् ॥ ७ ॥

दोला यन्त्र का स्वरूप :—एक पात्र को द्रव द्रव्य से आधा भर दे। उसका मुख कुछ तिरछा कर उसमें कपड़ा की पोटली में स्थित पारद को सूत्र में बांध कर पात्र के तल भाग तक (तल से थोड़ा ऊपर) लटका दे। इसको 'दोला यन्त्र" कहते हैं। (परिस्कृत रूप—एक पात्र को द्रवद्रव्य से आधा भर दे और उसके मुख के दोनों तरफ छिद्र बनाकर एक शलाका लगा दे। उसके मध्य में रस की पोटली एक तागा में बांधकर पात्र तल से कुछ ऊपर लटका दे और स्वेदन करे। उसको दोला[१०] यन्त्र कहते हैं) ॥ ७ ॥

१, गन्धक, हिंगुल, अभ्रक, हरताल, शिला, स्रोतोऽञ्जन, टंकण, राजा-वर्त, चुम्बक, स्फटिक, शंख, खटी, गैरिक, कासीस, रसक, कर्पद, सिकता, बोल, कङ्कुष्ठ, सौराष्ट्री, समुद्रफेन, क्षुद्रशंख, शुक्ति, कृष्णमृत्यङ्क, कम्पिल्ल, गौरीपाषाण (संयिखा) नवसादर, अग्निजार, गिरिसिन्दूर, वोदारश्रृङ्ग।

२. सप्तधातु सुवर्ण, रजत, ताम्र, वङ्ग, यसद, सीसक तथा लोह।

३. घृत तैल, वसा मज्जा।

४. अम्ल वर्ग।

५. लवण वर्ग।

६. क्षार वर्ग।

७. सक्तुक, मुस्तक, कोर्म, दार्वीक, सार्षप, सैकत, वत्सनाभ, श्वेतश्रृङ्गी। (कालकूट, मेषश्रृङ्गी, दुर्दरक, हालाहल, कर्कोट, ग्रन्थि, हादिद्रक, रक्तश्रृङ्गी, केशर तथा यमद्रष्ट्रा—त्याज्य विष)।

८. अर्क, सेहुड़, धत्तूर, लाङ्गली, करवीर, गुञ्जा तथा अहिफेन ॥

९. दोलायन्त्रलक्षणमाह-द्रवद्रव्येणेति।

१०. द्रव द्रव्येण भाण्डस्य पूरितोऽर्धोदकस्य च। मुखस्योभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ तयोस्तु निक्षिपेद्दण्डं तन्मध्ये रस पोटलीम्। बद्ध्वा तु स्वेदयेदेतद्दोला यन्त्रमिति स्मृतम् ॥ रसरत्न समुच्चय ९। ३-४

लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः।
ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र गन्धकसंयुताम् ॥ ८ ॥
मूषायां रसयुक्तायाम् अन्यास्यां तां प्रवेशयेत्।
तोयं स्यात् सूतकस्याधः ऊर्ध्वाधो वह्निदीपनम् ॥ ९ ॥

जारणा-मूषा यन्त्र का स्वरूप तथा गन्धक जारण विधि :—बारह अंगुल व्यास का दो लोहे का मूषा तैयार कर छोटे २ छिद्रयुक्त एक मूषा में गन्धक भर दे और एक दूसरे मूषा (जो पहले से बड़ा हो) में पारद भरकर पहले वाले मूषा को उसी में प्रवेश कर दे। इसके बाद पारद के आधा जल से भरे हुए भाण्ड में इन दोनों मूषाओं को भरकर ऊपर से एक दूसरा पात्र रखकर सन्धि लेप कर दें और ऊपर नीचे उपले का आग जला दे ॥ ८-९ ॥

रसोनकरसं भद्रे यत्नतो वस्त्रगालितम्।
दापयेत्प्रचुरं यत्नात् आप्लाव्य रसगन्धकौ ॥ १० ॥
स्थालिकायां निधायोर्ध्वं स्थालीमन्यां दृढां कुरु[२]।
सन्धि विलेपयेद्यत्नात् मृदा वस्त्रेण चैव हि ॥ ११ ॥
स्थाल्यन्तरे कपोताख्यं पुटं कर्षाग्निना सदा।
यन्त्रस्याधः करीषाग्निं दद्यात्तीव्राग्निमेव वा ॥ १२ ॥
एवन्तु त्रिदिनं कुर्य्यात् ततो यन्त्रं विमोचयेत्।
तप्तोदके तप्तचुल्ल्यां न कुर्य्याच्छातले क्रियाम् ॥ १३ ॥
न तत्र क्षीयते-सूतो न च गच्छति कुत्रचित्।
अनेन क्रमयोगेन कुर्य्याद्गन्धकजारणम् ॥ १४ ॥

जारणा यन्त्र का दूसरा प्रकार :—हे पार्वती ! वस्त्र से अच्छी तरह छाने हुए लहसुन के प्रचुर रस को एक पात्र में रखकर उसमें पारद तथा गन्धक को अच्छी तरह डुबा दे और ऊपर एक पात्र को रखकर सन्धि लेप कर दे। इसके बाद एक पात्र में रस-गन्धक के पात्र को रखकर ऊपर से दूसरा ढक कर चारो तरफ से कपड़ मिट्टी कर दे। इसके बाद दूसरी स्थाची में रखकर कपोत नामक यन्त्र में उपलों के आग से पुट दे। यन्त्र के नीचे उपलों का आग या तेज आँच दें। इस प्रकार तीन दिन तक आँच दें इसके बाद यन्त्र को तप्त चूल्हे पर गरमजल में खोलें। यन्त्र को शीतल होने पर नहीं खोलना चाहिए। इस प्रकार पारद नष्ट नहीं होता है और उड़ता भी नहीं है। इस क्रम से गन्धक का जारण करना चाहिए ॥ १०-१४ ॥

---

१. मूषायन्त्रमाह-लोहमूत्षेयादिना।
२. मध्यम पुरुष-प्रयोगः, सम्मुखस्थ-साधकाभिप्रायेण।

ऊर्ध्वं वह्निरधश्चापो मध्ये तु रससंग्रहः।
मूषायन्त्रमिदं देवि ? जारयेद्गगन[1]ादिकम् ॥ १५ ॥

सोमानल यन्त्र का स्वरूप :—एक स्थाली में जल भरकर उसमें पारदयुक्त मूषा को रखकर उस स्थाली के मुख को बन्द कर कपड़ मिट्टी कर दे। इसके बाद ऊपर से उपलों का आंच दें। हे देवि इसको सोमानल नामक मषा यन्त्र कहते हैं। इससे पारद के साथ अभ्रक आदि को भी रखकर जारण करे। (इस यन्त्र में नीचे जल रहता है तथा ऊपर से आंच दिया जाता है। अतः इसे सोमानल मूषा यन्त्र कहते हैं) ॥ १५ ॥

गर्भयन्त्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिकाभस्मकारणम्।
चतुरंगुलदीर्घां तु मूषिकां मृन्मयीं दृढ़ाम् ॥ १६ ॥
त्र्यङ्गुलां मध्यविस्तारे वर्त्तुलं कारयेन्मुखम्।
लोहस्य[2] विंशतिर्भागा एको भागस्तु गुग्गुलोः ॥ १७ ॥
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तु तोयं दद्यात् पुनः पुनः।
मूषालेपं ततः कुर्य्यात् तले पिष्टीं च निक्षिपेत् ॥ १८ ॥
तुषकर्षाग्निना भूमौ मृदुस्वेदन्तु कारयेत्।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्म[3]तां व्रजेत् ॥ १९ ॥

गर्भयन्त्र का स्वरूप :—पिष्टी बनाये हुए पारद को भस्म बनाने वाला गर्भयन्त्र को बताता हूं। चार अङ्गुल लम्बी तथा तीन अङ्गुल मध्य की व्यासवाली चौड़ी मिट्टी की मजबूत वटुली के आकार के गोल मुख वाली मूषा बनावे। उसमें लोहा या लोण (सेन्धानमक) बीसभाग तथा ग्रग्गुलु एक भाग लेकर बार-बार उसमें जल मिला कर महीन पीस ले और उससे मूषा पर लेप करे तथा सुखा ले। इसके बाद मूषा के तल में पारद की पिष्टी रख कर जमीन के ऊपर (कपोत पुट के द्वारा) धान की भूसी तथा उपलों के आग से मृदु स्वदेन करे। इस प्रकार एक दिन रात या तीन दिन रात में पारद भस्म हो जाता है।

विमर्श :—मूषा लेप के लिये प्रस्तुत पुस्तक में लौह तथा गुग्गुल की लेप बनाने का विधान किया गया है किन्तु अन्य पुस्तकों में पाठ भेद है। वीकानेर तथा काश्मीर के प्रकाशित पुस्तकों में लोह के स्थान पर लोण शब्द मिलता है जो लवण (सेन्धालवण) का वाचक है। रस रत्नसमुच्च

१. गगनमभ्रकम्।
२. लोणस्य इति पाठान्तरम्।
३. भस्मतां = भस्मभावं, व्रजेत् = प्राप्नुयात्।

अध्याय ९। ३० में भी लवण तथा गुग्गुलु का लेप बनाने का विधान है। व्यावहारिक दृष्टि से लवण ही उपर्युक्त ज्ञात होता है। क्योंकि लौह-ग्रग्गुल के लेप में चिपचिपाहट तथा चिकनाहट नहीं आसकती। लौह भस्म मिलाने पर भी ठीक-ठीक वन्धन होना या चिकनाहट आना सम्भव नहीं है ॥१६-१९॥

जारणे मारणे चैव रसराजस्य रञ्जने।
यन्त्रमेकं परं मर्म्म यत्रौषध्यो महाबलम् ॥ २० ॥
औषधीरहितश्चायं हठाद् यन्त्रेण बध्यते।
सर्व्वत्र सूतको याति मुक्त्वा भूधरलक्षणम् ॥ २१ ॥
देवताभिः समाकृष्टो लोष्टस्थोऽपि हि गच्छति।
तस्माद्यन्त्रबलं चैकं न विलङ्घ्यं विजानता ॥ २२ ॥
मन्त्रौषधिसमायोगात् सुसिद्धं कुरुते ह्ययम्।
[1]मन्त्रोऽघोरोऽत्र जप्तव्यो जपान्ते पूजयेद्रसम् ॥ २३ ॥
एकान्ते तु क्रिया कार्य्या दृष्टान्यैर्विफला भवेत्।
गन्धकस्य[2] क्षयो नास्ति न रसस्य क्षयो भवेत् ॥ २४ ॥
क्षयो यन्त्रस्य विज्ञेयः यन्त्रे विक्रियते क्रिया।
अलाभे कान्तलोहस्य यंत्रं लोहेन कारयेत् ॥ २५ ॥

पारद के जारण, मारण तथा रंजन के लिये गुप्त यन्त्र का निरूपण :— पारद के जारण, मारण तथा रंजन के लिये एक अत्यन्त उत्तम गोप्य यन्त्र है जिसमें ओषधियाँ अधिक बलवान् हो जाती हैं। ओषधि के न रहने पर भी पारद यन्त्र के द्वारा अपने आप बद्ध हो जाता है। सर्वत्र पारद भूधर (पहाड़ सदृश बद्ध) लक्षण को छोड़ कर बिखर जाता है। देवताओं के द्वारा खींचने पर यन्त्र में स्थित भी पारद पलायमान हो जाता है। अतः रसशास्त्र वेत्ता एक यन्त्र बल को आश्रित कर मन्त्र बल का उल्लंघन न करे। यह यन्त्र मन्त्र तथा ओषध के संयोग से रस को सिद्ध करता है। अर्थात् रस के विविध योगों का निर्माण करता है। यहाँ पर अघोर मन्त्र का जप करें और जप के अन्त में रस (पारद) की पूजा करे। रस क्रिया को एकान्त (निर्जन स्थान) में करना चाहिए क्योंकि यह क्रिया दूसरों के देखने पर निष्फल हो जाती है। गन्धक का क्षय नहीं होता हैं और न पारद का क्षय होता है। यन्त्र का क्षय समझना चाहिए। यन्त्र में ही क्रिया विकृत हो जाती है। कान्त लोह के न मिलने पर सामान्य लोह का यन्त्र बनबाये ॥ २०-२५ ॥

१. प्रथमपटलोक्तः।
२. संस्कृतस्यापि पूर्व-परिमाणाऽत्यागात्

वह्निलक्ष्यमविज्ञाय रसस्यार्द्धक्षयो भवेत्।
यन्त्रक्षयविधिज्ञस्य चतुर्थांशक्षयो भवेत्॥ २६॥
द्विमासेन द्वितीयांशं तृतीयांशं त्रिभिर्भवेत्।
महाग्नि सहते ह्येष सारितो यत्र तिष्ठति॥ २७॥

रसकर्म में रस क्षय का विचार :—जहाँ पर मृदु, मध्य तथा तीव्राग्नि का विचार किये बिना ही रसकर्म किया जाता है वहाँ आधा पारद नष्ट हो जाता है। यन्त्र के क्षय विधि को जानने वाले का पारद एक चौथाई नष्ट होता है। दो माह तक रस कर्म करते रहने पर पारद का द्वितीयांश तथा तीन माह तक रस-कर्म करते रहने पर तृतीयांश पारद नष्ट हो जाता है। जहाँ नदी होती है अर्थात् पर्याप्त जल रहता है वहाँ पर यह पारद तीव्राग्नि को भी सहन करता है। अर्थात् मन्दाग्नि द्वारा रस कर्म सर्वथा प्रशस्त है। जल प्रदेश में तीव्राग्नि द्वारा भी रस कर्म करने से विशेष हानि नहीं है॥ २६–२७॥

खर्परं सिकतापूर्णं कृत्वा तस्योपरि न्यसेत्।
अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ २८॥
पञ्चक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणैश्च विडन्ततः।
हंसपाकः स विज्ञातो[1] यन्त्रतत्त्वार्थकोविदैः॥ २९॥

हंसपाकयन्त्र का निरूपण :—एक मिट्टी के खर्पर (नाद) में बालूभर कर चुल्ले पर चढ़ावे। फिर एक दूसरे खर्पर (मिट्टी का मजबूत पात्र) में पञ्चक्षार, अष्टमूत्र तथा पञ्चलवण युक्त विड़ तथा पारद को भरकर बालु का युक्त खर्पर पर रखदे और दूसरे से ढक दे। इसके बाद धीरे २ मन्द आँच से पकावे। इसको यन्त्र तत्त्व को जाने वाले विद्वान् (रसायनाचार्य) हंसपाक यन्त्र कहते हैं। (मिट्टि के दोनों पात्रों को कपड़ मिट्टिकर सुखा लेना चाहिए)॥ २८-२९॥

कृष्णा रक्ता च पीता च शुक्लवर्णा च मृत्तिका।
आद्या श्रेष्ठा कनिष्ठाऽन्त्या मध्यमा मध्यमा मता॥ ३०॥
दग्धधान्यतुषोपेता मृत्तिका कोष्ठिकाविधौ।
वक्रनालकृता वापि शस्यते सुरसुन्दरि!॥ ३१॥

मूषा-आदि के निर्माण के लिये मिट्टियों का वर्णन :—कृष्णा (काली), लाल, पीली तथा सफेद चार वर्ण की मिट्टी होती है। काली मिट्टी उत्तम होती है, लाल मिट्टी मध्यम होती है तथा पीली एवं सफेद मिट्टी निकृष्ट होती है। हे सुरेश्वरि। धान की भूसी के साथ मर्दन की हुई मिट्टी कोष्ठिका

१. विज्ञातः, पूर्वाचार्यपरम्परया—ज्ञानविषयीकृतः।

(भट्ठी) निर्माण के लिये उत्तम होती है और वक्रनाल (टेढ़ी नलिका) निर्माण के लिये भी उत्तम हे। ॥ ३०-३१ ॥

गारा दग्धा तुषा दग्धा दग्धा वल्मीकमृत्तिका।
अजाश्वानां मलं दग्धं यावत्तत् कृष्णतां गतम् ॥ ३२ ॥

जलाईगई पथरीली मिट्टी, धान की भूसी, वल्मीक मिट्टी, बकरी की लेंड़ी तथा घोड़े का लीद इन सबों को अच्छी तरह मर्दन कर एकत्र कर ले। इसका मर्दन तब तक करना चाहिए जब तक वह काला न हो जाय ॥ ३२ ॥

वास[१]कस्य च पत्राणि वल्मीकस्य मृदा सह।
पेषयेद्वह्नितोयेन यावत्तत् श्लक्ष्णतां गतम् ॥ ३३ ॥
मर्दयेत्तेन बध्नीयात् वक्रनालञ्च कोष्ठिकाम् ॥ ३४ ॥

कोष्ठिका (भट्ठी) एवं वक्रनाल :—अडूसा के पत्तों को वल्मीक मिट्टी मिलाकर बह्नितोय (गरम जल या चित्रक का क्वाथ) के साथ पीसे तथा तबतक मर्दन करे जबतक वह चिकना न हो जाय। चिकना मर्दन हो जाने के बाद इससे वक्रनाल तथा कोष्ठिका बांधे। अर्थात् वक्रनाल तथा कोष्ठिका निर्माण करे ॥ ३३-३४ ॥

गारा दग्धा तुषा दग्धा दग्धा वल्मीकमृत्तिका।
चीरमङ्गारकः किट्टं वज्रे[२]णापि न भिद्यते ॥ ३५ ॥

दग्ध (जलाई हुई) पथरीली मिट्टी, भूसी तथा वल्मीकमृत्तिका, कपड़ा तथा, अंगारक (कोयला) तथा किट्ट के द्वारा बनाई गई मूषा बज्र से भी नहीं टूटती है ॥ ३५ ॥

दग्धाङ्गारस्य षड्भागा भागैका कृष्णमृत्तिका।
चीरमङ्गारकः किट्टं वज्रमूषा प्रकीर्त्तिता ॥ ३६ ॥

बज्रमूषा—दग्ध—अङ्गारक (कठसरैया या भृङ्गराज) ६: भाग काली मिट्टी एकभाग, कपड़ा, अङ्गारक तथा किट्ट एक-एक भाग इन सबों से निर्मित मूषा "व्रज मूषा" कही जाती है ॥ ३६ ॥

तुषं वस्त्रसमं दग्धं मृत्तिका चतुरंशिका।
कूपी पाषाणसंयुक्ता 'वरमूषा' प्रकीर्त्तिता ॥ ३७ ॥

वरमूषा—कपड़ा के समभाग दग्धभूसी, मृत्तिका चारभाग तथा पत्थर-चूर्ण इन सबों को मिलाकर निर्मित कूपी (बोतल के आकार की मूषा) को "वरमूषा" कहते हैं ॥ ३७ ॥

---

१. वासकस्य = अटरूषस्य। २. वज्रेणापि किमुत मुद्गरादिना इति-अतिदृढत्वे तात्पर्यम् न त्वभेद्यत्वे, कृतिमत्वात्।

'प्रकाशा, चाऽन्धमूषा च मूषा तु द्विविधा स्मृता ॥ ३८ ॥
प्रकाशमूषा देवेशि ! शरावाकारसंयुता ।
द्रव्यनिर्वाहणे सा च वादिकैः सुप्रशस्यते ॥ ३९ ॥

मूषा के भेद, स्वरूप तथा कार्य :—मूषा दो प्रकार की होती है प्रकाश मूषा तथा अन्धमूषा । प्रकाशमूषाः—हे देवेशि ! प्रकाशमूषा शराव के आकार की होती है और रसायनाचार्यों के द्वारा द्रव्यों के जारण के लिये प्रशस्त बताई गई है ॥ ३८-३९ ॥

अन्धमूषा तु कर्तव्या गोस्तनाकारसन्निभा ।
पिधानक-समायुक्ता किञ्चिदुन्नतमस्तका ॥ ४० ॥
पत्रलेपे तथा रङ्गे द्वन्द्वमेलापके तथा ।
सैव च्छिद्रान्विता मन्दा गम्भीरा सारणोचिता ॥ ४१ ॥

अन्धमूषा :—अन्धमूषा गाय के स्तन के समान बनाना चाहिए । पिधानक (कार्क) से युक्त कुछ उन्नत मस्तक वाला होना चाहिए । इसका प्रयोग पत्रलेप, रंगना तथा दो द्रव्यों को मिलाने में उत्तम होता है । यही मूषा छिद्रयुक्त छोटी तथा भारी सारण कर्म के लिये उत्तम होती है ॥ ४०-४१ ॥

[1]तिलभस्म द्विरंशं तु इष्टकांशसमन्वितम् ।
भस्ममूषा तु विज्ञेया [2]तारसंशोधने हिता ॥ ४२ ॥
मोचक्षारस्य भागौ द्वौ इष्टकांशसमन्वितौ ।
मृद्भागास्तारशुद्ध्यर्थमुत्तमा वरवर्णिनि ! ॥ ४३ ॥

भस्ममूषा :—तिल के लकड़ी का भस्म दो भाग, ईंटा का चूर्ण एक भाग इनसे निर्मित मूषा भस्ममूषा कही जाती है, और यह तार (रजत-चांदी) का शोधन करने के लिये हितकर है । हे उत्तम वर्णवाली ! केले का क्षार (या सहिजन का क्षार) दो भाग ईंटा का चूर्ण एक भाग तथा मृत्तिका चार भाग से निर्मित मूषा रजतशुद्धि के लिये उत्तम होती है ॥ ४२-४३ ॥

रक्तवर्गेण सम्मिश्रा रक्तवर्गपरिप्लुता ।
रक्तवर्गकृतालेपा सर्व्वशुद्धिषु शोभना ॥ ४४ ॥

रक्त[3] वर्ग की ओषधियों के संमिश्रण से निर्मित, इनके रस में डुबोई हुई तथा इन्हीं के कल्क से लेप लगाई हुई मूषा सभी द्रव्यों की शुद्धि के लिये उत्तम है ॥ ४४ ॥

---

१. तिलकाष्ठ-भस्म, २. रजत-संशोधने । ३. दाडिमकिंशुकलाक्षा वन्धूकञ्च निशाद्वयम् । कुसुम्भपुष्पं मंजिष्ठा इत्यैते रक्तवर्गकाः ॥ (राजनिघण्टु व. २२) मंजिष्ठा कुङ्कुमं लाक्षा खदिरश्चाशनं तथा । रक्तवर्गस्तु देवेशि । (रसार्णव ५ । ३९)

शुक्लवर्गेण सम्मिश्रा शुक्लवर्गपरिप्लुता।
शुक्लवर्गकृतालेपा शुक्लशुद्धिषु शोभना॥ ४५॥

शुक्ल[1] वर्ग के ओषधियों के सम्मिश्रण से निर्मित, इन औषधों के द्रव में डुबोई हुई तथा इन्हीं के कल्क से लेप की गई हुई मूषा सफेद धातुओं (रजत, वंग, यशद आदि) की शुद्धि के लिये उत्तम है॥ ४५॥

विडवर्गेण सम्मिश्रा धृतिमिच्छति जारणे।
निर्वाहणं प्रकुर्व्वीत रक्तवर्गप्रलिप्तया॥ ४६॥

विड़[2] वर्ग की औषधों के संमिश्रण से निर्मित मूषा जारण[3] कर्म में प्रयोग करना चाहिए, और रक्तवर्ग की औषधियों के कल्क का लेप कर मारण करना चाहिये॥ ४६॥

विषटङ्कणगुञ्जाभिः मूषालेपन्तु कारयेत्।
प्रकाशायां प्रकुर्व्वीत यदि वाङ्गारलेपनम्॥ ४७॥
तस्यां विन्यस्य मूषायां द्रव्यमावर्त्तयेद्बुधः।
लेपो वर्णपुटं देवि! रक्तमृत्सिन्धुभूखगैः॥ ४८॥

विष (वत्सनाम) टङ्कण तथा गुञ्जा (घुमची) के कल्क से मूषा का लेप करायें। या अंगार (कठ सरैया या भृंगराज) के कल्क से प्रकाशमूषा में लेप करें। उस मूषा में द्रव्यों को रख कर पाक द्वारा आवर्तन करें। हे देवि! लालमिट्टी, लाल सेन्धानमक, भूखग (केंचुआ) इन सबों का लेप वर्ण (रंग) को प्रकाशित करता है॥ ४७-४८॥

आवर्त्तमाने कनके पीता तारे सिता प्रभा।
शुल्वे नीलनिभा तीक्ष्णे कृष्णवर्णा सुरेश्वरि!॥ ४९॥
वङ्गे ज्वाला कपोताभा नागे मलिनधूमका।
शैले[4] तु धूसरा देवि! आयसे कपिलप्रभा॥ ५०॥
अयस्कान्ते धूम्रवर्णा सस्यके लोहिता भवेत्।
वज्रे नानाविधा ज्वाला खसत्त्वे पाण्डुरप्रभा॥ ५१॥

पूर्वोक्त ओषधियों से लिप्तमूषा में द्रव्यों (स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि

---

१. शुक्लवर्गः सुधा कूर्म्मः शंखशुक्तिवराटिका। (रसार्णव ५। ४०)

२. क्षारैरम्लैश्च गन्धाद्यैर्मूत्रैश्च पटुभिस्तथा। रसग्रासस्य जीर्णार्थं तद्विडं परिकीर्तितम्। (रसेन्द्र चूडामणि ४। १०२)।

३. द्रुतग्रासपरीणामो विडयन्त्रादियोगतः। जारणेत्युच्यते तस्याः प्रकाराः सन्ति कोटिशः। (रसेन्द्र चूडामणि ४। १०१)।

४. शैले शिलाजतुनि।

धातुओं) को रख कर आवर्तन करने से विभिन्न प्रकार की आभा निकलती है स्वर्ण में पीली प्रभा, रजत में सफेद प्रभा, ताम्र में नील प्रभा तथा तीक्ष्ण लौह में कृष्ण वर्ण की प्रभा होती है। हे सुरेश्वरि ! बङ्ग में कपोत वर्ण की प्रभा, नाग में मलिन धूम्रवर्ण की प्रभा, शिलाजीत में धूसरवर्ण की प्रभा और हे देवि ! आयस (सामान्य लौह) में कपिलवर्ण की प्रभा होती है।

अयस्कान्तलौह में धूम्रवर्ण की प्रभा, सस्यक (नीलतुत्थ) में लोहित-वर्ण की प्रभा होती है। वज्र में अनेक प्रकार की ज्वाला तथा अभ्रक सत्व में पाण्डुर वर्ण की प्रभा होती है ॥ ४९–५१ ॥

न विस्फुलिङ्गो[1] न च बुद्बुदश्च यदा न रेखापटलं न शब्दः।
मूषागतं रत्नसमं स्थिरञ्च तदा विशुद्धं प्रवदन्ति लोहम् ॥ ५२ ॥

जब विशेष प्रकार के अग्निकण न चमके, बुद बुद शब्द न हो, रेखपटल न दिखाई दे, न शब्द हो और मूषा में रत्न के समान स्थिर हो जाय तब रसविशेषज्ञ कहते हैं कि लौह शुद्ध हो गया है। ५२ ॥

प्रतीवापः पुरा योज्यो निषेकस्तदनन्तरम्।
छादनं तु प्रतीवापः निषेकं मज्जनं विदुः।
अभिषेकं तदिच्छन्ति स्नपनं क्रियते तु यत् ॥ ५३ ॥
वापो निषेकः स्नपनं द्रुते निर्म्मलतां गते।
उष्णेनैव हि वाञ्छन्ति शीतलं न च वाञ्छति ॥ ५४ ॥

धातु-रसोपरसादि की सत्वपातनविधि :—पहले द्रव्यों को प्रतिवाप (पिघलाना) करना चाहिए। उसके बाद निषेक (डुबोना) करना चाहिए। प्रतिवाप मूषा को ढक कर पिघलाने को कहते हैं और निषेक द्रव में डुबोने को कहते हैं। प्रतिवाप, निषेक तथा स्नपन के द्वारा द्रुत (द्रवीभूत) होने पर द्रव्य निर्मल होते हैं। ये क्रियायें उष्णावस्था में ही होती है शीतल होने पर नहीं होती हैं ॥ ५३–५४ ॥

[2]शुक्लदीप्तिः सशब्दश्च यदा वैश्वानरो भवेत्।
लोहावर्त्तः स विज्ञेयः 'सत्त्वं' पतति निर्म्मलम् ॥ ५५ ॥

लोहावर्त का लक्षण :—जब वैश्वानर (अग्नि) शब्दयुक्त शुक्लशिखा वाला हो जाय तब लोहावर्त अग्नि समझना चाहिए। इस प्रकार के अग्नि से निर्मल सत्त्व निकलता है ॥ ५५ ॥

---

१. विस्फुलिंगः = विशिष्टाग्निकणः।
२. शुक्ला दीप्तिर्यस्य।

षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं हस्तमात्रायतं शुभम् ।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठकं[1] वरवर्णिनि ! ॥ ५६ ॥

कोष्ठकयन्त्र का लक्षण :—हे श्रेष्ठवर्ण वाली ! सोलह अंगुल चौड़ा तथा एक हाथ लम्बा सुन्दर कोष्ठक (भट्ठी) धातुओं का सत्त्व निकालने के लिये बनाना चाहिए ॥ ५६ ॥

वंशखादिरमाधूकबदरीदारुसम्भवैः ।
परिपूर्णं दृढाङ्गारैः धमेद्वातेन कोष्ठकम् ।
भस्त्रया [2]ज्वालमार्गेण [3]ज्वालयेच्च हुताशनम् ॥ ५७ ॥

कोष्ठक को प्रज्वलित करने का प्रकार :—वांस, खैर, महुआ, वैर तथा देवदारु के मजबूत कोयलों से कोष्ठक को पूर्ण कर वायु से प्रधमन (धौंके) या भस्त्रा (भाथी) के द्वारा प्रधमन (धौंक) कर ज्वाला मार्ग से अग्नि को प्रज्वलित करे ॥ ५७ ॥

प्रविततमुखभागं संवृतान्तःप्रदेशं
स्थलरचितचिरान्तर्जालकं कोष्ठकं स्यात् ।
बकगलसममानं वङ्कनालं विधेयं
शुषिरनलिनिका स्यान्मृन्मयी दीर्घवृत्ता ॥ ५८ ॥

कोष्ठक तथा वंकनाल बनाने की विधि :—कठोर जमीन पर फैला हुआ मुखवाला अन्दर गोलाकर तथा मध्य में जाली से युक्त कोष्ठक (भट्ठी) बनावे और बक (बगुला) के गला के सामान मिट्टी का लम्बा, गोल तथा छिद्रयुक्त "वङ्कनाल" नलिका बनावे ॥ ५८ ॥

मृन्मये लोहपात्रे वा अयस्कान्तमयेऽथवा ।
पाषाणे स्फटिके वाथ मुक्ताशैलमयेऽथवा ॥ ५९ ॥
सुदृढो मर्दकः कार्य्यः चतुरङ्गुलकोच्छ्रयः ।
स च लोहमयः शैलो ह्ययस्कान्तमयोऽथवा ॥ ६० ॥

खल तथा मर्दक का निर्माणद्रव्य तथा स्वरूप :—मिट्टी, लोह, अयस्कान्त

---

१. कोष्ठकं = तन्नामकं यन्त्रम् ।

२. ज्वलतीतिज्वाल: = वह्निः, 'ज्वलितिकसन्तेभ्योण' इति-ण-प्रत्ययः, जालमार्गेण—इतिसाधुः पाठः ।

३. 'ज्वल-ह्वल ह्मल नमामनुपसर्गाद्वा' इत्यनेन उपसर्गरहितस्य वा मित्वम् । ज्वालयेत् ज्वलयेत् इति ह्रस्वविकल्पः । उपसर्गसहितस्य तु नित्यं मित्वमिति प्रज्वलयति-इत्येव ।

अथवा पाषाण, स्फटिक या मुक्तापत्थर का [1]खरल के आकार का पात्र बनवावे और उसमें लोहा, पत्थर या अयस्कान्त लोह का चार अंगुल ऊंचा तथा मजबूत मर्दक (लोढ़िया-घोटा) औषध को मर्दन करने के लिये बनवावे ॥ ५९–६० ॥

अघोरास्त्राभिधानेन महापाशुपतेन वा।
मन्त्रेण रचयेच्छुद्धिं भूमिं तेनैव शोधयेत् ॥ ६१ ॥
इन्धनानि च सर्व्वाणि द्रव्याणि च विशेषतः।
दाहकं ज्वालयेत्तेन खल्लं तेनैव शोधयेत् ॥ ६२ ॥
रसं विशोधयेत्तेन विन्यसेद् दिवसे शुभे।
खल्लोपरि न्यसित्त्वा च, शिवमूर्त्तिमनुस्मरेत् ॥ ६३ ॥

भूमि-आदि के शोधन पूर्वक रसन्यासविधि :—अघोर[2]मन्त्र या महा-पाशुपत[3] मन्त्र से खरल तथा मर्दक का निर्माण करे और उसी मन्त्र से भूमि, कोष्ठक आदि का शोधन करे। पूर्वोक्त मन्त्र से ही सभी इन्धन (लकड़ी, भूसी, उपले आदि) तथा विशेष कर सभी द्रव्यों का शोधन करे, अग्नि को जलाये तथा उसी मन्त्र से खरल का भी शोधन करे। इसके बाद पूर्वोक्त मन्त्र से ही रस का शोधन कर शुभ दिन में उसका न्यास करे। रस को खरल में रख कर शिव मूर्ति का स्मरण करे ॥ ६१–६३ ॥

देवतानुग्रहं प्राप्य यन्त्रमूषाग्निमानवित्।
देवेशि ! रससिद्ध्यर्थं जानीयाद् ओषधीरपि ॥ ६४ ॥

उपसंहार :—हे देवेशि ! यन्त्र, मूषा तथा अग्नि एवं मान को जानने वाला साधक देवताओं का अनुग्रह[4] प्राप्त कर रस सिद्धि के लिये औषधियों का भी ज्ञान प्राप्त करे ॥ ६४ ॥

---

१. उत्सेधेन नवाङ्गुलं शशिकलासंख्याङ्गुलं दैर्घ्यतः।
विस्तारेण नवाङ्गुलं रसमितैर्निम्नं तथैवाङ्गुलैः ॥
कण्ठे द्व्यङ्गुलसम्मितं सुमसृणं द्रोणार्धयन्त्रोपमम्।
घर्षी चैव दशाङ्गुलं तलमिदं खल्वाख्ययन्त्रं वदेत् ॥
(रसेन्द्र चूड़ामणि)

२. अघोर मन्त्र :—अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

३. पाशुपत मन्त्र :—ॐ नमः शिवाय।

४. संपूज्य श्रीं गुरुं कन्यां वटुकं च गणाधिपम्।
योगिनीं क्षेत्रपालांश्च चतुर्था वलिपूर्वकम् ॥

यन्त्रमूषाग्निमानानि वर्णितानि सुरेश्वरि ।
[1]तन्ममाचक्ष्व देवेशि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६५ ॥

इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
यन्त्रमूषाग्निवर्णनो नाम चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

हे सुरेश्वरि ! यन्त्र, मूषा तथा अग्नि मान का वर्णन मैंने किया । तुम मुझसे बताओ कि अब और क्या सुनना चाहती हो ॥ ६५ ॥

॥ यन्त्र मूषादि वर्णननामक चतुर्थ पटल समाप्त ॥

ततस्तु निभृते स्थाने सुमुहूर्ते विधोर्बले ।
सुदिने शुभनक्षत्रे रसं प्रक्षाल्य पूजयेत् ॥
अघोरेण च मन्त्रेण रसं प्रक्षाल्य पूजयेत् ।
स्वेदनादिमुखान् पश्चात् संस्कारान् सम्यगाचरेरत् ॥
(आयुर्वेदप्रकाश १ । २७–२८)

१. यत्तदोर्नित्यसम्बन्धः, इतिवत् तत् किमोरपि नित्यसम्बन्धः ।

पञ्चमः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

[1]नियामनादिकं कर्म्म क्रामणान्तं सुरेश्वर ! ।
[2]यया सम्पद्यते ह्येषामोषधीं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

नियमनादि कर्म में प्रयुक्त की जानेवाली ओषधियों के सम्बन्ध में पार्वती का प्रश्न :—हे सुरेश्वर 'शंकर जी ! नियामन-आदि से लेकर क्रामण पर्यन्त कर्म जिन औषधियों से संम्पन्न होते हैं उस औषधियों को आप कहें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच—

सर्पाक्षी वह्नि[3]कर्कोटी कंचुकी जलबिन्दुजा ।
शतावरी भृङ्गराजः शरपुङ्खा पुनर्नवा ॥ २ ॥
मण्डूकपर्णी मत्स्याक्षी ब्रह्मदण्डी शिखण्डिनी ।
अनन्ता काकजङ्घा च काकमाची कपोतिका ॥ ३ ॥
विष्णुक्रान्ता सहचरा सहादेवी महाबला ।
बला नागबला कृष्णा चक्रमर्दः कुरुङ्गिणी ॥ ४ ॥
पाठा चामलकी नीली ज्वालिनी पद्मचारिणी ।
गोजिह्वा फणिजिह्वा च कोकिलाक्षो घनध्वनिः ॥ ५ ॥
आखुपर्णी त्रिपर्णी च द्विपर्णी चैकपर्णिका ।
तिन्तिडी क्षीरिणी रास्ना मेषश्रृङ्गी च कुक्कुटी ॥ ६ ॥
कृष्णपर्णी च तुलसी श्वेता च गिरिकर्णिका ।
एता 'नियामकौषिध्यः' पुष्पमूलदलान्विताः ।
'दोलास्वेदः' प्रकर्त्तव्यो मूलेनानेन सुव्रते ! ॥ ७ ॥

शंकर के द्वारा नियमानादि में प्रयुक्त ओषधियों का निरूपण :—श्री शंकर जी बोले :—हे सुन्दरव्रतकरनेवाली पार्वति ! निम्नलिखित औपधियों के मूल से दोलास्वेद करना चाहिए "सर्पाक्षी (विष्णुक्रान्ता), वह्नि कर्कोटकी (बन्ध्याकर्कोटकी), कञ्चुकी (क्षीरकञ्चुकी) जलबिन्दुजा (जल-

---

१. नियामन-मारण-जारण-द्रावण-बन्धन-प्रभृतीनि ।

२. यया ओषधीमित्युभयत्र जातिवाचकत्वादेक-वचनम् । ओषधिशब्दात् 'कृदिकारादक्तिन्' इति ङीषि 'ओषधी' दीर्घान्तः ।

३. रसेन्द्रादौ वन्ध्यककोटी—इत्यादि—पाठभेदो दृश्यते ।

चिञ्चिका), शतावरी, भृंगराज, सरफोंका, पुनर्नवा मण्डूकपर्णी, मत्स्याक्षी (ब्राह्मी), ब्राह्मदण्डी, शिखण्डिनी (गुञ्जा या यूथिका) अनन्ता (अनन्तमूल) काकजङ्घा, मकोय, कपोतिका (चाणक्यमूलक—नरममूली) विष्णुक्रान्ता, सहचरा (कटसरैया), सहदेवी, महाबला, नागबला, कृष्णा (कुटकी), चकबड़, कुरुङ्गिणी (मुद्गपर्णी), पाढ़ल, आंवला, नील, ज्वालिनी (मूर्वी), पद्मचारिणी (कमलिनी) गोजिह्वा (गोभी-गाजवां) फणिजिह्वा (सहस्त्रवीर्या-दूर्वा), कोकिलाक्ष (क्षुरक-गोखरु), घनध्वनि (नागरमोथा) आखुपर्णी (मूषाकानी) त्रिपर्णी (शालपर्णी), द्विपर्णी (शालपर्णी पृश्निपर्णी) एकपर्णिका (कचूर) तित्तिडी (वृक्षाम्ल), क्षीरिणी (गम्भारी), रासन, मेढ़ासिंघी, कुक्कुटी (सेमर), कृष्णपर्णी (काली तुलसी) सफ़ेद तुलसी तथा अपराजिता ये सब पुष्प, मूल एवं पत्तों से युक्त नियामक औषधियां हैं ॥ २-७ ॥

चण्डाली राक्षसी व्याघ्री खड्गारी गजकर्णिका ।
शङ्खपुष्प्यग्निधमनी लाङ्गली बालमोचका ॥ ८ ॥
रक्तस्नुही रक्तशृङ्गी रक्तिका नीलचित्रकः ।
शृगालजिह्वा बृहती वज्री चक्री च राजिका ॥ ९ ॥
एकवीरा नरकसा रुदन्ती ब्रह्मचारिणी ।
उच्चटा मानिनीकन्दा कुमारी रक्तचित्रकः ॥ १० ॥
लक्ष्मीः शाखोटकश्चैव कञ्चुकी मेषशृङ्गिका ।
हिमावती सोमलता मोदा व्याघ्रनखी शमी ॥ ११ ॥
काञ्चनी वनराजी च काकमाची च केशिनी ।
अजमारी कोटराक्षी हनूमत्यङ्गनामिका ॥ १२ ॥
नरजीवा हेमपुष्पी काकमुण्डी च कालिका ।
तोयवल्ली गजारी च हंसांघ्री कुहुकंबिका ।
ताम्बूली सूर्य्यभक्ता च 'रसनिर्जीवकारिकाः' ॥ १३ ॥

पारद की निर्जीवकारक-ओषधियाँ :—चण्डाली (शिवलिङ्ग), राक्षसी (सुगन्धद्रव्य) व्याघी (कण्टकारी), खड्गारी (खड्गभार), गजकर्णिका (इन्द्रायण या खीरा की बेल) शंखपुष्पी, अग्निधमनी या दमनी (जवासा भेद) लाँगली (कलिहारी), बालमोचक (छोटी सेमर) लालसेंहुड़, रक्तशृंगी (रक्तकाकड़ासिंघी), रक्तिका (लाल घुंघुची), नीलचित्रक (काला चित्रक), शृगालजिह्वा (शृगालकण्टक), भटकटैया, वज्री (सेहुड़), चक्री (चक्रमर्द), राई, एकवीरा (वन्ध्या कर्कोटकी-वांझखेकसा), नरकसा

(नील वृक्ष), रुदन्ती (रुद[1]न्तिका), ब्रह्मचारिणी (ब्राह्मी), [2]उच्चटा (श्वेतगुञ्जा), मानिनीक[3]न्दा (लक्षणकन्दा), घीकुआर, रक्तचित्रक (लालचीता), लक्ष्मी (श्वेततुलसी), शाखोटक (सागवान), क्षीर कञ्चुकी, (मेढ़ासिंघी), हिमावती (एक प्रकार की वनस्पति), सोमलता, अजमोदा, व्याघ्रनखी (सुगन्दद्रव्यविशेष), शमी, काञ्चनी, हलदी वनराजी (लसोड़ा), मकोय, केशिनी (जटामांसी), अजमारी, कोटराक्षी (विधारा), हनुमती (शूकबिम्बी=वानरी), नरजीवा (नरजीह्वा), हेमपुष्पी (स्वर्ण यूथिका), काकमुण्डी (काकतुण्डी), कालिका (काकोली), तोयवल्ली (अमृतवल्ली), गजारी (शल्लकी वृक्ष=सलाईका वृक्ष), कुटुकंविका (कुष्णिडका), ताम्बूली (पान), तथा सूर्य्यभक्ता (हुरहुर), ये औषधियां पारद को निर्जीव (चाञ्चल्यदोष रहित) करने वाली हैं ॥ ८-१३ ॥

कटुतुम्बी च गोसन्धी देवदालीन्द्रवारुणी ।
वाकुची ब्रह्मबीजानि कार्पासं कृष्णजीरकम् ॥ १४ ॥
कञ्चुकी कृष्णकनकं श्वेतार्कं च पिपीलुकम् ।
दन्तिनी यवचिञ्चा च कर्कोटी कारवल्लिका ॥ १५ ॥
गोजिह्वा काकजङ्घा च महाकाली च शम्बरी ।
श्वेतगुञ्जा सिताङ्कोलः पटोली बिल्वमेव च ।
एकैकमोषधीबीजं 'मारये'द्रसभैरवम् ॥ १६ ॥

रस को मारण करने वाले औषधिबीज—कड़वीलौकी, गोसन्धि (एक वनस्पति), देवदाली (वन्दाल) इन्द्रायण वाकुची, ब्रह्मबीज (पलाशबीज), कपास की लकड़ी, कालाजीरा, क्षीरकञ्चुकी कृष्णकनक (कालाधतूर), सफेदमदार, पिपीलुक (डिठोरी का वृक्ष) दन्ती, यवचिञ्चा (इमली), ककड़ी, करैला, गोजिह्वा (गोभी गाजवां), काकजङ्घा, महाकाली (वृचिकाली) शम्बरी (मूषाकानी), सफेदगुञ्जा, सफेद अंकोल, मीठा-परवल, तथा बेल के लिये इनमें से एक एक औषधि द्रव्य पारदमारण के लिये औषध बीज हैं ॥ १४-१६ ॥

---

१. चणपत्रसमं पत्रं क्षुपश्चैव तथाविधः । शैशिरे जलबिन्दुना स्रवन्तीति रुदन्तिका ॥

२. उच्चटा सा शुक्रत्रोणि पुटाकारदलान्विता । (रसकामधेनुः)

३. पुत्रकारकरक्तालबिन्दुभिर्लाञ्छिता सदा । लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत् ॥

रक्तस्नुही सोमलता रुदन्ती रक्तचित्रकम् ।
शाखोटकी दग्धरुहा मोदिनी वृद्धदारुकः ॥ १७ ॥
त्रिशूली कृष्णमार्जारी चक्रिका क्षीरकुक्कुटी ।
देवदाली शङ्खपुष्पी काकमाची हनूमती ॥ १८ ॥
नीलज्योतिस्तृणज्योतिरुत्कटा हेमवल्लरी ।
त्रिदण्डी ब्रह्मदण्डी च चक्राङ्की स्थलपद्मिनी ॥ १९ ॥
नागजिह्वा नागकर्णी वीरा वर्तुलपर्णिका ।
अर्कपत्री वंशपत्री ताम्रपर्णी तथेश्वरी ।
इन्दुरी देवदेवेशि ! 'रसबन्धकराः प्रिये ! ॥ २० ॥
तीव्रगन्धरसस्पर्शैर्द्रव्यैः स्थावरजङ्गमैः ।
म्रियते बध्यते चैव रसः स्वेदनमर्दनात् ॥ २१ ॥

रसबन्धकारक-ओषधियां :—लाल सेहुड़, सोमलता, रुद्रवन्ती, लाल चीता, शाखोटकी (सागवान), दग्धरुहा (जलाने के बाद उत्पन्न होने वाली एक प्रकार की महौषधी), मोदिनी (अजमोदा), विधारा, [1]त्रिशूली (त्रिशूलिनी लता), कृष्णमार्जारी (कृष्णमञ्जरी), चकवड़, क्षीरकुक्कुटी (सेमर), देवदाली (बंदाल-बांभो), शंखपुष्पी, मकोय, वानरी या शुकशिम्बी, नीलज्योति (दिव्यौषधि), तृणज्योति (दिव्यौषधि) उत्कटा (सफेदघुंघुटी), हेमवल्लरी (हेमलता), [2]त्रिदण्डी (त्रिदण्डीलता), ब्रह्मदण्डी (ब्रह्मयष्टी), चक्राङ्की (सुदर्शनलता), स्थलकमलिनी, नागजिह्वा (अनन्तमूल), नागकर्णी (मूसाकर्णी), वीरा[3] (वीरवल्ली), वर्तुलपर्णिका (चटुलपर्णी) अर्कपत्री । (मदार कापत्ता) वंशपत्री (बांसके पत्ते के सदृश घास) ताम्रपर्णी (मंजीठ), ईश्वरी (वांझखेकसा), इन्दुरी (वाकुची) हे सुरेश्वरी, पार्वति ! ये औषधियां पारद को बन्धन कराने वाली हैं। हे प्रिये ! तीव्रगन्ध रस तथा स्पर्श वाले स्थावर तथा जंगम द्रव्यों से स्वेदन तथा मर्दन करने से पारद बँध जाता हैं तथा भस्म हो जाता है ॥ १७-२१ ॥

सूर्यावर्त्तश्च कदली बन्ध्या कोशातकी तथा ।
वज्रकन्दोदककणा काकमाची च शिग्रुकः ॥ २२ ॥

---

१. रक्त क्षीरवती विल्वदलोपमदलान्विता । (रस कामधेनुः)

२. त्रिफलाकारपत्रा या शम्याकफलवत् फला ।
त्रिशूलिनीति विख्याता (रसकामधेनुः)

३. सपुष्पालि लतोपेता रक्तव्यस्तफलान्विता ।
रसबन्धविधौ प्रोक्ता त्रिदण्डीति कृताभिधा ॥ (रसकामधेनुः)

देवदाली च देवेशि ! 'द्राविकाः' परिकीर्त्तिताः।
दोषान् हरन्ति योगेन धातूनां पारदस्य च ॥ २३ ॥

पारद को द्रावण करने वाली ओषधियाँ :—सूर्यावर्त (गजपिप्पली), केला, वन्ध्या (वन्ध्याककोंटकी), नेनुआ, वज्रकन्द (वनसूरण), उदककणा (जलपीपर), मकोय, सहिजन, वन्दाक, हे देवि ! ये ओषधियाँ रस को द्रावण कराने वाली है और ये द्रव्य संयोग होने से धातु तथा पारद के दोषों को दूर करती हैं ॥ २२–२३ ॥

काकमाची घनरवः कासमर्दः कृताञ्जलिः।
वराहकर्णी सटिरी हंसपादी शतावरी ॥ २४ ॥
ताम्बूली नागिनी ब्रह्मी हंसपादी च लक्ष्मणा।
अर्जुनी क्षीरनाली च कारवेल्लोऽर्कपत्रिका।
व्याघ्री चवी कुरवका क्रामिकाः सुरवन्दिते ! ॥ २५ ॥

पारद को लांघने वाली ओषधियाँ :—हे सुरवन्दित पार्वती ! मकोय, नागर मोथा, कासमर्द (कसोंदी), कृताञ्जलि (छुई मूई), वराणकर्णी (अश्वगन्धा या एक प्रकार की दिव्यौषधि) सीटरी ओषधिविशेष हंसपादी (अगरुचन्दन), शतावरि, पान, नागिनी[1] (नागदन्ती) ब्राह्मी, हंसपदी, लक्ष्मणा (श्वेतपुष्पी कण्टकारी), अर्जुनी, क्षीरनाली (कोननाली लता), करैला, अर्कपत्रिका (अर्कपत्रिकामदार का पत्ता), कण्टकारी, चवी (चव्य) तथा कुरवक (रक्तसहचर) ये ओषधियाँ पारद को क्रामण कराने वाली हैं ॥ २४–२५ ॥

ब्रह्मदण्डः सुदण्डश्च लोहदण्डस्तृतीयकः।
एते रसायने योग्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ २६ ॥

ब्रह्म दण्ड (वननेटी-ब्रह्मयष्टी), सुदण्ड (गोरक्षी-सुदण्डी) तथा तीसरा लोहदण्ड (मंजीठ या लोहयष्टी) ये ओषधियाँ क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर के सदृश हैं और रसायन के योग्य हैं ॥ २६ ॥

भूपाटली च कौमारी सिंहवल्ली च शूकरी।
हेमपर्णी पटोली च नागवल्ली च भृङ्गराट्।
इत्यष्ट 'मूलिकाः' प्रोक्ताः—पञ्चरत्नं शृणु प्रिये ! ॥ २७ ॥

---

१. नागिनीत्युच्यते वल्ली नाम भोगसमाङ्गिका।
सर्पादिकविषघ्नी च सा स्वच्छरसबन्धिनी ॥ (र० का० धे०)

मन्त्रसिद्धासना देवी तथा कङ्कालखेचरी।
इन्दिरा च क्षमापाली पञ्चमी तु निशाचरी।
'पञ्चरत्नमिदं देवि ! रसशोधनजारणे ॥ २८ ॥

हे देवि ! पारद के शोधन तथा जारण के लिये ये पञ्च रत्न हैं। अष्टमूलिका तथा पंचरत्न औषधियाँ :—भूपाटली (भूपाटली = भोय पाढ़ल), कौमारी (घृतकुमारी), सिंहवल्ली[1] (सिंहीलता) शूकरी (बाराहीकन्द), हेमपर्णी (हेमपत्र या धतूर), मीठा परवल, पान तथा भृंगराज ये अष्टमूलिका औषधियाँ हैं। हे प्रिये पञ्चरत्न को कहता हूँ सुनो। मन्त्र सिद्धासना देवी[2], कंकालखेचरी[3], इन्दिरा[4], क्षमापाली[5] तथा पाँचवां निशाचरी[6] ॥ २७-२८ ॥

रसस्य 'बन्धने' शस्तमेकैकं सुरवन्दिते।
रसाङ्कुशेन गृह्णीयात् पञ्चरत्नानि सुव्रते !।
ददाति खेचरीं सिद्धिं रसभैरवसङ्गमे ॥ २९ ॥

हे देववन्दित पार्वति ! इनमें से अकेले एक भी पारद को बाँधने में उत्तम है। हे सुव्रते इन पञ्चरत्नों को रसाङ्कुश मन्त्र से ग्रहण करे। ये पञ्चरत्न औषधियाँ पारद के साथ संयोग होने से खेचरी सिद्धि को देती हैं ॥ २९ ॥

'त्रिक्षारं' टङ्कणक्षारो यवक्षारश्च सर्जिका।
तिलापामार्गकदली-पलाशशिग्रुमोचिकाः ।
मूलकार्द्रकचिञ्चाश्च 'वृक्षक्षाराः' प्रकीर्तिताः ॥ ३० ॥

त्रिक्षार तथा वृक्षक्षार के नाम :—त्रिक्षार-टंकणक्षार, यवक्षार तथा सर्जिक्षार ये त्रिक्षार हैं।

तिल, अपामार्ग, केला, पलास, सहिजन, सेमर, मूली, अदरक तथा इमली इन सबों का क्षार वृक्षक्षार कहलाता है ॥ ३० ॥

---

१. सिंहिकानाम विख्याता श्वेतपुष्पा पयस्विनी।
कुलत्थपत्रवत् पत्रा क्षीरकन्दा लताभवेत् ॥ (र० का० धे०)
२. एक प्रकार की दिव्यौषधी—गुल्मलता।
३. एक प्रकार की औषधी।
४. दिव्यौषधी।
५. एक औषधी।
६. सोमलता।

अम्लवेतसजम्बीर-लुङ्गाम्लचणकाम्लकम् ।
नारङ्गं तिन्तिणीकं च चाङ्गेर्य्यम्लगणोत्तमाः ॥ ३१ ॥

अम्ल वर्ग के नाम :—अम्लवेंत, जम्बीरीनिम्बु, बिजौरानिम्बु, चणक, अम्लवृक्ष, नारंगी, इमली तथा चाङ्गेरी ये उत्तम अम्लगण के औषध हैं ॥ ३१ ॥

सामुद्रं सैन्धमं चैव चूलिकालवणं तथा।
सौवर्चलं च काचं च लवणाः पञ्च कीर्त्तिताः ॥ ३२ ॥

पञ्च लवण के नाम :—समुद्रलवण, सेन्धानमक, चूलिकालवण (नवसादर), सौवचंल (कालानमक), तथा कांचनमक ये पञ्चलवण हैं ॥ ३२ ॥

सक्तुकं कालकूटं च सितमुस्ता तथैव च।
शृङ्गी कृष्णविषं चैव पंचैते तु 'महाविषाः' ॥ ३३ ॥

पञ्चमहाविष के नाम :—सक्तुकविष, कालकूटविष, सितमुस्ता (सफेद मोथा), शृङ्गी (शृङ्गीविष), तथा कृष्णविष ये सब पञ्चमहाविष हैं ॥ ३३ ॥

स्नुह्यर्कोन्मत्तकञ्चैव करवीरं च लाङ्गली।

मुख्य पांच उप विष के नाम :—सेंहुड़, मदार, धत्तूर, कनेर तथा लाङ्गली ये मुख्य पांच उपविष है ॥ ३३½ ॥

'पंचैवोपविषा' मुख्याः—'तैलानि' ह्युत्तमानि वै।
कुसुम्भकङ्गुणी नक्ता तिलसर्षपजानि तु ॥ ३४ ॥

पांच तैल के नाम :—कुसुम्भ तैल (बर्रे का तैल), कंगुणी तैल, नक्ता तैल (कञ्जा का तैल) तिल तैल तथा सरसों का तैल ये उत्तम पांच तैल हैं ॥ ३४ ॥

हस्त्यश्वछागनारीणां 'मूत्रं' गव्यं च पंचमम् ॥ ३५ ॥

पञ्च मूत्र के नाम :—हाथी, घोड़ा, बकरी, नारी तथा गाय के मूत्र ये पञ्चमूत्र कहलाते हैं ॥ ३५ ॥

'पित्तं' पंचविधं मत्स्य-गवाश्वनर-बर्हिजम् ॥ ३६ ॥

पञ्च पित्त के नाम :—मछली का पित्त, गाय का पित्त, घोड़ा का पित्त, मनुष्य का पित्त तथा बर्हि (मोर) का पित्त ये पञ्च पित्त कहलाते हैं ॥ ३६ ॥

'वसा' पंचविधा मत्स्य-मेषाऽहिनर-वर्हिजा ॥ ३७ ॥

पांच प्रकार के वसा का नाम :—मछली, भेड़, सर्प, मनुष्य तथा मोर की वसा ये पञ्च वसा हैं ॥ ३७ ॥

कपोतचाषगृध्राणां शिखिकुक्कुटयोश्च 'विट्' ॥ ३८ ॥

पांच विट् (विष्ठा) के नाम :—कबूतर, चाष (नीलकण्ठ), गृध्र, शिखी (मोर) तथा कुक्कुट इन सवों का विट् विट्पञ्चक कहलाता है ॥३८॥

मञ्जिष्ठा कुङ्कुमं लाक्षा खदिरश्चासनं तथा।
रक्तवर्गस्तु देवशि ! 'पीतवर्गमतः' शृणु।
कुसुम्भं किंशुकं [1]रात्री पतङ्गो मदयन्तिका ॥ ३९ ॥

[2]रक्त वर्ग तथा पित्त वर्ग के नाम :—मंजीठ, कुङ्कुम, लाक्षा, खैर, तथा असन (विजय सार) ये रक्तवर्ग के द्रव्य हैं । इसके बाद पित्तवर्ग के द्रव्यों को सुनो। कुसुम्भ (वरें), पलास, हल्दी, पतङ्ग (कुचन्दन) तथा मदयन्तिका (नव मल्लिका = मोगरा) ये पित्तवर्ग के द्रव्य हैं ॥ ३९ ॥

'शुक्लवर्गः [3]सुधाकूर्म्मशङ्खशुक्तिवराटिकाः ॥ ४० ॥

शुक्ल वर्ग के नाम :—सुधा (पाषण चूर्ण-चूना) कछुआ, शंख, शुक्ति तथा वराटिका (कौड़ी) ये शुक्लवर्ग के द्रव्य हैं ॥ ४० ॥

गुंजाटङ्कणमध्वाज्यगुडा 'द्रावण' पंचकम् ॥ ४१ ॥

द्रावणपञ्चक के नाम :—गुञ्जा, सुहागा, मधु, घृत तथा गुड़ ये द्रावण पञ्चक हैं ॥ ४१ ॥

काचटङ्कणसौवीरं शोधनत्रितयं प्रिये ॥ ४२ ॥

तीन शोधन द्रव्यों के नाम :—काच (क्षार), सुहागा तथा वनवैर ये तीन शोधन द्रव्य हैं ॥ ४२ ॥

सर्व्वे मलहराः 'क्षाराः' सर्व्वे चाऽम्लाः प्रबोधकाः।
'विषाणि' च तमोघ्नानि 'स्नेहा' मार्दवकारकाः ॥ ४३ ॥

क्षार-अम्ल आदि द्रव्यों का गुण :—सभी प्रकार के क्षार मल को दूर

---

१. रात्री = हरिद्राद्वयम् ।

२. दांडिमकिंशुकलाक्षा बन्धूकश्च निशाद्वयम् ।
कुसुम्भपुष्पं मञ्जिष्ठा इत्येतैः रक्तवर्गकाः ॥ (रा० वि० १-२२)

३. सुधा = पाषाणचूर्णम् । (चूना)

करते हैं, अम्ल पदार्थ प्रबुद्ध करते हैं, विषद्रव्य तम आदि दोषों को दूर करते हैं तथा सभी स्नेह मुलायम बनाते हैं ॥ ४३ ॥

इत्योषधिगणाः प्रोक्ताः सिद्धिदा रससङ्गमे।
क्रियां कुर्व्वन्ति तद्योगात् शक्तयश्च महारसाः ॥ ४४ ॥
तन्ममाचक्ष्व देवेशि! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥

इति श्रीपार्व्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
ओषधिनिर्णयो नाम पंचमः पटलः ॥ ५ ॥

उपसंहार :—इस प्रकार ये औषधिगण पारद के साथ संयोग होने से सिद्धि देते हैं, और उसके साथ संयोग होने से महारस तथा शक्तियां कार्य को करती हैं। हे देवि! इसके बाद तुम क्या सुनना चाहती हो उसको मुझसे कहो ॥ ४४-४५ ॥

ओषधि निर्णय नामक पञ्चम पटल समाप्त।

--:o:--

षष्ठः पटलः

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव महादेव ! शक्तीनां लक्षणं कथम् ।
रसकर्म्मणि योग्यत्वे संस्कारस्तस्य कथ्यताम् ॥ १ ॥

महारस संस्कार विषयक पार्वती का प्रश्न:—महारस में ओषधि संयोग से शक्त्याधान एवं संस्कार के सम्बन्ध में पार्वती ने प्रश्न किया। हे देवताओं के देव महादेव। ओषधियों के संसर्ग से महारस में प्राप्त शक्तियों का लक्षण तथा रस कर्म के योग्य होने के लिये उसका संस्कार कैसे किया जाता है, इसका निरूपण करें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच—

कदाचिद् गिरिजा देवी हरं दृष्ट्वा मनोहरम् ।
मुमोच यत्तदा वीर्य्यं तज्जातं 'शुभमभ्रकम्' ।
पीतं कृष्णं तथा शुक्लं रक्तं भूमेश्च सङ्गमात् ॥ २ ॥
अभ्रकं कान्तपाषाणं वज्रं वैक्रान्तकं शृणु ॥ ३ ॥

अभ्रक की उत्पत्ति तथा उसका भेद :—महारस के संस्कार के सम्बन्ध में पार्वती का प्रश्न सुनकर भैरव जी बोले। हे देवि ! किसी समय गिरिजादेवी ने मनोहर शंकर जी को देखकर वीर्य (रज) का त्याग किया जो कल्याण कर अभ्रक का रूप धारण कर लिया। वह अभ्रक पृथ्वी के संसर्ग से पीत, कृष्ण, शुभ्र तथा रक्त चार वर्ण का हुआ। अभ्रक, कान्त पाषाण वज्र तथा वैक्रान्त इन सबों का विवरण सुनों ॥ २–३ ॥

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चाभ्रं चतुर्विधम् ।
पिनाकेऽग्नि प्रविष्टे तु शब्दश्चिटिचिटिर्भवेत् ॥ ४ ॥
दर्दुरेऽग्नि प्रविष्टे तु शब्दः कुक्कुटवद्भवेत् ।
अग्नि प्रविष्टं नागन्तु फूत्कारं देवि ! मुंचति ॥ ५ ॥
अग्नि प्रविष्टं वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठति प्रिये ॥ ६ ॥

अभ्रक के भेद तथा उनका परिचय :—अभ्रक चार प्रकार का होता है पिनाक, दर्दुर, नाग तथा वज्र। पिनाक नामक अभ्रक में अग्नि के प्रविष्ट होने पर "चिटि चिटि" शब्द होता है। दर्दुर नामक अभ्रक अग्नि के प्रवेश करने पर "कुक्कुट" (मुर्गा) के समान शब्द करता है। हे देवि ! नाग नामक अभ्रक अग्नि में डालने पर सर्प सदृश "फुत्कार" शब्द करता है और हे प्रिये वज्र नामक अभ्रक अग्नि में प्रवेश करने पर वज्र के समान स्थिर रहता हैं ॥४–६।

कुष्ठप्रदं पिनाकाभ्रं दर्दुरं मरणप्रदम्।
नागं देहगतं नित्यं व्याधिं कुर्य्याद्भगन्दरम् ॥ ७ ॥
रसे रसायने चैव योज्यं वज्राभ्रकं प्रिये!।
अनेकवर्णभेदेन तच्चतुर्विधमभ्रकम् ॥ ८ ॥
रक्तं पीतं च हेमार्थे कृष्णं हेमशरीरयोः।
तारकर्म्मणि शुल्कं च काचकिट्टं सदा त्यजेत् ॥ ९ ॥

अभ्रकों के दोष तथा उनका कार्य—पिनाक-अभ्रक कुष्ठ रोग उत्पन्न करने वाला, दर्दुर नामक अभ्रक मृत्यु देने वाला तथा नागाभ्रक शरीर में प्रवेश कर व्याधि तथा भगन्दर रोग उत्पन्न करता है। हे प्रिये! वज्र नामक अभ्रक को रस तथा रसायन कार्य में प्रयोग करे। अनेक बर्ण के भेद से अभ्रक चार बर्ण का होता है। रक्त तथा पीत अभ्रक स्वर्ण बनाने के लिये, काला अभ्रक स्वर्ण तथा शरीर दोनों के लिये और सफेद अभ्रक चांदी बनाने के लिये प्रयुक्त होता है, किन्तु काचकिट्ट (अभ्रक किट्ट) का सर्वथा त्याग देना चाहिए ॥ ७-९ ॥

एकपत्रं कृतं पूर्वमभ्रकं सुरनायिके।
अगस्त्यपुष्पतोयेन कुमुदानां रसेन च ॥ १० ॥
कपितिन्दुकजम्बीरमेघनादपुनर्नवैः।
यवचिंचारनालाम्ल-करवीरारुणोत्पलैः ॥ ११ ॥
वनसूरणभूधात्री-भिण्डिमूलाम्लवेतसैः।
मेषशृङ्गी शशवसा-शृङ्गतैलशमीरसैः ॥ १२ ॥
वज्रवल्लीक्षीरकन्दमरिचैः सुमुखेन च।
त्रिदिनं स्वेदयेद्देवि? जायते दोषवर्जितम् ॥ १३ ॥

अभ्रक स्वेदन को औषधियाँ—हे सुरनायिके! पहले अभ्रक के पत्रों को अलग-अलक कर अगस्त्यपुष्प का रस, कुमुद का रस, कपि (केवाच), तिन्दुक (तेंदू), जम्बीरी नीबू, मेघनाद (चौंराई), पुनर्नवा, यवचिञ्चा (इमली), आरनाल (काञ्जी), अम्लद्रव्य, करवीर (कनेर), लालकमल वनसूरन, भुईआंवला, भिण्डीमूलं (रामतरोई की जड़) अम्लबेंत, मेढ़ासिंघी, खरगोस की चर्बी, अदरख का तेल, शमी का रस, वज्रबल्ली (अस्थि संहार लता = हथजोर), क्षीरकन्द (भूईंकोहड़ा), मरिच, तथा सुमुख (राई या सफेद तुलसी), इन सबों के रस या क्वाथ के साथ तीन दिन तक दोलायन्त्र में स्वेदन करे। हे देवि तीन दिन सक स्वेदन करने से अभ्रक दोष रहित हो जाता है ॥ १०-१३ ॥

'धान्याभ्रकं' पुरा कृत्वा सुश्लक्ष्णं नवनीतवत्।
त्रिंशत्पलं व्योमरजः क्षुद्रमत्स्यपलद्वयम् ॥ १४ ॥

तिलचूर्णपलं गुञ्जा-त्रिपलं पादटङ्कणम् ।
गोधूमबद्धा तत्पिण्डी पञ्चगव्येन भाविता ॥ १५ ॥
धमनात् 'कोष्ठिकायन्त्रे' भस्त्राभ्यां तीव्रवह्निना ।
पतत्यभ्रकसत्त्वं तु सत्त्वानि निखिलानि च ॥ १६ ॥

अभ्रक की सत्त्वपातन विधि :--पहले "धान्याभ्रक" नवनोत के समान मुलायम कर उसमें से अभ्रकचूर्ण तीस पल (१ कि० ५०० ग्रा०), छोटी मछली दो पल (१०० ग्राम) तिल चूर्ण दो पल (१०० ग्राम) गुञ्जा तीन पल (१५० ग्राम) सुहागा साढ़ेसात पल (३५० ग्राम) गोधूम चूर्ण के साथ "पञ्चगव्य" से भावित कर इन द्रव्यों की पिण्डी बनावे । इसके बाद इस पिण्डी को "कोष्ठिका यन्त्र में रख कर दो भाथियों के द्वारा तेज अग्नि से धमन करे (धौंके)। इस प्रकार सम्पूर्ण अभ्रकसत्व निकल जाता हैं ॥ १४-१६ ॥

स्वेदनौषधिनिर्यास-लोलितं पुटितं मुहुः ।
मृतं तु पंचनिचुल-पुटैर्बहुलपीतकम् ॥ १७ ॥
पिण्डितं व्योम निष्क्लेदं दत्त्वा सत्त्वं निरंजनम् ।
उमाफलैश्च पुष्पैश्च षष्टिकाम्लपरिप्लुतैः ।
श्रीमदण्डविमर्देन गगनं द्रवति स्फुटम् ॥ १८ ॥

अभ्रक द्रावण विधि :—अभ्रक को स्वेदन ओषधियों के रस से मर्दन कर अनेक बार पुट के द्वारा भस्म बना ले। इसके बाद निचुल (बड़हर) क्षार के साथ पाँच बार पुट दें और निर्मल निरञ्जन अभ्रक का सत्व मिलाकर बेल के फल-पुष्प तथा षष्टिकाम्ल (साठी चावल की काञ्जी) के साथ बेल के दण्ड से मर्दन करे । इससे अभ्रक स्वच्छ द्रव हो जाता है ॥ १७-१८ ॥

अग्निजारं नवे कुम्भे स्थापयित्वा धरोत्तरम् ।
गगनं द्रवति क्षिप्रं मुक्ताफलसमप्रभम् ॥ १९ ॥

नवीन घड़े में अग्नि जार (समुद्रफेन) तथा अभ्रक रखकर पृथ्वी के अन्दर गाड़कर रखने से शीघ्र ही वह मुक्ता के समान स्वच्छ द्रव हो जाता है ॥ १९ ॥

शतधा कंचुकीचूर्णं कंचुकीरसभावितम् ।
द्रावयेद्गगनं देवि ? लोहानि सकलानि च ॥ २० ॥

कञ्चुकी (क्षीरकञ्चुकी) का चूर्ण तथा अभ्रक को कञ्चुकी के रस के साथ सौ बार भावित कर द्रावण (द्रव) करे । हे देवि ! इसी प्रकार सभी लोहों को भी द्रावण करे ॥ २० ॥

धान्याम्लके पर्य्युषितं निचुलक्षारवारिणि ।
स्थितं तद्द्रवतां याति निर्लेप-रससन्निभम् ॥ २१ ॥

अभ्रक को निचुल क्षारवारि (बड़हर के क्षार के जल) तथा काञ्जी में पर्युषित (बासी कर) कर रखने से निर्लेप पारद के समान द्रव हो जाता है ॥ २१ ॥

अगस्त्यपुष्पतोयेन पिष्ट्वा सूरणकन्दके ।
कोष्ठभूमिगतं मासं जायते रससन्निभम् ॥ २२ ॥

अगस्त्य पुष्प के रस के साथ सूरण कन्द तथा अभ्रक को पीस कर किसी पात्र में रखकर जमीन के अन्दर एक मास तक रखने से अभ्रक पारद के समान द्रव हो जाता है ॥ २२ ॥

छागमूत्रेण संसिक्तं कपितिन्दुकरेणुना ।
अभ्रकं वापितं देवि ? जायते जलसन्निभम् ॥ २३ ॥

हे देवि ! केवाछ तथा तेंदू के चूर्ण तथा अभ्रक को बकरी के मूत्र में भिगोकर मिलाने (या धमन करने) से जल के समान द्रव हो जाता है । ॥ २३ ॥

काकिनी बीजचूर्णेन घृष्टमभ्रकजं रजः ।
स्नुहीक्षीरेण सप्ताहं सिक्तं ध्मातं द्रुतं भवेत् ॥ २४ ॥

काकिनी[1] बीज (मकोय का बीज या गुञ्जा का बीज) के चूर्ण के साथ पिसा हुआ अभ्रक का चूर्ण सेंहुड़ के दूध के साथ एक सप्ताह भावित कर प्रधमन (फूंकने) से द्रव हो जाता है ॥ २४ ॥

अपामार्गस्य पंचाङ्गमभ्रकं च सुपेषितम् ।
स्थापयेन्मृन्मये पात्रे तद्भवेत् सलिलं यथा ॥ २५ ॥

अपामार्ग (चिचिड़ा) के पञ्चाङ्ग तथा अभ्रक को पीसकर मिट्टी के पात्र में रक्खे । इससे वह अभ्रक जल के समान द्रव हो जाता है ॥ २५ ॥

घृष्टमभ्रकचूर्णं तु कपालीमरिचैः सह ।
शिलया वापितं भूयोऽप्यगस्त्यरससंयुतम् ॥ २६ ॥
मार्जारपादीस्वरसफलमूलाम्लमर्दितम् ।
मातुलुङ्ग-फले न्यस्तं व्रीहिमध्ये निधापयेत् ।
तद्द्रवेत् पक्षमात्रेण शिलासैन्धवयोजितम् ॥ २७ ॥

कपाली (वायविडंग) तथा मरिच के चूर्ण के साथ अभ्रक को पीसे तथा मैनसिल के साथ मिला दें । पुनः अगस्त्य का रस, मार्जारपादी (कुत्रे-

१. स्थूल कण्टक पत्राढ्या प्रोक्ता सा काकिनी मता । र० का० धे०

राक्षि-कज्जा) का स्वरस तथा फलवर्ग मूलवर्ग एवं अम्ल वर्ग के साथ मर्दन कर और सेन्धानक तथा मैनशिल मिलाकर मातुलुङ्ग (बिजौरा नीबू) फल के अन्दर रखकर धान्य के मध्य में एक पक्ष (पन्द्रह दिन) रखने से वह अभ्रक द्रव हो जाता है ॥ २६-२७ ॥

एकपत्रीकृतं सप्तदिनं मुनिरसे क्षिपेत् ।
दार्वीमरिचसम्मिश्रं मौर्वीरसपरिप्लुतम् ॥ २८ ॥
सौवर्च्चलयुतो मेघो वज्रवल्लीरसप्लुतः ।
शरावसम्पुटे ध्मातो जायते जलसन्निभः ॥ २९ ॥

अभ्रक के एक २ पत्र को अलग कर अगस्त्य के रस में सात दिन तक रक्खे । इसके बाद निकाल कर दारु हल्दो तथा मरिच का चूर्ण मिलाकर मूलो का रस तथा वज्रबल्ली (अस्थि संहार-हथजोड़) के रस में घोटकर और सोवर्चल नमक मिलाकर अभ्रक को शराव सम्पुट में बन्द कर धमन करने से जल के समान द्रव हो जाता है ॥ २८-२९ ॥

वेगाफलस्य चूर्णेन सममभ्रकजं रजः ।
भावितं कुलिशक्षीरे ध्मातं द्रवति तत्क्षणात् ॥ ३० ॥

वेगाफल (ज्योतिष्मती-मालकांगनी) का चूर्ण तथा अभ्रक का चूर्ण सम भाग मिलाकर तथा सेंहुड़ के दूध के साथ भावित कर पुट देने से शीघ्र ही द्रव हो जाता है ॥ ३० ॥

वज्रवल्लीरसैः पिष्ट्वा व्योम सौवर्च्चलान्वितम् ।
शरावसम्पुटे पक्त्वा द्रवेत् सलिलसन्निभम् ॥ ३१ ॥

अभ्रक तथा सौवर्चल नमक को वज्रवल्ली (सेंहुड़) के दूध के साथ पीसकर शराव सम्पुट में बन्द कर पकाने से जल के समान द्रव हो जाता है ॥ ३१ ॥

गोमांससैन्धवार्कैस्तु मुनितोययुतं पुनः ।
कदलीकन्दकान्तःस्थं गोमयाग्नौ त्र्यहं द्रवेत् ॥ ३२ ॥

गोमांस, सेन्धा नमक तथा मदार इन सबों के साथ अभ्रक को अगस्त्य के रस के साथ मर्दन कर केला के कन्द के अन्दर रख कर उपलों के आग से तीन दिन तक जलाये । इस प्रकार जलाने से अभ्रक द्रव हो जाता है ॥ ३२ ॥

कृष्णाभ्रपत्रं संगृह्य पीलुतैलेन लेपयेत् ।
सप्ताहमातपे तप्त-माम्ले क्षिप्त्वा दिनत्रयम् ॥ ३३ ॥

काले अभ्रक के पत्र को लेकर उसे पीलु तैल से लिप्त करे और एक सप्ताह तक धूप में तपायें । इसके बाद इमली के रस में तीन दिन तक रखकर द्रव बना लें ॥ ३३ ॥

वज्रार्कचित्रकक्षारं तुम्बीक्षारस्तथाऽऽर्जुनः।
सर्जिक्षारो यवक्षारष्टङ्कणश्चाष्टमो भवेत्॥ ३४॥

सेंहुड़, मदार, चित्रक, इन सबों का क्षार, कड़वी लौकी का क्षार, अर्जुन क्षार, सज्जी क्षार, यवक्षार तथा टंकण क्षार ये सब क्षाराष्टक हैं॥ ३४॥

क्षीरकन्दरसं चैव वज्रकन्दरसं तथा।
बृहतीत्रयसंयुक्तं क्षारवर्गञ्च लेपयेत्॥ ३५॥
कल्केनानेन लिप्तं तत् 'पत्राभ्रं' कांस्यभाजने।
धमनात् सूर्य्यतापोत्थात् त्रिदिनेन द्रुतं भवेत्॥ ३६॥

अभ्रक पत्र को क्षीरकन्द (भूई कोहड़ा) का रस, वज्रकन्द (सूरन) का रस, वृहतीत्रय (भंटा, बनभंटा तथा कण्टकारी) का रस तथा क्षार वर्ग को मिलाकर कल्क बनावे और लेप करे। इस कल्क से लिप्त अभ्रक पत्र को कांसा के पात्र में रखकर सूर्य के ताप में तीन दिन धमन करने से द्रुत (द्रव) हो जाता॥ ३५-३६॥

अथवाऽभ्रकपत्रं तु कञ्चुकीक्षीरमध्यगम्।
भावयेच्च तथा तेन यावच्चूर्णं ततो भवेत्॥ ३७॥
ग्राहयेदभ्रपत्राणि निक्षिप्याम्ले दिनत्रयम्।
लेपयेत्तेन कल्केन कांस्यपात्रे निधापयेत्।
सूर्य्यतापेन सप्ताहं द्रुतिः सञ्जायते क्षणात्॥ ३८॥

अथवा—अभ्रक पत्र को कञ्चुकी (क्षीर कञ्चुकी-क्षीरीश वृक्ष) के दूध में रखकर उससे तब तक भावना दे जब तक वह चूर्ण हो जाय। इसके बाद अभ्रक पत्रों को इमली के रस में तीन दिन तक रखकर निकाल लें और पूर्वोक्त कल्क से लिप्त करे तथा कांसा के पात्र में रखें। तदनन्तर उस पात्र को धूप में एक सप्ताह तक रक्खें। इससे अभ्रक शीघ्र ही द्रव हो जाता है॥ ३७-३८॥

काकाण्डीफलचूर्णेन द्रावकैः पञ्चभिस्तथा।
अभ्रकस्य युतं चूर्णं ध्मातं मूषागतं द्रवेत्॥ ३९॥
॥ इति अभ्रकविधिः॥

काकाण्डी (मालकांगनी) फल के चूर्ण तथा पञ्च द्रावक (गुञ्जा, टंकण, मधु, घी तथा गुड़) वर्ग के साथ अभ्रक को मूषा में रखकर धमन (फूँक देने) करने से वह द्रव हो जाता है॥ ३९॥

इति अभ्रक विधि।

भ्रामकं चुम्बकं चैव कर्षकं द्रावकं तथा।
एवं चतुर्विधं कान्तं रोमकान्तञ्च पञ्चमम्॥ ४०॥

एकद्वित्रिचतुःपञ्च सर्व्वतोमुखमेव तत् ।
पीतं कृष्णं तथा रक्तं त्रिवर्णं स्यात् पृथक् पृथक् ॥ ४१ ॥
क्रमेण देवतास्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४२ ॥

कान्तपाषाण का भेद तथा उसका वर्णन :—कान्तपाषाण (कान्तलौह) भ्रामक, चुम्बक, कर्षक तथा द्रावक भेद से चार प्रकार का होता है। इसका पाँचवाँ भेद रोमकान्त है। ये एक मुख, द्वि मुख, त्रिमुख, चतुर्मुख पञ्च मुख तथा सर्वतोमुख होते हैं। ये सब अलग-अलग पीत, कृष्ण तथा रक्त तीन वर्ण के होते हैं और इनके क्रमशः वहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ये तीन वर्ण के तीन देवता हैं ॥ ४०-४२ ॥

स्पर्शवेधि भवेत् पीतं कृष्णं श्रेष्ठं रसायने ।
रक्तवर्णं महाभागे रसबन्धे प्रशस्यते ॥ ४३ ॥

पीत वर्ण का कान्तलौह "स्पर्श वेधि होता है, कृष्ण वर्ण का कान्तलौह रसायन कार्य में श्रेष्ठ है और हे महाभागे रक्तवर्ण का कान्तलौह रसबन्ध कार्य में प्रशस्त है ॥ ४३ ॥

भ्रामकं तु कनिष्ठं स्यात् चुम्बकं मध्यमं प्रिये ! ।
उत्तमं कर्षकं देवि ! द्रावकं चोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥
भ्रामयेल्लोहजातं तु तत्कान्तं भ्रामकं प्रिये ! ।
चुम्बयेच्चुम्बकं कान्तं कर्षयेत् कर्षकं प्रिये ! ॥ ४५ ॥
यत्साक्षाद्द्रावयेल्लोहं तत्कान्तं द्रावकं भवेत् ।
तद्रोमकान्तं स्फुटितात् यथा रोमोद्गमो भवेत् ॥ ४६ ॥

हे प्रिये ! भ्रामक नामक कान्तलौह कनिष्ट (अधम), चुम्बक नामक कान्तलौह मध्यम, कर्षक नामक कान्तलौह उत्तम तथा द्रावक नामक कान्तलौह सबसे उत्तम होता है। हे प्रिये ! जो सभी लोहों (धातुओं) को भ्रमण (घुमाना) कराता है उसे भ्रामक कान्तलौह, जो चुम्बन (मिल जाना) करता है उसे चुम्बक और हे प्रिये ! जो कर्षण करता हैं उसे कर्षक कान्तलौह कहते हैं। जो साक्षात् सभी लोहों (धातुओं) को द्रवित करा देता है उसे द्रावक कान्तलौह कहते हैं। वह रोम कान्तलौह है जो फूटने से रोमोद्गम (बाल उत्पन्न होने की तरह) के तरह हो जाता है ॥ ४४-४६ ॥

कनिष्ठं स्यादेकमुखं मध्यं द्वित्रिमुखं भवेत् ।
चतुः पंचमुखं श्रेष्ठम् उत्तमं सर्व्वतोमुखम् ॥ ४७ ॥

एक मुख कान्तलौह कनिष्ठ (अधम) द्विमुख तथा त्रिमुख कान्तलौह मध्यम

और चतुर्मुख व पञ्चमुख कान्तलोह श्रेष्ठ और सर्वतोमुख कान्तलोह सबसे उत्तम होता है ॥ ४६-४७ ॥

भ्रामकं चुम्बकञ्चैव व्याधिनाशे प्रशस्यते।
रसे रसायने चैव कर्षकं द्रावकं हितम् ॥ ४८ ॥
मदोन्मत्तगजः सूतः कान्तमङ्कुशमुच्यते।
क्षेत्रं खात्वा[1] ग्रहीतव्यं तत्प्रयत्नेन भूयसा ॥ ४९ ॥
मारुताऽऽतपविक्षिप्तं वर्जयेत् सुरसुन्दरि !।

भ्रामक व चुम्बक नामक कान्तलोह रोग नाश करने में प्रशस्त है और कर्षक व द्रावक नामक कान्तलोह रस तथा रसायन कार्य में हितकर है। पारद मदोन्मत्त हाथी कहा गया है तथा कान्तलोह हाथी को वश में करनेवाला अंकुश कहा गया है। कान्तलोह जमीन खोदकर विशेष प्रयत्न पूर्वक ग्रहण करना चाहिए। हे सुरसुन्दरि ! हवा तथा धूप में रक्खा हुआ कान्तलोह रसायन आदि कार्य के लिये नहीं ग्रहण करना चाहिए ॥ ४८-४९½ ॥

वहिःस्थितं त्वयस्कान्तं छागरक्तेर भावयेत् ॥ ५० ॥
छागरक्तप्रलिप्तेन वाससा परिवेष्टयेत्।
छागचर्म्म परीवेष्ट्य[2] विन्यसेत पूर्ववत् क्षितौ ॥ ५१ ॥
उद्धृतं सप्तभिर्मासैः तोयकुम्भे विनिक्षिपेत् ॥ ५२ ॥
रक्तपुष्पैः सदा पूज्यं रक्तमाल्यानुलेपनैः।
पूजितं मद्यमांसैश्च योज्यं रस-रसायने ॥ ५३ ॥
संस्कृतं छागरक्तेन भ्रामकं चुम्बकं भवेत्।
अनेन क्रमयोगेन 'द्रावकं' भवति प्रिये ॥ ५४ ॥

बाहर रक्खे कान्तलोह का प्रयोग विधान :—बाहर स्थित कान्तलोह को बकरे के रक्त से भावित करे और बकरे के रक्त से प्रलिप्त वस्त्र से वेष्ठित कर पुनः बकरे के चर्म से वेष्ठित कर पूर्ववत् पृथ्वी में रख दें। इसके बाद पृथ्वी में रक्खे कान्तलोह को सात माह बाद निकाल कर जलपूर्ण घड़े में रख दें। तदनन्तर लाल पुष्प (जपापुष्प), लाल फूल की माला तथा रक्तचन्दन के अनुलेपन द्वारा पूजा करें और पूजन के बाद मद्य एवं मांस का भोग लगाकर रस तथा रसायन कार्य में प्रयोग करे। हे प्रिये ! बकरे के रक्त से संस्कृत

---

१. खनु-अवदारणे इत्यस्मात् क्त्वा प्रत्यये–उदितो वा-इतीड्विकल्पः खात्वा, खनित्वा।

२. परीवेष्ट्य-इत्यत्र पृषोदरादित्वाद्दीर्घः।

भ्रामक लोह चुम्बक लोह हो जाता है। इस क्रम के प्रयोग से कान्तलोह द्रावक हो जाता है ॥ ५०-५४ ॥

सूतलोहस्य वक्ष्यामि संस्कारमतिसौख्यदम्।
जीवदेहे प्रवेशे च देहसौख्यबलप्रदम् ॥ ५५ ॥
कान्तलोहं विना सूतो देहे न क्रामति क्वचित्।
वेधयेद्व्यापयेच्छीघ्रं तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ ५६ ॥
न सूतेन विना कान्तो न कान्तः सूतवर्जितः।
कान्तसूतसमायुक्तः प्रयोगो देहधारकः ॥ ५७ ॥

पारद तथा कान्तलोह के संस्कार का निरूपण :—श्रीभैरव जी पुनः पार्वती से बोले। हे पार्वति ! अत्यन्त सुख को देनेवाला पारद तथा कान्तलोह के संस्कार को कहता हूँ। जीवित शरीर में प्रवेश करने पर शरीर को सुख तथा बल देने वाला है। कान्तलोह के बिना पारद शरीर में कभी भी क्रमण नहीं करता। कान्तलोह के साथ संस्कृत पारद तैल में जल के विन्दु के समान शरीर में बेध देता है तथा व्याप्त हो जाता है। पारद के बिना कान्तलोह तथा कान्तलोह रहित पारद शरीर में व्याप्त नहीं होता। कान्तलोह तथा पारद का संयुक्त प्रयोग देह को धारण करने वाला होता है ॥ ५५-५७ ॥

यवक्षारन्तु संगृह्य स्निग्धभाण्डे निधापयेत्।
मरिचाभ्रककूर्णेन पिण्डीबन्धन्तु कारयेत्।
कान्तलोहं द्रवेद् ध्मातं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ५८ ॥

कान्तलोह की द्रावण विधि :—यवक्षार को लेकर स्निग्धभाण्ड में रक्खे और मरिच का चूर्ण तथा अभ्रक के चूर्ण के साथ कान्तलोह का पिण्ड बनावें तथा धमन के द्वारा कान्तलोह को "द्रावण" करे। यहाँ पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ ५८ ॥

त्रिंशच्चुम्बककान्तं च पिष्ट्वा तु त्रिफलाम्भसा।
तेनैव क्षालनं कार्य्यं पञ्चनिष्कं तु टंकणम् ॥ ५९ ॥
जीर्णवस्त्रे विनिक्षिप्य मधुसर्पिर्युतं पुटेत्।
संस्थाप्य मासपर्य्यन्तं तत्र शुद्धिर्भवेत्प्रिये ! ॥ ६० ॥

चुम्बक कान्तलोह तीस निष्क (३५० ग्रा०) लेकर त्रिफला (हर्रे, आँवला, बहेड़ा) के क्वाथ के साथ पीसकर उसी क्वाथ के साथ प्रक्षालन करे और पांच निष्क (७० ग्रा०) टंकण मिलाकर तथा जीर्ण वस्त्र में रखकर मधु तथा घृत के साथ पुट दे। इसके बाद एक मास पर्यन्त रक्खें। हे प्रिये इस प्रकार कान्तलोह शुद्ध हो जाता है ॥ ५९-६० ॥

सिनाडिकाया मूलं तु दशनिष्कमितं युतम्।
फलत्रयकषायेन खल्ले तु परिमर्दयेत्॥ ६१॥
त्रिमूषासु समं स्थाप्यमष्टांगुलमितासु च।
मूषका लेपनं कार्य्यं तन्मूलं निष्कमात्रकम्॥ ६२॥
शिवपञ्चमुखीकार्य्यं मूषां प्रति समं ततः।
यन्त्रहस्ते सुसम्बध्य खोटकं च शिलातले॥ ६३॥
तैलेन मिश्रितं कृत्वा कान्तनागं लभेत्ततः।
अभ्रकक्रमयोगेन द्रुतिपातञ्च साधयेत्॥ ६४॥

सिनाडिका (रक्त पुनर्नवा) की जड़ दश निष्क (१४० ग्रा०) लेकर त्रिफला के क्वाथ के साथ खरल में मर्दन करे। इसके बाद आठ अंगुल परिमाण की त्रिमूषा में रखें और पुनर्नवा की एक निष्क (१२½ ग्रा०) जड़ के कल्क से मूषा को लिप्त कर दे। मूषा के सम भाग में पञ्चमुखो शिव का मुख बना दे। इस मूषा को यन्त्र से सम्बान्धित कर शिला के नीचे तैल मिलाकर रखें। इससे कान्त नाग प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार अभ्रक द्रावण विधि के अनुसार कान्तलोह का भी 'द्रुतिपात' (द्रावण) सिद्ध करें॥ ६१-६४॥

॥ इति कान्तविधिः॥

सुरासुरैर्मथ्यमाने क्षीरोदे मन्दराद्रिणा।
पीतं तदमृतं देवैरमरत्वमुपागतम्॥ ६५॥
पिबतां बिन्दवो देवि! पतिता भूमिमण्डले।
शुष्कास्ते वज्रतां याता नानावर्णा महाबलाः॥ ६६॥
बिन्दवः केऽपि सञ्जाताः 'सस्यका' विमलास्तथा।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवमनेकधा॥ ६७॥
श्वेता रक्तास्तथा पीताः कृष्णाश्चैव चतुर्विधाः।
पुरुषाश्च स्त्रियश्चैव नपुंसकमनुक्रमात्॥ ६८॥

वज्र की उत्पत्ति तथा उसके भेद-स्वरूपादि का वर्णन :—मन्दराचल पर्वत से सुर एवं असुरों के द्वारा समुद्र के मन्थन करने पर उत्पन्न अमृत को पान कर देवता वर्ग अमर हो गये। हे देवि! उन लोगों के अमृत पान करते समय जो अमृत के बिन्दु पृथ्वी पर गिरे वे सुखकर महा बलवान् अनेक वर्ण वाले वज्र हो गये। कुछ अमृत के कण विमल "सस्यक" हो गये। वे ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जाति के भेद से अनेक प्रकार तथा श्वेत, रक्त, पित्त एवं कृष्ण वर्ण भेद से चार रंग के हुए। पुनः वे वज्र क्रम से पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक तीन प्रकार के लिङ्ग भेद से हुए॥ ६५-६८॥

वृत्ताः फलकसंपूर्णास्तेजस्वन्तो महत्तराः ।
'पुरुषा'स्ते निबोद्धव्या रेखाबिन्दुविवर्जिताः ॥ ६९ ॥

पुरुष संज्ञक वज्र :—जो गोलाकार सम्पूर्ण फलकों से युक्त प्रकाशमान् सबसे अधिक बड़ा तथा रेखा-विन्दु से रहित हैं वे पुरुष संज्ञक वज्र हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ६९ ॥

रेखाबिन्दुसमायुक्ताः खण्डाश्च व तु 'योषितः' ।

स्त्रीसंज्ञक वज्र :—जो रेखा-विन्दु से युक्त तथा खण्ड-खण्ड होते हैं वे स्त्री संज्ञक वज्र हैं ॥ ६९½ ॥

त्रिकोणाः पत्तला दीर्घा विज्ञेयास्ते 'नपुंसकाः' ॥ ७० ॥

नपुंसक संज्ञक वज्र :—जो त्रिकोण, पत्तल (पत्राकार) तथा लम्बे होते हैं वे नपुंसक संज्ञक वज्र हैं ॥ ७० ॥

सत्त्ववन्तो बलोपेता लोहे क्रामणशीलिनः ।
रसबन्धकराः शीघ्रं पुंवज्राः सुरवन्दिते ॥ ७१ ॥
शरीरकान्तिजननाः स्त्रीवज्राः स्वल्पशक्तयः ।
नपुंसकाः सत्त्वहीनाः कष्टं लोहे क्रमन्ति च ॥ ७२ ॥

रसकर्म में उपयोगी तथा अनुपयोगी वज्र :—हे देववन्दित पार्वति ! पराक्रमयुक्त, बलवान् लोह में क्रमण करने वाले पुरुष संज्ञक वज्र शीघ्र ही रसबन्धकारक होते हैं । अल्पशक्ति वाले स्त्री संज्ञक वज्र शरीर की कान्ति को उत्पन्न करने वाले होते हैं । सत्त्वहीन नपुंसक संज्ञक वज्र कष्ट से लौह में क्रामणशील होते हैं ॥ ७१-७२ ॥

क्षत्रियाः सर्व्वकार्य्येषु बर्ज्याश्च रसकर्म्मणि ।
उत्तमा मध्यमाश्चैव कनिष्ठाः परिकीर्त्तिताः ॥ ७३ ॥
स्थूलातिस्थूलमध्याश्च सूक्ष्माः सूक्ष्मतराः प्रिये ।
आस्फोटदाहभेदैश्च निर्व्यङ्गा निरुपद्रवाः ।
वीर्य्यवन्तश्च ते ज्येष्ठा निर्मला बलवत्तराः ॥ ७४ ॥

जातिभेद से वज्र के कार्य :—क्षत्रिय वर्ण वाले वज्र सभी कर्म में प्रयुक्त होते हैं किन्तु वे रसकर्म में निषिद्ध हैं । वे उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ भेद से तीन प्रकार के होते हैं । जो स्थूल, अतिस्थूल, मध्य, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म, आस्फोट तथा दाह-आदि से रहित निरुपद्रव, वीर्यवान् निर्मल तथा बलवान होते हैं वे श्रेष्ठ हैं ॥ ७३-७४ ॥

रसायने भवेद्विप्रो ह्यणिमादिगुणप्रदः ।
क्षत्रियो मृत्युनाशार्थो बलीपलितरोगहा ॥ ७५ ॥

द्रव्यकारी तथा वैश्यः शरीरं दृढतां नयेत्।
व्याधिप्रशमनं शूद्रो वयःस्तम्भं करोति च ॥ ७६ ॥
क्लीबे क्लीबाः स्त्रियः स्त्रीणां सर्व्वेषां पुरुषा हिताः ॥७७॥

ब्राह्मण वर्ण का वज्र रसायन कार्य में अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य गुण को देने वाला होता है, क्षत्रिय वर्ण का वज्र मृत्यु को नाश करनेवाला तथा वलि पलित (असमय में बाल पकना तथा असमय में बाल गिरना) रोग को दूर करता है। वैश्य वर्ण का वज्र द्रव्य (स्वर्णादि धातु निर्माण कारक) कारक तथा शरीर को मजबूत करता है। शूद्र वर्ण का वज्र रोगशामक तथा शरीर को दृढ़ बनाता है। नपुंसकसंज्ञक वज्र नपुंसकता में, स्त्री संज्ञक वज्र स्त्रियों के लिये तथा पुरुष संज्ञक वज्र सभी के लिये हितकर है ॥ ७४-७७ ॥

यथा जातिस्त[1]थोत्साहं यथा सत्त्वं तथा गुणान्।
यथा रुचिस्तथा शीलं यथा शीलं तथा वरम्।
यथा वरस्तथा वर्णं कुर्व्वन्ति कुलिशाः[2] प्रिये ! ॥ ७८ ॥

वज्र जिस जाति के होते हैं वैसे ही उत्साह करते हैं, जैसा सत्व (पराक्रम) होता है वैसे गुण उत्पन्न करते हैं, जैसी रुचि होती है वैसे शील उत्पन्न करते हैं, जैसा शील होता है वैसा उत्तम बनाते हैं और जैसी उत्तमता होती है वैसा वर्ण कारक होते हैं ॥ ७८ ॥

श्यामा शमी घनरवो वर्षाभून्मत्तकोद्रवाः।
आखुकर्णी मुनितरुः कुलत्थं चाम्लवेतसम् ॥ ७९ ॥
मेषशृङ्गी रसोऽप्येषां कन्दस्य सूरणस्य तु।
शोधयेत्रिदिनं वज्रं शुद्धिमेति सुरेश्वरि ! ॥ ८० ॥

वज्रशोधन की विधि :—हे सुरेश्वरि ! श्यामा (निशोथ, शमी, घनरव (नागरमोथा), पुनर्नवा, धत्तूर, कोदो (या मत्तकारक कोदो) मूषा कानी, अगस्त्य, कुरथी, अम्लवेंत, मेढासिंघी, इन सबों का रस तथा सूरन कन्द का रस तीन दिन में वज्र का शोधन कर देता है और वज्र शुद्ध हो जाता है। अर्थात् इन सबों के रस के साथ मर्दनादि संस्कार द्वारा वज्र शुद्ध हो जाता है ॥ ७९-८० ॥

---

१. ब्राह्मणत्वादि–जातिविशिष्टानां वज्राणां यथाजातिः, ते, तथा उत्साहं कुर्वन्ति–इत्याद्यन्वयः। कुर्वन्ति–इत्यस्य सर्वत्र अन्वयः।

२ अस्त्रियौ वज्रकुलिशौ–इति संसाराऽऽवर्त्तः। 'वज्रोऽस्त्री हीरके पवौ–इत्यमरः।

मेषशृङ्गं भुजङ्गास्थि कूर्म्मपृष्ठं शिलाजतु।
स्नुक्कीलालरसं स्तन्यं कान्तपाषाणमेव च ॥ ८१ ॥
वज्रकं चापि वैक्रान्तं तन्मध्ये प्रक्षिपेत् प्रिये !।
तीव्राऽनले पुटं दत्त्वा पुटान्तं यावदागतम् ॥ ८२ ॥
कुलत्थं कोद्रवं चापि हयमूत्रेण पेषयेत्।
तप्तं निषेचयेत् पीठे यावत्तद्भस्मतां गतम् ॥ ८३ ॥
एष कापालिको योगो वज्रमारण उत्तमः ॥ ८४ ॥

वज्र को भस्म बनाने की विधि :—मेढ़ासिंघी, सर्प की हड्डी, कछुआ की पृष्ठास्थि, शिलाजीत, सेंहुड़ तथा कीलाल (शल्लकी-शलई) का रस, दूध, कान्तलौह, वज्राभ्र तथा वैकान्त इन सबों के मध्य में वज्र को रख दें और तीव्राग्नि में पुट देकर पुट के अन्त में कुरथी तथा कोदो को घोड़े के मूत्र के साथ पीस लें और उससे वज्र के पीठ पर सेंचन करे जब तक वह भस्म न हो जाय। यह कापालिक योग वज्र को अच्छी तरह मारण करने वाला है। अर्थात् इस विधि से वज्र का उत्तम भस्म हो जाता है ॥ ८१-८४ ॥

माक्षिकं मेषशृङ्गं च शिलागन्धकटङ्कणम्।
वैक्रान्तं तालकं चापि वज्रीक्षीरपरिप्लुतम् ॥ ८५ ॥
लेपं मूषोदरे दत्त्वा समावर्त्तं तु कारयेत्।
म्रियन्ते हीरकास्तत्र द्वन्द्वे सम्यङ्मिलन्ति च ॥ ८६ ॥

माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक तारमाक्षिक), मेढ़ासिंधी, मैनशिल, गन्धक, सुहागा, वैक्रान्त तथा हरताल इन सबों को सेहुड़ के दूध मिलाकर मूषा के अन्दर लेप देकर बन्द कर दे। इसके बाद उस मूषा में पुट देने पर हीरक भस्म हो जाते हैं और दो द्रव्य आपस में मिल जाते हैं अर्थात् द्वन्द्व मेलापक हो जाता है ॥ ८५-८६ ॥

गन्धकं च शिलाधातुं भ्रामकस्य मुखं तथा।
शशकस्य च दन्तांश्च वेतसाम्लेन पेषयेत् ॥ ८७ ॥
अनेन सिद्धकल्केन मूषाल्लेपं तु कारयेत्।
अन्धमूषागतं ध्मातं वज्रं तु म्रियते क्षणात् ॥ ८८ ॥
तेनैव मिलितं वज्रं तारहेम्नि न संशयः ॥ ८९ ॥

गन्धक, मैनसिल, भ्रामक (सियार-शृगाल) का मुख तथा खरगोश के दाँत इन सबों को वेंतसाम्ल (अम्ल वेंत) के साथ पीस लें और इसी सिद्ध कल्क से मूषा के अन्दर लेप कर लें इस प्रकार उस अन्धमूषा में वज्र रखकर

पुट देने से वह शीघ्र ही भस्म हो जाता है। उसी प्रकार चाँदी तथा स्वर्ण में मिलित वज्र भस्म हो जाता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ८७-८९ ॥

तालकं गन्धकं कान्तं ताप्यं कर्पूरटङ्कणम्।
चिञ्चास्थि मेषशृङ्गं च स्त्रीरजःपरिपेषितम्।
मूषालेपगतं ध्मातं वज्रं तु म्रियते क्षणात् ॥ ९० ॥

हरताल, गन्धक, कान्तलोह, स्वर्णमाक्षिक, कर्पूर, सुहागा, इमली का बीज तथा मेढ़ासिंघी इन सबों को स्त्री के रज के साथ पीसकर उसके कल्क से मूषा के अन्दर लेप करे और उसके अन्दर वज्र को रखकर पुट दें। इस प्रकार पुट देने से वज्र शीघ्र ही भस्म हो जाता है ॥ ९० ॥

शरपुङ्खस्य पञ्चाङ्गं पेष्यं स्त्रीरजसा ततः।
पेटारी बीजमथवा संपेष्यं तण्डुलाम्भसा ॥ ९१ ॥
पेष्यं त्रिकर्षकार्पासमूलं वा तण्डुलाम्भसा।
आरक्तराकामूलं वा स्त्रीस्तन्येन तु पेषितम् ॥ ९२ ॥
पेषयेद्वज्रकन्दं वा वज्रीक्षीरेण सुव्रते।
तत्कल्कपुटितं ध्मातं वज्रं चैव मृतं भवेत् ॥ ९३ ॥

सरफोंश का पञ्चाङ्ग स्त्री के रज के साथ पीस लें, इसके बाद पेटारी (कबेराक्षी-कंजा) का बीज स्त्री रज के साथ पीस लें अथवा पेटारी बीज (कञ्जा का बीज) चावल के धोअन के साथ पीस ले या त्रिकर्ष (सोंठ, अतीस, नागरमोथा) तथा कपास का मूल चावल के धोवन के साथ पीस लें, अथवा आरक्तराका (लालमदार) का मूल स्त्री के दूध के साथ पीस ले। अथवा सूरण कन्द को सेंहुड़ के दूध के साथ पीसे। इसके बाद उसके कल्क का पुट देकर फूंक देने से वज्र भस्म हो जाता है ॥ ९१-९३ ॥

महानदीश्वेतशुक्त्यां दिनमेकन्तु भावितम्।
क्षीरेणोत्तरवारुण्याः कल्केनानेन सुव्रते ॥ ९४ ॥
तालेन मेषशृङ्गया च वज्रवल्ल्या च वेष्टितम्।
अन्धमूषागतं ध्मातं वज्रं तु म्रियते क्षणात् ॥ ९५ ॥

हे सुव्रते! नदी के बड़ी, सफेद शुक्ति में वज्र को उत्तरवारुणी (इन्द्रवारुणी) के दूध के साथ एक दिन भावित कर और इन्द्रवारुणी के कल्क, हरताल मेढ़ासिंघी तथा वज्रवल्ली (हड़जोड़) के कल्क से वेष्टित कर अन्धमूषा में रखकर पुट देने से वज्र शीघ्र ही भस्म हो जाता है ॥ ९४-९५ ॥

कान्तस्य पिष्टिकामध्ये वज्रं देवि! विनिक्षिपेत्।
पेषयेद्गन्धतैलेन म्रियते वज्रमीश्वरि! ॥ ९६ ॥

हे देवि ! वज्र को कान्तलोह की पीठी में रख दें और गन्धक के तैल के साथ पीसकर धमन करे। हे ईश्वरि ! इस प्रकार वज्र भस्म हो जाता है ॥९६॥

कुलत्थाम्भसि कासीससौराष्ट्रीतालकान्विते।
अपामार्गक्षारयुते वज्रं सिक्तं मृतं भवेत् ॥ ९७ ॥

कासीस, सौराष्ट्री (सौराष्ट्र की मिट्टी-तुवरी) हरताल तथा अपामार्ग क्षार से युक्त कुरथी के क्वाथ में वज्र को सींचने (डुबो देने) से भस्म हो जाता है अर्थात् सींचकर धमन करने से भस्म हो जाता है ॥ ९७ ॥

अमृताकन्दतिमिर-बीजात्वक्क्षीरवेष्टितम्।
मेषशृङ्गगतं वज्रं मृल्लिप्तं म्रियते पुटैः ॥ ९८ ॥

गुडूची, सूरण कन्द, तिमिर (तमाल), बीज (शु० स्वर्ण, रजत बीज) तथा वंशलोचन इन सबों के कल्क से वज्र को वेष्टित कर तथा भेड़ की शृंग में रखकर मिट्टी का लेप लगा दे। इसके बाद कई पुट देने से वज्र भस्म हो जाता है ॥ ९८ ॥

पेटारी हंसपादी च वज्रवल्ली च सूरणम्।
अश्वत्थस्याङ्कुरा देवि ! सर्व्वे स्त्रीस्तन्यपेषिताः ॥ ९९ ॥
अनेन सिद्धकल्केन वेष्टितं बृहतीफले।
क्षिप्तं बहिर्मृदा लिप्तं म्रियते सप्तभिः पुटैः ॥ १०० ॥

पेटारी (कञ्जः), हंसपादी (गोधापदी), वज्रवल्ली (अस्थिसंहार-हड़जोड़), सूरण तथा पीपल का अंकुर इन सबों को स्त्री के दूध के साथ पीसकर इस सिद्ध कल्क से वज्र को लपेट कर वृहती (वनभंटा) के फल में रख दें और बाहर से मिट्टी का लेप लगा दें। इसके बाद सात पुट देने से वज्र भस्म हो जाता है ॥ ९९-१०० ॥

श्वेतेन्दुरेखापुष्पाम्बु गन्धकत्रयमाक्षिकैः।
वेष्टितं कुलिशं देवि ! पुटपाकात् मृतं भवेत् ॥ १०१ ॥

हे देवि ! सफेद वाकुची के पुष्प का रस, गन्धक तथा त्रयमाक्षिक (स्वर्ण माक्षिक, तार माक्षिक) इन सबों के कल्क से वेष्टित वज्र पुटपाक करने से भस्म हो जाता है ॥ १०१ ॥

[1]अश्वत्थबदरीभिण्डी-माक्षीकं कर्कटास्थि च।
स्नुहीक्षीरेण संपेष्य पुटाद्विप्रो मृतो भवेत् ॥ १०२ ॥

पीपल, बैर, भिण्डी (राम तरोई), मधु तथा केकड़ा की हड्डी इन सबों

---

१. ब्राह्मणत्वादि–जातिविशिष्ट–वज्रस्य मारणमाह–अश्वत्थेत्यादिना।

को सेहुड़ के दूध के साथ पीसकर इसके कल्क में वज्र को रखकर तथा ऊपर लेप लगाकर (या मूषा में रखकर) पुटपाक करने से विप्र जाति वाला वज्र भस्म हो जाता है ॥ १०२ ॥

करवीरार्कदुग्धेन मेषशृङ्गं सहिङ्गुलम् ।
उदुम्बरसमायुक्तं पुटात् क्षत्रियमारणम् ॥ १०३ ॥

कनेर तथा मदार के दूध में मेढ़ा सिंघी को पीसकर हिंगुल (सिंगरफ) तथा उदुम्बरसार मिलाकर उसके कल्क में स्थित वज्र (मूषा के अन्दर रखकर) पुटपाक करने से क्षत्रिय जातिवाला वज्र भस्म हो जाता है ॥ १०३ ॥

बाला[1] चातिबला चैव गन्धकं कर्कटास्थि च ।
क्षीरेणोत्तरवारुण्याः पुटनाद्वैश्यमारणम् ॥ १०४ ॥

बला (बरियार), अतिबला (कंघी), गन्धक तथा केकड़ा की अस्थि इन सबों को इन्द्रवारुणी के क्षीर में पीसकर उसके कल्क में रखकर पुट देने से वैश्य जाति वाला वज्र भस्म हो जाता है ॥ १०४ ॥

कण्डूलसूरणेनैव शिलया लशुनेन च ।
न्यग्रोधशुङ्गादुग्धेन शूद्रोऽपि म्रियते क्षणात् ॥ १०५ ॥

खुजली उत्पन्न करने वाला सूरण से ही अथवा मैनसिल, लहसुन तथा वट के टूसा के दूध के साथ (मूषा में स्थित) शूद्रवर्ण वाला वज्र (पुटपाक से) भस्म हो जाता है ॥ १०५ ॥

स्थूला बहुस्थूलपुटैः नश्यन्ति फलकादयः ।
सुस्विन्ना इव जायन्ते मृदुत्वमुपजायते ॥ १०६ ॥

स्थूल फलक आदि बहुत स्थूल पुटों से नष्ट हो जाते हैं और अच्छी तरह स्वेदन किये हुए की तरह स्वच्छ तथा मुलायम हो जाते हैं ॥ १०६ ॥

पिष्ट्वामलकपञ्चाङ्गं गौराभामिन्द्रवारुणीम् ।
अनेन वेष्टितं वज्रं म्रियते सप्तभिः पुटैः ॥ १०७ ॥

आँवला का पञ्चाङ्ग तथा सफेद इन्द्रवारुणी को पीसकर उसके कल्क से वेष्टित किया हुआ वज्र (मूषा में रखकर पुटपाक करने से) सात बार पुटपाक करने से भस्म हो जाता है ॥ १०७ ॥

मातृवाहकजीवस्य मध्ये वज्रं विनिक्षिपेत् ।
दोलास्वेदे त्र्यहं देवि ! गुणपत्रसमं भवेत् ॥ १०८ ॥

---

१. बलाचातिबलाचैवेति पाठान्तरम् ।

मातृवाहक जीव (वल्गुली-एक प्रकार का कीट) के मध्य में वज्र को रक्खे। हे देवि ! तीन दिन तक दोलायन्त्र में स्वेदन करने से गुणत्रयसम (तम, रज, सत्वगुणक रस, स्वर्ण एवं वज्र सम) हो जाता है ॥ १०८ ॥

एरण्डवृक्षमध्ये तु वज्रं देवि ! विनिक्षिपेत्।
एकमासे गते देवि ! [1]गुणपत्रसमं भवेत् ॥ १०९ ॥
कान्तस्य पिष्टिकामध्ये वज्रं देवि ! विनिक्षिपेत्।
कार्पास निम्बपत्रं च बदरीपत्रसंयुतम् ॥ ११० ॥

हे देवि ! एरण्डवृक्ष के मध्य में वज्र को रक्खें। वह उसमें एक माह रह जाने पर गुणत्रयसम (तम, रज, सत्वगुणक रस, स्वर्ण एवं वज्र सम) हो जाता है ॥ १०९-११० ॥

एकत्र पेषयेत्तत्तु कान्तगोलकवेष्टितम्।
बाह्ये ताम्बूलपत्रेण स्थापयेज्जानुमध्यतः ॥ १११ ॥
यामद्वयेन तद्वज्रं जायते मृदु निश्चितम्।
तत्क्षणान्म्रियते वज्रं तारे हेम्नि न संशयः ॥ ११२ ॥

हे देवि ! कान्तलोह की पीठी में वज्र को रक्खें और कपास, निम्बपत्र, तथा वैर का पत्ता एक जगह पीसकर उसका कान्तलोह के गोलक के ऊपर लेप लगाकर बाहर से पान के पत्ता से लपेट दें और जानु के मध्य में रक्खें। इस प्रकार रखने से दो पहर में वज्र निश्चित ही मुलायम हो जाता है और उसी समय चाँदी तथा सोना में रखने से (सोना में रखकर पुटपाक करने से) वज्र भस्म हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है ॥ १११-११२ ॥

जम्बीरफलमध्यस्थं वस्त्रपोटलिकागतम्।
काथयेत् कोद्रवकाथे क्रमेणानेन तु त्र्यहम्।
तद्वज्रं जायते खोटं हेम्ना मिलति तत्क्षणात् ॥ ११३ ॥

जम्बीरी निम्बु के फल के मध्य में रखकर कपड़े की पोटली में बांधकर रक्खे हुए वज्र को कोदो के क्वाथ में इसी क्रम से तीन दिन तक क्वाथ करे। इसके बाद वह वज्र खोट हो जाता है तथा स्वर्ण से उसी समय मिल जाता है अर्थात् स्वर्ण के साथ वज्र एकीभूत हो जाता है ॥ ११३ ॥

नागवल्ल्या प्रलिप्तं तु तत्पत्रेणैव वेष्टितम्।
जानुमध्ये स्थितं याम मृदु सञ्जायते ध्रुवम् ॥ ११४ ॥

पान के कल्क से लिप्त कर तथा उसी के पत्ते से वेष्टित कर एक पहर जानु के मध्य में रखने से वज्र अवश्य ही मृदु हो जाता है ॥ ११४ ॥

१. गुणत्रयमिति-पा०।

मूले वज्रलतायास्तु मृदु वज्रं विनिक्षिपेत्।
पुटं दद्यात् प्रयत्नेन भस्मीभवति तत्क्षणात्॥ ११५॥
सुखाद्बन्धकरं ह्याशु सत्त्वं मुञ्चति तत्क्षणात्।
सर्व्वमृत्युप्रशमनाः सर्व्वसिद्धिकराश्च ते॥ ११६॥

वज्रलता (अस्थि संहार-हड़जोड़) के मूल में मृदु वज्र को रक्खें और प्रयत्नपूर्वक पुट दे। पुट देने से वह उसी समय भस्म हो जाता है। यह सुखपूर्वक शीघ्र ही बन्धकारक होता है और उसी समय सत्व का त्याग करता है। वे सब सभी प्रकार के मृत्यु को शान्त करने वाले तथा सभी प्रकार के सिद्धियों को देने वाले हैं॥ ११५-११६॥

अस्थिश्रृङ्खलमध्यस्थं कृत्वा वज्रं विरन्ध्रितम्।
जलभाण्डे तु तत् स्विन्नं सप्ताहं द्रवतां व्रजेत्॥ ११७॥

छिद्ररहित अस्थि श्रृङ्खल (हथजोड) के मध्य में वज्र को रखकर कपड़मिट्टी के द्वारा छिद्रबन्द कर जलपूर्ण पात्र में स्वेदन करने से वह एक सप्ताह में द्रव हो जाता है॥ ११७॥

क्षारत्रयं रामठञ्च चणकाम्लाम्लबेतसम्।
क्षिप्त्वा ज्वालामुखीक्षीरं स्थलकुम्भीरसेन च॥ ११८॥
एतैस्तु मर्द्दितं बज्रं स्नुह्यर्कपयसा तथा।
दोलायां स्वेदयेद्देवि जायते रसवद्यथा॥ ११९॥

क्षारत्रय (यवक्षार, सज्जीक्षार, टंकणक्षार), हिंगु, चणकाम्ल, अम्लवेंत तथा ज्वालामुखी (लाल चित्रक) का क्षीर, स्थलकुम्भी (स्थलपर्णी) के रस के साथ छोड़कर इन द्रव्यों से तथा सेहुड़ के दूध के साथ वज्र को मर्दन कर दोला यन्त्र में स्वेदन करे। हे देवि! वह रस के समान द्रव हो जाता है॥ ११८-११९॥

अथवाप्यभ्रकं स्विन्नं मौक्तिकं च प्रबालकम्।
माक्षिकं नीलपुष्पं च पीतं मरकतं महत्।
वैदूर्य्यस्फटिकादीनि द्रवन्ति सलिलं यथा॥ १२०॥

अथवा इन्हीं द्रव्यों के साथ स्वेदन करने से अभ्रक, मुक्ता, प्रवाल, माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक, तारमाक्षिक), नील-पुष्प, पीत पुष्प महान् मरकत, वैदूर्य तथा फिटकरी आदि जल के समान द्रव हो जाते हैं॥ १२०॥

लोहजातं तथा ध्मातमग्निवर्ण तु दृश्यते।
वापितं सकृदेकेन मृतं जलसभं भवेत्॥ १२१॥

सभी लौह पूर्वोक्त प्रकार से स्वेदन करने के बाद धमन (पुट) करने से अग्नि के समान वर्ण वाले हो जाते हैं। एक द्रव्य के साथ एक बार भी वापित (प्रक्षेप) करने से मृत लौह जल के समान हो जाता है ॥ १२१ ॥

मुक्ताफलन्तु सप्ताहं वेतसाम्लेन भावितम् ।
जम्बीरोदरमध्यस्थं धान्यराशौ निधापयेत् ।
पुटपाकेन तच्चूर्णं जायते सलिलं यथा ॥ १२२ ॥

॥ इति वज्रविधिः ॥

मुक्ताफल (मोती) को वेतसाम्ल के साथ एक सप्ताह तक भावित कर जम्बीरी नीबूं के फल के मध्य में रखकर धान्य की राशि में रक्खें। इसके बाद निकाल कर पुटपाक करने से वह वज्रचूर्ण जल के समान द्रव हो जाता है ॥ १२२ ॥

॥ वज्र विधि समाप्त ॥

शृणु देवि ! महाभागे 'वैक्रान्ताख्यं' महारसम् ॥ १२३ ॥
दैत्येन्द्रो महिषः सिद्धो हरदेहसमुद्भवः ।
दुर्गा भगवती देवी तं शूलेन व्यमर्दयत् ॥ १२४ ॥
तस्य रक्तं तु पतितं यत्र यत्र स्थितं भुवि ।
तत्र तत्र तु वैक्रान्तो वज्राकारो महारसः ॥ १२५ ॥
"विन्ध्यस्य दक्षिणे चास्ति उत्तरे नास्ति सर्व्वथा" ।
विकृतयति लोहानि तेन 'वैक्रान्त[1]कः' स्मृतः ॥ १२६ ॥

वैक्रान्त की उत्पत्ति का वर्णन :—हे देवि ! महाभागे ! वैक्रान्त नामक महारस को सुनो। सिद्ध दैत्यों का ईश्वर महिष (महिषासुर) शंकर के शरीर से उत्पन्न हुआ। उसको दुर्गा भगवती देवी ने शूल से मार दिया। उसका गिरा हुआ रक्त पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ स्थित हुआ वहाँ-वहाँ वज्र के आकार सदृश महारस वैक्रान्त उत्पन्न हुआ। वैक्रान्त महारस विन्ध्य से दक्षिण में है, उत्तर में कभी भी नहीं होता। यह सभी लौह को विकृत करता है उसी से वैक्रान्त कहा गया है ॥ १२३-१२६ ॥

श्वेतः पीतस्तथा रक्तो नीलः पारावतप्रभः ।
मयूरबालसदृशश्चान्यो मरकतप्रभः ॥ १२७ ॥

---

१. विक्रामतीति—विक्रान्तः गत्यर्थाऽकर्मकेत्यादिना कर्त्तरि क्तः । धातुविकृतिकरणे विक्रमवान्, विक्रान्त एव वैक्रान्तः स्वार्थेऽण्, विकृतयति—इति—विग्रहस्तु—आर्थिकः पृषोदरादित्वाद्वा समाधेयम्,

वैक्रान्त के भेद तथा उसके कार्य:—वैक्रान्त श्वेत, पीत, रक्त, नील, कबूतर के सदृश प्रभावाला, मयूर के सदृश प्रभावाला तथा दूसरा मरकत के समान प्रभावाला होता है ॥ १२७ ॥

देहसिद्धिकरः कृष्णः पीते पीतः सिते सितः।
सर्ब्बार्थसिद्धिदो रक्तः तथा मरकतप्रभः।
शेषे द्वे निष्फले वर्ज्ये वैक्रान्तमिति सप्तधा ॥ १२८ ॥
तत्र क्षेत्रे स्थितं देवि! वैक्रान्तं तत्र भैरवम्।
विनायकं च संपूज्य गृह्णीयात् साधकोत्तमः ॥ १२९ ॥

कृष्णवर्ण का वैक्रान्त देह सिद्धि देनेवाला है। पीतवर्ण वाला वैक्रान्त पीले में तथा श्वेत वर्ण वाला सफेद में देहसिद्धि को देनेवाला है। रक्त वर्ण का वैक्रान्त तथा मरकत के समान प्रभावाला वैक्रान्त सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला है। शेष दो प्रकार के वैक्रान्त निष्फल हैं और निषिद्ध हैं। इस प्रकार वैक्रान्त का सात भेद होता है। हे देवि! जहाँ पर वैक्रान्त महारस रहता है वहाँ पर भैरव रहते हैं। उत्तम साधक गणेश की पूजा कर वैक्रान्त को ग्रहण करें ॥ २२८-१२९ ॥

वैक्रान्त शोधन विधि :—

वैक्रान्तं चूर्णितं सूक्ष्मं सुरासुरनमस्कृतम्।
व्याघ्रकन्दस्य मध्यस्थं धमयित्वा पुटे स्थितम् ॥ १३० ॥
अश्वमूत्रेण मृद्वग्नौ स्वेदयेत् सप्तवासरान्।
छायाशुष्कं ततः कुर्य्यादिदं वैक्रान्तमुत्तमम् ॥ १३१ ॥

वैक्रान्त का शोधन विधि :—देवता तथा असुरों से पूजित वैक्रान्त के सूक्ष्म चूर्ण को व्याघ्रोकन्द (कण्टकारी या एक प्रकार की लता) के मध्य में रखकर तथा पुट में बन्द कर धमन करें। इसके बाद निकाल कर घोड़े के मूत्र के साथ मन्दाग्नि से सात दिन तक स्वेदन करे और छाया में सुखा लें। इस प्रकार वैक्रान्त उत्तम (शुद्ध) हो जाता है ॥ १३०-१३१ ॥

अथवा लवणक्षारमूत्राम्लकृष्णतैलकैः।
कुलत्थकोद्रवक्काथे स्वेदयेत् सप्त वासरान् ॥ १३२ ॥
वन्ध्याचूर्णन्तु वैक्रान्तं समांशेन तु चूर्णयेत्।
अन्धनाले धमित्वा तु मूषासत्त्वं तु जायते ॥ १३३ ॥

अथवा—वैक्रान्त को लवण (सेन्धा नमक), क्षार (यवक्षार), गोमूत्र, इमली तथा काला तिल के साथ कुरथी तथा कोदो के क्वाथ में सात दिन तक स्वेदन करें, और वन्ध्या (वन्ध्या कर्कोटकी) का चूर्ण वैक्रान्त के बराबर

मिला दें। इसके बाद बकरी के मूत्र से भावित कर छाया में सुखा लें। अन्ध-नाल (अन्धमूषा) में धमन करने से मूषा में सत्व तैयार हो जाता है ॥ १३२-१३३ ॥

मोक्षमोरटपालाशक्षारगोमूत्रभावितम् ।
वज्रकन्दशिफाकल्क-लाक्षाटङ्कणसंयुतम् ॥ १३४ ॥
वैक्रान्तसम्भवं चूर्णं मेषश्रृङ्गीद्रवान्वितम् ।
पिण्डितं मूकमूषायां ध्मातं सत्त्वं विमुञ्चति ॥ १३५ ॥

मोक्ष (पाटला) मोरट (गन्ने की जड़) तथा पलास का क्षार और गोमूत्र से भावित करे और वज्रकन्द (बनसूरण) की जड़ का कल्क, लाख तथा सुहागा से युक्त वैक्रान्त चूर्ण को मेढ़ा सिंधी के रस से पिण्डी बनाकर मूषा यन्त्र में धमन करे इससे वैक्रान्त का सत्व निकल जाता है ॥ १३४-१३५ ॥

वैक्रान्तं वज्रकन्दं च पेषयेद्वज्रवारिणा ।
माहिषे नवनीते च सक्षौद्रं पिण्डितं ततः ॥
शोधयित्वा धमेत् सत्त्वमिन्द्रगोपसमं पतेत् ॥ १३६ ॥

वैक्रान्त तथा सूरण को वज्रवारि (सेंहुड़ के दूध) से पीस लें, और भैंस के मक्खन तथा मधु मिलाकर पीड़ो बना लें। इसके बाद शोधन कर धमन करे। इससे इन्द्र गोप (बीरबहूटी) के रंग की तरह सत्व-निकल जाता है ॥ १३६ ॥

केतकीस्वरसः कांक्षी मणिमन्थं सखेचरम् ।
स्वेदनाज्जायते देवि ! वैक्रान्तं रससन्निभम् ॥ १३७ ॥

॥ इति वैक्रन्तविधिः ॥

हे देवि ! केतकी का रस, कांक्षी (सौराष्ट्रमृतिका), चणक तथा कसीस इन द्रव्यों के साथ स्वेदन करने से वैक्रान्त रस के समान हो जाता है ॥ १३७ ॥

॥ वैक्रान्त विधि समाप्त ॥

सुवर्णं रजतं ताम्रं कान्तलोहस्य वा रजोः ।
अनेन स्वेदविधिना द्रवन्ति सलिलं यथा ॥ १३८ ॥

सुवर्ण आदि की द्रावण विधि का निरूपण :—सुवर्ण, रजत, ताम्र तथा कान्तलोह का रज—इसी प्रकार स्वेदन करने से जल के समान द्रव हो जाता है ॥ १३८ ॥

इत्युक्तमभ्रकादीनां चतुर्णां[1] लक्षणादिकम् ।
तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १३९ ॥

इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
अभ्रकादिलक्षणसंस्कारनिर्णयो
नाम षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

उपसंहार :—पूर्वोक्त प्रकार से अभ्रक-आदि चार द्रव्यों का लक्षण मैंने कहा । हे देवि ! अब क्या सुनना चाहती हो उसे मुझसे कहो ॥ १३९ ॥

षष्ठ पटल समाप्त ।

---

१. अभक[1]-कान्तक[2]-वज्र[3]-वैक्रान्तानाम्[4] ।

सप्तमः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

सह लक्षण संस्कारै-राज्ञापय महारसान् ।
अन्यच्च तादृशं देव ! रसविद्योपकारकम् ॥ १ ॥

महारसों के लक्षण तथा संस्कार विषयक पार्वती का प्रश्न :—महारसों के सम्बन्ध में पार्वती ने प्रश्न किया कि हे देव ! लक्षण तथा संस्कारों के साथ महारसों को कहें। उस प्रकार के रसविद्या में सहायक और कुछ हो तो उसको भी कहें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

माक्षिको विमलः शैलः चपलो[1] रसकस्तथा ।
सस्यको दरदश्चैव स्रोतोऽञ्जनमथाष्टकम् ।
अष्टौ महारसाश्चैवमेतात् प्रथमतः शृणु ॥ २ ॥

महारसों के नाम तथा उत्पत्तिक्रम :—महारसों के लक्षण-संस्कार विषयक प्रश्न को सुनकर शंकर जी बोले। हे पार्वति ! माक्षिक, विमल, शैल, (शिलाजीत), चपल, रसक (खपरिया), सस्मक (तुत्थ) दरद (हिंगुल), तथा आठवां स्रोतोऽञ्जन (सौवीराञ्जन-सफेद सुरमा) ये आठ महारस हैं तुम पहले इन आठ महारसों को सुनो ॥ २ ॥

कृष्णस्तु भारतं[2] श्रुत्वा योगनिद्रामुपागतः ।
तस्य पादतले विद्धं व्याधेन मृगशङ्कया ॥ ३ ॥
ये तत्र पतिता भूमौ क्षताद्रुधिरबिन्दवः ।
ते निम्बफलसंस्थाना जाता वै माक्षिकोपलाः ॥ ४ ॥

जब कृष्ण महाभारत समाप्त कर योगनिद्रा में स्थित हो गये उस समय उनके पादतल में व्याध ने (बहेलिया ने) मृग समझ कर बाण से मारा। उससे विद्ध होने के स्थान से जो रक्तकण पृथ्वी पर गिरे वे निम्बफल के समान "माक्षिक" पत्थर हो गये ॥ ३-४ ॥

माक्षिको द्विविधस्तत्र पीतशुक्लविभागतः ।
विमलस्त्रिविधो देवि ! शुक्लः पीतश्च लोहितः ॥ ५ ॥

---

१. चपलः कान्तपाषाणः २. मौसलं कृत्वा–इति पुराणसङ्गतः पाठः, भा० स्क० ११ ।

माक्षिक तथा विमल का स्वरूप :—माक्षिक पीत तथा शुक्लभेद से दो प्रकार का होता है, और हे देवि ! विमल शुक्ल, पीत तथा रक्तभेद से तीन प्रकार का होता है । ५ ।

तैलाऽऽरनालतक्रेषु गोमूत्रे कदलीरसे ।
कुलत्थककोद्रवक्काथैः 'माक्षिकं' 'विमलं' तथा ।
मुहुः सूरणकन्दस्थं स्वेदयेद्वरवर्णिनि ॥ ६ ॥
क्षाराम्ललवणैरण्डतैलसर्पिसमन्वितम् ।
पुटत्रयं प्रदातव्यं [1]तद्वयं शोधितं भवेत् ॥ ७ ॥

माक्षिक का शोधन तथा सत्वपातन विधि :—हे उत्तम वर्णवाली पार्वती ! सूरण के कन्द में स्थित माक्षिक तथा विमल को तैल, कांजो, तक्र, गोमूत्र तथा केले के रस में कुल्थी तथा कोदो के क्वाथ के साथ बार-बार स्वेदन करें। क्षार, अम्ल, लवण, एरण्ड तैल तथा घृत से युक्त माक्षिक तथा विमल को तीन पुट देना चाहिए । इससे वे दोनों शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६-७ ॥

माक्षिकं चूर्णितं स्तन्यं स्नुह्यर्कक्षीरभावितम् ।
सत्त्वं मुञ्चति सुध्मातं टङ्क-कङ्कुष्टमर्दितम् ॥ ८ ॥

चूर्ण किया हुआ माक्षिक स्तन्य (स्त्री का दूध) सेंहुड़ तथा मदार के दूध से भावित सुहागा तथा कङ्कुष्ठ (कङ्कुष्ठ नामक उपरस) मिलाकर फूँकने से सत्व निकलता है ॥ ८ ॥

कदलीकन्दतुलसीनारङ्गाम्लपरिप्लुतम् ।
सप्तसप्तपुटोपेतं पञ्चद्रावकसंयुतम् ।
स्त्रीस्तन्यमर्दितं ध्मातं सत्त्वं मुञ्चति माक्षिकम् ॥ ९ ॥

केले का कन्द, तुलसी तथा नारङ्गी के अम्ल से भावित कर और पञ्चद्रावक (गुञ्जा, सुहागा, मधु, घृत तथा गुड) मिलाकर माक्षिक को एक्कीस पुट दे और स्त्री के दूध के साथ मिलाकर मर्दन कर धमन करें । इससे माक्षिक सत्व निकल आता है ॥ ९ ॥

क्षौद्रगन्धर्व्वतैलाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च ।
कदलीकन्दसारेण भावितं माक्षिकं मुहुः ।
मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्त्वं शुल्बनिभं मृदु ॥ १० ॥

माक्षिक को मधु रेड़ी तैल, गोमूत्र, घृत तथा केला कन्द के रस के साथ बार-बार भावित कर मूषा में फूँक देने से वह तामा के समान मुलायम सत्व छोड़ता है ॥ १० ॥

---

१. तद्वयं माक्षिकं विमलञ्च ।

देवदालीरसं क्षिप्त्वा[1] पादांशटङ्कणैर्युतम् ।
प्रकटां मूषिकां कृत्वा धमेत् सत्त्वमपेक्षितम् ॥ ११ ॥

एकभाग सुहागा से युक्त माक्षिक में देवदाली का रस छोड़कर खुले हुए मूषा में रखकर सत्व को चाहने वाला व्यक्ति उसको फूंक दें। इससे माक्षिक सत्व निकल आता है ॥ ११ ॥

किमत्र चित्रं कदलीरसेन, सुपाचितं सूरणकन्दसम्पुटे[2] ।
वातारितैलेन पुटेन ताप्यं, पुटेन दग्धं वरशुद्धिमेति ॥ १२ ॥

सूरण कन्द के सम्पुट में माक्षिक को रखकर तथा कदली के रस के साथ पकाकर एवं रेड़ी के तैल के साथ पुट देकर तपाने तथा पुट के द्वारा जलाने पर उत्तम शुद्धि हो जाती है, इसमें क्या आश्चर्य है। अर्थात् इस विधि से माक्षिक की शुद्धि हो जाती है ॥ १२ ॥

गोमूत्रैश्च स्नुहीक्षीरैः भाव्यमेरण्डतैलकैः ।
माक्षिकं दिनमेकन्तु मर्दितं वटकीकृतम् ।
अभ्रवद् धमयेत् सत्त्वं सस्यकस्याप्ययं विधिः ॥ १३ ॥

माक्षिक को गोमूत्र, सेंहुड़ का दूध तथा रेड़ी के तैल के साथ भावित करे और एक दिन मर्दन कर बटक बना लें। इसके बाद अभ्रक के समान फूँककर सत्व निकाल लें। सस्यक का सत्व निकालने की भी यही विधि है ॥ १३ ॥

ताप्यमावर्त्तकं धातु-माक्षिकं मधुधातुकम् ।
माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्षयकुष्ठनुत् ।
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम् ॥ १४ ॥
[3]ज्वरसन्निपातदारिद्र्याण्यपि यन्नामकथनमात्रेण ।
नश्यन्ति योजनशते [4]कस्तस्माल्लोहवेधकरः ॥ १५ ॥

॥ इति माक्षिकशुद्धिः ॥

माक्षिक के गुण :—ताप्य (स्वर्णमाक्षिक) तथा आवर्तक (रौप्य माक्षिक) ये दोनों धातु माक्षिक है और इनको मधुधातुक (स्वर्ण माक्षिक तथा रौप्य माक्षिक) भी कहते हैं। माक्षिक तिक्त तथा मधुर रस युक्त, प्रमेह, अर्श (बवासीर), क्षयरोग तथा कुष्टरोग को दूर करनेवाला, कफ पित्त को हरने वाला, बलकारक, योगवाही तथा रसायन है। जिस माक्षिक के नाम कथन मात्र से

---

१. रसे पिष्ट्वा-इति-पा० ।

२. द्वादशाक्षरः पादः, अतो विजातीया उपजातिः । 'सूरणसम्पुटेन' इति पाठः । ३ आर्याछन्दः । ४ तस्माद् = माक्षिकात् ।

सौ योजन (चार सौ कोस) पर ज्वर सन्निपात तथा दारिद्र्य भी नष्ट हो जाते हैं। इस माक्षिक से लोहवेध करने वाला उत्तम कौन है। अर्थात् माक्षिक सबसे उत्तम लोहवेधकारक है ॥ १४-१५ ॥

॥ माक्षिक विधि समाप्त ॥

'विमलं' शिग्रुतोयेन काङ्क्षीकासीसटङ्कणैः।
वज्रकन्दसमायुक्तं भावितं कदलीरसैः ॥ १६ ॥
मोक्षकक्षारसंयुक्तं धामितं मूकमूषया।
सत्त्वं चन्द्रार्कसङ्काशं प्रयच्छति न संशयः ॥ १७ ॥

॥ इति विमलशुद्धिः ॥

विमल का सत्व निकालने की विधि :—"विमल" सहिजन के रस के साथ, काङ्क्षी (फिटकरी) कासीस तथा सुहागा के साथ और सूरण कन्द मिलाकर केला के रस के साथ भावित कर मोक्षक (पाटला या मोखा) का क्षार मिलाकर मूषा यन्त्र मे फूंकने पर चन्दार्क (चन्द्र सूर्य की किरण) के समान सत्व देता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६-१७ ॥

॥ विमल शुद्धि समाप्त ॥

पतितोऽपतितश्चेति द्विविधः शैल[1] ईश्वरि!।
[2]ग्रन्थान्तरेऽपि कीर्त्योऽसौ कीर्त्तितो बहुभिः सुरैः ॥ १८ ॥
निदाघे घर्म्मसन्तप्ता धातुसारं धराधराः[3]।
निर्यासं च विमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्त्तितम् ॥ १९ ॥

शिलाजीत की उत्पत्ति तथा उसकी शोधनविधि :—हे ईश्वरि! स्वयं निकला हुआ तथा निकाला हुआ दो प्रकार का शिलाजीत होता है। दूसरे ग्रन्थों में भी बहुत विद्वानों के द्वारा यह कहा गया है। गर्मी के दिन में धूप से संतप्त पर्वत धातुओं का सारभूत निर्यास त्यागते हैं, उसको शिलाजतु (शिलाजीत) कहते हैं ॥ १८-१९ ॥

शिलाबद्धधातुकं ध्मातं शैलजं गिरिसानुजम्।
जत्वद्रिजं गिरिः शैलः प्रोक्तस्त्वयानुकीर्त्तितः ॥ २० ॥

शिला से उत्पन्न धातु को धमन के द्वारा निकलने पर शैलज, गिरिसानुज, जतु, अद्रिज, गिरि तथा शैल कहा गया है, और तुमने भी वैसा ही कहा है ॥ २० ॥

---

१. शैलः = शैलनिर्यासः = शिलाजतु-इत्यर्थः, पतितो मृत्तिकासु-अपतितो गुहासु पाषाणस्थः। २. ग्रन्थान्तरे = चरकादौ 'ग्रीष्मेऽर्कतप्ता गिरयो जतुतुल्यं वमन्ति यत्'—इत्यादिना। ३. धराधरा. पर्वताः।

क्षाराम्लगोजलैध्मातं शुध्यते च शिलाजतु।
अथवा गोघृतेनापि त्रिफलाद्वयार्द्रकद्रवैः।
लोहपात्रं विनिक्षिप्य शोधयेत्तत्तु यत्नतः॥ २१ ॥

क्षार (यवक्षार, सर्जिक्षार तथा टङ्कण क्षार) अम्ल वर्ग तथा गोमूत्र के साथ पकाने से शिलाजीत शुद्ध हो जाता है। अथवा गोघृत के साथ पकाने से शुद्ध हो जाता है। त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) तथा दोनों प्रकार के अदरक (स्थूल तथा सूक्ष्म या ग्रामीण तथा जंगली) के रस के साथ लोहे की कड़ाही में शिलाजीत को छोड़कर अच्छी तरह शोधन करे॥ २१ ॥

शैलं विचूर्णयित्वा तु धान्याम्लोपविषैर्विषैः।
पिण्डं बद्ध्वा तु विधिवत् पातयेच्चपलं यथा॥ २२ ॥

॥ इति शैल शुद्धिः ॥

शिलाजीत को चूर्ण कर धान्याम्ल (काञ्जी) उपविष तथा विष के साथ पिण्ड बनाकर विधिवत् चपल की तरह पातन कर लें॥ २२ ॥

॥ शैल शुद्धि समाप्त ॥

गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु प्रशस्यते।
हैमाभश्चैव ताराभो विशेषाद्रसबन्धकः॥ २३ ॥
शेषौ मध्यौ च लाक्षावत् शीघ्रद्रावौ तु निष्फलौ।
वङ्गवद्द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्त्तितः॥ २४ ॥

चपल के भेद, उनकी शोधनविधि तथा गुण :—गोरेवर्ण, सफेद, अरुण-वर्ण तथा कृष्ण वर्ग का चपल उत्तम होता है। हैमाभ (स्वर्ण के समान वर्ण वाला) तथा ताराभ (चाँदी के समान वर्ण वाला) चपल विशेष कर रस-बन्धक होता है। शेष दो प्रकार का चपल मध्यम है और लाख के समान शीघ्र ही पिघल जाने वाले निष्फल हैं। वंग के समान शीघ्र ही पिघल जाता है अतः उसे चपल कहते हैं॥ २३-२४ ॥

वस्त्रेण बद्ध्वा चपलं लङ्घयेद्यदि सागरम्।
वस्त्रञ्च वेष्टयेत् सद्यः तेनासौ चपलः स्मृतः॥ २५ ॥

चपल को वस्त्र से बाँधकर यदि सागर को पार करें तो वह शीघ्र ही वस्त्र को बाँध देता है इसी से उसको चपल कहा गया है॥ २५ ॥

मारयेत् पुटपाकेन चपलं गिरिमस्तके।
देहबन्धं करोत्येव विशेषाद्रसबन्धनम्॥ २६ ॥

---

१. द्विविधामार्द्रकं द्वयाद्रकम्–ग्राम्यवन्यभेदेन–स्थूलसूक्ष्मकन्दभेदेन च।

चपलश्चपलावेढं करोति घनवच्चलः ।
चपलो लेखनः स्निग्धो देहलोहकरो मतः ॥ २७ ॥
॥ इति चपलशुद्धिः ॥

चपल को गिरिमस्तक[1] (शोरा) से पुटपाक के द्वारा मारण करे। यह देहबन्ध करता है। विशेष कर रसबन्धन करने वाला है। मेघ की तरह चञ्चल चपल पारा का बन्धन करता है। चपल लेखन, स्निग्ध, देह तथा लोहबन्धकारक होता है ॥ २६-२७ ॥

॥ चपल शुद्धि समाप्त ॥

मृत्तिका गुडपाषाण-भेदतो रसकस्त्रिधा ॥ २८ ॥
पीतस्तु मृत्तिकाकारो मृत्तिकारसको वरः ।
गुडाभो मध्यमो ज्ञेयः पाषाणाभः कनिष्ठकः ॥ २९ ॥

रसक (खपरिया) के भेद, उनका शोधन तथा गुण :—रसक मृत्तिकाकार, गुडवर्ण तथा पाषाण वर्ण भेद से तीन प्रकार का होता है। पीतवर्ण का मृत्तिकाकार मृत्तिका रसक श्रेष्ठ है। गुड् के समान प्रभावाला मध्यम तथा पत्थर के समान प्रभावाला कनिष्ठ होता है ॥ २८-२९ ॥

कटुकालाबुनिर्य्यासेनालोड्य रसकं पचेत् ।
शुद्धो दोषविनिर्मुक्तः पीतवर्णस्तु जायते ॥ ३० ॥

कड्वी लौकी के निर्यास (गोंद) के साथ मिलाकर रसक (खपरिया) को पकावे। इस प्रकार पकाने से रसक शुद्ध, दोषरहित, पीतवर्ण का हो जाता है ॥ ३० ॥

किमत्र चित्रं रसकं रसेन रजस्वलायाः कुसुमेन[2] भावितम् ।
क्रमेण कृत्वा उरगेन रञ्जितं करोति शुल्वं त्रिपुटेन कांचनम् ॥३१॥
क्षीयते नापि वह्निस्थः सत्त्वरूपो महाबलः ॥ ३२ ॥

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि रसक पारद के साथ रजस्वला स्त्री के पुष्प (रजस्वला के समय निकले हुए रक्त) से भावित कर तथा क्रमशः उरग (नाग-सीसा) से रञ्जित कर शुल्व (ताम्र) को तीन पुट देने से काञ्चन (सोना) बना देता है। महाबलशाली सत्वरूप रसक आग में रखने पर भी नष्ट नहीं होता है ॥ ३१-३२ ॥

रसकं चूर्णयित्वा तु बद्ध्वा वस्त्रे विचक्षणः ।
मूत्रे निधापयेत् स्त्रीणां सप्तरात्रं सुरेश्वरि ॥ ३३ ॥

---

१. गिरिमस्तक—सोरक-शोरा (र० का० धेनु)

२. गन्धकेन, द्वादशाक्षरः पादः ।

पुष्पाणां रक्तपीतानां रसैः पत्रैश्च भावयेत् ॥ ३४ ॥
क्षारैः स्नेहैस्तथा चाम्लैः भावितं रसकं मुहुः ।
ऊर्णालाक्षानिशापथ्याभूलताधूपसंयुतम् ॥ ३५ ॥
मूकमूषागतं ध्मातं टंकणेन समन्वितम् ।
सत्त्वं कुटिलसंकाशं मुञ्चत्येव न संशयः ॥ ३६ ॥

हे सुरेश्वरि ! विद्वान्-सिद्ध वैद्य रसक (खपरिया) को चूर्ण कर तथा वस्त्र में बाँधकर सात रात तक स्त्री के मूत्र में रक्खे और रक्तवर्ग (मज्जिष्ठा, केशर, लाख, खैर तथा असन वृक्ष,) तथा पीतवर्ग (बेरें, पलाश, हलदी, पतङ्ग, मदयन्तिका नवमल्लिका-मोगरा) के पुष्पों के रस तथा पत्तों के रस से भावित करे। क्षार वर्ग स्नेह वर्ग तथा अम्ल वर्ग के द्रव्यों से रसक को बार-बार भावित कर, ऊन, लाख, हलदी, हरें, भूलता (केंचुआ) तथा गृह-धूम एवं सुहागा मिलाकर मूषायन्त्र में फूँकने से वह हीरा के वर्ण सदृश सत्व को छोड़ता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३-३६ ॥

गोभद्रो रसकस्तुत्थं क्षितिकिट्टो रसोद्भवः ।
खर्परो नेत्ररोगारिः रीतिकृत्ताम्ररञ्जकः ॥ ३७ ॥

गोभद्र, रसक, तुत्थ, क्षितिकिट्ट, रसोद्भव, खर्पर, नेत्ररोगारि, रीतिकृत् तथा ताम्ररञ्जक ये सब रसक (खपरिया) के नाम हैं ॥ ३७ ॥

रसको रञ्जको रूक्षो वातकृत् श्लेष्मनाशनः ।
त्रिदोषघ्नन्तु तत्सत्त्वं नेत्रदोषविनाशनम् ॥ ३८ ॥
॥ इति [1]रसकशुद्धिः ॥

खपरिया रंगने वाला रूक्ष, वातकारक, कफनाशक, विष दोष नाशक तथा उसका सत्व नेत्रविकार को नष्ट करने वाला है ॥ ३८ ॥

॥ रसक शुद्धि समाप्त ॥

कालकूटविषं पीत्वा गरुडः सोढुमक्षमः ।
सुधामपि तथाऽऽवामत् मुक्त आशीविषाऽऽमृते ।
स्वयं विनिर्गते चञ्चोः सस्यकोऽभूत् स कालिकः ॥ ३९ ॥

सस्यक की उत्पत्ति उसका शोधन तथा गुण :—जब गरुड़ कालकूट विष का पान कर सहन करने में असमर्थ हो गये तब सर्प विष तथा अमृत को खाने पर सुधा को भी उसी प्रकार (विष के समान) वमन किये। चोंच से स्वयं निकलने पर वह कालिक सस्यक हुआ ॥ ३९ ॥

---

१. रसकः = खर्परः ।

एकधा सस्यकस्तस्य स्त्रीमूत्रे भावयेद्रजः ।
शशशोणितमध्ये वा दिनमेकं निधापयेत् ॥ ४० ॥
तस्य चूर्णं महेशानि पादसौभाग्यसंयुतम् ।
करञ्जतैलमध्यस्थं दिननेकं निधापयेत् ॥ ४१ ॥
मध्यस्थमन्धमूषायाः धमयेत् कोकिलत्रयम् ।
इन्द्रगोपकसंकाशं सत्त्वं पतति शोभनम् ॥ ४२ ॥

एक प्रकार का सस्यक और उसके चूर्ण को स्त्री के मूत्र में भावित करे, अथवा खरगोश के रक्त में एक दिन तक रक्खें। इसके बाद हे महेशानि ! चौथाई भाग सौभाग्य (सुहागा) मिलाकर करञ्ज तैल के मध्य में एक दिन तक रक्खें और अन्धमूषा के मध्य में सस्यक तथा तीन कोकिल को रखकर धमन करें। इससे सुन्दर वीरबहूटी के वर्ण का सत्व निकलता है ॥ ४०-४२ ॥

एकधा सस्यकस्तस्मात् ध्मातो निपतितो भवेत् ।
का[1]लिकारहितो रक्तः शिखिकण्ठसमाकृतिः ॥ ४३ ॥

पूर्वोक्त सत्व से फूँकने पर एक प्रकार का सस्यक निकलता है। वह कालिका (कालापन) रहित सस्यक फूँकने से लालवर्ण, मोर सदृश आकृति वाला निकलता है ॥ ४३ ॥

सस्यो मयूरतुत्थं स्यात् वह्निकृत् कालनाशनः ।
रसायने तु योग्यः स्याद् वयस्तम्भकरो भवेत् ॥ ४४ ॥

सस्यक मयूर तुत्थ होता है, और अग्निवर्द्धक तथा कालनाशक होता है। यह रसायन के योग्य तथा आयु को स्थिर करनेवाला है ॥ ४४ ॥

सस्यकः शुद्धिमाप्नोति रक्त[2]वर्गेण भावितः ॥ ४५ ॥
॥ इति सस्यकशुद्धिः ॥

सस्यक रक्तवर्ग (मञ्जिष्ठा, केशर, लाख, खैर तथा असन) के द्रव्यों के साथ भावित करने से शुद्ध हो जाता है ॥ ४५ ॥

॥ सस्यक शुद्धि समाप्त ॥

दरदस्त्रिविधः प्रोक्तश्चर्म्मारः शुकतुण्डकः ।
हंसपादस्तृयीयः स्याद् गुणवानुत्तरोत्तरः ॥ ४६ ॥
चूर्णपारदभेदेन द्विविधो दरदः पुनः ॥ ४७ ॥

दरद (हिंगुल) के भेद, उसका शोधन तथा गुण :—दरद (हिंगुल) तीन प्रकार का होता है। चर्म्मार, शुकतुण्ड तथा हँसपाद ये उत्तरोत्तर गुणवान्

---

१. कालिका=कृष्णत्वम् । २ रक्तवर्गेण=रक्त-पीतादयो वर्गा अत्रैवोक्ताः ।

होते हैं। पुनः यह हिंगुल चूर्ण तथा पारद भेद से दो प्रकार का होता है ॥ ४६-४७ ॥

गोमांसे माहिषे मूत्रे दध्यम्लतिलतैलयोः।
एकैकं त्रिदिनं पक्त्वा शिखिपित्तेन भावयेत् ॥ ४८ ॥
दरदं पातनायन्त्रे पातयेत् सलिलाशये।
सत्त्वं तु सूतसङ्काशं जायते नात्र संशयः ॥ ४९ ॥

हिंगुल को गो मांस, भैंस का मूत्र, खट्टा दही तथा तिल के तैल इनमें से एक-एक में तीन-तीन दिन तक पकाकर मोर के पित्त के साथ भावित करे और जल के किनारे (या नदी में) पातन यन्त्र में रखकर पातन करे। इससे हिंगुल का सत्व पारद के आकार का हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८-४९ ॥

लघुकन्दरसो म्लेच्छो हिङ्गुलं चूर्णपारदम्।
मणिरागजमस्यैव नाम चर्मारगन्धिकम् ॥ ५० ॥

लघुकन्द रस (हिंगुल) म्लेच्छ, हिंगुल चूर्ण पारद चर्मार गन्धिक तथा मणिरागज (हिंगुल) ये सब दरद के हि नाम हैं ॥ ५० ॥

तिक्तोष्णं हिङ्गुलं दिव्यं रसगन्धकसम्भवम्।
मेहकुष्ठहरं दिव्यं बलमेधाग्निदीपनम् ॥ ५१ ॥

पारद-गन्धक से उत्पन्न दिव्य हिंगुल तिक्तरस वाला तथा उष्ण होता है। यह लोहकुष्ठ को दूर करनेवाला, दिव्य, बल, मेधावर्द्धक तथा जाठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला है ॥ ५१ ॥

किमत्र चित्रं दरदः सुभावितः, क्षीरेण मेष्या बहुशोऽम्लवर्गैः[1]।
सितं सुवर्णं बहुघर्मतापितं, करोति साक्षाद्वरकुङ्कुमप्रभम् ॥ ५२ ॥
॥ इति दरदशुद्धिः ॥

यह कोई आश्चर्य नहीं है कि भेड़ का दूध तथा अम्ल वर्ग के द्रव्यों से अनेक बार अच्छी तरह भावित दरद (हिंगुल), सफेद-स्वर्ण को साक्षात् तीव्र धूप में तपाये हुए उत्तम केशर की प्रभा के सदृश बना देता है ॥ ५२ ॥

॥ दरद शुद्धि समाप्त ॥

वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति।
घृष्टन्तु गैरिकच्छायं स्रोतोजं[2] सुरवन्दिते ॥ ५३ ॥

स्रोतोऽञ्जन का लक्षण तथा शोधनविधि :—हे देववन्दित पार्वति ! वल्मीक शिकर के आकार सदृश, काटने पर नीलकमल की द्युति के समान तथा घिसने पर गेरु के समान स्रोतोऽञ्जन होता है ॥ ५३ ॥

---

१. एकादशाक्षरः। अन्ये पादा द्वादशाक्षराः।
२. स्रोतोऽञ्जनम्-स्रोतोऽञ्जम् सुरमा।

गोशकृद्रसमूत्रेषु घृतक्षौद्रवसासु च।
भावितं बहुशस्तच्च क्षिप्रं बध्नाति सूतकम् ॥ ५४ ॥

॥ इति स्रोतोऽञ्जनशुद्धिः ॥

॥ इत्यष्टमहारसशुद्धिः॥

गाय के गोबर का रस, मूत्र, घृत, मधु तथा वसा में स्रोताऽञ्जन अनेक बार भावित करने पर शुद्ध हो जाता हैं तथा वह पारद को अवश्य ही बांधता है ॥ ५४ ॥

॥ स्रोतोऽञ्जन शुद्धि समाप्त ॥

एवं महारसाः प्रोक्ताः शृणुष्वोपरसान् प्रिये! ॥ ५५ ॥
गन्धकस्तालकः शिला सौराष्ट्री खग गैरिकम्।
राजावर्त्तश्च कङ्कुष्ठम् अष्टा उपरसाः स्मृताः ॥ ५६ ॥

उपरस के नाम तथा भेद :—हे प्रिये! मैंने इस प्रकार महारसों को बताया। अब तुम उपरसों को सुनो। गन्धक, हरिताल, मनःशिला सौराष्ट्री, खग (अभ्रक), गैरिक (स्वयं गैरिक), राजावर्त तथा कङ्कुष्ठ ये आठ उपरस कहे गये हैं ॥ ५५-५६ ॥

श्वेतद्वीपे पुरा देवि! सर्व्वरत्नविभूषिते।
सर्व्वकाममये रम्ये तीरे क्षीरपयोनिधेः ॥ ५७ ॥
विद्याधरीभिर्मुख्याभिरङ्गनाभिश्च भूषिते।
सिद्धाङ्गनाभिस्त्विष्टाभिस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥ ५८ ॥
देवाङ्गनाभिरन्याभिः क्रीडिताभिः पुरा प्रिये।
गीतनृत्यैर्विचित्रैश्च वाद्यैर्नानाविधैस्तथा ॥ ५९ ॥
एवं संक्रीडमानायास्तवाऽभूत् प्रसृतं रजः।
तद्रजोऽतीव सुश्रोणि! सुगन्धि सुमनोहरम् ॥ ६० ॥
रजसश्चातिबाहुल्यात् वासस्ते रक्ततां [1]ययौ।
तत्र त्यक्त्वा तु तद्वासः सुस्नाता क्षीरसागरे ॥ ६१ ॥
वृता देवाङ्गनाभिस्त्वं सुरैश्चापि पुरं गता।
ऊर्मिभिस्ते रजोवस्त्रं नीतं मध्ये पयोनिधेः ॥ ६२ ॥
एवं ते शोणितं भद्रे प्रविष्टं क्षीरसागरे।

---

१. त्रैकालिकप्रत्यक्षवतो देवस्य 'ययौ' इति भूताऽनद्यतनपरोक्षकालिकक्रियावाचकपदप्रयोगोनो नौचितीं भजते, रक्ततां गतम्—इति तु समुचितम्।

क्षीराब्धिमथने चैतदमृतेन सहोत्थितम्।
निजगन्धेन तान् सर्व्वान् हर्षयेद्देवदानवान् ॥ ६३ ॥
ततो देवगणैरुक्तं गन्धकाख्यो भवत्वयम् ॥ ६४ ॥
[1]रसस्य बन्धनार्थाय जारणाय भवत्वयम्।
ये गुणाः पा दे प्रोक्तास्ते चैवात्र भवन्त्विति ॥ ६५ ॥
इति देवगणैः प्रीतैः पुरा प्रोक्तं सुरेश्वरि !।
तेनायं गन्धको नाम विख्यातः क्षितिमण्डले ॥ ६६ ॥

उपरसों में गन्धक की उत्पत्ति का वर्णन :—हे देवि बहुत दिन पहले सम्पूर्ण रत्नों से सुशोभित श्वेत दीप में सम्पूर्ण कामनामय विद्याधरी आदि मुख्य देवाङ्गनाओं से सुशोभित सुन्दर क्षीर सागर के तीर पर सिद्धों की स्त्री अभिष्ट अप्सराओं के समूह, क्रीड़ा करती हुई अन्य देवाङ्गनाओं के साथ तथा विचित्र प्रकार के नृत्य-गीत तथा अनेक प्रकार के वाद्यों के साथ तुम कीड़ा करती हुई रहती थी। वहाँ पर इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए तुम्हें रजः स्राव हो गया। हे सुन्दर श्रोणी वाली पार्वति ! वह रज अत्यधिक सुगन्धित तथा मनोहर था। रज के अधिक होने के कारण तुम्हारे वस्त्र रक्त वर्ण का हो गया। वहां पर तुम उस वस्त्र को छोड़ कर, क्षीर सागर में अच्छी तरह स्नान करने के बाद देवांङ्गनाओं तथा देवताओं से घिरी हुई सबसे आगे चली गई। तुम्हारा वह रजो वस्त्र लहरों के द्वारा क्षीर सागर के मध्य में पहुँच गया। हे भद्रे ! इस प्रकार तुम्हारा शोणित क्षीर सागर में प्रविष्ट हो गया और यह क्षीर सागर के मथन करने पर अमृत के साथ उत्पन्न हुआ। यह अपने गन्ध से उन सभी देव-दानवों को प्रसन्न किया। इसके बाद देवताओं ने कहा कि यह गन्धक नामक वाला हो जाय, और पारद के बन्धन तथा जारण के लिये होय। जो गुण पारद में कहे गये हैं वे गुण यहां पर गन्धक में भी हो जांय। हे सुरेश्वरि ! इस प्रकार प्रसन्न देवताओं ने पहले कहा उसी से पृथ्वीपर गन्धक नाम से प्रसिद्ध है ॥ ५७-६६ ॥

स चापि त्रिविधो देवि ! शुकचच्चुनिभो वरः।
मध्यमः पीतवर्णः स्याच्छुक्लवर्णोऽधमः प्रिये ॥ ६७ ॥

गन्धक के भेद:—हे देवि ! वह गन्धक तीन प्रकार का होता है। शुक के चोंच के समान वर्ण वाला गन्धक उत्तम होता है, पीत वर्ण का गन्धक मध्यम, तथा श्वेत वर्ण का गन्धक अधम होता है ॥ ६७ ॥

---

१. रसस्य=पारदस्य,।

करञ्जैरण्डतैलेन द्रावयित्वा[१]जदुग्धके।
सिञ्चेदुन्मत्तनिर्यासे त्रीन् वारांस्तं पृथक् पृथक् ॥ ६८ ॥
ज्वालिनीबीजचूर्णेन मत्स्यपित्तैश्च भावयेत्।

गन्धक को शोधन विधि :—गन्धक को करञ्ज तैल तथा रेड़ी तैल में पिघला कर बकरी का दूध तथा धतूरे के रस में अलग अलग तीन बार सींचे और ज्वलिनी बीज चूर्ण (चिलक बीज चूर्ण) तथा मछली के पित्त के साथ भावित करे ॥ ६८½ ॥

भृङ्गाम्भसा वा सप्ताहं भावितः क्षालितोऽम्भसा ॥ ६९ ॥
तापितो बदराङ्गारैः घृताक्ते लोहभाजने।
आवार्त्तितश्च मृद्वग्नौ घृताक्ते—कर्पटोपरि ॥ ७० ॥
क्षिप्रं भृङ्गस्य निर्यासे क्षालितो गन्धको हितः। ७१ ॥

अथवा :—गन्धक को भृंगराज के रस में एक सप्ताह भावित कर जल से प्रक्षालन करे। इस के बाद घृत युक्त लोहे के पात्र में रख कर बैर की लकड़ी के आग से मन्द आंच में तपाये और घृत लिप्त कपड़े के ऊपर गिरा दे। तदन्तर शीघ्र ही भृंगराज के रस से ही प्रक्षालन करे। इससे गन्धक हितकारक हो जाता है ॥ ६९-७१ ॥

गन्धको हि स्वभावेन रसरूपः स्वरूपतः।
गन्धकं शोधयेत् क्षीरे शृङ्गवेररसे तथा ॥ ७२ ॥
रसे च भृङ्गराजस्य निम्बुकस्य रसे तथा।
शोधितः सप्तवाराणि गन्धको जायतेऽमलः ॥ ७३ ॥

॥ इति गन्धकशुद्धिः ॥

गन्धक स्वभाव तथा स्वरूप से रस रूप (पारद के समान) होता है। दूध, अदरक का रस, भृंगराजका रस तथा निम्बुके रसमें सातवार शोधन किया हुआ गन्धक निर्मल हो जाता है ॥ ७२-७३ ॥

॥ गन्धक शुद्धि समाप्त ॥

तालकः पटलः पिण्डो द्विधा तत्राऽऽद्य उत्तमः।
कुष्माण्डे तु शतं वारान् तालकं स्वेदयेद्बुधः ॥ ७४ ॥

हरताल के भेद तथा उसकी शोधन विधि :—हरताल दो प्रकार का होता है, पटल तथा पिण्ड। इनदोनों में पहला 'पटल' हरताल उत्तम होता है।

१. अजाया दुग्धकमिति समासे, 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलं' मिति-ह्रस्वः छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति-इति सिद्धान्तात् पार्वतीपरमेश्वरसम्बादवात्-सूत्रत्वम्, छन्दस्त्वं वा।

कुष्माण्ड के रस में बुद्धिमान् वैद्य हरताल को सौ बार स्वेदन करे ॥ ७४ ॥

स्नुक्क्षीरकटुकालाबु-रसयोः सप्तधा पृथक ।
तिलसर्षपशिग्रूणि लाक्षा च लवणं गुडः ।
टङ्कणं च युतैर्ह्येतैः तालकं भूधरे द्रवेत् ॥ ७५ ॥

सेहुड़ का दूध तथा कड़वी लौकी के रस में अलग-अलग सात सात बार भावित कर तिल, सरसो, सहिजन लाखा सेन्धा नमक, गुड़ तथा सुहागा इन सबों को मिलाकर हरताल को भूधर यन्त्र में द्रवित करे ॥ ७५ ॥

व्याधिघातफलक्षारं मधुकूष्माण्डकं तथा ।
द्रवैः पुनर्नवोद्भूतैः सप्ताहं मर्दयेद्बुधः ॥ ७६ ॥
दत्वा पादांशकं सर्वं ततः पातनयन्त्रके ।
दद्यात् पुटं गजाकारं पतेत् सत्त्वं सुतालकात् ॥ ७७ ॥

॥ इति तालकशुद्धिः ॥

व्याधिघात (अमलतास) के फल का क्षार तथा मोठा कोहड़ा का रस तथा पुनर्नवा के रस के साथ बुद्धिमान् वैद्य एक सप्ताह तक हरताल को मर्दन करे और इसके बाद इन सबों की चौथाई भाग मिलकर पातन यन्त्र में पुट दे । इस प्रकार अच्छे हरताल से गज के आकार का सत्व निकलता है ॥ ७६-७७॥

॥ तालक शुद्धि समाप्त ॥

रक्ता शिला[1] तु गोमांसे लुङ्गाम्लेन विपाचिता ।
(त्रिपुष्पेण पृथग्भाव्या शिला तालकवद्द्रवेत् ।)
तां रक्तपीतपुष्पाणां रसैः पित्तैश्च भावयेत् ॥ ७८ ॥

॥ इति शिलाशुद्धिः ॥

मनः शिला का शोधन प्रकार :—लालमनःशिला को गाय के मांस में विजोरा निम्बु के रस के साथ पकाकर त्रिपुष्प (तीन रंग वाले सफेद, लाल तथा पीले पुष्प) के रसके साथ अलग-अलग भावित करे । इससे मनः-शिला हरताल की तरह द्रव हो जाती है । उस मनःशिला को रक्त तथा पीता वर्षा के पुष्पों के रस एवं पित्त के साथ भावित करे ॥ ७८ ॥

॥ शिला शुद्धि समाप्त ॥

सिता कृष्णा च सौराष्ट्री[2] चूर्णखण्डात्मिका च सा ॥ ७९ ॥
गोपित्तेन शतं वारान् सौराष्ट्रीं भावयेत्ततः ।
धमित्वा पातयेत् सत्त्वं क्रामणं चातिगुह्यकम् ॥ ८० ॥

॥ इति सौराष्ट्रीशुद्धिः ॥

सौराष्ट्रिका के भेद तथा उसकी शोधन विधि :—सफेद तथा काले वर्ण की

---

१. शिला=मनः शिला । २. सौराष्ट्री=तुवरी ।

और चूर्ण के समान "सौराष्ट्री" होती हैं। सौराष्ट्री (गुजरात की मिट्टी) को गाय के पित्त के साथ सौ बार भावित करे और उसके बाद उसको फूंक कर अत्यन्त गुह्य (गोप्य) क्रामण सत्व को निकाल ले ॥ ७९-८० ॥

॥ सौराष्ट्री शुद्धि समाप्त ॥

काशीसं त्रिविध शुक्लं कृष्णं पीतमिति प्रिये ! ॥ ८१ ॥
काशीसं चूर्णयित्वा तु कास-मर्दरसेन च ।
राजकोशातकीतोयैः पित्तैश्च परिभावयेत् ॥ ८२ ॥

॥ इति काशीसशुद्धिः ॥

कासीस का भेद तथा उसकी शोधन विधि :—हे प्रिये ! कासीस तीन प्रकार का होता है। सफेद काला तथा पीला। कासीस को चूर्णकर कासमर्द (कसौंदो) का रस गज कोशातिकी (पीली तरोई) के रस तथा पित्त के साथ भावित करे। इससे कासीस की शुद्धि हो जाती है ॥ ८१-८२ ॥

॥ कासीस शुद्धि समाप्त ॥

गैरिकं त्रिविधं रक्तहेमकेवलभेदतः ।
रक्तवर्गरसक्राथपित्तैस्तद्भावयेत् पृथक् ॥ ८३ ॥
अनेन क्रमयोगेन गैरिकं विमलं धमेत् ।
क्रमात् सितञ्च रक्तञ्च सत्त्वं पतति शोभनम् ॥ ८४ ॥

॥ इति गैरिकशुद्धिः ॥

स्वर्णगैरिक (गेरु) के भेद तथा उसकी शोधन विधि :—स्वर्णगैरिक रक्त, हेमवर्ण तथा केवल (सितवर्ण) भेद से तीन प्रकार का होता है। रक्त वर्ग के द्रव्यों के रस तथा क्वाथ और पित्त से अलग-अलग स्वर्णगैरिक को भावित करे। इस प्रकार विमलगैरिक को फूंके। वह वर्णक्रम के अनुसार सित, तथा रक्त वर्ण का सुन्दर सत्व निकलता है। ८३-८४ ॥

॥ गैरिक शुद्धि समाप्त ॥

राजावर्त्तो द्विधा देवि ! गुलिका चूर्णभेदतः ॥ ८५ ॥

राजवर्त के भेद तथा उसकी शोधन विधि :—गुलिका तथा चूर्ण भेद से राजावर्त दो प्रकार का होता है ॥ ८५ ॥

तच्चूर्णं देवदेवेशि ! महिषीक्षीरसंयुतम् ।
विपचेदायसे पात्रे गोघृतेन विमिश्रितम् ॥ ८६ ॥

हे देव देवेशि ! राजवर्त चूर्ण को भैंस के दूध के साथ गाय का घी मिलाकर लोहे की कड़ाही में पकावें। ॥ ८६ ॥

तच्चूर्णितं सुरेशनि ! कुनटी[1]घृतमिश्रितम् ।

---

१. कुनटी=मनः शिला ।

[1]सौभाग्यपञ्चगव्येन पिण्डीबद्धं तु कारयेत् ।
धमितं खादिराङ्गारैः सत्त्वं मुञ्चति शोभनम् ॥ ८७ ॥

॥ इति राजावर्त्तशुद्धिः ॥

हे सुरेशानि । राजावर्त का चूर्ण केवटी मोथा तथा घृत मिलाकर सुहागा तथा पञ्चगव्य (गाय का दूध, दही, घी, गोबर तथा मूत्र) के साथ मर्दन कर पिण्ड के आकार का बना ले और खैर की लकड़ी के अंगारसे पकावे इस प्रकार पकाने से वह सुन्दर सत्व छोड़ता है ॥ ८७ ॥

॥ राजावर्त शुद्धि समाप्त ॥

कङ्कुष्ठं विद्रुमच्छायं तच्च सत्त्वमयं प्रिये ॥ ८८ ॥

॥ इति कङ्कुष्ठम् ॥

कंकुष्ठ शोधन विधि :—हे प्रिये जो कंकुष्ट विद्रुम का आकार का होता है वह सत्वमय होता है ॥ ८८ ॥

॥ कंकुष्ठ निरूपण समाप्त ॥

सूर्य्यावर्त्तोदककणा-वह्निशिग्रुशिफारसैः ।
कदलीकन्दसारेण वन्ध्याकोशातकीरसैः ॥ ८९ ॥
काकमाची देवदाली वज्रकन्दरसैस्तथा ।
एभिर्व्यस्तैः समस्तैर्वा क्षाराम्लस्नेहसैन्धवैः ।
महारसाश्चोपरसाः शुद्धिमायान्ति भाविताः ॥ ९० ॥

महारस तथा उपरस का शोधन एवं सत्वपातनविधि :— सूर्यावर्त (गजपीपर), उदककणा (जलपीपर), चित्रक, सहिजन की जड़, केला का कन्द, वांझ नेनुआ, काकमाची (मकोय) तथा देवदाली (बदाल वांझी) इन सबों के अलग-अलग रस से तथा सबों के मिलित रस से अथवा क्षारवर्ग, अम्ल-वर्ग, स्नेह वर्ग तथा सेन्धा नमक के साथ भावित होने पर महारस तथा उपरस शुद्ध हो जाते हैं ॥ ८९-९० ॥

लाक्षालवणसौभाग्य-धूमसारकटुत्रयम् ।
शिग्रुमूल-मधूच्छिष्ट पथ्यागुग्गुलुधातवः ॥ ९१ ॥
सर्जिकासर्जनिर्यास-पिण्याकोर्णासमन्वितम् ।
पारावतमलक्षुद्र-मत्स्यद्रावकपञ्चकम् ॥ ९२ ॥
तिलसर्षपगोधूम-माषनिष्पावचिक्कसम् ।
छागक्षीरेण संयुक्तं वज्रपिण्डी तु कीर्तिता ॥ ९३ ॥

१. सौभाग्यं=टङ्कणम् ।

अनया वज्रपिण्डया तु पञ्च-माहिषयुक्तया ।
महारसा [1]मोदितास्तु पञ्चगव्येन भाविताः ॥ ९४ ॥
कोष्ठे खराग्निना ध्माताः सत्त्वं मुञ्चन्ति सुव्रते ।
एवं शिलाभ्यो जीवेभ्यो मृद्भ्यः सत्त्वं प्रजायते ॥ ९५ ॥

॥ इत्युपरसा अष्टौ ॥

लाख, सेन्धा नमक, सुहागा, गृहधूम, कटुलय (सोंठ, पीपर, मरिच), सहिजन की जड़, मोम, हेर्ट, गुग्गुल, धातु (गेरु), सज्जोक्षार, सरज वृक्ष का गोंद, पिण्याक (खल्ली), ऊन, पारावतमल (कबूतर का विष्ठा), क्षुद्रमत्स्य (छोटी मछलीं), द्रावक पञ्चक (गुञ्जा, टंकण, मधु, घी गुड़), तिल, सरसों, गेहूँ उड़द, निष्पाव (बोड़ा) चिक्कस (यव का चूर्ण) इन सबों को बकरी के दूध के साथ मर्दन कर बनाई हुई पिण्डी "वज्र पिण्डी" कही गई है ॥९२-९३॥

हे सुव्रते ! पञ्चमाषि (भैंस का दूध, दही, घी, मल तथा मूल) से युक्त पूर्वोक्त वज्र पिण्डी से मर्दित तथा पञ्चगव्य (गाय का दूध, दही, घी, गोबर तथा मूत्र) से भावित महारस (आठ महारस) भट्टी में रखकर तेज अग्नि से पकाने पर सत्व को छोड़ते हैं। इसी प्रकार पत्थर, जीव तथा मिट्टी से सत्व निकलता है ॥ ९४-९५ ॥

॥ उपरस शोधन समास ॥

एवं चोपरसाः प्रोक्ताः शृणु लोहान्यतः परम् ॥ ९६ ॥
सुवर्णं रजतं ताम्रं तीक्ष्ण वङ्गं भुजङ्गमम् ।
लोहन्तु षड्विधं तच्च यथा पूर्वं तदक्षयम् ॥ ९७ ॥
तत्रादितः सुरेशानि ! सारं लोहद्वयं स्मृतम् ।
साधारणे तीक्ष्णशुल्वे वङ्गनागौ तु पूतिकौ ॥ ९८ ॥

लोह के भेद तथा नाम :— इस प्रकार उपरस कहा गया। इसके बाद लोहको कहा जा रहा है उसको सुनो। सुवर्ण, रजत, ताम्र, तीक्ष्ण, वंग तथा भुजङ्गम (नाग) इस प्रकार लोह छः प्रकार का होता है। वह यथा पूर्व अक्षय होता है। अर्थात् नाग से वंग, वंग से तीक्ष्ण, तीक्ष्ण से ताम्र, ताम्र से रजत, रजत से स्वर्ण अक्षय (नाश रहित) होता है।

हे सुरेशानि ! वहाँ पर लोह दो प्रकार का है। साधारण तथा पूतिक। साधारण लोह तीक्ष्ण तथा ताम्र और पूतीक लोह वंग तथा नाग है ॥ ९६-९८ ॥

रसजं क्षेत्रजं चैव लोहसङ्करजं तथा ।

---

१. मोदिताः=मोदकीकृताः ।

२. पित्तलादेःसंयुक्तद्रव्यत्वेन जसदस्य तीक्ष्ण (लोह) भेदत्वेन षडिविधत्वम् ।

त्रिविधं जायते हेम चतुर्थं नोपलभ्यते ॥ ९९ ॥
रक्ताभं पीतवर्णं च द्विविधं देवि ! काञ्चनम् ।
दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम् ॥ १०० ॥
सगौरवं मृदु स्निग्धं तार-शुल्वविवर्जितम् ।
हेम षोडशवर्णाढ्यं शस्यते देहलोहयोः ॥ १०१ ॥

स्वर्ण का उत्पत्ति तथा रंग के आधार पर भेद :—स्वर्ण पारद से उत्पन्न, खान से उत्पन्न तथा लौह के संयोग से उत्पन्न तीन प्रकार का होता है । चौथे प्रकार का स्वर्ण नहीं मिलता है । हे देवि ! रक्तवर्ण तथा पोत वर्ण वर्ण भेद से दो प्रकार का होता है । स्वर्ण जलाने पर रक्त वर्ण काटने पर श्वेत वर्ण तथा घिसने पर केशर के वर्ण सदृश होता है । स्वर्ण भारी, मृदु, स्निग्ध, चांदी तथा ताम्र से रहित होता है । सोलह वर्ण से युक्त स्वर्ण देह तथा लोह के लिये उत्तम है ॥ ९९-१०१ ॥

मृत्तिका मातुलुङ्गाम्लैः पञ्चवासरभाविता ।
सभस्मलवणा हेम शोधयेत् पुटपाकतः ॥ १०२ ॥

सोना शुद्ध करने की विधि :—मृत्तिका तथा बिजौरा निम्बु के रस के साथ भावित कर भस्म तथा सेन्धा नमक मिलाकर पुटपाक के द्वारा स्वर्ण को शुद्ध करे ॥ १०२ ॥

शुक्लञ्च तारकृष्णञ्च द्विविधं रजतं प्रिये ।
गुरु स्निग्धं मृदु श्वेतं तारमुत्तममिष्यते ॥ १०३ ॥
नागेन क्षारराजेन द्रावितं शुद्धिनिच्छति ।
तारं त्रिवारं निक्षिप्तं पिशाची तेलमध्यतः ॥ १०४ ॥

रजत के भेद तथा उसके शोधन विधि :—हे प्रिये ! तारशुक्ल तथा तार-कृष्ण भेद से रजत दो प्रकार का होता है । गुरु, स्निग्ध, मृदु तथा श्वेत रजत (चांदी) उत्तम होता है । पिशाची, (जटामांसी) के तैल के मध्य में रजत को तीन बार भावित कर नाग तथा क्षारराज (टंकणक्षार) के साथ गलाने से शुद्ध हो जाता है ॥ १०२-१०४ ॥

ताम्रं च द्विविधं प्रोक्तं रक्तं कृष्णं सुरेश्वरि ! ।
घनघातसहं स्निग्धं रक्तपत्रं मृदूत्तमम् ॥ १०५ ॥

ताम्र के भेद तथा उसके शोधन की विधि :—हे सुरेश्वरि ! ताम्र दो प्रकार का होता है लाल तथा काला । घनघात सह (हथौड़ा के चोट को सहन करने वाला), स्निग्ध, मृदु तथा लाल वर्ण का ताम्रपत्र उत्तम होता है ॥ १०५ ॥

स्नुह्यर्कक्षीरलवणक्षाराम्लपरिलेपितम् ।
ताम्रपत्रं च निर्गुण्डी-रसमध्ये तु ढा[1]लयेत् ॥ १०६ ॥

सेहुड़ तथा मदार का दूध, सेन्धानमक, टंकणक्षार, तथा अम्ल (इमली) इन द्रव्यों से ताम्र पत्र को लिप्त कर निर्गुण्डी के रस में ढाल दे। इससे ताम्र शुद्ध हो जाता है ॥ १०६ ॥

[2]रोहणं वाजरं चैव तृतीयं चपलालयम् ।
इति तीक्ष्णं त्रिधा तच्च कान्तलोहमिति स्मृतम् ॥ १०७ ॥
नीलं कृष्णमिति स्निग्धं सूक्ष्मधारमयः शुभम् ।

तीक्ष्ण लौह के भेद तथा उसके शोधन की विधि :—रोहण, बाजर तथा चपलालय ये तीक्ष्ण लौह के तीन भेद हैं। इसी को कान्त भी कहते हैं। नील तथा कृष्णवर्ण का स्निग्ध तथा सूक्ष्म धार वाला शुभ (उत्तम) होता है। १०७½ ॥

गुडूची हंसपादी च नक्तमालः फलत्रयम् ॥ १०८ ॥
गोपालकी गोरसना तुम्बुरुर्लोहनिघ्नकः ।
एषां रसे ढालयेत्तत् गिरिदोषनिवृत्तये ॥ १०९ ॥

गुडुची, हंसपादी (गोधापदी-गोधावती), नक्तमाल (पूतिकरञ्ज), फलत्रय (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), गोपालकी (नागबला), गोरसना (गोजिह्वा) तथा तुम्बुरु (तुम्बल) ये सब लोहा को मारनेवाले हैं। इन सबों के रस में तीक्ष्ण लोहा को (गरम कर) गिरि दोष को दूर करने के लिये ढालें ॥ १०८-१०९ ॥

त्रपु च द्विविधं ज्ञेयं श्वेतकृष्णविभेदतः ।
श्वेतं लघु मृदु स्निग्ध-मुत्तमं वङ्गमुच्यते ॥ ११० ॥

वंग तथा नाग के भेद तथा शोधन विधि :—वंग शुक्ल तथा कृष्ण भेद से दो प्रकार का होता है। श्वेत, लघु मृदु तथा स्निग्ध वंग उत्तम होता है ॥११०॥

नागस्त्वेकविधो देवि ! शीघ्रद्रावी मृदुर्गुरुः ॥ १११ ॥

नाग एक प्रकार का होता है। हे देवि ! वह शीघ्र गलने वाला, मृदु तथा भारी होता है ॥ १११ ॥

महिषस्यास्थिचूर्णेन वापात्तन्मूत्रसेचनात् ।
वङ्गं शुद्धं भवेत्तद्वत् नागो नागास्थिमूत्रतः ॥ ११२ ॥

---

१. ढालयेदिति प्रयोगेण—ढल=पतने-इति धातुः कल्पते भ्वादेराकृति—गणत्वात् ।

२. रोहणं राजकञ्चैव, तृतीयञ्च पठोलकम्—इति पाठान्तरम् ।

महिष (भैंस) अस्थि चूर्ण के साथ मिलालर उसके मूत्र से सींचने (धोने) से वंग शुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार नाग हाथी की हड्डा के चूर्ण के साथ मिलाकर हाथी के मूत्र से सींचने पर शुद्ध हो जाता है ।। ११२ ।।

गौरीफलानि क्षुरको रजनी तुम्बुरूणि च ।
कुबेराक्षस्य बीजानि मल्लिकायाश्च सुन्दरि ! ।। ११३ ।।
पलाशशुष्कापामार्गक्षारस्नुक्क्षीरयोगतः ।
सप्तधा परिवापेन शोधयन्ति भुजङ्गमम् ।। ११४ ।।
स्नुहीक्षीरसमायोगात् वङ्गं चावापयेत्ततः ।। ११५ ।।

गौरी फल, क्षुरक (तिलक वृक्ष), हल्दी, तुम्बरु, कुबेराक्ष (लता करञ्ज) के बीज तथा मल्लिका (मोगरा) के बीज, पलास सूखा अपामार्ग, टंकणक्षार, तथा सेंहुड़ का दूध इन सबों में सात बार डुबाने से नाग की शुद्धि हो जाती है। सेंहुड़ के दूध के साथ में वंग को भी डुबाये। इससे वंग की शुद्धि हो जाती है ।। ११३-११५ ।।

स्नुह्यर्कक्षीरहलिनी-कञ्चुकीकन्दचित्रकैः ।
गुञ्जाकरञ्जधुत्तूर - हयगन्धाङ्घ्रितालकै ।। ११६ ।।
नक्तमालेङ्गुदीशक्र - वारुणीमूललंयुतैः ।
पिष्टैर्माहिषतक्रे तु सप्तरात्रोषितैस्ततः ।
निषेकः सर्व्वलोहानां मलं हन्ति न संशयः ।। ११७ ।।

सेंहुड़ तथा मदार का दूध, हलिनी (विष लांगली-कनेर का भेद), कञ्चुकी (क्षीरकञ्चुकी), कन्द (सूरणकन्द), चित्रक, गुञ्जा, करञ्ज, धतूर, तथा अश्वगन्धा इन सबों की अंघ्रिताल (जड़) तथा नक्तमाल (पूति करञ्ज), इङ्गुदी, इन्द्र वारुणीइ न सबों की जड़ पीसकर पीठी बनावे तथा सात दिन तक उसमें सभी लौहों को रखें। इसके बाद भैंस को मठा में निषेक करे (डुबो दे), यह निषेक सभी लौहों के मल को नाश करता है। इसमें सन्देह नहीं है ।। ११६-११७ ।।

देवदालीफलरजः-सनैयारसैर्भावितं मुहुः ।
द्रावयेत् कनकं वापात् भूयो न कठिनं भवेत् ।। ११८ ।।
अखिलानि च सत्त्वानि द्रावयेत्तत्प्रभावतः ।। ११९ ।।

सोने का द्रव बनाने की विधि :—देवदाली (घघर वेली) का चूर्ण तथा उसी के रस से ही बार-बार भावित कनक के ऊपर प्रक्षेप करने से कनक गल जाता है तथा कभी भी कठिन नहीं होता है। सभी द्रव्य उसके प्रभाव से द्रवित हो जाते हैं ।। ११८-११९ ।।

समांशं सुरगोपस्य सुरदाल्याश्च तद्रजः।
आवापात् कुरुते देवि! कनकं जलसन्निधम् ॥ १२० ॥

इन्द्रगोप (वीर बहूटी) तथा सुरदाली (घघर बेल, सनैया) समभाग इन सबों का चूर्ण प्रक्षेप करने (प्रक्षेप कर तपाने) से स्वर्ण जल के समान द्रव हो जाता है ॥ १२० ॥

मण्डूकास्थिवसाटङ्कहयलालेन्द्रगोपकैः ।
प्रतिवापेन कनकं सुचिरं तिष्ठति द्रुतम् ॥ १२१ ॥

मण्डूक (मेढ़क) की अस्थि तथा वसा, टंकण, हयलाला (घोड़े का लार) तथा वीर वहूटी इन सबों का प्रतिवाप (प्रक्षेप) करने से कनक द्रवीभूत होकर बहुत देर तक ठहरता हैं ॥ १२१ ॥

त्रिःसप्तकृत्वो गोमूत्रे ज्वालिनोभस्म गालितम्।
शोषयेत्तस्य वापेन तीक्ष्णं मूषागतं द्रवेत् ॥ १२२ ॥

तीक्ष्ण लौह की द्रावण विधि :—गोमूत्र में तीक्ष्ण लोह को एक्कीस बार स्वेदन कर ज्वालिन (मूर्वा) की भस्म मिलाकर सुखा ले। इसके बाद मूषा में में रखकर उसका प्रतिवाप देने से तीक्ष्ण लौह द्रव हो जाता है ॥ १२२ ॥

त्रिः सप्तकृत्वो निचुल-भस्मना भावितेन तु।
केतक्यास्तु रसैस्तीक्ष्णम आवापाद्द्रवतां व्रजेत् ॥ १२३ ॥

निचुल (बड़हड़) के भस्म के साथ एक्कीस वार भावित करने से तथा केतकी के रस का प्रक्षेप देने से तीक्ष्ण लौह द्रव हो जाता है ॥ १२३ ॥

पक्कधात्रीफलरसैः शङ्खे सप्ताहभावितम्।
पुनः कञ्चुकितोयेन भावितंसप्तवासरम् ॥ १२४ ॥
शरावयुगलान्तःस्थं सुदृढं परिधामितम्[1]।
तत्तीक्ष्णचूर्णं देवेशि! रसरूपं प्रजायते ॥ १२५ ॥

हे देवि! पके हुए आंवला फल के रस से शंख में एक सप्ताह भावित किया हुआ तथा पुनः कञ्चुकी (क्षीर कञ्चुकी) के रस से सात बार भावित किया हुआ और दो शराव के मध्य में रखकर अच्छी तरह तीव्राग्नि में फूंका हुआ वह तीक्ष्ण लौह का चूर्ण द्रव हो जाता है ॥ १२४-१२५ ॥

तालकं गन्धपाषाण-शिलामाक्षिकगैरिकम्।
काशीसं खण्डसौराष्ट्री तुत्थमभ्रकमेव च ॥ १२६ ॥
श्वश्रृगालतरक्षूणां कुक्कुटस्य मलं तथा।

---

१. घमादेशः सौत्रत्वात् सौत्रत्वञ्च शिवोक्तत्वात्।

मयूरगृध्रमार्ज्जारविष्ठा च समभागकम् ॥ १२७ ॥
भावयेत्त्रिः स्नुहीक्षीरैर्देवदालीरसेन च ।
तत्कल्कमष्टमांसेन लोहपत्राणि लेपयेत् ॥ १२८ ॥
धमेद् द्रुतं भवेल्लोहमेतैरेव निषेचयेत् ।

हरताल, गन्ध पाषाण (गन्धक), मैनसिल, स्वर्ण माक्षिक, गेरु, कसीस, खण्ड सौराष्ट्री (एक प्रकार की सौराष्ट्री मिट्टी) तूतिया, अभ्रक, कुक्कुर, शृगाल, तरक्षु (शृगाल विशेष) तथा मुर्गा का मल, मोर, गीध एवं बिल्ली का विष्ठा समभाग इन सबों को सेंहुड़ का दूध तथा देवदाली (घघर बेल) के रस से तीन बार भावित करे । इसके बाद आठ भाग कल्क से (लोह के अठगुना कल्क) लोह पत्रों को लेप लगा दे और फूंक दे तथा उन्हीं द्रव्यों से सींचें । इस से लोह द्रव हो जाता है ।। अर्थात् पिघल जाता है ॥ १२६-१२८½ ॥

अङ्कोलस्य तु मूलानि काञ्जिकेन प्रपेषयेत् ।
लोहलेपं ततो दद्यात् अग्निस्थं धारयेत् प्रिये ॥ १२९ ॥
पुनर्लेपं ततो दद्यात् परिच्छिन्ना रसेन तु ।
मत्स्यपित्तेन देवेशि ! वह्निस्थं धारयेत् प्रिये ! ॥ १३० ॥
पुनर्लेपं प्रकुर्व्वीत लाङ्गलीकन्दसम्भवम् ।
त्रिभिर्लेपैर्द्रुतं लोहं निर्म्मलं स्वच्छवारिवत् ॥ १३१ ॥

अङ्कोल की जड़ को काञ्जी के साथ पीसे और उसके कल्क से लोह पत्र के ऊपर लेप लगा दे और हे प्रिये ! उसको अग्नि में रख दे । इसके बाद फिर परिछिन्ना (गुड्ची) के रस से लेप लगाये और हे देवेशि ! पुनः मत्स्यपित्त का लेप लगाकर अग्नि में रखे । इसके बाद फिर लाङ्गली (कलिहारी-कनेर विशेष) की जड़ के कल्क से लेप करे । इस प्रकार तीन बार लेप करने से लोह पिघल कर निर्मल स्वच्छ जल की तरह हो जाता है ॥ १२९-१३१ ॥

चूर्णितं देवि ! कूर्म्मास्थि मेषशृङ्गं शिलाजतु ।
कुरुते प्रतिवातेन बलवज्जलवत् स्थिरम् ॥ १३२ ॥

हे देवि कछुआ की हड्डी, भेड़ की सींघ तथा शिलाजीत का चूर्ण प्रक्षेप करने से (द्रुत लौह) बलवान् जल की तरह स्थिर हो जाता है ॥ १३२ ॥

अर्कापामार्गमुसली निचुलं चित्रकं तथा ।
कदली प्रोतकी दाली क्षारमेषां तु साधयेत् ॥ १३३ ॥
गालयेन्माहिषे मूत्रे षड्वारान् सुरवन्दिते ! ।
आवापाद्द्रावयेतेतदभ्रसत्त्वादिजं रजः ॥ १३४ ॥

दन्तीदन्तो विशेषेण द्रावयेत् सलिवं यथा ॥ १३५ ॥

मदार, अपामार्ग, मुसली, बड़हर, चित्रक, केला, पोतकी (पोई-शाक) तथा दालो (देवदालो·घघर बेल). इन शवों का क्षार बनाये और भैंस के मूत्र में छः वार मिलाये। हे सुर वन्दिते ! इसके बाद यह आवाय (प्रक्षेप) करने से अभ्रक सत्व आदि चूर्ण को द्रव बना देता है। विशेष कर इसका आवाप (प्रक्षेप) हाथी के दांत को जल की तरह द्रव बना देता है ॥ १३३-१३५ ॥

रसेनोत्तरवारुण्याः प्लुतं वैक्रान्तजं रजः।
प्रतिवाषेन लोहानि द्रावयेत् सलिलोपमम् ॥ १३६ ॥

॥ इति लोहद्रावविधिः ॥

इन्द्रवारुणी के रस से भावित वैकान्त का चूर्ण प्रतिवाय (प्रक्षेप) करने से सभी लौहों को द्रव बना देता है ॥ १३६ ॥

॥ लोहद्राव विधि समाप्त ॥

रत्नानां द्रावणं वक्ष्ये गगनस्य द्रुतिं तया ॥ १३७ ॥

रत्नों के द्रावण को विधि :—रत्नों का द्रावण तथा अभ्रक की द्रुति कह रहा हूँ ॥ १३७ ॥

त्रिफला च त्रिकटुकं त्रिक्षारं [1]पटुपञ्चकम्।
बला चातिबला चैव तृतीया च महाबला ॥ १३८ ॥
अश्वगन्धा चवो नारी भूलता मातृवाहकः।
गोपेन्द्रमण्डली चैव [2]षड्बिन्दुर्द्विमुखी तथा ॥ १३९ ॥
वीरा सूरणकन्दश्च कञ्चुकी च पुनर्नवा।
स्नुह्यर्कोन्मत्तहलिनी पाठा चोत्तरवारुणी ॥ १४० ॥
अयस्कान्ती गोक्षुरश्च मृदुदूर्वाम्लबेतसम्।
शिलाजतु च सौवीरं विषगन्धकटङ्कणम् ॥ १४१ ॥
पृथग्दशपलं सर्वं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत्।
कुम्भद्वयं कुलत्थानां क्वाथेन तिनिशस्य[3] च ॥ १४२ ॥
क्वाथयेन्मृदुतापेन यावत् कुम्भाऽवशेषितम्।

---

१. पटुपञ्चकं लवणपञ्चकम्।

२. षड्विधा द्विमुखा स्तथा–इति शुद्धिपत्रस्थः पाठः। 'षड्बिन्दुर्द्विमुखी तथा' इति पुस्तकान्तरे।

३. तिमिरस्य च–इति पाठान्तरम्। तत्र–तिमिरः स्वनामप्रसिद्धः, तिनिशः = 'सानड'–रति प्रसिद्धः, भवाली–भीमताल—सविधे द्रष्टव्यो।

तेन क्वाथेन तच्चूर्णं भावयेदेकविंशतिम् ॥ १४३ ॥
रत्नानि तेन लिप्तानि तत्क्वाथस्थं धमेत् पुनः।
अहोरात्रेण तान्याशु द्रवन्ति सलिलं यथा ॥ १४४ ॥

॥ इति रत्नद्रावविधिः ॥

त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिक्षार (यवक्षार, सज्जोक्षार, टंकणक्षार), पटुपञ्चक (सामुद्र, विड़ सौवर्चल उद्भिद (खारी) तथा सेंधानमक), बरियार, अतिबला (कंघी), महाबला (गंगेरन), अश्वगन्धा, चव्य, नारी (अश्वबला), भूलता, (केंचुआ), मातृ वाहक (कीट विशेष), गोपेन्द्रमण्डली (वीर[1]बहूटी का झुण्ड), षड् बिन्दु (षड् बिन्दुकीट) द्विमुखी (जलौकाजोंक), वीरी (वीरवल्ली), सूरणकन्द कञ्चुकी (क्षीरकञ्चुकी), गदहपूरना, सेंहुड़, मदार, धत्तूर, हलिनी (विषलांगली-कनेर), पाढ़ल, इन्द्रवारुणी, कान्त लौह, गोखरु, मुलायम दूर्वा, अम्लवेत, शिलाजीत, सौवीराञ्जन, विष, गन्धक तथा सुहागा, इन सबों को अलग-अलग दशपल (४६६ ग्राम) लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावें। दो घड़ों में कुलत्थ (कुरथी) के क्वाथ को तिनिश (वञ्जुल वृक्ष) की लकड़ी से (क्वाथ्य द्रव्य से चौगुना या अठगुना जल मिलाकर क्वाथ करे और चतुर्थी शावशिष्ट क्वाथ ग्रहण करे) मृदु ताप द्वारा क्वाथ करे। जब एक घड़ा क्वाथ रह जाय तब उस क्वाथ से पूर्वोक्त चूर्ण को एक्कीस बार भावित करे इसके बाद उस भावित चूर्ण (कल्क) से लिप्त कर उसी के क्वाथ में रख कर फूंक दे। वे रत्न एक दिन-रात में शीघ्र ही जल की तरह द्रव हो जाते हैं ॥ १३८-१४४ ॥

॥ रत्न द्रावण विधि समाप्त ॥

अभ्रकादीनि लोहानि [2]द्रवन्ति ह्यविचारतः।
निर्म्मलानि च जायन्ते हरवीजोपमानि च ॥ १४५ ॥
मिलन्ति च रसेनाशु वह्निस्थान्यक्षयाणि च।
तैर्द्रुतैः स्पर्शमात्रेण क्षणाद्बध्येत सूतकः ॥ १४६ ॥

अभ्रक-आदि की द्रावणविधिः—पूर्वोक्त रत्नद्रावणविधि से निर्विघ्न अभ्रक-आदि लौह पिघल जाते हैं तथा पारद की तरह निर्मल हो जाते हैं। वे अग्नि में भी स्थिर रहने वाले एवं नष्ट न होने वाले पारद के साथ शीघ्र ही मिल जाते हैं! द्रुत इन द्रव्यों के साथ स्पर्श मात्र से ही क्षणमात्र में सूतक (पारद) बंध जाता है ॥ १४५-१४६ ।

'लोहाना' मारणं वक्ष्ये समाहितमनाः शृणु।

१. "रक्त क्षीरवती बिल्वदलोपम दलान्विता"। (र० का० धे०)
२. हरबीजम् = पारदः।

स्नुही क्षीरेण सिन्दूरं कनकं रजतं पुनः ॥ १४७ ॥
तेनैव माक्षिकं ताम्रमजाक्षीरेण गन्धकम् ।
स्तन्येन हिङ्गुलं तीक्ष्णं वङ्गतालपलांशकम् ॥ १४८ ॥
नागं शिलार्कक्षीरेण स्वच्छपत्रीकृतं प्रिये ! ।
मारयेत् पुटपाकेन निरुत्थं भस्म जायते ॥ १४९ ॥

लौहों की मारणविधिः—लोहों की मारण विधि को कहता हूँ सावधान मन से सुनो। सेंहुड़ के दूध के साथ सिन्दूर, स्वर्ण, रजत तथा उसी से माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक, रजतमाक्षिक) एक एक पल (५० ग्राम) तथा ताम्र, बकरी के दूध के साथ गन्धक, दूध के साथ हिंगुल, तीक्ष्ण लोह, बंग, हरताल, एक एक पल (५० ग्राम) मैनसिल तथा मदार के दूध के साथ स्वच्छ पत्र बनाये हुए नाग को पुटपाक के द्वारा मारण करे। हे प्रिये इस प्रकार मारण करने से निरुत्थ भस्म हो जाता है ॥ १४७-१४९ ॥

न सोऽस्ति [1]लोहमातङ्गोयं न गन्धककेसरी ।
निहन्याद्गन्धमात्रेण यद्वा माक्षिककेसरी ॥ १५० ॥
रसीभवन्ति लोहानि मृतानि सुरवन्दिते ! ।
हरन्ति रोगान् सकलान् रसयुक्तानि किं पुनः ।
शीलयान्नाशयन्त्येव बलीपलितरुग्जराः ॥ १५१ ॥

गन्धक की प्रशंसा—कोई भी ऐसा लौहमातङ्ग (हाथी सदृश मदोन्मत लौह) नहीं है जिसको गन्धक केशरी (गन्धक रूपी सिंह) न मारे। अर्थात् सभी लौहों को गन्धक के द्वारा मारण हो जाता है। वह गन्ध मात्र से ही सभी धातुओं को मारण कर देते हैं। अथवा माक्षिक केशरी (माक्षिक रूपी सिंह), सभी लौहों का मारण कर देता है। हे सुरवन्दिते ! मृत सभी लौह रसीभूत (रसायन) हो जाते हैं। ये लौह सभी रोगों को दूर करते है। फिर रसयुक्त (रसायन) होने पर क्या सन्देह है ॥ १५०-१५१ ॥

वज्रमाक्षिकतीक्ष्णाभ्रं शस्यते देहकर्मणि ।
नागं वङ्गं सुवीरञ्च द्रव्यकर्म्मणि योजयेत् ॥ १५२ ॥
परिबालन्तु यल्लोहं तथाच मलयोद्भवम् ।
एतल्लोहद्वयं देवि ! विशेषाद्देहरक्षणम् ॥ १५३ ॥

वज्र, माक्षिक-आदि का विशेष प्रयोजन—वज्र (हीरा) माक्षिक (स्वर्ण-

---

१. सुवर्णादिधातुषु मातङ्गत्वाऽऽरोपः—गन्धक-माक्षिकयोः केसरित्वाऽऽरोपार्थः तथा च—परम्परितं रूपकम् । केसरिणो मातङ्ग-मारकत्वं प्रसिद्धमेव ।

माक्षिक तथा तार माक्षिक), लौह तथा अभ्रक शरीर के लिये प्रयोग करने में श्रेष्ठ है। नाग, वंग तथा सौवीरांञ्जन द्रव्यकार्य में प्रयोग करे। जो परिवाल (बाल लौह या प्रवाल) तथा मलयाचल से उत्पन्न लौह, ये दोनों लौह हे देवि ! विशेषकर शरीर की रक्षा के लिये हैं॥ १५२–१५३॥

रागं महारसादीनां ज्ञात्वा बीजानि साधयेत्।
तन्ममाचक्ष्व देवेशि किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि॥ १५४॥

इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां महारसोपरसलोहलक्षणसंस्काररत्नद्रावण-मारणनिर्णयो नाम सप्तमः पटलः॥ ७॥

उपसंहार—हे देवि ! महारस, उपरस-आदि का राग (रंग) जान कर बीजों का साधन करना चाहिए। हे देवेशि और अन्य जो कुछ सुनना चाहती हो वह मुझसे कहो॥

—सप्तम पटल समाप्त—

अष्टमः पटलः

श्रीदेव्युवाच ।

महारसानां लोहानां रत्नानाञ्च सुरेश्वर ! ।
रागसङ्ख्यां तथा बीजसाधनञ्च वद प्रभो ! ॥ १ ॥

राग संख्या निरूपण तथा बीज साधन विषयक प्रश्न—राग संख्या तथा बीज साधन के सम्बन्ध में पार्वती ने पूछा कि हे सुरेश्वर । हे प्रभो ! महारस, उपरस, लौह तथा रत्नों को राग संख्या एवं बीज साधन को विधि कहें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

महारसेषु द्विगुणस्ताम्ररागः सुरेश्वरि ! ।
गिरिदोषे क्षयं नीते सूतकं रञ्जयन्ति ते ॥ २ ॥

महा रसादि की रागसंख्या का निरुपण—राग संख्या विषयक पार्वती के प्रश्न को सुन कर भैरवजी बोले । हे सुरेश्वरी ! महारसों में दुगुना तामा का राग (रंग) है । गिरि दोष के नष्ट हो जाने पर वे पारद को रंगते हैं ॥ २ ॥

सस्यकश्चपल श्चैव राजावर्त्तश्च माक्षिकः ।
विमलो गैरिकश्चैषामेकैकं द्विगुणं भवेत् ॥ ३ ॥
भ्रामकादिषु कान्तेष्वप्येकद्वित्रिगुणो हि सः ।
एकैकमभ्रके चैव श्वेतपीतारुणः सिते ॥ ४ ॥
अष्टादशसहस्राणि स्थिता रागाश्च गन्धके ।
अयुतं दरदे देवि ! शिलायां द्विसहस्रकम् ॥ ५ ॥

सस्यक (तुत्थ), चपल, राजावर्त, माक्षिक, विमल तथा गैरिक इन सबों के एक २ रंग दुगुना होते हैं । अर्थात्—भ्रामक, चुम्बक तथा कर्षक तीन प्रकार के कान्त लोह जो पीत, कृष्ण तथा रक्त भेद से तीन वर्ण के होते हैं उनमें एक दो तथा तीन राग संख्या होती हैं । अर्थात् एक-एक में तीन राग होता है । इस प्रकार नव राग संख्या होती है ॥ पिनाक, दर्दुर, नाग तथा वज्र चार प्रकार के अभ्रकों में श्वेत, पीत, अरुण तथा कृष्ण एक २ राग होता है । अर्थात—गन्धक में अष्ठारह हजार राग संख्या होती है, तथा हिंगुल में एक हजार राग संख्या होती है । हे देवि ! मन:शिला में दो हजार राग संख्या होती है ॥ ३-५ ॥

रसके सप्तसाहस्रं कङ्कुष्ठे तु चतुष्टयम् ।
रसगर्भे प्रकाशन्ते जारणं तु भवेद्यदि ॥ ६ ॥

रसक (खर्पर) में सात हजार तथा कङ्कुष्ठ में चार हजार राग संख्या होती है। ये राग संख्या यदि जारण किया जाय तो पारद के अन्दर प्रकाशित होती हैं ॥ ६ ॥

द्वादशाग्रं शतं पञ्च नागे रागा व्यवस्थिताः ।
द्वादशाग्रं शतं पन्च नागे रागा व्यवस्थिताः ।
शतहीनं सहस्रं तु वङ्गे रागा व्यवस्थिताः ॥ ७ ॥

नाग में पांच सौ बारह (द्वादशाग्रं पञ्च शतम्-पांच सौ बारह या सत्तरह सौ) राग संख्या होती है, और वंग में एक सौ कम एक हजार अर्थात् नव सौ राग संख्या व्यवस्थित है ॥ ७ ॥

रागाणां शतपञ्चाशत् शुल्वमध्ये व्यवस्थिताः ।
रक्तपीताश्च शुक्लाश्च हेम्नि रागाश्च षोडश ॥ ८ ॥

ताम्र में पचास हजार राग स्थित है। लाल, पीला तथा सफेद सोलह राग स्वर्ण में है ॥ ८ ॥

रागाः षष्ठि—सहस्राणि शक्रनीले व्यवस्थिताः ।
महानीले च देवेशि ! ते रागा द्विगुणाः स्थिताः ॥ ९ ॥

साठ हजार राग संख्या इन्द्र नोलमणि में है। हे देवि ! वही राग महानील में दुगुनी संख्या (एक लाख बीस हकार) है ॥ ९ ॥

माणिक्ये तु सुरेशानि रागा लक्षत्रयोदश ।
गजवारिसमुत्पन्नं रत्नं मुक्ताफलं विदुः ॥ १० ॥
[1]गजे त्रीणि सहस्राणि षट्सहस्राणि वारिजे ।
नवलक्षणं च रागाणां पद्मरागे व्यवस्थिताः ॥ ११ ॥

हे सुरेशानि ! माणिक्य में राग संख्या तीन लाख है। गज के मस्तक में तथा जल शुक्ति में दो प्रकार का मुक्ताफल होता है गज मुक्ता में तीन हजार राग संख्या तथा जलशुक्तिज मुक्ता में छः हजार राग संख्या पद्मराग मणि में नव लाख राग संख्या है ॥ ११ ॥

भेदयेत् सर्व्वलोहानि यच्च केन न भिद्यते ।
तद्वज्रं तस्य देवेशि ! रागं लक्षद्वयं विदुः ॥ १२ ॥

जो सभी लोहों का भेदन कर देता है किन्तु स्वयं किसी से भी नहीं भेदन होता उसे वज्र कहते हैं उसकी राग संख्या दो लाख है ॥ १२ ॥

---

१. गजे = गजने मौक्तिके, गाजे-इति तद्धितान्तपाठः समुचितः ।

षोडशव सहस्राणि पुष्परागे व्यवस्थिताः।
पादोनलक्षरागास्तु प्रोक्ता मरकते प्रिये॥ १३॥

पुष्पराग मणि में सोलह हजार राग संख्या है और हे प्रिये! मरकत मणि में पचहत्तर हजार राग संख्या कही गई है॥ १३॥

रागसङ्ख्यां न जानाति संक्रान्तस्य रसस्य तु।
अधिकं मारयेल्लोहं हीनं चैव प्रकाशयेत्॥ १४॥

जो क्रामण किया सम्पन्न पारद की राग संख्या नहीं जानता है वह लौह का मारण अधिक संख्या में करता है और कम संख्या में मारण प्रकाशित करता है॥ १४॥

मानवेन्द्रः प्रकुर्वीत यो हि जानाति पार्वति!।
शतकोटिप्रमाणेन रागसङ्ख्यां प्रकल्पयेत्।
स्पर्शनं चैवमालोक्य शतकोटिस्तु विध्यते॥ १५॥

हे पार्वति! जो पूर्वोक्त राग संख्या को जानता है वह मनुष्यों में श्रेष्ठ है और अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार शत कोटि राग संख्या की कल्पना कर सकता है। इस प्रकार स्पर्शन क्रिया को भी देखकर शत कोटि राग संख्या का विधान कर सकता है। १५॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि बीजानां साधनं प्रिये।
हेमतारवशाद्बीजं द्विविधं तावदीश्वरि!॥ १६॥
पीतारुणैर्हेमबीजं तारबीजं सितैर्भवेत्।
कल्पितं रञ्जितं पक्वमिति भूयस्त्रिधा भवेत॥ १७॥

बीज निर्माण विधि—हे प्रिये! राग संख्या निरूपण के बाद बीजों का साधन (निर्माण) कहता हूँ। हे ईश्वरि! क्रमानुसार हेम (स्वर्ण) तथा तार (रजत) के आधीन बीज[1] दो प्रकार का होता है। हेम बीज तथा तार बीज। हेम बीज पीला तथा लाल और तार बीज सफेद होता है। पुनः यह तीन प्रकार होता है। कल्पित, रञ्जित तथा पक्व॥ १६–१७॥

कल्पितं द्विविधं तच्च शुद्धमिश्रविभेदतः॥ १८॥

पूर्वोक्त तीन प्रकार के बीज में कल्पित बीज शुद्ध तथा मिश्रभेद से दो प्रकार का होता है॥ १८॥

रसोपरसलोहानां बीजानां कल्पनं पृथक्।
शुद्धं मिश्रं तु संयोगात् यथालाभं सुरेश्वरि!॥ १९॥

हे सुरेश्वरि! रस उपरस तथा लोहों का अलग-अलग बीजों की कल्पना

---

१. शुद्धं स्वर्णं च रूप्यं च बीजमित्यभिधीयते। (र० चू० ४/९१)

करना शुद्ध बीज तथा यथा प्राप्त द्रव्यों के संयोग से बीज कल्पना करना मिश्र-बीज होता है ॥ १९ ॥

सत्त्वमावर्त्तितं व्योम्नि शोधितं काचटङ्कणैः ।
चिञ्चाफलाम्लनिर्गुण्डी - पत्रकल्कनिषेचनैः ।
पक्वं निविडितं देवि ! रसपिष्टिक्षमं भवेत् ॥ २० ॥

शीशा तथा सुहागा के साथ शोधित सत्त्व अभ्रक में मिलाया हुआ तथा इमली का फल, अम्लवेंत एवं निर्गुण्डीपत्र के कल्क मिलाकर पकाया हुआ विड् रस पिष्टी निर्माण में समर्थ होता है ॥ २० ॥

स्नेहक्षाराम्लवर्गैश्च शिलायाश्च पुटत्रयात् ।
मृताहे धूपनायन्त्रे धूपगन्धानुलेपनात् ।
वङ्गस्यापि विधानेन तालकस्य हतस्य वा ॥ २१ ॥
ताप्यहिङ्गुलयोर्वापि हते च रसकस्य वा ।
रसगर्भे द्रवेत् कृष्णं पत्रं कनकतारयोः ॥ २२ ॥

स्नेह वर्ग, क्षार वर्ग तथा अम्ल वर्ग के द्रव्यों के साथ भावित मनःशिला का तीन पुट देने से या मारण के दिन धूपना यन्त्र में धूप तथा गन्धक के अनुलेपन करने से, ताल भस्म करने का विधान या वंग भस्म करने के विधान से, लौह तथा हिंगुल के भस्म होने पर या खर्पर के भस्म होने पर उसके साथ सोने तथा चांदी का कालापत्र पारद के गर्भ में द्रवित हो जाता है ॥ २२ ॥

सङ्कराख्यन्तु दुर्मेल्यं प्रिये मृदुखराह्वयम् ।
ततः संमृदितं देवि ! द्वन्द्वमेलापनं द्रुतम् ।
भवेत् समरसं गर्भे रसराजस्य च द्रवेत् ॥ २३ ॥

हे प्रिये ! मृदु तथा खर द्रव्यों का संकर (मिश्र-द्वन्द्व-मेलापक मिश्र) संज्ञक बीज दुर्मेल्य है। हे देवि ! उसको अच्छी तरह मर्दन कर पिघलाने से वह द्वन्द्वमेलापक एक रस हो जाता है और पारद के गर्भ में द्रव हो जाता है ॥ २३ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि 'द्वन्द्वमेलापनं' शृणु ॥ २४ ॥

द्वन्द्व मेलापक बीज के निर्माण की विधि :—हे देवि ! इसके बाद द्वन्द्व-मेलापक बीज का निर्माण कहता हूँ सुनो ॥ २४ ॥

वर्षाभूकदलीकन्द — काकमाचीपुनर्नवाः ।
चूर्णं नरकपालं च गुञ्जाटङ्कणसंयुतम् ।
क्षीरतैलेन सुध्मातं 'हेमाभ्रं' मिलति प्रिये ! ॥ २५ ॥

स्वर्णाभ्र :—लाल पुनर्नवा, केला का कन्द, मकोय, सफेद पुनर्नवा तथा

नर कपाल का चूर्ण गुञ्जा तथा सुहागा मिलाकर दूध तथा तेल के साथ अच्छी तरह फूंकने से हे प्रिये "हेमाभ्र" (सोना तथा अभ्रक) मिल जाता है। अर्थात् एक रूप हो जाता है।

अनेनैव विधानेन 'ताराभ्रमपि' मेलयेत् ॥ २६ ॥

ताराभ्र :—उसी प्रकार से "ताराभ्र" (चांदी तथा अभ्रक को भी मिलाये और (एक रस बना ले) ॥ २५-२६ ॥

वङ्गमावर्त्त्य देवेशि ! पुनः सूतकयोजितम् ।
कदलीकन्दतोयेन मर्दयेट्टङ्कणान्वितम् ।
अन्धमूषागतं ध्मातं 'वङ्गाभ्र' मिलति क्षणात् ॥ २७ ॥

वंगाभ्र :—हे देवि ! वंग को पिघलाकर पारद में मिला दे और सुहागा मिलाकर केलाकन्द के रस के साथ मर्दन करे। इसके बाद अभ्रक मिलाकर वंग को धमन करने से शीघ्र ही वंगाभ्र (वंग तथा अभ्रक) मिल जाता है ॥ २७ ॥

चूर्णं नरकपालस्य स्त्रीस्तन्यं वनशिग्रुकम् ।
गुञ्जाटङ्कणसंयुक्तं 'वङ्गाभ्रं' मिलति क्षणात् ॥ २८ ॥

अथवा—नर कपाल का चूर्ण, स्त्री का दूध, जंगली सहिजन, गुञ्जा तथा सुहागा मिलाकर अभ्रक तथा वंग को धमन करने से वंगाभ्र शीघ्र मिल जाता है ॥ २८ ॥

अभ्रकं चूर्णयित्वा तु काकमाचीरसप्लुतम् ।
कपित्थतोयसंस्पृष्टं रसटङ्कणसंयुतम् ।
वङ्गपत्रान्तरन्यस्तं ध्मातं 'वङ्गाभ्रकं' मिलेत् ॥ २९ ॥

या—अभ्रक को चूर्ण कर मकोय के रस तथा कैंथ के रस के साथ मर्दन करे। उसमें पारद तथा सुहागा मिलाकर वंग पत्रों के बीच-बीच में रख कर धमन करने से "वंगाभ्र" मिल जाता है ॥ २९ ॥

आवर्त्त्य कटुतैलेन भस्मापामार्गजं क्षिपेत् ।
वङ्गाभ्रं हरितालञ्च नागाभ्रे तु मनःशिलाः ॥ ३० ॥
हेमाभ्रं नागताप्येन 'ताराभ्रं' वङ्गतालकात् ।
गन्धकेन तु 'शुल्वाभ्रं' 'तीक्ष्णाभ्रं' सिन्धुहिङ्गुलात् ।
वङ्गाभ्रं हरितालेन नागाभ्रं शिलया मिलेत् ॥ ३१ ॥

सरसों के तेल के साथ अपामार्ग का भस्म आवर्तित कर छोड़ें। इससे वंगाभ्र में हरिताल, नागाभ्र में मनः शिला नाग तथा ताप्य (माक्षिक) के साथ हेमाभ्र, वंग तथा हरताल के साथ ताराभ्र, गन्धक के साथ शुल्वाभ्र (ताम्राभ्र) सेन्धा नमक तथा हिंगुल के साथ तीक्ष्णाभ्र हरिताल के साथ वंगाभ्र तथा मनः-

शिला के साथ नागाभ्र का मेलापन हो जाता है ।। अर्थात् तैल मिश्रित अपामार्ग भस्म उपरोक्त द्रव्यों के साथ मिलाकर धमन करने से निर्दिष्ट द्रव्यों का आपस में मेलापन हो जाता है ।। ३०-३१ ।।

लाङ्गली चामरीकेशं कार्पासास्थिकुलत्थकम् ।
भूलता चाश्मदलनो स्त्रीस्तन्यं सुरगोपकः ।। ३२ ।।
एतत्प्रलिप्तमूषायां सुध्मातास्तीव्रवह्निना ।
कान्ताभ्रशैलविमला मिलन्ति सकलान् क्षणात् ।। ३३ ।।

लांगली (कलिहारी), चमरी गाय का केश, कपास की लकड़ी कुरथी, भूलता (भूनाग-केंचुआ), पाषाणभेद, स्त्री का दूध वीरबहूटी इन द्रव्यों के कल्क से मूषा के अन्दर लेपकर सुखाने के बाद उसमें कान्त, अभ्रक, शिलाजीत तथा विमल रखकर तीव्राग्नि से अच्छी तरह धमन करने से इन सभी द्रव्यों का क्षणभर में मेलापन हो जाता है ।। ३२-३३ ।।

लताछुछुन्दरीमांसं विषटङ्कणयोजितम् ।
मूषालेपेन कुरुते 'सर्वद्वन्द्वेषु' मेलनम् ।। ३४ ।।

लता (भूलता-केचुआ), छुछुन्दर का मांस, विष तथा सुहागा इन सबों के कल्क से मूषा के अन्दर लेपकर तथा उसमें द्वन्द्वों का रखकर धमन करने से सभी द्वन्द्वों का मेलापन हो जाता है ।। ३४ ।।

अभ्रकं सुरसा शृङ्गं मण्डूकस्य वसा विषम् ।
गुञ्जाटङ्कणयोगेन सर्वसत्त्वेषु मेलनम् ।। ३५ ।।

अभ्रक, तुलसी, अदरक, मेढ़क की वसा, विष (वत्सनाभ), गुञ्जा तथा सुहागा इन सबों के योग से (इनके साथ सत्वों को मूषा यन्त्र में प्रधमन करने से) सभी सत्वों का मेलापन होता है ।। ३५ ।।

टङ्कणोर्णागिरिजतु-कर्णाख्यामलकर्कटैः ।
मिलन्ति सर्वद्वन्द्वानि स्त्रीस्तन्यपरिपेषितैः ।। ३६ ।।

सुहागा, ऊन, गिरिजतु (शिलाजीत), कर्णाख्य (श्वेत सहचर), आमलासार गन्धक तथा केकड़ा को स्त्री के दूध के साथ पीसकर उसके कल्क के साथ द्वन्द्वों को मूषायन्त्र में प्रधमन करने से सभी द्वन्द्वों (दो दो द्रव्यों का योग) का मेलापन होता है ।। ३६ ।।

धातकीगुग्गुलुगुड-सर्जयावकटङ्कणैः ।
स्त्रीस्तन्यपेषितैः सर्वं द्वन्द्वजं तु रसायने ।। ३७ ।।

धाय का फूल, गुग्गुल, गुड़, सज्जीक्षार, यवक्षार तथा टंकणक्षार इन सबों

को स्त्री दूध के साथ पीसकर उसके साथ सभी द्वन्द्वजों को प्रधमन करने से रसायन (मेलापन) होता है ॥ ३७ ॥

खसत्त्वं सूक्ष्मचूर्णं तु पूर्वकल्केन संयुतम् ।
अन्धमूषागतं ध्मातं सङ्करं मिलति क्षणात् ॥ ३८ ॥

अभ्रक का सत्व सूक्ष्म चूर्ण कर पूर्वोक्त धातक्यादि कल्क के साथ अन्धमूषा में रखकर प्रधमन करने से क्षणभर में संकर (द्वन्द्व) मिल जाता है ॥ ३८ ॥

वापितं ताप्यरसक सस्यकैर्दरदेन च ।
खसत्त्वं स्यान्निबद्धं च दृढं ध्मातं मिलेत्ततः ॥ ३९ ॥

ताप्य (माक्षिक), खर्पर, सस्यक (तुत्थ) तथा हिंगुल इन सबों के साथ अभ्रक सत्व मिलाने से निबद्ध हो जाता है, और इसके बाद अच्छी तरह प्रधमन करने से मिल जाता है ॥ ३९ ॥

रसोपरसलोहानि सर्वाण्येकत्र [1]धामयेत् ।
अन्योन्यं द्वन्द्वतां यान्ति द्रवन्ति सलिलं यथा ॥ ४० ॥

रस, उपरस तथा लोह इन सबों को एक जगह प्रधमन करे। इस प्रकार प्रधमन करने से आपस में द्वन्द्व हो (मिल) जाते है तथा जल के समान द्रव हो जाते हैं ॥ ४० ॥

बीजानि कल्पितान्येवं रञ्जितानि परं शृणु ॥ ४१ ॥

इस प्रकार बीजों की कल्पना की गई। इसके बाद बीज रञ्जन करने की प्रक्रिया को सुनो ॥ ४१ ॥

घनं माक्षिकचूर्णेन शुल्वचूर्णेन रञ्जितम् ।
द्वन्द्वितं ताप्यसत्त्वेन रसराजस्य रञ्जनम् ॥ ४२ ॥

बीजरञ्जननिर्माण की विधि :—घन (अभ्रक) का रञ्जन, माक्षिक का चूर्ण तथा ताम्र चूर्ण से होता है। द्वन्द्व मेलायन विधि के द्वारा माक्षिक सत्व से पारद का रञ्जन होता है ॥ ४२ ॥

आरक्तवल्लीगोमूत्रैः बहुधा परिभावितैः ।
कुनटीगन्धपाषाणैर्हेममाक्षिकहिङ्गुलैः ॥ ४३ ॥
वापितं सेवितं रक्तगणैः स्नेहैर्मृतं ततः ।
रञ्जनं रसराजस्य तीक्ष्णताम्रौ विशेषतः ॥ ४४ ॥

मंजीठ तथा गोमूत्र से अनेक वार परिभावित मनःशिला, गन्धक, स्वर्ण

१. ध्मापयेद्-इति प्रयोगः साधु ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोरिति धातोर्णिचि 'अर्तिहोति' पुगागमात् ।

माक्षिक तथा हिंगुल से प्रक्षिप्त रक्तगण के द्रव्यों से भावित तथा स्नेह वर्ग के द्रव्यों से मारण करने के बाद रसराज (पारद) का रञ्जन होता है। विशेष कर तीक्ष्ण लोह तथा ताम्र को पूर्वोक्त विधि के अनुसार रञ्जित किया जाता है॥ ४३-४४॥

केवलं विमलं ताम्रं वापितं दरदेन च।
कुरुते त्रिगुणं जीर्णं लाक्षाभं निर्मलं रसम्॥ ४५॥

केवल विमल तथा ताम्र (इन दोनों का द्वन्द्व) का प्रक्षेप हिंगुल के साथ त्रिगुणजारित निर्मलपारद को लाख की आभा की तरह रंग युक्त बना देता है॥ ४५॥

रसकं द्विगुणं दत्त्वा ताम्रं सुध्मातमीश्वरि!।
कृष्णाभ्रकस्य चूर्णं च रक्तवर्गैर्मुहुः पुटैः॥ ४६॥
ताप्येन वा मृतं हेम त्रिगुणेन निर्वापितम्।

हे ईश्वरि! दुगुना खर्पर मिलाकर अच्छी तरह धमन किया हुआ ताम्र, काले अभ्रक के चूर्ण को रक्तवर्ग की ओषधियों से बार-बार पुट से या माक्षिक से मारण किया हुआ तथा तीन गुने माक्षिक का प्रक्षेप किया हुआ पारद हेम की आभा की तरह रंग युक्त हो जाता है। अर्थात् दुगुना खर्पर, एक भाग ताम्र, एक भाग काला अभ्रक का चूर्ण, एक भाग माक्षिक से मारित तथा तीन भाग माक्षिक से निर्वाणित पारद हेम (स्वर्ण) को आभा की तरह हो जाता है॥ ४६½॥

भाण्डिकायां[1] तु रसकं ताप्यसैन्धवसंयुतम्॥ ४७॥
इन्द्रगोपनिभं यावत् सर्वं द्विगुणजारणात्।
द्रुतं हेमनिभं सूतं कुरुते नात्र संशयः॥ ४८॥

भाण्डिका (हांड़ी) में खर्पर, माक्षिक, तथा सेन्धानमक इन सबों को मिलाकर वीर बहूटी के रंग सदृश होने तक द्विगुणित जारणा करने से पारद शीघ्र ही स्वर्ण सदृश वर्ण का हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं हैं। अर्थात् पूर्वोक्त द्रव्यों को दुगुना जलाने के बाद हेम वर्ण का होता है॥ ४७-४८॥

अभ्रकं हेम ताम्रं च शिलया माक्षिकेण च।
गैरिकेण च मुख्येन रसकेन च रञ्जयेत्॥ ४९॥

अभ्रक, स्वर्ण तथा ताम्र को मैनसिल, स्वर्णमाक्षिक, गैरिक तथा मुख्य-खर्पर से रंजन करे॥ ४९॥

बीजानि रञ्जितान्येवं पक्वबीजान्यतः शृणु॥ ५०॥

---

१. हुण्डिकायाम्-इति पा०।

इस प्रकार बीज रञ्जन की प्रक्रिया का निरूपण किया गया। इसके बाद पक्वबीजनिर्माण की विधि सुनो ॥ ५० ॥

महारसानुपरसान् तीक्ष्णलोहानि च क्षिपेत्।
समांशं सममाक्षीकं गन्धकावापयोगतः ॥ ५१ ॥
शतशो वापयेदेतत् अक्षीणं सावशेषितम्।
समांशं रसराजस्य गर्भे द्रवति निश्चितम् ॥ ५२ ॥

पक्व बीज निर्माण की विधि :—महारस, उपरस तथा लोह ये सब समभाग, माक्षिक समभाग तथा गन्धक का प्रक्षेप करे। और ऐसा आवाप (प्रक्षेप) सौवार देकर क्षय रहित अवशिष्ट भाग को ग्रहण करे। इसके बाद समभाग पूर्वोक्त द्रव्य पारद के गर्भ में छोड़ने से निश्चित ही द्रव हो जाता है ॥ ५१-५२ ॥

एतदेकांशिकस्तम्भो, जारणायां सुरेश्वरि!।
रञ्जने रसराजस्य सारणायां च शस्यते ॥ ५३ ॥

हे सुरेश्वरि! यह एक जारणा का आंशिक स्तम्भ है। अर्थात् जारणा के लिये गर्भद्रावण आवश्यक है। यह जारणा पारद के रञ्जन तथा सारणा में प्रशस्त है ॥ ५३ ॥

तदेवं शतशो रक्तगणैः स्नेहैर्निषेचितम्।
अधिकं शस्यते तेषु सहस्रांशेन वेधकृत् ॥ ५४ ॥

इसी प्रकार यह रक्तवर्ग के द्रव्यों तथा स्नेह वर्ग के द्रव्यों से सौ वार अभिसिंचित करने से अधिक प्रशस्त होता है और उनमें पारद का हजारहवां भाग वेधकारक होता है। ५४ ॥

निर्व्यूढं नागवङ्गाभ्यां क्रियायां हेमतारयोः।
खसत्त्वं रविणा योज्यं द्वन्द्वितं स्याद्रसायने ॥ ५५ ॥

हेम (स्वर्ण) तथा तार (रजत) की क्रिया में नाग, वंग से युक्त अभ्रक सत्व तामा के साथ मिलाने पर रसायन में द्वन्द्वित (सम्बद्ध) होता है ॥ ५५ ॥

सस्नेहक्षारपञ्चाम्लैः रसैस्तैस्तालकादिभिः।
समद्वित्रिगुणान् ताम्रे वाहयेद्वङ्गपन्नगान् ॥ ५६ ॥
रक्तस्नेहनिषिक्तं तद्रसाकृष्टिरिति स्मृतम् ॥ ५७ ॥

रसाकृष्टि निर्माण की विधि :—स्नेहवर्ग, क्षारवर्ग तथा पञ्च अम्लवर्ग के साथ रस, पूर्वोक्त ताल-आदि महारसों के साथ समभाग, दो भाग तथा तीन भाग वंग तथा सीसा को ताम्र में प्रवाहित कराये और रक्तवर्ग तथा स्नेह वर्ग के द्रव्यों से अभिषिक्त करे। इस को रसा कृष्टि कहते हैं। अर्थात् स्नेह वर्ग

के साथ ताम्र के समभाग वंग तथा सीसा क्षार वर्ग के साथ ताम्र के दुगुना वंग तथा सीसा तथा पञ्चाम्ल वर्ग के साथ ताम्र के तीन गुना वंग तथा सीसा प्रवाहित कराये। इस प्रकार प्रवाहित कर रक्तवर्ग तथा स्नेह वर्ग के द्रव्यों से पारद को अभिसिंचित कर उसको आकृष्ट करे। इसी को रसाकृष्टि कहते हैं। (इस क्रिया से ताम्र मिश्रित रस की आकृष्टि (अलगाव) होता है अतः इसे रसाकृष्टि कहते हैं)॥ ५६-५७॥

हेम बीज की निर्माणविधि :—

माक्षिकं गन्धपाषाणं हरितालं मनःशिलाम्।
वैक्रान्तकं कान्तमुख्यं सस्यकं विमलाञ्जनम्।
रसकं [1]वापितं शश्वत् चूर्णितं हेम्नि वाहयेत्॥ ५८॥

माक्षिक, गन्धक, हरिताल, मनः शिला, वैक्रान्त, तीक्ष्णकान्त, सस्यक (तुत्थ), विमल, स्रोतोञ्जन तथा खर्पर इन सबों को चूर्ण कर तथा मिलाकर स्वर्ण में प्रवाहित कराये॥ ५८॥

लोहपर्पटिकाताप्य-कङ्कुष्ठविमलाभ्रकैः।
मृतशुल्वशिलासत्वस्नुह्यर्कक्षीरहिङ्गुलैः।
नागो निर्जीवतां याति पुटयोगैः पुनः पुनः॥ ५९॥

लौहपर्पटी, माक्षिक, कङ्कुष्ठ, विमल, अभ्रक, ताम्रभस्म, मनःशिलासत्व, सेंहुँड़ तथा मदार का दूध और हिंगुल के साथ नाग को बार-बार पुटदेने से नाग निर्जीव हो जाता है॥ ५९॥

रसतालकशङ्खाभ्र-चिञ्चाक्षारैस्तथात्रपुः।
मृतं नागं मृतं वङ्गं शुल्वं तीक्ष्णञ्च वा मृतम्।
एकैकमुत्तमे हेम्नि वाहयेत् सुरवन्दिते!॥ ६०॥

हे सुरवन्दिते! रस (पारद), हरिताल, शंख, अभ्रक, इमली का क्षार इन सबों के साथ त्रपु (रांगा), नागभस्म, वंगभस्म, ताम्रभस्म, तथा लौह भस्म एक-एक को अलग-अलग उत्तम स्वर्ण में प्रवाहित करे॥ ६०॥

निरुत्थे पन्नगे हेम्नि निर्व्यूढे शतशो गणे।
गोरोचनानिभं धाम भास्करे तारसन्निभम्॥ ६१॥

निरुत्थ एक सौ भाग सीसा (उपरोक्त ५९ श्लोक में वर्णित निर्जीव नाग में) भस्म में एकभाग स्वर्णभस्म प्रवाहित करने पर गोरोचन के समान तथा ताम्र में प्रवाहित करने पर चाँदी के समान धाम (वर्ण) हो जाता है॥ ६१॥

---

१. वापि शतशः,-इति पाठान्तरम्।

तीक्ष्णाभ्रकं रविसमं माक्षिकं द्विगुणं तथा।
आवर्त्तितं चूर्णितं च मारितं सप्तभिः पुटैः ॥ ६२ ॥
व्यूढे शतगुणे हेम्नि तद्बीजं जारयेत् समम्।
चन्द्रार्कपत्रलेपेन शतभागेन वेधयेत् ॥ ६३ ॥
उद्ध्वाधो माक्षिकं दत्त्वा [1]शुल्वं हेमसमं भवेत्।
एवं दशगुणं व्यूढं बीजं कारणसन्निभम् ॥ ६४ ॥

तीक्ष्णाभ्र तथा ताम्र समभाग तथा माक्षिक दो भाग मिलाकर तथा चूर्ण कर सात पुटों से मारण करे। इसके बाद व्यूढ़ सौगुने स्वर्ण में समभाग उस बीज का जारण करे। तदनन्तर रजत तथा ताम्र पत्र पर बीज के सौवां भाग का लेप कर और ऊपर नीचे माक्षिक रख कर वेध करे इससे तांमा हेम के समान हो जाता है। इसी प्रकार दशगुना मिश्रितबीज कारण के सदृश बना देता है ॥ ६२-६४ ॥

रसकाभ्रं कान्तताम्रे भागवृद्धया धमेत्ततः।
माक्षिकेण हतं तच्च बीजे निर्वाहयेत् प्रिये ! ॥ ६५ ॥
द्वात्रिंशद्गुणितं हेम्नि नागं ताप्यं हतं वहेत्।
त्रिंशद्गुणशिलावापं नागबीजमुदाहृतम् ॥ ६६ ॥

रसकाभ्र एक भाग, कान्तलोह भस्म दो भाग तथा ताम्रभस्म तीन भाग लेकर धमन करे। इसके बाद हे प्रिये ! माक्षिक के द्वारा पूर्वोक्त मारित बीज में उसको मिला दे। इसके बाद बत्तीसगुना उस बीज को सोना में मिलाकर नाग तथा माक्षिक का मारण करे और तीसगुना मनःशिला का अवाप करे। इसे नाग बीज कहते हैं ॥ ६५-६६ ॥

ताप्यतालकवापेन सत्त्वं पीताभ्रकस्य तु।
बीजे निर्वाहयेदेतत् [2]घोषामृष्टस्य वेधकम् ॥ ६७ ॥

माक्षिक तथा हरिताल के मेल से पीताभ्रक सत्व को बीज में मिलायें। यह घोषामृष्ट यन्त्र में धमन करने से बोधन कर्म में समर्थ होता है ॥ ६७ ॥

नागः करोति मृदुतां निर्व्यूढस्तां च रक्तताम्।
वापितं पीततां तीक्ष्णं कान्तस्थां कालिकां विषम् ॥ ६८ ॥

नागबीज मृदुता, निर्व्यूढ़ (प्रविष्ठ) तथा रक्तता को करता है

---

१. शुल्वं=ताम्रम् हेमसमं वर्णतो मानतश्च ।
२. घोषकृष्णस्य इति पा० ।

और वापित (बोने पर) पीत बनाता है तीक्ष्ण लोह को कान्त लोह बनाता है तथा कालिका (कालिकानामक) पारद के विष को विष विनाता है ॥ ६८ ॥

हेमबीजमिति प्रोक्तं—तारबीजमतः शृणु ॥ ६९ ॥

पूर्वोक्त ये सब हेमबीज कहे गये हैं। अब तार बीज कहता हूँ सुनो ॥ ६९ ॥

तीक्ष्णाभ्रताप्यविमल रसकं समभागिकम्।
वङ्गभागास्तु चत्वारः सर्वं ध्मातं विचूर्णितम ॥ ७० ॥
पुटेन निहतं कार्य्यं व्यूढं तारन्तु वेधयेत्।
द्वात्रिंशत्सद्गुणं तारे वङ्गे ताप्यं हतं वहेत्।
त्रिंशद्गुणात्तालवापात् वङ्गबीजमुदाहृतम ॥ ७१ ॥

रजत बीज निर्माण विधि :—तीक्ष्णाभ्र, माक्षिक, विमल तथा खर्पर समभाग, वंग चार भाग इन सबों को धमन के द्वारा चूर्ण कर पुट द्वारा भस्म बनाये। यह व्यूढ़ (प्रविष्ट होने पर) तार का वेध करता है। बतीस गुना ताप्य चांदी तथा वंग में मृत हो जाता है। तीसगुना ताल भस्म प्रक्षेप करने से वंग बीज कहा जाता है ॥ ७०-७१ ॥

कुटिलं विमलं तीक्ष्णं खसत्त्वं चापि वाहयेत्।
वङ्गाभ्रं ताप्यसत्त्वं वा तालमाक्षिकवापतः।
शुक्लपुष्पगणैः सेकं स्नेहयुक्तैस्तु कारयेत् ॥ ७२ ॥

वंग बीज कुटिल, विमल तीक्ष्ण तथा अभ्रक सत्व को भी मेलापन करा देता है। अथवा तालमाक्षिण के वाप (बीज) देने से वंगाभ्र तथा ताप्य सत्व का मेलापन करा देता है ॥ शुक्लपुष्पगण तथा स्नेह के साथ सिंचन करना चाहिए ॥ ७२ ॥

उक्तानि तारबीजानि—बीजानां रञ्जनं शृणु ॥ ७३ ॥

तार बीज का निरूपण किया गया। बीजों को रञ्जनविधि को सुनो ॥ ७३ ॥

तीक्ष्णमाक्षिकशुल्वञ्च नागञ्चपलमारितम्।
सिन्दूरसन्निभं यावत् तेन बीजानि रञ्जयेत् ॥ ७४ ॥

तीक्ष्ण लोह, माक्षिक, ताम्र नाग तथा चपल का भस्म बनाकर उससे सिन्दूर के सदृश होने तक बीजों का रंजन करे ॥ ७४ ॥

निधाय खर्परे नागं ब्रह्मबीजदलैः सह।
दग्धमग्निमधो दत्त्वा वह्निवर्णं यदा भवेत् ॥ ७५ ॥

वासकेन बिभीतेन शार्कंकिशुकशिग्रुभिः ।
कोरण्डकस्य पुष्पेण बकुलस्याज्र्जुनस्य च ॥ ७६ ॥
अहिमारेण नागिन्या कुमार्य्या नागकन्यया ।
शिलया च त्रिगुणया कथितेनाजवारिणा ॥ ७७ ॥
भावितं खर्परस्थञ्च प्लावयित्वा पुनः पुनः ।
सप्तभिर्दिवसैरेव मारितं सुरवन्दिते ! ॥ ७८ ॥
पुटयेद्गन्धकेनादावम्लैश्च तदनन्तरम् ।
इदं दलानां बीजानां रसराजस्य रञ्जने ।
उद्धाटे क्रामणे योज्यं पिष्टीस्तम्भे विशेषतः ॥ ७९ ॥

रञ्जन बीज की निर्माणविधि :—

नाग को पलास के बीज तथा पत्र के साथ कड़ाही में रखकर नीचे से आग देकर अग्नि के वर्ण होने तक जलाये। इसके बाद उसको अडूसा बहेड़ा शाक वृक्ष, पलास, सहिजन, कोरण्ड (मदन वृक्ष) का पुष्प, वकुल (मौलेसरी) तथा अर्जुन का फूल, अहिमार (हयमार-कनेर), [1]नागिनी (नाग दन्ती)-घृत कुमारी, नाग कन्या (नाग कुमारिका = गुडूची) तथा मनः शिला तीन गुना इन द्रव्यों को बकरी के मत्र के साथ क्वाथ कर उस से खप्पर में बार-बार डुबोकर सात दिन तक भावित करे। हे सुर वन्दिते ! भावित नाग को पहले गन्धक के साथ पुट दे और इसके बाद अम्लवर्गों के द्रव्यों के साथ पुट देकर मारण करे। यह रंजन पदार्थ बीज तथा दल एवं पारद के रञ्जन उद्-घाटन तथा क्रामण में प्रयोग करे। विशेष कर पारद पिष्ठी को स्तम्भन करने में प्रयोग करे ॥ ७५-७९ ॥

मञ्जिष्ठाकिंशुकरसे खदिरं रक्तचन्दनम् ।
करवीरं देवदारुं सरलं रजनीद्वयम् ॥ ८० ॥
अन्यानि रक्तपुष्पाणि पिष्ट्वा लाक्षारसेन तु ।
तैलं विपाचयेद्देवि ! तेन बीजानि रञ्जयेत् ॥ ८१ ॥
द्विगुणे रक्तपुष्पाणां रक्तपीतगणस्य च ।
क्वाथे चतुर्गुणे क्षीरे तैलमेकं सुरेश्वरि ! ॥ ८२ ॥

बीज रञ्जन तैल की निर्माणविधि :—मंजीठ, पलास की गोंद, खैर,

---

१. नागिनीत्युच्यते बल्ली नागभोगसमाङ्गिका ।
सर्पादिके विषघ्नी च सा स्वच्छन्दसबन्धिनी ॥ रसा०

रक्तचन्दन, कनेर, देवदारु, सरलवृक्ष तथा अन्य रक्तपुष्पों को लाक्षा रसके साथ पीसकर कल्क बनावे और उस कल्क (तैल के चौथाई) के साथ तैल पाक करे। और हे देवि उस से बीजों का रंजन करे। हे सुरेश्वरि! रक्तपुष्प, रक्तवर्ग (मंजोठा, कङ्कुम, लाक्षा, खदिर, असनवृक्ष) तथा पीतवर्ग (कुसुम्भ, पलासपुष्प, निशाहलदी, दारुहलदी, पतंग तथा मदयन्तिका) के द्रव्यों के दुगुने क्वाथ एवं चौगुने दूध में एक भाग तैल (तेल के चौथाई कल्क) मिलाकर तैल पकावे ॥ ८०-८२ ॥

ज्योतिमतीकरञ्जाख्य कटुतुम्बीसमुद्भवम् ।
पाटलीपिप्पलीकाम-काकतुण्डीरसान्वितम् ॥ ८३ ॥
भेकशूकरमेषाहिमत्स्यकूर्म्मजलौकसाम् ।
वसया चैकया युक्तं षोडशांशैः सुपेषितैः ॥ ८४ ॥
भूलतामलमाक्षीकद्वन्द्वमेलापनौषधैः ।
पाचितं गालितं चैतत् सारणा तैलमुच्यते ॥ ८५ ॥

सरणा तैल निर्माण विधि :—

ज्योतिष्मती (मालकांगनी) करञ्ज, कड़वी तुम्बी, पाटली (लोध), पीपर, काम (मदनवृक्ष) तथा कौआ-ठोंठी इन सबों का क्वाथ (तैल के चौगुना) से युक्त, मेढ़क, शूकर भेड़, सर्प, मत्स्य, कूर्म (कछुआ) तथा जोंक इनमें में किसी एक की वसा से युक्त (तैल के बराबर) भूलता (केंचुआ,) आमला सार गन्धक, माक्षिक तथा द्वन्द्वमेलापक औषधों के अच्छी तरह पिसे हुए षोडशांश कल्क के साथ तैल पकावे और छान ले। यह सारणा तैल है। (कल्क सोरहवां भाग, वसा तैल के सम भाग तथा क्वाथ तैल के चौगुना लेकर तैल पाक करे) ॥ ८३-८५ ॥

रसतुल्यं यथा बीजं गतं गर्भद्रुतिं प्रिये! ।
व्यापकत्वेन सर्वे च समभागास्तथेष्यते ॥ ८६ ॥

हे प्रिये! जिस प्रकार रस (पारद) के तुल्य बीज गर्भद्रुति कारक होता है उसी प्रकार व्यापक होने से सभी समभाग ग्रहण करना अभिष्ट है ॥ ८६ ॥

पक्वं श्रेष्ठं समं गर्भे यद्द्रवेद्रञ्जयेच्च तम् ॥ ८७ ॥

गर्भद्रुति में समभाग बीज पकाना श्रेष्ठ है जो उसको पिघलाये तथा राग युक्त करे ॥ ८७ ॥

एवमुक्तानि बीजानि जारयेद्बिडयोगतः।
तन्ममाचक्ष्व देवेशि! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ८८ ॥

इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
बीजसाधनो नाम अष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

उपसंहार :—इस प्रकार मैंने बीजों का निरूपण किया। इस को बिड के योग से जारण करे। हे देवि! अन्य क्या सुनना चाहती हो वह मुझसे कहो ॥ ८८ ॥

—: अष्टम पटल समाप्त :—

———

१. रसस्य वदने ग्रासक्षेपणं चारणामता।
ग्रस्तस्य द्रावणं गर्भे गर्भद्रुतिरुदाहृता ॥
वहिरेव द्रुतीकृत्य घनसत्वादिकं खलु।
जारणाय रसेन्द्रस्य सा वाह्याद्रुतिरुच्यते ॥ (र० चू० ३।९७-९८)

नवमः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

बीजानां कल्पनं प्रोक्तं विशेषेण च साधनम् ।
जार्य्यन्ते तानि यैः सूते तान् विडान् वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

—: नवम पटलः :—

विड निर्माण विधि के सम्बन्ध में प्रश्न :—पार्वती ने पूछा कि हे शंकर जी ! बीजों की कल्पना तथा साधन आपने विशेष रूप से कहा । वे बीज पारद में जिनके द्वारा जारण[1] किये जाते हैं उन विड़ों[2] का निर्माण प्रकार बतायें ॥१॥

श्रीभैरव उवाच ।

काशीसं सैन्धवं काङ्क्षी सौवीरं व्योषगन्धकम् ।
सौवर्च्चलं सर्जिका च मालतीनीरसम्भवम् ।
शिग्रुमूलरसैः सिक्तो 'विडोऽयं' सर्वजारणः ॥ २ ॥

विडनिर्माण विधि :—विड निर्माण विषयक पार्वती का प्रश्न सुन कर शंकर जी बोले । हे पार्वति ! कासीस, सेंधा नमक, काङ्क्षी (सौराष्ट्र मृत्तिका), सौवीराञ्जम, अभ्रक, गन्धक तथा सज्जीक्षार इन सबों को मालती के रस में भावित कर सहिजन की जड़ के रस से अभिसिक्त करे । यह सभी को जारणा करने वाला विड है ॥ २ ॥

निर्दग्धं शङ्खचूर्णन्तु रविक्षीरशतप्लुतम् ।
पुटितं बहुशो देवि ? प्रशस्तो जारणा 'विडः' ॥ ३ ॥

उत्तमजारणा विड :—शंख चूर्ण को भस्म कर मदार के दूध में एक सौ बार भावित कर सुखा ले । हे देवि ! इसको अनेक बार पुट देने पर उत्तम जारणा "विड" तैयार हो जाता है ॥ ३ ॥

शतशो वा प्लुतं चूर्णं गन्धकस्य गवां जलैः ॥ ४ ॥
निर्दग्धं शङ्खचूर्णं तु शिग्रुमूलाम्बुभावितम् ।
शतशो विषसिन्धूत्थसंयुतं वडवामुखम् ॥ ५ ॥

---

१. क्षारैरम्लैश्च गन्धाद्यै-मूलैश्च पटुभिस्तथा ।
रसग्रासस्य जीर्णार्थं तद्विडं परिकीर्तितम् ॥ (र० चू० ४।१०२)

२. द्रुतग्रासपरीणामो विडयन्त्रादियोगतः ।
जारणेत्यच्यते ॥ (र० चू० ४।१०१

टङ्कणं शतशो देवि ! भावयेत् किंशुकद्रवैः ।
'विडो' वह्निमुखाख्योऽयं लोहानां जारणे प्रिये ! ॥ ६ ॥

अथवा—गन्धक का चूर्ण गाय के मूत्र के साथ सौ बार भावित करे। शंख चूर्ण का भस्म सहिजन मूल के रस से भावित करे। विषसिन्धूत्थ (हालाहल विष) से युक्त बडवामुख (वराहीकन्द) तथा टंकण को पलास के रस से सौ बार भावित करे। इस प्रकार सब को एक कर बनाया हुआ वह्निमुख नामक "विड" हे प्रिये ! लौहों को जारण करने में हितकर है ॥ ४-६ ॥

चूलिका गन्धपाषाणः कान्तस्य च मुखं प्रिये ! ।
एकैकमेव पर्य्याप्तं लौह चूर्णस्य जारणे ॥ ७ ॥

हे प्रिये ! चूलिका गन्धक, तथा उत्तम कान्त लौह, इनमें से एक ही एक लौह चूर्ण के जारण करने में पर्याप्त है ॥ ७ ॥

गन्धतालकसिन्धूत्थं चूली टङ्कणभूखगम् ।
क्षारैर्मूत्रैश्च विपचेदयं ज्वालामुखो 'बिडः' ॥ ८ ॥

गन्धक, हरिताल, समुद्रफेन, चूली (नवसादर), टंकण तथा भूखग (केचुआ) इन सबों को क्षार तथा मूत्र वर्ग के औषधों के साथ पकाये। यह ज्वालामुख नामक विड हैं ॥ ८ ॥

एकविंशतिपर्य्यायं देवदालीदलद्रवैः ।
भावितो निचुलक्षारः सर्वसत्त्वानि जारयेत् ॥ ९ ॥

देवदाली (घघर-बेल) के पत्ते के रस के साथ निचुलक्षार (बड़हर का क्षार) एक्कीसबार भावित करने पर सभी सत्वों को जारण करता है ॥ ९ ॥

वास्तुकैरण्डकदली देवदालीपुनर्नवम् ।
वासा पलाशनिचुलं तिलकाञ्चनमाक्षिकम् ॥ १० ॥
सर्वाङ्गं खण्डशश्छिन्नं नातिशुष्कं शिलातले ।
दग्धकाण्डैस्तिलानां तु पञ्चाङ्गं मूलकस्य च ॥ ११ ॥
प्लावयेन्मूत्रवर्गेण जलं तस्मात् परिस्रुतम् ।
लोहपात्रे पचेद्यन्त्रे हंसपाकेऽग्निमानवित् ॥ १२ ॥
बाष्पाणां बुद्बुदानाञ्च बहूनामुद्गमो यदा ।
तदा काशीससौराष्ट्री-क्षारत्रयकटुत्रयम् ॥ १३ ॥
गन्धकञ्च सितं हिङ्गु-लवणानि च षट् तथा ।

---

१. मालतीनीरसम्भवम्=स्रोतोऽञ्जनम्='सुरमा।' २. गवाम्जलैः=गोमूत्रैः ।

एषां चूर्णं क्षिपेदेष लोहसम्पुटमध्यगः ।
सप्ताहं भूगतः पश्चाद्धान्यस्थः प्रवरो 'विडः' ॥ १४ ॥

जारण विड :—बथुआ, एरण्ड, केला, देवदाली, पुनर्नवा अड़ूसा, पलास बड़हर, तिल, काञ्चनमाक्षिक (स्वर्णमाक्षिक) पत्थर के ऊपर थोड़ा शुष्क खण्डशः काटा हुआ जले हुए काण्ड वाले तिलों का सर्वाङ्ग तथा मूली का पंचाङ्ग मूत्र वर्ग के जल में डुबो कर लोहपात्र में छानें और उस जल को अग्निमान को जानने वाला व्यक्ति हस पाक यन्त्र में पकावे । जब वाष्पों तथा बुद्बुदों का उद्गम हो जाय तब कासीस, सौराष्ट्र मृत्तिका, क्षारत्रय (सज्जोक्षार, यवक्षार, टंकण-क्षार), कटुत्रय (सोंठ, पीपर, मरिच) श्वेत गन्धक, हिंगु तथा छः लवण (सौवर्चल: सामुद्र, विड, काच सेन्धा तथा खारी) इन सबों के चूर्ण को छोड़ दे । इसके बाद इसको दो लोह सम्पुट के मध्य में रखकर जमीन के अन्दर एक सप्ताह तक रक्खे । इसके बाद धान्य की राशि में रखने पर उत्तम "विड" बन जाता है ॥ १०-१४ ॥

जम्बीराम्लेन पचनं शिग्रुमूलद्रवेण च ।
चूलिकागन्धकासिक्तौ द्वौ 'विडौ' शतशः क्रमात् ॥ १५ ॥

जम्बीरी निम्बू के रस तथा सहिजन की जड़ के जल से क्रमशः सैकड़ों बार पूर्वोक्त द्रव्यों को पकाने से तथा नवसादर तथा गन्धक से सींचने से दो "विड" तैयार हो जाते हैं ॥ १५ ॥

कोषातकी दलरसैः क्षारैर्वा निचुलोद्भवैः ।
देवदालीशिवाबीजं गुञ्जासैन्धवटङ्कणम् ।
भावयेदम्लवर्गेण 'विडोऽयं' हेमजारणः ॥ १६ ॥

हेम जारण विड :—कोशातकी (तरोई) के पत्तो के रस या बड़हर के क्षार के साथ देवदाली, शिवाबीज (पद्मबीज-या गन्धक) गुञ्जा, सेन्धा नमक तथा टंकण इन सबों को अम्लवर्ग के द्रव्यों के द्रव से भावित करे । इससे तैयार "विड" हेम जारण योग्य है ॥ १६ ॥

मूलाकार्द्रकचित्राणां क्षारैर्गोमूत्रगालितैः ।
गन्धकः शतशो भाव्यो 'विडोऽयं' हेमजारणे ॥ १७ ॥

मूली, अदरक तथा चित्रक के क्षार तथा गोमूत्र में मिलाकर उससे सौ वार गन्धक को भावित करे । इससे तैयार विड जारण में प्रशस्त है ॥ १७ ॥

हरितालशिलाक्षारो लवणं शङ्खशुक्तिका ।
हंसपाकविपकोऽयं 'विड[1]' स्याद्धेमजारणे ॥ १८ ॥

१ जारणसाधनं विडः, स च 'नानाविधोऽस्मिन् पटले निरूपितः' ।

हरिताल, मनःशिला, क्षारवर्ग, लवणवर्ग, शंखभस्म, शुक्तिभस्म इन सबों का हंसपाकयन्त्र में पकाया हुआ "विड" हेम जारण के योग है ॥ १८ ॥

एवं सङ्गृह्य सम्भारान् रसकर्म्म समाचरेत।
तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १९ ॥
इति श्रीपार्व्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
विडकथनो नाम नवमः पटलः ॥ ९ ॥

उप संहार :—इस प्रकार सम्भार (रस कर्मो-पकारक सामग्री) को संग्रह कर रस कर्म प्रारम्भ करे। हे देवि अब और क्या सुनना चाहती हो मुझसे कहो ॥ १९ ॥

—: नवम पटल समाप्त :—

दशमः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

रसस्य लक्षणं किंवा रसकर्म्म च कीदृशम् ।
तन्न जानामि देवेश ! वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ १ ॥

रस विषयक प्रश्न :—रस कर्म विधि के सम्बन्ध में पार्वती ने पूछा कि हे देवेश ! रस का लक्षण क्या है और रस कर्म किस प्रकार होता है यह मैं नहीं जानती हूँ । आप इसको अच्छी तरह कहें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

[1]प्रागेवोक्ता रसोत्पत्तिस्तल्लक्षमणमतः शृणु ॥ २ ॥
तस्य नामसहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च ।
शक्यते न मया वक्तुं सङ्क्षेपात् कथ्यते शृणु ॥ ३ ॥

रस के लक्षण का निरूपण :—रस के लक्षण के सम्बन्ध में पार्वती का प्रश्न सुनकर शंकर जी बोले । हे पार्वती ! रस का उत्पत्तिप्रकार मैंने पहले ही बता दिया है । इसके बाद रस का लक्षण बताता हूँ सुनो । रस के हजारों अयुतों तथा अरबों नाम हैं । मैं उनके नामों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ, अतः संक्षेप में कह रहा हूँ सुनो ॥ २-३ ॥

[1]रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदश्चाथ मिश्रकः ॥ ४ ॥

रस के भेद तथा उनके लक्षण :—रस, रसेन्द्र सूत, पारद तथा मिश्रक ये पारद के पाँच नाम है । अर्थात् रस पाँच प्रकार का होता है ॥ ४ ॥

रसं सिद्धरसं विद्यात् सिद्धक्षेत्रसमाश्रयम् ।
नाशयेत् सकलान् रोगान् बलीपलितमेव सः ॥ ५ ॥

रस :—सिद्ध स्थान में आश्रित रस सिद्धरस समझना चाहिए । वह सिद्ध रस सभी रोग तथा बलि-पलित को नाश करता है ॥ ५ ॥

देहलोहकरं शुद्धं रसेन्द्रमधुना शृणु ।
शरीरे हेम्नि कर्त्ता च जारणे सारणासु च ॥ ६ ॥

रसेन्द्र :—शुद्ध रसेन्द्र देह तथा लोह कारक होता है, यह सुनो । यह शरीर तथा स्वर्ण में काम करने वाला होता है, और जारण कर्म तथा सारण कर्म में भी प्रयुक्त होता है ॥ ६ ॥

---

१ प्रथमाऽध्याये रसोत्पत्तिरुक्ता, अधुना भेद-निरूपणपूर्वकं लक्षणमाह, ।

१ रसः इत्यादीनि पञ्चनामानि—अवान्तरबोधकानि, 'सामान्यविशेषयोरभेदः' इति न्यायेन सामान्यतश्च प्रयुज्यन्ते ।

ईषत्पीतश्च रूक्षाङ्गो दोषयुक्तश्च सूतकः ॥ ६ ॥

सूतक :—थोड़ा पीला, रूक्ष-अंग वाला तथा दोष युक्त सूतक होता है ॥ ६½ ॥

यो बाह्याभ्यन्तरे श्वेतो बहुलं कञ्चुकावृतः ।
तं विद्यात् पारदं देवि ! तारकर्म्मणि योजयेत् ।
यथा काञ्जिकसंस्पर्शात् क्षीरभाण्डं विनश्यति ।
तथा हेम शरीरञ्च पारदेन विनश्यति ॥ ७ ॥

पारद :—जो बाहर तथा भीतर श्वेत तथा बहुत कञ्चुकों से आवृत होता है उसको पारद समझना चाहिए और उसका प्रयोग रजत कर्म में करे। जैसे कांजी के स्पर्श से बर्तन का दूध नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अशुद्ध पारद के संसर्ग से स्वर्ण तथा शरीर नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

मयूरपत्रिकाभासं मिश्रकञ्च विदुर्बुधाः ।
धूम्रवर्णं रसं दृष्ट्वा विशेषेणोपलभ्यते ।
मिश्रकन्तु विजानीयादुद्वाहकर्म्मकारकम् ॥ ८ ॥
एवं पञ्चविधा देवि ! रसभेदा निरूपिताः ॥ ९ ॥

मिश्रक :—विद्वान् लोग मयूरपुच्छ की आभा सदृश आभा वाले पारद को मिश्रक पारद समझते हैं। विशेषकर धूम्र वर्ण वाला रस उपलब्ध होता है उसको देखकर मिश्रक रससमझना चाहिए। यह उद्वाहकर्म में प्रयुक्त होने वाला है। हे देवि ! इस प्रकार पाँचप्रकार के रसभेदों का निरूपण किया गया ॥ ८-९ ॥

स्वेदनं मर्दनं चैव चारणं जारणं तथा ।
द्रावणं रञ्जनं चैव सारणं क्रामणं क्रमात् ।
इति यो वेत्ति तत्वेन तस्य सिध्यति सूतकः ॥ १० ॥

रस के [1]स्वेदनादि कर्म का निरूपण :—स्वेदन, मर्दन, चारण[2], जारण[3], द्रावण[4], रञ्जन[5], सारण[6] तथा क्रामण[7] क्रम से ये पारद के कर्म होते हैं। इन कर्मों को जो अच्छी तरह जानता है उसका रस कर्म सिद्ध होता है ॥ १० ॥

---

१. क्षाराम्लैरौषधैः सार्द्धं भाण्डे रुद्ध्वाऽतियत्नतः ।
भूमौ निरवधत्रते यत्तत्स्वेदनं संप्रकीर्तितम् ॥
(र० चू० २-४।१११)

२. रसस्य वदने ग्रासक्षेपणं चारणा मता ॥ (र० चू० ४।९७)

३. द्रुतग्रासपरीणामो विडयन्त्रादियोगतः ।
जारणेत्युच्यते ॥ (र० चू० ४।१०१)

तीव्रत्वं जायते स्वेदात् अमलत्वञ्च मर्दनात् ।
चारणेन बलं कुर्य्यात् जारणाद्बन्धनं भवेत् ॥ ११ ॥
एकत्वं द्रावणात् तस्य रक्तत्वं रक्तकाञ्जनात् ।
व्यापित्वं सारणात् तस्य क्रामित्वं क्रामणात्तथा ॥ १२ ॥
मलगो मलरूपेण त्वरितो हंसगो भवेत् ।
मलगो मलरूपेण सधूमो धूमगो भवेत् ॥ १३ ॥

स्वेदनादि कर्म का फल :—रस का स्वेदन करने से तीव्रता आती है, मर्दन करने से मल दूर होता है, चारण कर्म से बल का आधान होता है, जारण कर्म से बन्धन होता है, द्रावण कर्म से एकाकार होता है, रक्तरञ्जन कर्म करने से राग की उपलब्धि होती है सारण कर्म से व्यापकता होती है और क्रामण कर्म करने से क्रामण की शक्ति उत्पन्न होती है । मल रूप से मल की गति पुनः शीघ्र ही हंस की गति हो जाती है । मल रूप से मल की गति तथा सधूम होने पर धूम की गति होती है ।। ११–१३ ।।

अन्या जीवगतिर्देवि ! जीवोऽण्डादिव निष्क्रमेत् ।
स तावज्जीवयेज्जीवं तेन जीवो रसः स्मृतः ॥ १४ ।

ग्रासस्य चारणं गर्भ द्रावणं जारणं तथा ।
इति त्रिरूपा निर्दिष्टा जारणा वर वार्तिकैः ॥ (र० चू० ४।९१)

४. तुषधान्यादि योगेन लोह धात्वादिकं सदा ।
संतिष्ठतेद्रवाकारं सा द्रुतिः परिकीर्तिता ॥ (र० चू० ४।१००)
निर्लेपत्वं द्रुतत्वं च तेजस्त्वं लघुता तथा ।
द्रुतं योगस्य सूतेन पञ्चधा द्रुति लक्षणम् ॥ (र० चू० ४।९९)

५. सुसिद्ध-बोजधात्वादिजारणेन रसस्य हि ।
पीतादि रागजननं रञ्जनं परिकीर्तितम् ॥ (र० चू० ४।१०३)

६. सूते सतैलयन्त्रस्थे स्वर्णादिक्षेपणं हि यत् ।
वेधाधिक्यकरं लोहे सारणा सा प्रकीर्तिता ॥ (र० चू० ४।१०४)

७. अथ क्रामणकं कर्म पारदस्य निगद्यते ।
शास्त्रात्कृतं न दृष्टं हि यथावद् क्रामयेद् रसम् ।
(र० प्र० सु० १।१४०)

क्रामणस्य प्रयोजनः—"इति कृत मारण विधिरपि बलवानपि सूतराट्-क्रिया योगात् । संवेष्टय तिष्ठति लोहं नोविशति क्रामणरहितः अन्नं वा द्रव्यं वा यथानुपानेन धातुषु क्रमते । एवं क्रामणयोगाद्रसराजोविशति लोहेषु ॥
(र० हृ० त० १७।१–२)

चतुष्टयी गतिस्तस्य निपुणेन तु लभ्यते।
चतस्रो गतयो दृश्या अदृश्या पञ्चमी गतिः॥ १५॥

हे देवि ! अन्य जीव गति मण्ड से उत्पन्न जीव की तरह निष्क्रमण करती है। वह जीव को जीवित रखता है। अतः रसजीव कहा गया हैं। रस के अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर चतुष्टयी गति प्राप्त होती है। चार गतियाँ दृश्य होती है किन्तु पाचवीं गति अदृश्य होती है॥ १४–१५॥

मन्त्रध्यानादिना तस्य क्षीयते पञ्चमी गतिः॥ १६॥

मन्त्र ध्यान-आदि से उसकी पाचवीं गति क्षीण होती है॥ १६॥

धूमश्चिटिचिटिश्चैव मण्डूकप्लुतिरेव च।
अकम्पश्च विकम्पश्च पञ्चावस्था रसस्य तु॥ १७॥
मध्यमानस्य कल्केन सम्भवेद्धि गतित्रयम्।
जले गतिर्मलगतिः पुनर्हंसगतिस्ततः॥ १८॥

रस की पाँच अवस्थाओं का निरूपण :—धूम, चिटचिट, मण्डूकप्लुति, अकम्प तथा विकम्प ये रस की पाँच अवस्थायें होती हैं। कल्क के साथ मन्थन करने से रस की तीन गतियाँ होती है, जल में गति "मल गति" पुनः इसके बाद हंसगति होती है॥ १७–१८॥

हेम दत्वा ततः शुद्धं तत्तु स्वम्भेन्नियामके।
नियामकगणौषध्या रसं दत्वा विपाचयेत्॥ १९॥
नियमितो न प्रयाति तथा धूमगतिं शिवे॥ २०॥
कणिकाचालरहितो बुद्बुदैश्चापवर्जितः।
नियमितो भवत्येष चूल्लिकाग्निसहस्तथा॥ २१॥

इसके बाद शुद्ध रस को स्वर्ण देकर नियामक गण के ओषधियों के साथ स्तम्भन करे। नियामक गण की ओषधियों के साथ रस देकर पकावे। हे शिवे ! नियमित होने पर मलगति तथा धूम गति को नहीं प्राप्त करता है। नियमित होने पर कणिका चाल से रहित, बुदबुद शब्द विवर्जित तथा चूल्लिकाग्नि को सहन करने वाला हो जाता है॥ १९–२१॥

अनियम्य यदा सूतं जारयेत् काञ्जिकाशये।
जायते निश्चितं भद्रे तदा तस्य गतित्रयम्॥ २२॥

नियामन क्रिया रहित पारद के दोष :—हे भद्रे ! जब पारद को नियमन किये बिना काञ्जी में रख कर जारण किया जाता है तब निश्चित ही उसकी तीन गति (धूम, चिटचिट तथा मण्डूक प्लुति) हो जाती है॥ २२॥

दोलास्वेदेन चावश्यं स्वेदितो हि दिनत्रयम्।

[1]वसुभण्टादिभिर्देवि ! रसराजो न हीयते ॥ २३ ॥
अक्षीणं तु रसं दृष्ट्वा [2]दद्याद्व्योमादिकं ततः ।
स्वेदनं च ततः कर्म्म दीयमानस्य मर्दनम् ॥ २४ ॥

रस स्वेदनादिक्रम का निरूपण :—हे देवि ! दोलास्वेदनयन्त्र में तीन दिन तक अच्छी तरह स्वेदन किया हुआ रस (पारद) वसुभण्टा (हट्टा–भट्टा या महाट्टा) नष्ट नहीं होता है । क्षयरहित पारद को देखकर अभ्रक आदि प्रक्षेप करें । स्वेदन कर्म किये हुए पारद का मर्दन कर्म करे ॥ २३–२४ ॥

रसालिङ्गित आहारः पिष्टिकेत्यभिधीयते ।
तद्द्रुतं रसगर्भे तु जारणं परिकीर्त्तितम् ॥ २५ ॥
जारणा तत्समाख्याता तदेवञ्चोपलभ्यते ।
जीर्णान्ते रञ्जनं कार्य्यं रक्तवर्गगणेन च ॥ २६ ॥
जीर्णं जीर्णन्तु संरक्तं समहेम्ना तु सारयेत् ।
सारणायन्त्रयोगेन बध्यते सारितो रसः ॥ २७ ॥
सारितः सारितश्चैव यथा भवति सूतकः ।
क्रामणेन समायुक्तं तच्च वेधे नियोजयेत् ॥ २८ ॥

पारद द्वारा अपने में गृहीत आहार (गन्धक, माक्षिक धातु आदि) को पिष्टिका कहते हैं । उसके रस के गर्भ में द्रुत (द्रवित) होने पर जारण कहा जाता है । उसी को जारण कहते हैं । वह जारण इसी प्रकार उपलब्ध होती है । जीर्णान्त (जारण के अन्त) में रक्तवर्गगण के द्रव्यों से रञ्जन कर्म करे । बार-बार जारण कर रञ्जन करने के बाद स्वर्ण के साथ सारण कर्म करे । सारणा यन्त्र के योग से सारित पारद बंध जाता है । अनेक बार सारित करने पर जब पारद क्रामण से युक्त होता है तब पारद को बेधन कार्य में प्रयोग करें ॥ २५–२८ ॥

आरोटः पारदो ब्रह्मा मूर्च्छितस्तु जनार्दनः ।
बद्धस्तु रुद्ररूपः स्यात् कर्म्मयोगबलाद्रसः ॥ २९ ॥

पारद की ब्रह्मा-आदि अवस्था का वर्णन :—आरोट[3] (शुद्ध) पारद ब्रह्मा, मूर्च्छित पारद जनार्दन तथा बद्ध पारद रुद्र रूप कम के संयोग से होता है ॥ २९ ॥

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कर्म्मयोगस्य विस्तरम् ॥ ३० ॥
पारदस्य त्रयो दोषा विषं वह्निर्मलस्तथा ।

---

१ हट्टा, भट्टा, इति पाठौ ।   २ व्योमादिकमभ्राकादिकम् ।
३. व्यारोट संज्ञा लभते बारमेके मृतं तु यः (रसदर्पण)

विषेण सविषं विद्यात् वह्नौ कुष्ठी भवेन्नरः।
मलेनोदररोगी स्यात् म्रियते च रसायने॥३१॥

पारद के दोष तथा दोष युक्त पारद सेवन से हानि :—हे देवि! कर्मयोग के विस्तार को कहता हूँ सुनो। पारद के तीन दोष होते हैं, विष, वह्नि तथा मल। विषयुक्त पारद के प्रयोग से मनुष्य विषैला प्रभाव वाला होता है। वह्नि दोष युक्त पारद सेवन से मनुष्य कुष्ठी होता है, मल दोषयुक्त पारद सेवन से मनुष्य उदर का रोगी होता है तथा सभी दोषों से युक्त पारद सेवन से मनुष्य मृत्यु को प्राप्त करता है॥ ३०-३१॥

अथ मानपरिभाषा।

"षट्त्रुट्यश्चकलिक्षा[1] स्यात् षट्लिक्षा यूक एव च।
षट्यूकास्तु रजःसञ्ज्ञाः कथितास्तव सुव्रते!॥ ३२॥
षड्रजः सर्षपः साक्षात् सिद्धार्थः स च कीर्त्तितः।
षट्सिद्धार्थाश्च देवेशि! यवस्त्वेकः प्रकीर्त्तितः॥ ३३॥
षड्यवैरेकगुञ्जा स्यात् षड्गुञ्जाश्चैकमाषकः।
माषा द्वादश तोलः स्यात् अष्टौ तोलाः पलं भवेत्॥ ३४॥
द्वात्रिंशत्पलकं देवि! शुभन्तु परिकीर्त्तितम्।
शुभस्य तु सहस्रे द्वे भार एकः प्रकीर्त्तितः॥ ३५॥"
द्वे सहस्रे पलानान्तु सहस्रं शतमेव वा।
अष्टाविंशत् पलानान्तु दश पञ्चकमेव वा॥ ३६॥
पलार्द्धेनैव संस्कारः कर्त्तव्यः सूतकस्य तु॥ ३७॥

मान परिभाषा :—छः त्रुटिका लिक्षा, ६ लिक्षा का एक यूक और सुव्रते। छः यूक = तुम्हारा एक रज होता है। छः रज = सरसों, उसको साक्षात् सिद्धार्थ कहते हैं। हे देवेशि! छः सरसों = यव होता है। छः यव = एक गुञ्जा, छः गुञ्जा = एक माषा, बारह मासा = एक तोला होता है, आठ तोला = पल होता है। बत्तीस पल = एक शुभ कहा जाता है। दो हजार शुभ = एक भार कहा जाता है। दो हजार पल, एक हजार पल, सौ पल, अट्ठाइस पल, दस पल, पांच पल या आधा पल पारद लेकर संस्कार करे॥ ३२-३७॥

---

१. षट्त्रुटय-इत्यारभ्य-'मानपरिभाषा' कायचिकित्सा-तन्त्रोक्तमानपरिभाषातो बहुधा भिन्ना-यथा तत्र त्रिभिर्यवैरेका गुञ्जा-उक्ता, अत्र तु षड्भिः कर्षपर्य्यायस्तोलशब्दश्चाऽत्रपठ्यते।

मान परिभाषा आधुनिक समन्वयात्मक तालिका ।—

रसशास्त्रीय मान	आधुनिक मान	प्रचलित मान
छः त्रुटि — एक लिक्षा	—	—
छः लिक्षा — एक यूका	—	—
छः यूका — एक रज	—	—
छः रज — एक सर्षप	—	लगभग ४ मि० ग्रा०
छः सर्षप — एक यव	—	,, २४ मि० ग्रा०
छः यव — एक गुञ्जा	—	,, १४४ मि० ग्रा०
छः गुञ्जा — एक माषा	—	,, ८६४ मि० ग्रा०
बारह माषा — एक तोला	लगभग १ तोला	,, १०ग्रा० ३६८मि०ग्रा०
आठ तोला — एक पल	,, ७ तोला	,, ८२ग्रा० ६२४मि०ग्रा०
बत्तीस पल — एक शुभ	,, २२४ तोला	,, २कि.८४३ग्रा.९६८मि.ग्रा०
दो हजारशुभ— एक भार	—	— —

महाबला-नागबला-मेघनादा-पुनर्नवा ।
मेषशृङ्गी च तत्सारैः नवसारसमन्वितम् ।
पारदं देवदेवेशि ! स्वेदयेद्दिवसत्रयम् ॥ ३८ ॥

पारदको स्वेदन करने वाली औषधियाँ:—

हे देवदेवेशि महाबला (सहदेई) नागबला (गुल शकरी) मेघनाद (चौराई), गदहपूरना तथा मेढ़ासिंघी इन सबों के रस के साथ नवसादर मिलाकर पारदको तीन दिन तक स्वेदन करें ॥ ३८ ॥

॥ इत्यौषधस्वेदनम् ॥

गिरिकर्णी च मीनाक्षी सहदेवी पुनर्नवा ।
उरगा त्रिफला कान्ता लघुपर्णी शतावरी ॥ ३९ ॥
तुषवर्जे तु धान्याम्ले सर्वं संक्षुभ्य निक्षिपेत् ।
एकादशगुणेऽम्लेऽस्मिन् षोडशांशैर्विमर्दितम् ॥ ४० ॥
आसुरीलवणव्योष-चित्रकार्द्रकमूलकैः ।
दोलायां स्वेदयेद्देवि ! त्रिदिनं मृदुनाग्निना ॥ ४१ ॥

पारद का संधानाम्ल केषा स्वेदन विधिः—हे देवि ! अपराजिता, मत्स्याक्षी (मछेछी), सहदेई, पुनर्नवा उरगा (बन्ध्याकर्कोटकी), त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आंवला), कान्ता (प्रियंगु), लघुपर्णी (मूर्वा), शतावरी इन द्रव्यों को चूर्ण कर तुषारहित धान्याम्ल में छोड़ दे । इस ग्यारह गुना धान्याम्ल में

आसुरी (राई) सेन्धानमक, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच,) चित्रक, अदरक तथा मूली इन सबों के सोरहवां भाग के साथ पारद को मर्दन कर दोलायन्त्र में मन्द आंच से तीन दिन तक स्वेदन करें ॥ ३९-४१ ॥

॥ इति सन्धानाम्लस्वेदनम् ॥

अङ्कोलस्तु विषं हन्ति वह्निमारग्वधः प्रिये ! ।
चित्रकस्तु मलं हन्यात् कुमारी सप्तकञ्चुकम् ॥ ४२ ॥
तस्मादेभिः समोपेतैर्मर्दयेत् पातयेद्बुधः ॥ ४३ ॥

पारद के मर्दन संस्कार की विधि—हे प्रिये अंकोल (ढ़ेरा) पारद के विष दोष को नष्ट करता है, आरग्बध (अमलतास) वह्निदोष को नष्ट करता है, चित्रक मल दोष को नष्ट करता है तथा घृतकुमारी सप्तकाञ्चुक दोष को नष्ट करती है। अतः रसवेत्ता इन सब औषधियों के साथ पारद का मर्दन करे तथा पातन करे ॥ ४२-४३ ॥

विद्याधरेण यन्त्रेण भावयेद्दोषवर्जितम् ।
ततस्त्रिगुणवस्त्रस्थं तं रसं देवि ! गालितम् ॥ ४४ ॥
त्रिफलावह्निमूलत्वात् गृहकन्यारसान्वितम् ।
निरुद्गारे तु पाषाणे मर्दयेत् पातयेत् पुनः ॥ ४५ ॥
धूमसारगुडव्योष-रजनीसितसर्षपैः ।
इष्टिकाकाञ्जिकोर्णाभिः त्रिदिनं मर्दयेत्ततः ॥ ४६ ॥
निर्मलो जायते सूतः मत्प्रभावं प्रकाशयेत् ॥ ४७ ॥

दोष रहित पारद को विद्याधर यन्त्र के द्वारा पूर्वोक्त औषधियों के साथ भावित करे। हे देवि ! इसके बाद उस पारद को त्रिगुणित वस्त्र में रखकर छान ले। पुनः त्रिफला (हर्रे बहेड़ा आंवला) वह्निमूल (चित्रकमूल) तथा घृतकुमारी के रस के साथ उफानरहित पत्थर के खरल (औषधि के अनुसार बड़े पत्थर के खरल) में मर्दन करे और पातन करे। फिर धूमसार (गृहधूम) गुड़, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) हलदी, सफेदसरसों, ईंट का चूर्ण, काञ्जी तथा ऊन इन द्रव्यों के साथ तीन दिन तक मर्दन करे। इसके बाद प्रक्षालन करने पर पारद निर्मल हो जाता है औ मेरे प्रभाव (तेज) को प्रकट करता है। ॥ ४४-४७ ॥

वासकेन बिभीतेन मर्दयेत् पातयेत् पुनः ।
नागवङ्गादिका दोषा यान्ति नाशमुपाधिजाः ॥ ४८ ॥

नागवंगादि दोष नाशक औषधियां :—पुनः पारद को अड़ूसा तथा बहड़ा के कल्क के साथ मर्दन करे तथा पातन करे। इससे उपाधिज "नाग वंगादि दोष" नष्ट हो जाते हैं ॥ ४८ ॥

सप्तवारं काकमाच्या गतदोषं विमर्दयेत्।
पातयेत् सप्तवारं च गिरिदोषं त्यजेद्रसः ॥ ४९ ॥
क्षेत्रदोषं त्यजेद्देवि ! गोकर्णरसमूर्च्छितः ॥ ५० ॥

दोष रहित पारद को मकोय के कल्क के साथ सात बार मर्दन करे और सात बार पातन करे। इससे पारद "गिरि दोष" "को छोड़ देता है।

हे देवि ! [1]गोकर्ण (अश्वगन्धा या पलास) के रस से मूर्छित करने पर क्षेत्र दोष को त्याग देता है ॥ ४९-५० ॥

कार्पासपत्रनिर्यासे स्विन्नस्त्रिकटुकान्विते।
सप्तकञ्चुकनिर्म्मुक्तः सप्ताहाज्जायते रसः ॥ ५१ ॥

कपास के रस में त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) मिलाकर स्वेदन करने से एक सप्ताह में पारद सप्तकञ्चुक दोष से मुक्त हो जाता है ॥ ५१ ॥

काकमाची जया ब्राह्मी गाङ्गेरी रक्तचित्रकः।
मण्डूकी मुग्दपर्णी च शृङ्गवेरं रसाङ्कुशः ॥ ५२ ॥
देवदाली शङ्खपुष्पी काकजङ्घा शतावरी।
कुमारी भृङ्गराजश्च निर्गुण्डी ग्रीष्मसुन्दरः ॥ ५३ ॥
शूलिनी शूर्पपर्णी च गोजिह्वा क्षीरकञ्चुकः।
तद्रसैर्मर्दितः पात्यः सप्तधा निर्म्मलो भवेत् ॥ ५४ ॥

मकोय, जया, ब्राह्मी, गाङ्गेरी (नागबला), लालचित्रक, मण्डूकी (मण्डूकपर्णी) मुद्गपर्णी, अदरक, रसाङ्कुश (एक प्रकार की औषधि), बांझी (घघरवेल), शंखपुष्पी, काकजंघा, शतावरी, घृतकुमारी, भृंगराज, निर्गुण्डी, ग्रीष्मसुन्दर (शाकविशेष), शूलिनी (सोला) शूर्पपर्णी (मुद्गपर्णी), गोजिह्वा तथा क्षीर कञ्जुकी समभाग इन द्रव्यों के रस के साथ पारद सात बार मर्दन कर सात बार पातन करने से निर्मल हो जाता है ॥ ५१-५४॥

ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वपातने।
वङ्गनागौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः ॥ ५५ ॥

पारद को तांबा के साथ मर्दन के द्वारा पीठी बनाकर ऊर्ध्वपातन यन्त्र में पातन करे। इससे पारद वंग तथा नाग दोष को छोड़कर शुद्ध हो जाता है ॥ ५५ ॥

---

१. गोकर्ण—अश्वगन्धा (मदन पाल), पलासः (का० घे०)

मर्दितस्त्रिफलाशिग्रु-राजिकापटुचित्रकैः ।
ऊद्ध्र्वभाण्डगतः पाच्यः प्रदीप्तैरुपलैरधः ॥ ५६ ॥
सृष्ट्यम्बुजनिरोधेन लब्धप्रायो भवेद्रसः ।

त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), सहिजन, राई, नमक तथा चित्रक इन द्रव्यों के साथ मर्दन किया हुआ पारद ऊपर के पात्र में रख कर प्रदीप्त उपलों के आंच से नीचे पातन करे। अर्थात् अधः पातन यन्त्र के द्वारा अधः पातन कर ले। पारद सृष्ट्म्बुज (सेन्धा नमक या स्त्री का मूत्र, रज तथा वीर्य) के निरोध से प्राप्त हो जाता है ॥ ५६½ ॥

कर्कोटी-कञ्चुकी-बिम्बी-सर्पाक्ष्यम्बुजसंयुतम् ॥ ५७ ॥
रसं नियामके दद्यात् तेजस्वी निर्म्मलो भवेत् ।

वांझ ककड़ी, कञ्चुकी (क्षीरकञ्चुकी), बिम्बीफल, सर्पाक्षी (गन्धनाकुली) तथा कमल इन द्रव्यों के साथ पारद को नियामन (निरोध) में देने से तेजस्वी तथा निर्मल पारद हो जाता है ॥ ५७½ ॥

एवं विशोधितः सूतो भद्राष्टांशविशोषितः ॥ ५८ ॥
क्षुद्राम्ललवणक्षार-भूखगोषणशिग्रुभिः ।
राजिकाटङ्कणयुतैरारनाले दिनत्रयम् ।
स्वेदनाद्दीपितो देवि ! ग्रासार्थी जायते रसः ॥ ५९ ॥

हे देवि ! इस प्रकार विशोधित पारद आठवां भाग कठूमर के लेप करने के बाद सुखाकर क्षुद्राम्ल (चोपतिया=चांगेरी) सेन्धानमक, यव क्षार, भूखग (केचुआ) कालीमरिच, सहिजन, राई, तथा टंकणक्षार इन सबों के साथ पारद को आरनाल में तीन दिन तक स्वेदन करने से प्रदीप्त पारद ग्रास ग्रहण करने योग्य हो जाता है ॥ ५८-५९ ।

व्योमसत्त्वादिबीजानि रसजारणशोधने ।
तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६० ॥
इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
रसशोधनो नाम दशमः पटलः ॥ १० ॥

इसके जारण तथा शोधन में अभ्रक सत्व आदि बीज उपयोगी होते हैं। हे देवेशि ! इसके बाद और क्या सुनना चाहती हो वह मुझसे कहो ॥ ६० ॥

दशम पटल समाप्त

———

एकादशः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

लक्षणं शोधनं चैव पारदस्य श्रुतं मया ।
चारणं जारणं चैव[1] श्रोतुमिच्छामि भैरव ! ॥ १ ॥

पारद के चारण[2] जारण संस्कार के सम्बन्ध में प्रश्न :—पार्वती ने प्रश्न किया कि हे भैरव ! पारद का लक्षण तथा शोधन मैंने सुना, पुनः मैं पारद का चारण (जारण का एक प्रकार) तथा जारण (धातुओं या खनिजों का भस्म बनाना) सुनना चाहती हूँ ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

सर्वपापक्षये जाते प्राप्यते रसजारणा ।
तत्प्राप्तौ प्राप्तमेव स्याद्, 'विज्ञानं मुक्तिकारणम्' ॥ २ ॥
मोक्षाभिव्यञ्जकं देवि ! जारणं साधकस्य तु ।
यावन्न जार्य्यते सूतः तावत्तु न च निर्वृतिः ॥ ३ ॥

पारद के जारण की प्रशंसा पूर्वक विधि का निरूपण :—पारदके चारण एवं जारण सम्बन्धी प्रश्न को सुनकर भैरव जी बोले—कि हे पार्वति सभी प्रकार के पापों (कायिक, वाचिक, मानसिक) के क्षय हो जाने पर रसजारणा प्राप्त होती है, और उसकी प्राप्ति हो जाने पर मुक्ति का कारण विज्ञान प्राप्त हो ही जाता है । हे देवि ! पारद का जारण साधक के मोक्ष का अभिव्यञ्जक है । जब तक पारद का जारण नहीं हो जाता तब तक निर्वृति (छुटकारा) नहीं होती हैं ॥ २-३ ॥

खल्लस्तु पीठिका देवि ! रसेन्द्रो लिङ्गमुच्यते ।
मर्दनं वन्दनं तस्य ग्रासः पूजा विधीयते ॥ ४ ॥

हे देवि ! खल्ल पीठिका है और रसेन्द्र लिङ्ग है । पारद का मर्दन वन्दना है और ग्रास उसकी पूजा है ॥ ४ ॥

यावद्दिनानि वह्निस्थो जार्य्यंते धार्य्यते रसः ।
तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ५ ॥

---

१. भूयः,–इति पाठाऽनुगुणः ।

२. जारणा नाम गालन, पातन व्यतिरकेण घन हेमादिग्रासपूर्वकपूर्वाविधि अवस्था प्रतिपन्नत्वम् (रसेन्द्र चिन्तामणि ।)

साधक जितने दिनों तक पारद को अग्नि में जारण करते हुए रखता है उतने हजार युगों तक शिव लोक में रहते हुए महानता को प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

दिनमेकं रसेन्द्रस्य यो ददाति हुताशनम् ।
द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य एक दिन भी पारद को आग में हवन करता है अर्थात् आग में धमन करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं और पाप करता हुआ भी उससे लिप्त नहीं होता है ॥ ६ ॥

जारणा द्विविधा बाल-जारणा बद्धजारणा ।
तत्रादौ परमेशानि ! वक्ष्यते 'बालजारणा' ॥ ७ ॥

जारणा का भेद तथा उसका क्रम :—जारणा दो प्रकार की होती है । बाल जारण तथा वद्ध जारणा । हे परमेशानि ! यहां पर पहले बाल जारणा को कहता हूँ ॥ ७ ॥

गगनं जारयेदादौ सर्वसत्त्वमतः परम् ।
ततो माक्षिकशुद्धं च सुवर्णं तदनन्तरम् ॥ ८ ॥
गर्भस्थं द्रावयित्वा तु ततो बाह्यद्रुतिं द्रवेत् ।
सितं सितेन द्रव्येण रक्तं रक्तेन रञ्जयेत् ॥ ९ ॥
सारणं क्रामणं ज्ञात्वा ततो वेधं प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

पहले अभ्रक का जारण करना चाहिए । इसके बाद सभी तत्त्वों का जारण करें । उसके बाद शुद्ध माक्षिक का जारण और तदनन्तर सुवर्ण का जारण करें । पारद के गर्भ में ही द्रावण कर बाह्यद्रुति को द्रवित करें । उसके बाद सितरञ्जनद्रव्य से सितपदार्थ तथा रक्तरञ्जनद्रव्य से रक्तपदार्थ का रञ्जन करें । सारण तथा क्रामण क्रम को जानकर उसके बाद [1]वेध का प्रयोग करें ॥ ८-१० ॥

चारणजारणमन्त्रः ।

ॐनमोऽमृतलोहाय पराऽमृतरसोद्भवाय हुँ स्वाहा ॥ ११ ॥

चारण जारण मन्त्र :—ॐनमोऽमृत लोहाय······ हुं स्वाहा ॥ ११ ॥

---

१. व्यवायीभेषजोपेतो द्रव्ये क्षिप्तो रसः खलु । वेध इत्युच्यते तज्ज्ञैः सचानेकविधः स्मृतः ॥ लेपः क्षेपश्च कुन्तश्च धूमाख्यः शब्द संज्ञकः । (॥ र० चू० ४।१०५)

सर्वसत्त्वोपकाराय भगवन् त्वदनुज्ञया ।
जारणं कर्त्तुमिच्छामि ग्रासं गृह्ण[1] मम प्रभो ॥ १२ ॥
कुरुष्वेति शिवेनोक्तं ग्राह्यमेव सुबुद्धिना ॥ १३ ॥

प्रार्थना :—हे भगवन् सभी प्राणियों के उपकार के लिये आपकी आज्ञा से ! मैं जारण कर्म करने की इच्छा कर रहा हूँ हे प्रभो ! आप मेरा ग्रास ग्रहण करें। करो ऐसा शिव के कहने पर ही बुद्धिमाण् साधक ग्रास को उठाये ॥ १२-१३ ॥

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि व्योमजारणमुत्तमम्
पत्राभ्रजारणं सत्त्व-जारणञ्चेति तद्द्विधा ॥ १४ ॥
निर्मुखं समुखं चैव वासनामुखमेव च ।
एकैकं त्रिविधं तच्च तद्वक्ष्याम्यानुपूर्वशः ॥ १५ ॥

अभ्रक जारण विधि :—हे देवि ! अभ्रक जारण का उत्तम विधि कहता हूँ सुनो। अभ्रक जारण दो प्रकार का होता है पत्राभ्रजारण तथा सत्वाभ्र-जारण। यह एक एक जारण निर्मुख, सुमुख तथा वासना मुख भेद से तीन प्रकार का होता है। उसको आनुपूर्वी क्रम से कहता हूँ ॥ १४-१५ ॥

वैक्रान्तवज्रसंस्पर्शात् दिव्यौषधिबलेन वा ।
निर्मुखो भक्षयेद्देवि ! क्षणेन गगनं रसः ॥ १६ ॥

हे देवि ! वैक्रान्तभस्म तथा वज्रभस्म के संसर्ग से या दिव्यौषधियों के बल से निर्मुख पारद क्षणभर में अभ्रक को ग्रास कर जाता है ॥ १६ ॥

हेमकर्म्मणि हेमैव तारे तारो मुखं भवेत् ॥ १७ ॥

मुख :—हेम कर्म में हमें तथा रजत में रजती ही मुख होता है ॥ १७ ॥

तप्तखल्लकृता पिष्टिः श्लक्ष्णमल्पाल्पमभ्रकम् ।
अम्लवेतसजम्बीर-बीजपूराऽम्लभूखगैः ।
मर्दितं [2]चरते देवि ! सेयं समुखजारणा ॥ १८ ॥

समुख जारणा :—गरम खरल में पिष्टि रखकर उस में थोड़ा थोड़ा महीन अभ्रक, अम्लवेत, जम्बीरीनिम्बु, विजोरानिम्बु, इमली तथा भूखग (एक प्रकार की ओषधि या केचुआ), इन सबों के साथ मर्दन करने से पिष्टि में संचरण होने लगता है इसी को समुखजारणा कहते हैं ॥ १८ ॥

---

१. ग्रासोग्राह्योमम प्रभो ! इति पाठः, गृह्ण इति गृहाण-इत्यस्य छान्दसत्वादालोपे, वेदे पुराणेषु च दृश्यते । २ आत्मनेपदमार्षम् ।

क्षारत्रयं पञ्चपटु काक्षी-काशीसगन्धकम् ।
माक्षिकं चाम्लसंयुक्तं ताम्रपात्रे तु जारयेत् ॥ १९ ॥
एतच्चाभिषवाद् दिव्यं कारयित्वा विचक्षणः ।
जारणार्थञ्च बीजानां वज्राणाञ्च विशेषतः ॥ २० ॥
तस्मिन्नवर्त्तितं नागं वङ्गं वा सुरवन्दिते ! ।
निषेचयेच्छतं वारं न रसायनकर्म्मणि ॥ २१ ॥
अनेन सकले देवि ! चारणा·वस्तु भावयेत् ।
क्षाराम्ले भावितं व्योम रजसा प्रथमेन च ॥ २२ ॥
सृष्टित्रयोदककणा तुम्बुरुद्रवमर्दिम् ।
चरेज्जरेद्वा पुटितं यवचिञ्चारसेन च ॥ २३ ॥

क्षारत्रय (यवक्षार, सज्जीक्षार टंकण), पञ्चपटु (सेंधा, सोंचर, सामुद्र, विड तथा कांच), कासीस गन्धक, माक्षिक तथा इमली इन सबों को ताम्र पात्र में रखकर जलाये । इसको अभिषेक के द्वारा बुद्धिमान् व्यक्ति दिव्य बनाकर जारण के लिये बीज तथा व्रज का संमिश्रण करे । अथवा हे सुर वन्दिते ! उसमें नाग तथा वंग को मिलाये और एक सौ वार सीचें किन्तु रसायन क्रम में यह किया न करे । हे देवि ! इससे सभी चारणा वस्तु को भावित करे । इसके बाद क्षार तथा अम्ल में प्रथम·बार भावित अभ्रक भस्म से सृष्टित्रय (रज, वीर्य तथा रक्त), जलपीपर तथा तुम्बरु के रस से मर्दित पारदपिष्टि को इमली के रस के साथ पुट देकर चारण तथा जारण करे ॥ १९-२३ ॥

शतावरी गदा रम्भा मेघनादा पुनर्नवा ।
शिग्रुको यवचिञ्चा च भावितं तद्रसैः क्रमात् ॥ २४ ॥
मूलं हिलमुचायास्तु कौवेरीमूलमेव च ।
कदलीमुसलीशिग्रु-¹ताम्बूलीवाणपीलुकम् ॥ २५ ॥
अलम्बुषा बला कोलमास्फोटः खरमञ्जरी ।
तुम्बुरुस्तिक्तशाकं वा, ध्येषामेकरसेन तु ।
राजिकाव्योषयुक्तेन त्रिदिनं स्विन्नमभ्रकम् ॥ २६ ॥
काशीसतुवरीसिन्धु-टङ्कणक्षारसंयुतः ।
पूर्वाभिषवयोगेन सूतकश्चरति क्षणात् ॥ २७ ॥
गोलको भवति क्षिप्रं सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ २८ ॥

गोलको भवति क्षिप्रं सर्वसिद्धिप्रदायकः । शतावरी, गदा (पाटला), केला, मेघनाद (चौराई) पुनर्नवा, सहिजन

१. वालपीलुकाः—इति पाठान्तरम् ।

तथा इमली क्रमशः इनके रसों से भावित अभ्रक अथवा हिलमुचा (हिलमोचिका) का मूल, कोबेरी (इन्द्र बारुणी) मूल, केला, मुसली, सहिजन, पान, बाण-पीलुक (बालपीलुक) अयत्रा-अलम्बुषा (लज्जालु), बरियार, कोल (बैर) आस्फोट (मदार), चिड़चिड़ा, तुम्बरु, तिक्तशाक (वरुण वृक्ष) इनमें से एक द्रव्य के रस के साथ राई तथा व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) मिलाकर तीन दिन तक स्वेदन किया हुआ अभ्रक, कसीस, तुवरी (सौराष्ट्री मिट्टी), सैन्धानमक तथा टंकणक्षार इन सबों को मिलाकर पूर्व के अभिषव योग से अभिर्षिचित करने पर पारद शीघ्रहीं संचरण करने लगता है ओर शीघ्रहीं गोलक हो जाता हैं। यह सभी सिद्धियों को देनेवाला हैं ॥ २४-२८ ॥

गृहीत्वा देवि! धान्याम्ल-मम्लवर्गेण संयुतम्।
काथयित्वाभ्रकं तत्तु स्नुहीक्षीरेण मर्दयेत् ॥ २९ ॥
आरण्यगोमयेनैव कपोताख्यं पुटं ततः ॥ ३० ॥
कदलीकन्दनिर्यासै मूलकन्दरसेन च।
काकमाची च मीनाक्षी अपामार्गो मुनिस्तथा ॥ ३१ ॥
एरण्डमार्द्रकञ्चैव मेघनादा पुनर्नवा।
एकैकस्य द्रवैरेव पुटैकैकं प्रदापयेत् ॥ ३२ ॥
वज्रीक्षीरेण संयुक्तं दोलायन्त्रेण पाचयेत्।
छायाशुष्कं ततः कृत्वा चणकाम्लेन संयुतम् ॥ ३३ ॥
नवसारं च काशीसं वचां निम्वं तथैव च।
अभ्रस्य षोडशांशेन एकैकं तत्र निक्षियेत् ॥ ३४ ॥
निधाय ताम्रपात्रे तु घर्षयेत्तच्च सुव्रते!।
नववारं ततो देवि! लोहपात्रे तु जारयेत् ॥ ३५ ॥
रसेन सह देवेशि! चणकाम्लेन काञ्जिकम्।
मृद्वग्निना तु निःक्वाथ्यं प्रहरार्द्धेन जायते ॥ ३६ ॥
सोमवल्लीरसैः पिष्ट्वा व्योम सौवर्चलान्वितम्।
शनैः शनैर्हंसपाद्या दापयेच्च पुटत्रयम् ॥ ३७ ॥
सोमवल्लीरसेनैव सप्तवारञ्च दापयेत्।
पातयेन्मृन्मये भाण्डे रसेन सह संयुतम् ॥ ३८ ॥
मूलं सितेषुपुङ्खाया गव्यक्षीरेण घर्षयेत्।
कल्केन लेपयेत् सूतं गगनञ्च तदूर्ध्वगम् ॥ ३९ ॥
तापयेद्रवितापेन निर्मुखं ग्रसते क्षणात्।
जायते पिष्टिका शीघ्रं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ४० ॥

तिलपर्णीरसेनैव गगनं भावयेत् प्रिये।
मर्दनाज्जायते पिष्टी नात्र कार्य्या विचारणा॥ ४१॥

निर्मुख ग्रास :—हे देवि ! धान्याम्ल (काञ्जी) को अम्लवर्ग (अम्लवेत, जम्बीरीनिम्बु, विजौरानिम्बु, इमली तथा चणकाम्ल) के साथ मिलाकर उसमें अभ्रक को पकाये और उसके बाद सेंहुड़ के दूध के साथ मर्दन[1] करे। तदनन्तर जंगली उपलों से ही "कपोत" नामक यन्त्र में रखकर पुट दे। पुट देने के बाद केला के कन्द का रस, मूली के कन्द का रस, मकोय, मीनाक्षी (मत्स्याक्षी = मछेछो), अपामार्ग, अगस्त्य एरण्ड, अदरक, मेघनाद (चौराई), गदहपूरना, इन सबों के एक एक के रस के साथ मर्दन कर एक एक पुट दे और वज्रीक्षीर (सेंहुड़) के दूध के साथ मिलाकर स्वेदन करे! इसके बाद छाया में सुखाकर चणकाम्ल के साथ नवसादर, कासीस वच तथा नींम इन सबों में प्रत्येक का अभ्रक के सोरहवां भाग मिला दे। हे सुव्रते। तदनन्तर ताम्र के पात्र में रखकर घर्षण करे। हे देवि ! इसके बाद लोह पात्र में नव बार जलाये। हे देवेशि ! चणकाम्ल के साथ काञ्जी में रस को मन्द आंच से आधा पहर तक क्वाथ करे। इसके बाद सोमवल्ली (सोमलता) के रस के साथ अभ्रक को पीस तथा सौवर्चल नमक मिलाकर हंसपादी (हंसपदी) के साथ तीन पुट दे और सोमलता के साथ सात वार पुट दे। इसके बाद मिट्टी के पात्र में पुटित अभ्रक को पारद के साथ मिलाकर पातन कर ले। सितेषुपुखा (शरपुंखा) मूल को गाय के दूध के साथ पीस कर उसके कल्क के साथ पारद तथा अभ्रक को लिप्त करे और पातन यन्त्र के ऊपर के पात्र में रखकर रवि के ताप से तपाये। इससे पारद अभ्रक को शीघ्रही निर्मुख ग्रसित कर लेता है। मर्दन करने से शीघ्रही पिष्टिका बन जाती है। यहाँ पर बिचार करने की आवश्यकता नहीं है। हे प्रिये तिलपर्णी (तिलोनीशाक) के रस से अभ्रक को भावित कर उसके साथ पारद को मर्दन करने से शीघ्र ही पिष्टिका बन जाती है यहाँ पर विचार करने की आवश्यकता नहीं हैं॥ २९-४१॥

मुण्डीनिर्यासके नागं बहुशस्तु निषेचयेत्।
तेनाभ्रकं तु संप्लाव्य भूयोभूयः पुटे दहेत्॥ ४२॥

---

१. उदितैरौषधैः सार्द्धं सर्वाम्लैः काञ्जिकैरपि।
पेषणं मर्दनाख्यं स्याद्बह्निमल-विनाशनम्॥
गुडदग्धोर्णालवणैर्मन्दिरधूमेष्टिकासुरी-सहितैः।
रसषोडशमानैः सकाञ्जिकैर्मर्दनं त्रिदिनम्॥ (र०हृ०त०अ०२)

चित्रकार्द्रकमूलानामेकैकेन तु सप्तधा।
प्लावितव्यं प्रयत्नेन गन्धकाभ्रकचूर्णकम् ॥ ४२ ॥
नागशुण्डीरसस्तन्यरजोलुङ्गाम्लभावितम्।
षोडशांशेन तद्वत्तं दोलायां तु चरेद्रसः ॥ ४४ ॥

गन्धकाभ्र वारण :—गोरखमुण्डी के रस में नाग को अनेक बार सीचें और उसके साथ अभ्रक को डुबोकर बार बार पुट में जलाये। चित्रक अदरक तथा मूली इन सबों के एक एक के रस में गन्धकाभ्रक को सात सात बार प्रयत्न पूर्वक प्लावित करे। इसके बाद नागगुण्डी (हाथोशुण्डी) कारस, दूध तथा चूर्ण, तथा विजौरा निम्बु के रस में भावित सोलहवाँ भाग गन्धकाभ्र पूर्ववत् दोलायन्त्र में स्वेदन करने से उसको पारद ग्रास कर लेता है ॥ ४२-४४ ॥

चतुःषष्टिगुणं देवि! द्वात्रिंशद्गुणमेव वा।
अथवा षोडशगुणं तथाष्टगुणमेव वा।
चतुर्गुणं वा द्विगुणं समं वा चारयेत् प्रिये! ॥ ४५ ॥

ग्रास ग्रहण कराने का नियम :—हे देवि ! चौसठ गुना, बत्तीस गुना सोलह गुना, आठ गुना, चार गुना, दुगुना या समभाग गन्धाभ्रक को ग्रास कराये ॥४५॥

'परमभ्रकसत्त्वस्य' जारणं शृणु पार्वति! ॥ ४६ ॥
व्योमसत्त्वं समांशेन ताप्यसत्त्वेन संयुतम्।
स खल्वेवं चरेद्देवि! गर्भद्रावी भवेद्रसः ॥ ४७ ॥

अभ्रक सत्व जारण :—हे देवि ! इसके बाद अभ्रक सत्व जारण कहता हूँ सुनो। अभ्रकसत्व को समभाग माक्षिक सत्व के साथ मिलाने पर रस (पारद) ग्रास कर लेता है और वह गर्भद्रावी होता है ॥ ४६-४७ ॥

नागाभ्रं देवि! वङ्गाभ्रं तीक्ष्णाभ्रं भास्कराभ्रकम्।
ताराभ्रं देवि! हेमाभ्रं रसगर्भेण जारयेत् ॥ ४८ ॥
पूर्वाभिषेकयोगेन गर्भे द्रवति मर्दनात् ॥ ४९ ॥

हे देवि ! नागाभ्र, वंगाभ्र, तीक्ष्णाभ्र, भास्कराभ्र, (ताम्राभ्र) ताराभ्र तथा हेमाभ्र को रसगर्भ के द्वारा जारण करे। पूर्वाभिषेकद्रव्य के संयोग से नागाभ्रादि मर्दन करने से रस के गर्भ में द्रव हो जाते हैं ॥ ४८-४९ ॥

चतुःषष्ठ्यंशकः पूर्वः द्वात्रिंशांशो द्वितीयकः।
तृतीयः षोडशांशस्तु चतुर्थोऽष्टांश एव च ॥ ५० ॥
पञ्चमस्तु चतुर्थांशः षष्ठो द्व्यंशः प्रकीर्त्तितः।
ग्रासो रसस्य दातव्यः ससत्त्वस्याभ्रकस्य च ॥ ५१ ॥

द्रावण के लिये रसगर्भ में प्रथम ग्रास चौसठवां भाग, द्वितीयग्रास बत्तीसवां भाग, तीसराग्रास सोलहवांभाग, चौथाग्रास आठवांभाग, पांचवांग्रास चौथाई-भाग तथा छठवांग्रास दूसराभाग प्रक्षेप करने को कहा गया है। इसी मात्रा में सत्व सहित अभ्रक का ग्रास देना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

चतुःषष्ट्यंशके ग्रासे दण्डधारी भवेद्रसः ॥
जलौकावद्द्वितीये च ग्रासयोगे सुरेश्वरि ! ॥ ५२ ॥
ग्रासेन तु तृतीयेन काकविष्ठासमो भवेत् ।
ग्रासेन तु चतुर्थेन दधिमण्डसमो भवेत् ॥ ५३ ॥
पञ्चमे चारिते ग्रासे नवनीतसमो भवेत् ।
षष्ठे तु गोलाकाकारः क्रमाज्जीर्णस्य लक्षणम् ॥ ५४ ॥

ग्रास की मात्रा के अनुसार पारद का स्वरूप :—प्रथम चौसठवां भाग ग्रास करने पर पारद दण्ड के आकार का हो जाता है। हे सुरेश्वरि ! दूसरे ग्रास में जलौका के समान, तीसरे ग्रास में काकविष्ठा के समान, चौथे ग्रास में दही के तोड़ के समान, पाँचवें ग्रास में नवनीत के समान तथा छठवें ग्रास में गोलाकार हो जाता है। क्रमशः यही जीर्ण का लक्षण होता है ॥ ५२-५४ ॥

काञ्जिकेन निषिक्तेन रक्तव्योम शतप्लुतम् ।
खल्लान्तश्चारयेत्तच्च शुल्ववासनया सह ॥ ५५ ॥

वासनामुख :—लाल अभ्रक को काञ्जी में अभिषेक कर सौ वार डुबोये। इसके बाद खरल के अन्दर रखकर ताम्र वासना (जारणा विशेष) के साथ चारण कराये ॥ ५५ ॥

हेम तारञ्च संघृष्य खल्ले तत्र रसं न्यसेत् ।
काञ्जीसहितकाशीसं सिन्धुना चरते रसः ॥ ५६ ॥

सुवर्ण तथा रजत को खरल में पीसकर उसमें काञ्जी के साथ काशीस मिलाकर सेन्धानमक के साथ पारद को रक्खे इससे रस ग्रास करता है ॥ ५६ ॥

हेम सीसन्तु संघृष्य रसं तत्र प्रदापयेत् ।
नागहेमयुतं व्योम समजीर्णं द्रुतं भवेत् ।
अभ्रकोपरसान् क्षिप्रं मुखेनैव चरत्ययम् ॥ ५७ ॥

सुवर्ण तथा सीसा को खरल में पीसकर उसमें रस (पारद) मिला दे। इससे नागहेम युक्त अभ्रक समजीर्ण द्रुत हो जाता है। यह समजीर्णद्रुत पारद अभ्रक-आदि उपरसों को शीघ्र ही मुख से ग्रास कर लेता है ॥ ५७ ॥

तारं वङ्गं च संघृष्य रसं तत्र प्रदापयेत् ।
"नागहेमयुतं व्योम समजीर्णं द्रुतं भवेत्" ।

मुखेन चरते व्योम तारकर्म्मणि शस्यते ॥ ५८ ॥
समुखं निर्मुखं वापि यत्नतश्चारयेन्नभः ॥ ५९ ॥

रजत तथा वंग को घिसकर उसमें पारद छोड़ दे। इससे नागहेमयुक्त अभ्रक समजीर्ण द्रुत हो जाता है। यह मुख से ही ग्रास कर लेता है। इसका प्रयोग रजत कर्म में किया जाता है। समुख या निर्मुख यत्नपूर्वक अभ्रक का ग्रास कराये ॥ ५८–५९ ॥

चरणां त्रिविधामेवं कृत्वा गर्भद्रुतिं रसे।
जारयेत् स्वेदयेत् पिण्डं परिणामक्रमैस्त्रिभिः ॥ ६० ॥

इस प्रकार पारद में त्रिविधचारण गर्भद्रुति को कर तीन परिणाम-क्रम के (ग्रासचारण, गर्भद्रावण तथा चारण) पिण्ड का जारण तथा स्वेदन करे ॥ ६० ॥

पट्वम्लक्षारगोमूत्रस्नुहीक्षीरैः प्रलेपितम्।
बहिश्च बद्धं वस्त्रेण भूयो ग्रासं निवेदितम्।
क्षाराऽऽरनालतैलेषु स्वेदयेन्मृदुनाग्निना ॥ ६१ ॥
क्रमेणानेन देवेशि! जार्यंते दिवसैस्त्रिभिः।
यन्त्रादुद्धृतमात्रं तु लोहपात्रे स्थितं रसम् ॥ ६२ ॥
कोष्णेन काञ्जिकेनादौ क्षालितं वस्त्रगालितम्।
पात्रे सुखोष्ण-हस्तेन यावत् शेषं विमर्दयेत् ॥ ६३ ॥
चतुर्गुणेन वस्त्रेण पीडितो निर्म्मलश्च सः ॥ ६४ ॥
गालनक्रियया ग्रासे सति निष्पेषनिर्गते।
स भवेद्दण्डधारी च जीर्णग्रासस्तथा रसः ॥ ६५ ॥

दण्डधारीरस :—सेन्धानमक, इमली, टंकणक्षार, गोमूत्र तथा सेंहुड़ के दूध से प्रलिप्त वस्त्र से बाहर ही बँधा हुआ पुनः ग्रासप्राप्तपारद को क्षार, काञ्जी तथा तैल में मन्द आँच से स्वेदन करे। हे देवि! इस क्रम से वह तीन दिन में जीर्ण हो जाता है। यन्त्र से तुरन्त निकाल कर लौह में स्थित पारद को पहले गरम काञ्जी से प्रक्षालन कर तथा वस्त्र से छानकर पात्र में उष्णसह्यहाथ से शेष रहने तक मर्दन करे। चौपतवस्त्र से छानने पर वह निर्मल हो जाता है। वह गालन क्रिया से ग्रास हो जाने के बाद निष्पेष (छानने से निकला हुआ) वह पारद दण्डधारी तथा जीर्णग्रास होता है ॥ ६१–६५ ॥

अजीर्णे पाचयेत् पिष्टीं स्वेदयेन्मर्दयेत्तथा।
वेतसाम्लप्रयोगेण जीर्णे ग्रासं तु दापयेत् ॥ ६६ ॥

पिष्टी के अजीर्ण (पाक रहित) रहने पर पाचन, स्वेदन तथा मर्दन करे।

वेतसाम्ल[1] के प्रयोग से जीर्ण होने पर ग्रास दे ॥ ६६ ॥

इष्टिकागुडदग्धोर्णा-राजीसैन्धवधूमजैः ।
षोडशांशैः स धान्याम्लैः मर्द्यः स्वेद्यश्च पारदः ॥ ६७ ॥
निर्म्मलीकरणार्थं तु ग्रासे ग्रासे पुनः पुनः ।
जीर्णाभ्रो जीर्णबीजोऽपि रागान् गृह्णाति निर्म्मलः ॥ ६८ ॥
क्रमेणानेन दोलायां चार्य्यं ग्रासचतुष्टयम् ।
ततः कच्छपयन्त्रेण [2]ज्वालनं बन्धनं क्रमात् ॥ ६९ ॥
ऊर्ध्वाधश्चाष्टमांशेन विडं दत्त्वापि जारयेत् ।
समजीर्णाभ्रकः सूतः शतवेधी भवेत् प्रिये ! ॥ ७० ॥
सहस्रवेधी द्विगुणे त्रिगुणेऽयुतवेधकः ।
चतुर्गुणे लक्षवेधी स भवेद्भूचरो रसः ॥ ७१ ॥
जीर्णे पञ्चगुणे देवि ! ब्रह्मायुर्जायते रसः ।
आयुस्तु षड्गुणे विष्णोः कोटिवेधी भवेद्रसः ॥ ७२ ॥

शतवेधी, सहस्रवेधी-आदि पारद का निर्माण विधि :—ईंट का चूर्ण, गुड़, जला ऊन, राई, सेन्धानमक तथा गृहधूम सोलहवाँ भाग इन द्रव्यों को मिलाकर कांजी के साथ निर्मल करने के लिये प्रत्येक ग्रास पर बार-बार पारद का मर्दन तथा स्वेदन करे। अभ्रक तथा बीज के जीर्ण हो जाने पर निर्मल पारद राग को ग्रहण करता है। इसी क्रम से दोलायन्त्र में चारग्रास चारण (भुक्त) कराये। इसके बाद कच्छप यन्त्र के द्वारा क्रमशः ज्वालन तथा बन्धन कराये। पारद के ऊपर नीचे अष्टमांश विड देकर भी जारण करे। इस प्रकार हे प्रिये ! समजीर्णाभ्रक पारद शतवेधी होता है। द्विगुणजीर्णाभ्रक पारद सहस्रवेधी, त्रिगुणजीर्णाभ्रकपारद अयुतवेधक तथा चतुर्गुणजीर्णाभ्रकपारद लक्षवेधी भूचररस होता है। हे देवी पञ्चगुणजीर्णाभ्रकपारद ब्रह्मा की आयु प्राप्त करता है। षड्गुणजीर्णाभ्रकपारद विष्णु की आयु प्राप्त करता है तथा कोटि वेधी होता है ॥ ६७-७२ ॥

रसस्य सर्वदोषास्तु षड्गुणेनाभ्रकेन तु ।
जीर्णेन नाशमायान्ति नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ७३ ॥

---

१. वेतसाम्ल-आदि समुख जारण द्रव्यों से–श्लो० १८, पटल ११

२. उपसर्गरहितस्य ज्वलधातोर्विकल्पेन मित्वम् । उपसर्गपूर्वकस्य तु नित्यं मित्वम् इति विवेकः स्मर्त्तव्यः ।

षड्गुणजीर्णाभ्रकपारद के विशेष गुण :—षड्गुण अभ्रकजारण करने से पारद के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। यहाँ पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ ७३ ॥

रसराजे यदा जीर्णं षड्गुणं गगनं प्रिये।
तदा ग्रसति लोहानि त्यजेच्च गतिमात्मनः ॥ ७४ ॥
धूमश्चिटिचिटिश्चैव मण्डूकप्लुतिरेव च।
सकम्पश्च विकम्पश्च पञ्चावस्था रसस्य तु ॥ ७५ ॥

हे प्रिये ! जब पारद में षड्गुण अभ्रक जीर्ण हो जाता है तब पारद सभी लोहों को ग्रास कर लेता हैं अपनी चाञ्चल्य गति एवं धूमादि पञ्चावस्थाओं को छोड़ देता है। धूम, चिटिचिटिशब्द, मण्डूकप्लुति, सकम्प तथा विकम्प ये पारद की पांच अवस्थायें होती है ॥ ७४–७५ ॥

कपिलोऽथ निरुद्गारि विप्लुषश्चैव मुञ्चति।
अग्नौ तिष्ठति निष्कम्पो व्योमजीर्णस्य लक्षणम् ॥ ७६ ॥

कपिल निरुद्गारि तथा विप्लुष (आवरण) को छोड़ देता है और निष्कम्प पारद अग्नि में स्थिर हो जाता है। यह अभ्रक जीर्ण का लक्षण है ॥ ७६ ॥

समजीर्णो भवेद्बालो यौवनस्थश्चतुर्गुणम्।
वृद्धस्तु षड्गुणं जीर्णः कुर्य्यात् कर्म्म पृथक् पृथक् ॥ ७७ ॥
बालस्तु पत्रलेपेन कल्कयोगेन यौवनः।
वृद्धो विध्यति लोहानि जारितः सारितोऽथवा ॥ ७८ ॥

बालजारण आदि का लक्षण :—समजीर्णाभ्रक पारद बाल, चतुर्गुण जीर्णाभ्रक पारद यौवन तथा षड्गुण जीर्णाभ्रक पारद वृद्ध होता है। ये सब अलग-अलग कर्म करते हैं। बाल पारद पत्रलेप से, यौवनपारद कल्क योग से और वृद्ध पारद जारित या सारित होने पर लोहों का वेध करता है ॥ ७७–७८ ॥

कुमारस्तु रसो देवि! न समर्थो रसायने।
यौवनस्थो रसो देवि! क्षमो देहस्य रक्षणे ॥ ७९ ॥
जरावस्थो रसो यश्च देहे लोहेन संक्रमेत्।

हे देवि ! कुमाररस रसायन कर्म में समर्थ नहीं होता। हे देवि ! यौवनस्थ-रस देह की रक्षा करने में समर्थ होता है। जरावस्था में स्थित पारद लोह के साथ शरीर में प्रविष्ट होता है ॥ ७९½ ॥

अभावेऽभ्रकसत्त्वस्य कान्तसत्त्वं प्रदापयेत् ॥ ८० ॥

कान्तस्य चाप्यभावे तु तीक्ष्णलोहन्तु दापयेत्।
अनेन क्रमयोगेन सर्वसत्त्वानि जारयेत्॥ ८१॥
एकोऽपि हेमसंयुक्तश्चामीकरकरः क्षणात्।

जारण कर्म में प्रतिनिधि सत्व :—जारण कर्म में अभ्रक सत्व के अभाव में कान्तसत्व, तथा कान्तलौहसत्व के अभाव में तीक्ष्णलौहसत्व का प्रयोग करे। इसी क्रम से सभी सत्वों का जारण करे। इनमें से एक भी सुवर्ण के साथ मिलने पर "चामीकर" (स्वर्ण) बनाने वाला होता है॥ ८०-८१½॥

गन्धकात् परतो नास्ति रसेषूपरसेषु वा॥ ८२॥
पूर्वोक्तयन्त्रयोगेन द्विरष्टगणगन्धकम्।
अथवा द्वादशगुणं षड्गुणं वापि जारयेत्॥ ८३॥
माक्षिकं सत्त्वमादाय पादांशेन तु जारयेत्।
ततोऽपि सर्वसत्त्वानि द्रावयेत् सूतगर्भतः॥ ८४॥

गन्धकजारणा की प्रशंसा :—सभी रस या उपरसों में गन्धक के समान उत्तम कोई नहीं है। पूर्वोक्त कच्छपादि यन्त्रों के द्वारा द्विगुणगन्धक, अष्टगुण-गन्धक अथवा द्वादशगुणगन्धक या षड्गुणगन्धक का जारण करे। माक्षिक का सत्व चौथाई भाग लेकर जारण करे। इसके बाद सभी सत्वों को पारद के गर्भ में द्रावण करे॥ ८२-८४॥

हेमपावकयोः सख्यं तथा काञ्चनसूतयोः।
वह्निसूतकयोर्वैरं तयोर्मित्रेण मित्रता॥ ८५॥

अग्नि तथा पारद के मैत्री का माध्यम :—हेम तथा पावक में मित्रता है और पारद तथा हेम में मित्रता है। किन्तु अग्नि तथा पारद में वैर है किन्तु अग्नि तथा पारद की मित्रता स्वर्ण तथा अग्नि की मित्रता के माध्यम से होती है॥ ८५॥

अग्निको यवचिञ्चा च वसुहट्टश्च रागिणी।
दोलास्वेदेन तत् पक्वं हेमजारणमुत्तमम्॥ ८६॥

स्वर्ण जारणा की विधि :—चित्रक, यवचिञ्चा (इमली) वसुहट्ट (अगस्त्य) रागिणी (अशोक), इन द्रव्यों के साथ दोलायन्त्र में पारद का स्वेदन तथा पाचन उत्तम स्वर्ण को जारण करने वाला होता है। अर्थात् उपरोक्त द्रव्यों के

साथ स्वेदन तथा पाचन करने पर पारद अच्छी तरह स्वर्ण का जारण करता है ॥ ८६ ॥

पलाशभस्मापामार्गो यवक्षारश्च काञ्जिकम् ।
सौवर्चलं च काशीसं सामुद्रं सैन्धवं तथा ॥ ८७ ॥
आसुरी टङ्कणश्चैव नरसारस्तथैव च ।
कर्पूरश्चैव माक्षीकं समभागानि कारयेत् ॥ ८८ ॥
स्नुह्यर्कदुग्धैर्देवेशि ! मूषालेपन्तु कारयेत् ।
विडचूर्णं ततो दत्त्वा कनकं जारयेत् प्रिये ! ॥ ८९ ॥

पलाशभस्म, अपामार्ग, यवक्षार, काञ्जी, सौवर्चलनमक, कासीस, सामुद्रनमक सैन्धवनमक, आसुरी (राई), टंकण, नवसादर, कपूर तथा शहद (या स्वर्णमाक्षिक), समभाग इन द्रव्यों को ले और हे देवि ! सेंहुड़ तथा मदार के दूध के साथ कल्क बनाकर मूषा के अन्दर लेपकर सुखा ले। हे प्रिये इसके बाद मूषा में विडचूर्ण देकर स्वर्ण का जारण करे ॥ ८७-८९ ॥

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि "भूचराख्यन्तु" जारणम् ॥ ९० ॥
कृष्णं पीतं रक्तमभ्रं शुल्वे तीक्ष्णे च मेलयेत् ॥ ९१ ॥
शुल्वे तीक्ष्णं यदा चूर्णं द्वाविंशतिगुणं प्रिये ! ।
गन्धनागं ततोऽर्द्धं तु क्रमेणैव तु मेलयेत् ॥ ९२ ॥
हेम्ना तु सह दातव्यं सूतकैकेन षोडश ।
गन्धनागं यदा जीर्णं तदा बद्धो भवेद्रसः ।
हेम्नि जीर्णे ततोऽर्द्धेन मृतलोहेन रञ्जयेत् ॥ ९३ ॥

भूचराख्यजारणविधि :—हे देवि भूचराख्य जारण कहता हूँ सुनो। काला, पीला तथा रक्त अभ्रक को तांबा तथा तीक्ष्ण लौह में मिला दे। हे प्रिये। तांबा में तीक्ष्ण लौह चूर्ण बत्तीसगुना मिलावे। उसके बाद तीक्ष्णलौह के आधा (सोलह गुना) गन्धनाग (गन्धक के साथ जारित नाग) क्रम से मिला दे। स्वर्ण के साथ उसके सोलह गुना पारद मिला दे। जब गन्धनाग जीर्ण हो जाय तब रसबद्ध हो जाता है। स्वर्ण के जीर्ण हो जाने पर उसके अर्द्ध-भाग लौह-भस्म से रंजन करे ॥ ९०-९३ ॥

गन्धकेन हतं शुल्वं माक्षिकं दरदरायसम् ।
पुटेन मारयेच्छुद्धं हेम दद्यात् तु षड्गुणम् ॥ ९४ ॥
सूतकं हेमबीजं च यदा जीर्णं चतुर्गुणम् ।
बद्धरागं विजानीयात् हेमाभो जायते रसः ॥ ९५ ॥

गन्धक के साथ मारण किया हुआ, ताम्र, माक्षिक, दरदायस (हिंगुल के साथ जारित लौह) इन सवों को पुट देकर मारण करे और स्वर्ण छः गुना मिला दे। जब पारद में चौगुना स्वर्णबीज जीर्ण हो जाय तब पारद को बद्ध राग समझना चाहिए और पारद स्वर्णवर्ण का हो जाता है ॥ ९४-९५ ॥

सारणायन्त्रमध्यस्थं तेनैव सह सारयेत्।
त्रिभागसारितं कृत्वा पुनस्तत्रैव जारयेत् ॥ ९६ ॥
जारितः सारिश्चैव पुनर्जारितसारितः।
सप्त श्रृङ्खलिका योगात् कोटिवेधी भवेद्रसः ॥ ९७ ॥

बद्ध राग पारद को सारणा यन्त्र के मध्य में रखकर पूर्वोक्त सारण द्रव्यों के साथ सारण करे। तीन भाग सारित कर पुनः वहीं पर जारण करे। इस प्रकार पुनः जारण उसके बाद सारण इसी क्रम से सात श्रृंखला (सात बार) सारण-जारण करे। इस योग से पारद कोटिवेधी हो जाता है ॥ ९६-९७ ॥

भूचरी जारणा प्रोक्ता—'खेचरीं जारणां शृणु" ॥ ६८ ॥

खेचरी जारणा विधि :—पूर्वोक्त प्रकार से "भूचरी जाराणा" कही गई। अब खेचरी जारणा को सुनो ॥ ९८ ॥

हीरमुख्यानि रत्नानि रसोच्छिष्टानि कारयेत्।
कटुतुम्बस्य बीजानि तस्यार्द्धेन तु दापयेत् ॥ ९९ ॥
महाजारणमित्युक्तं कल्कं कुर्याद्विचक्षणः।
वज्रमूषामुखे चैवं तन्मध्ये स्थापयेद्रसम् ॥ १०० ॥
कतकं कनकं चैव-मेकीकृत्य च मर्दयेत्।
पद्मरागं प्रयत्नेन रसे ग्रासं तु दापयेत् ॥ १०१ ॥
एकादशगुणं यावत् पद्मरागं तु सूतके।
रागजीर्णस्तु देवेशि! लिङ्गाकारो भवेद्रसः ॥ १०२ ॥
रक्षितव्यं प्रयत्नेन लोकपालाष्टकेन च।
षड्भागं सूतकेन्द्रस्य तेषु सर्वेषु दापयेत् ॥ १०३ ॥
भक्षितव्यं प्रयत्नेन नत्वा च [1]गुरुदेवयोः।
सर्वसिद्धान्नमस्कृत्य देवताश्च विशेषतः ॥ १०४ ॥
मूर्च्छाङ्गदाहश्च ततो जायते नात्र संशयः।
आत्मानमुत्थितं पश्येत् दिव्यतेजोमहाबलम् ॥ १०५ ॥

---

१. कर्मणः सबन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी।

शङ्खकाहल-निर्घोषैः सिद्धविद्याधरैः सह।
इच्छया विचरेल्लोकान् कामरूपी विमानगः ॥ १०६ ॥
देवाश्च यत्र लीयन्ते सिद्धस्तत्रैव लीयते ॥ १०७ ॥

हीरक-आदि मुख्य रत्नों का रसोच्छिष्ट[1] कराये। रसोच्छिष्ट रत्नों के आधा कड़वी लौकी के बीज को मिलाकर बुद्धिमान् व्यक्ति कल्क तैयार करे। इसको महाजारणा कहते हैं। इस कल्क को वज्रमूषा के मुख पर रखे और उसमें रस को रख दे। इसके बाद निर्मली तथा स्वर्ण को एक में मिलाकर मर्दन करे और रस में पद्मराग को प्रयत्नपूर्वक ग्रास कराये। पारद में पद्मराग ग्यारह गुना तक ग्रास कराये। हे देवेशि ! पारद राग (पद्मराग) जीर्ण होने पर लिङ्गाकार हो जाता है। इसको प्रयत्न पूर्वक अष्टलोकपालों से रक्षा करे। उन सबों में पारद का छः भाग देना चाहिए। प्रयत्न पूर्वक गुरु तथा देवता को नमस्कार कर सभी सिद्धों एवं विशेषकर देवताओं को नमस्कार कर भक्षण करे। इसके भक्षण करने से मूर्च्छा तथा दाह होता है। इसमें सन्देह नहीं है। भक्षण के बाद साधक अपने को दिव्य तेज एवं बल से युक्त उठा आ देखे। शंख आहलक आदि बाजाओं के निर्घोष तथा सिद्ध विद्याधरों के साथ आकाश में गया हुआ अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण कर विमान पर बैठे हुए इच्छानुसार लोकों में विचरण करे। जहाँ पर देवता लीन हो जाते हैं वहीं पर सिद्ध पुरुष भी लीन होता है। ९९–१०७ ॥

[पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि जारणा योगमुत्तमम् ॥ १०८ ॥]
(पुनः दूसरा उत्तम जारणा योग कह रहा हूँ) ॥ १०८ ॥

सुघृष्टं पाचितं सूतं सर्वदोषोज्झितं ततः।
शाकपल्लवसारेण विष्णुक्रान्तारसेन च ॥ १०९ ॥
पलाशपुष्पतोयेन भावितं गन्धकं समम्।
समं कृष्णाभ्रसत्त्वञ्च रसकञ्चाष्टकं गुणम् ॥ ११० ॥
तीक्ष्णशुल्वोरगञ्चैव कूर्म्मयन्त्रेण जारयेत्।
काञ्चनं जारयेत् पश्चात् विडयोगेन पार्वति ! ॥ १११ ॥
ततः सिद्धं विजानीयात् द्वैधं शुल्वस्य दापयेत्।
कर्म्मसंख्याप्रमाणेन नागो भवति काञ्चनम् ॥ ११२ ॥

१. पारद को हीरक का ग्रास देकर रसोच्छिष्ट कराये।

नाग को सोना बनाने की विधि :—सभी दोषों से रहित अच्छी तरह घर्षण तथा पाचन किया हुआ पारद को शाक[1] के कोमल पत्तों के रस, विष्णुकान्ता (नील अपराजिता) के रस तथा पलास पुष्प के रस से समभाग गन्धक मिलाकर भावित करे। समभाग काला अभ्रक का सत्व, आठभाग खर्पर का सत्व तीक्ष्णलौह, ताम्र तथा नागसत्व समभाग मिलाकर कूर्मयन्त्र (कच्छपयन्त्र) में जारण करे। हे पार्वती ! बाद में विड के योग से स्वर्ण का जारण करे और ताम्र दो भाग मिला दे। इसके बाद सिद्ध समझे। इस प्रकार कर्म तथा संख्या के प्रमाण से नाग काञ्चन हो जाता है॥ १०९–११२॥

[अतः परं प्रवक्ष्यामि जारणाक्रममुत्तमम् ॥ ११३॥]

(इसके बाद उत्तम जारणा क्रम कहता हूँ)॥ ११३॥

बीजचूर्णानि तैलेन भावयित्वा पुनः पुनः।
षोडशांशेन तद्ग्रासमङ्गुल्या मर्दयेच्छनैः॥ ११४॥
आर्द्रकादि ततो योगाद्-दातव्यं षोडशांशतः।
भूर्जे दत्त्वा ततो देयं दोलायन्त्रे विनिक्षिपेत्॥ ११५॥
अहोरात्रेण तद्बीजं सूतको ग्रसति प्रिये !।
तमुद्धृत्य रसं देवि ! खल्ले संमर्दयेत्ततः॥ ११६॥
ततो यन्त्रे विनिक्षिप्य दिवारात्रं दृढाऽग्निना।
तप्तं समुद्धृतं यन्त्रात् तप्तखल्ले विमर्दयेत्॥ ११७॥
मर्दयित्वाभ्रके पिण्डं क्षिप्त्वा तत्र पुटं ददेत्।
ततो गर्भे पतत्याशु जारयेत् तत् सुखेन तु॥ ११८॥
दोलायन्त्रे ततो दत्त्वा आर्द्रपिण्डेनसंयुतम्।
तृतीये दिवसे सूतो जरते ग्रसते ततः॥ ११९॥
समजीर्णं ततो यावत् दोलायन्त्रे विचक्षणः।
पश्चात् कच्छपयन्त्रेण समजीर्णं तु पार्वति !।
तं ग्रासद्वादशांशेन कच्छपेन तु जारयेत्॥ १२०॥
प्रागवदार्द्रकयोगं च गर्भद्रावणमेव च।
पश्चात्तं देवि ! निक्षिप्य पुटं दद्याद्विचक्षणः॥ १२१॥
अष्टांशेन ततो ग्रासं गर्भद्रावञ्च पूर्ववत्।
कन्दोदरे सूरणस्य तं विनिक्षिप्य सूतकम्।

---

1. Tectdna Prandis Linn.

पुटेत्तु जारितस्तावत् यावत् कन्दो न दह्यते ॥ १२२ ॥
पादांशेन तु मूषाया ग्रासः सूतं विधीयते ।
पूर्ववच्च विडं दद्यात् गर्भद्रावणमेव च ॥ १२३ ॥
एवं चतुर्गुणे जीर्णे सूतको बलवान् भवेत् ।
ततः शलाकया ग्रासान् अग्निस्थो ग्रसते रसः ॥ १२४ ॥

शलाका से ग्रास को ग्रहण करने वाला रस की निर्माणविधि :—बीज चूर्णों को बार-बार तैल से भावित कराकर सोलहवें भाग के साथ उस ग्रास को धीरे-धीरे अङ्गुलि से मर्दन करे । इसके बाद अदरक आदि योग से सोलहवां भाग छोड़कर तथा पूर्वोक्त द्रव्यों को भोजपत्र में बांधकर दोल यन्त्र के द्वारा स्वेदन करे । हे प्रिये ! दिन रात स्वेदन करने से पारद उस बीज को ग्रास कर लेता है । हे प्रिये ! इसके बाद उस बीजग्रस्तपारद को निकालकर खरल में मर्दन करे । तदनन्तर यन्त्र में रखकर एक दिन-रात तीव्र अग्नि से तपा कर और यन्त्र से निकाल कर उस खरल में मर्दन करे । मर्दन करने के बाद अभ्रक के पिण्ड को रखकर पुट दे । इसके बाद वह शीघ्र ही गर्भ में गिर जाता है, उसको सरलता से जला ले । इसके बाद पुनः दोला यन्त्र में आर्द्रपिण्ड के साथ देकर स्वेदन करे । इसके बाद तीसरे दिन पारद जीर्ण हो जाता है तथा ग्रास कर लेता है । बुद्धिमान् व्यक्ति समजीर्ण होने तक दोला यन्त्र में पाचन करे । हे पार्वति ! इसके बाद कच्छपयन्त्र से समजीर्ण पारद को बारहवां भाग ग्रास के साथ कच्छप यन्त्र के द्वारा जारण करे । इसी प्रकार पहले की तरह आर्द्रक-योग, गर्भद्रावण तथा बाद में यन्त्र में छोड़कर बुद्धिमान् व्यक्ति पुट दे । इसके बाद पुनः अष्टमांश से ग्रास देकर पूर्ववत् गर्भद्रावण करे । पुनः गर्भ द्रावण के बाद पारद को सूरण के कन्द के बीच में रखकर पुट दे और तब तक जलाये जब तक कन्द न जल जाय । मूषा के चौथाई भाग ग्रास पारद को बनाता है । पुनः पहले की तरह विड जारण तथा गर्भ द्रावण करे । इस प्रकार चौगुने जीर्ण हो जाने पर पारद बलवान् हो जाता है । इसके बाद अग्नि में स्थित पारद शलाका से ग्रास को ग्रहण कर लेता है ॥ ११४–१२४ ॥

[ततो रत्नानि जार्य्याणि वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥ १२५ ॥]
(इसके बाद वक्ष्यमाण क्रम से रत्नों का जारण करे) ॥ १२५ ॥

अभ्रकं भ्रामकञ्चैव शङ्खनाभिं तथैव च ।

---

१. वह्नौधूमायमानेऽन्तः प्रक्षिप्तरसधूमतः ।
स्वार्णाद्यापादनं लोहे धूमवेधः स उच्यते ॥ (र० चू० ४।१०८)

रसानुपरसान् दत्त्वा महाजारण-संयुतान् ॥ १२६ ॥
वज्रकन्दं वज्रलता मेषशृङ्ग्यमृतायसम ।
कटुतुम्बस्य बीजानि मृतलोहानि पाचयेत् ॥ १२७ ॥
सर्वाणि समभागानि शिखिशोणितमात्रितम् ।
तावत्तं मर्दयेत् प्राज्ञो यावत् कर्म्म दृढं भवेत् ॥ १२८ ॥
मूषा वल्लाकृतिश्चैव कर्त्तव्या छादनैः सह ।
तन्मध्ये स्थापयेत् सूतमधोवातेन धामयेत् ॥ १२९ ॥
आदौ तत्रैव दातव्यं वज्रमौषधलेपितम् ।
गृह्यते कोऽत्र सन्देहो यथा तीव्रे हुताशने ॥ १३० ॥
कुलिशेन पुटे दग्धे कर्षवर्गतौ तेन मर्दयेत् ।
यावदेकादशगुणं कुलिशं जारयेत् पुनः ॥ १३१ ॥

धूमवेधी पारद को निर्माणविधि :—अभ्रक, कान्तपाषाण, शंखनाभि (सुगन्धि द्रव्य विशेष), रस, उपरस तथा महाजारण द्रव्य देकर और बज्रकन्द (सूरण), वज्रलता (हड़जोड़) मेढ़ासिंघी, गुडची, लौह, कड़वी लौकी का बीज तथा सभी लौहों का भस्म मिलाकर पाक करे। सभी द्रव्यों को समभाग लेकर मयूर के रक्त के साथ बुद्धिमान् व्यक्ति तबतक मर्दन करे जबतक दृढ़कर्म (पिण्ड) न बन जाय। इसके बाद वल्ल (ढ़कना) की आकृति की मूषा बनाये और उसके मध्य में छादन[२] के साथ पारद को रक्खे और नीचे से हवा देकर धमन करे। पहले इसी में औषध से लिप्त वज्र को छोड़ दे। वह अच्छी तरह तीव्र आग में ग्राह्य हो जाता है, यहाँ कोई संदेह नहीं है। कुलिस (वज्र) के साथ पुट में दग्ध हो जाने पर उपलों के अग्नि में मर्दन करे। इस प्रकार बार-बार ग्यारह गुना तक बज्र का जारण करे ॥ १२६–१३१ ॥

सुदग्धाशङ्खनाभिश्च मातुलुङ्गरसप्लुतः ।
मुक्ताफलं ततो देयं वज्रजीर्णे तु सूतके ॥ १३२ ॥
अनेन क्रमयोगेन ह्येकादशगुणं भवेत् ।

एकादशगुणितवज्रजारण के बाद वज्रजीर्ण पारद में अच्छी तरह दग्ध शंखनाभि को बिजौरा निम्बु के रस में प्लावित कर उसको तथा मुक्ताफल को मिला दे। इस क्रम से एकादशगुण वज्रजीर्णपारद हो जाता है ॥ १३२½ ॥

केवलं शिखिपित्तञ्च नीली निर्य्यासमिश्रितम् ॥ १३३ ॥

---

१. महाजारणांद्रव्य—रसा० ११।९९ में देखें
२. ढक कर पारद को रक्खे ।

नीलोत्पलानि लिप्तानि प्रक्षिप्तानि तु सूतके ।
रसे कल्पेन्महारागान् हीनरागान् परित्यजेत् ॥ १३४ ॥

केवल मयूर का पित्त तथा नीली वृक्ष का गोंद मिलाकर नीलकमल के कल्क से लिप्त रत्नों को पारद में छोड़ दे । रस में महारागों की ही कल्पना करे हीन रागों की कल्पना का त्याग कर दे ॥ १३३–१३४ ॥

रक्तानि शिखिपित्तञ्च महारत्नसमन्वितम् ।
सद्रत्नं लेपयेत्तेन प्रद्रवेत् रसमध्यतः ॥ १३५ ॥

रक्त वीर्य रज आदि या रक्त वर्ग के द्रव्य, मयूर का पित्त तथा महारत्नों को मिलाकर उससे सद्रत्न (वज्र) को लिप्त करे और पारद के मध्य में रखकर द्रावण करे ॥ १३५ ॥

रजनीं चैव कुष्ठं च ब्रह्मनिर्य्यासभावितम् ।
जारणं पुष्परागस्य तेनैव सह दापयेत् ॥ १३६ ॥
बहुरत्नेषु जीर्णेषु भृङ्गरागेषु सुव्रते ! ।
रसेन्द्रो दृश्यते देवि ! नीलपीतारुणच्छविः ॥ १३७ ॥

हल्दी, कूठ तथा ब्रह्मनिर्यास (पलास का रस) मिलाकर पद्मराग का जारण (भस्म) पूर्वोक्त द्रावण के साथ मिला दे । हे सुव्रते भृङ्ग सदृश रंग वाले बहुत रत्नों के जीर्ण हो जाने पर नील पीत एवं अरुण वर्ण सदृश पारद दिखाई देता है ॥ १३६–१३७ ॥

शुद्धानि हेमपत्राणि शतांशेन तु लेपयेत् ।
पुटेन मारयेदेतदिन्द्रगोपनिभं भवेत् ॥ १३८ ॥
संस्पर्शाद्वेधयेत्सर्वमिदं हेम मृतं प्रिये ।

शुद्ध स्वर्ण पत्रों को पूर्वोक्त बहुरत्नजीर्ण पारद के सौवां भाग से लिप्त करे और पुट के द्वारा मारण करे । यह वीरबधू के वर्ण सदृश हो जाता है । हे प्रिये यह मृत स्वर्ण स्पर्श मात्र से ही सबको वेध देता है ॥ १३८½ ॥

त्रिभागं सूतकेन्द्रस्य तेनैव सह सारयेत् ॥ १३९ ॥
मूषामध्यस्थिते तस्मिन् पुनस्तेनैव जारयेत् ।
धूमवेधी भवेद्देवि ! पुनः सारितजारितः ॥ १४० ॥
अनेन क्रमयोगेन यदि जीर्णा त्रिश्रृङ्खला ।
वेधयेन्नात्र सन्देहो गिरिपातालभूतलम् ॥ १४१ ॥
पार्श्वज्योतिः प्रदृश्येत चोर्द्धं नैव तु दृश्यते ।
भूचरं तं विजानीयात् रसेन्द्रं नात्र संशयः ॥ १४२ ॥

तेनाश्रान्तगतिर्देवि ! योजनानां शतं व्रजेत्।
दिव्यतेजा महाकायो दिव्यदृष्टिर्महाबलः ॥ १४३ ॥
सर्वरोगविनिर्मुक्तो जीवेदाचन्द्रतारकम्।
तस्या मूत्रपुरीषं तु सर्वलोहानि विध्यति ॥ १४४ ॥

पारद तीन भाग को पूर्वोक्त हेमभस्म के साथ सारण करे और पुनः मूषा के मध्य में रखकर उसी से जारण करे। हे देवि ! यह धूमवेधी हो जाता है। पुनः इसी प्रकार सारण तथा जारण क्रम योग से तीन बार जीर्ण किया जाय तो गिरि, पाताल तथा भूतल को वेध देता है। इसमें सन्देह नहीं हैं। पार्श्वज्योति दिखाई देती है ऊपर नहीं दिखाई देता है। उस पारद को भूचर (पृथ्वी पर संचरण शक्ति देने वाला) समझना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे देवि ! इससे साधक अश्रान्त गति (बिना थकावट गमन की शक्ति) को प्राप्त कर सैकड़ों योजन यात्रा करता है। वह दिव्य तेज वाला, महाकाय, दिव्यदृष्टि एवं महान् बलवान् होकर सभी रोगों से मुक्त होकर चाँद सूर्य रहने तक जीवित रहता है। उसका मूत्र तथा पुरीष सभी लौहों को वेध करता है ॥१३९-१४४॥

समजीर्णेन वज्रेण हेम्ना च सहितेन च।
अग्निस्थो जारयेल्लोहान् बन्धमायाति सूतकः ॥ १४५ ॥

पारदबन्ध की विधि :—समजीर्ण वज्र तथा स्वर्ण के साथ सभी लौहों का जारण करे। इससे अग्निस्थ पारद बद्ध हो जाता है ॥ १४५ ॥

सारयेत्तेन बीजेन सहस्रमपि वेधयेत्।
सारितं जारयेत् पश्चात् लेप्यं क्षेप्यं सहस्रशः ॥ १४६ ॥
सारयेत् तेन बीजेन लक्षवेधमवाप्नुयात्।
अनेन क्रमयोगेन कोटिवेधी भवेद्रसः ॥ १४७ ॥

सहस्त्रादिवेधकपारद :—पूर्वोक्त बीजों के साथ सारण करने से पारद हजारों का वेध करता है। सारण के बाद जारण करे। इसके बाद पूर्वोक्त लेप हजार बार लगाकर प्रक्षेप करे और पुनः बीजों के साथ सारण करे। इससे पारद लक्षवेध को प्राप्त करता है। इसी क्रम योग (लेपन, क्षेपण, सारण एवं जारण आदि हजार बार करने) से पारद कोटि वेधी होता है ॥ १४६-१४७ ॥

केवलं तु यदा वज्रं समजीर्णं तु जारयेत्।
बद्धः सूतस्तदा ज्ञेयो निष्कम्पो निरुपद्रवः ॥ १४८ ॥
अग्निस्थो जायते सूतः शलाकां ग्रसते क्षणात्।

बद्ध पारद :—जब केवल समजीर्ण वज्र के साथ पारद का जारण किया जाता है तब बद्ध पारद कम्परहित एवं निरुपद्रव हो जाता है। और पारद अग्निस्थायी हो जाता है तथा शलाका को क्षण मात्र में ग्रास कर लेता है ॥ १४८½ ॥

हठाग्निना धाम्यमानो ग्रसते सर्वमादरात् ॥ १४९ ॥
चरते जरते सूत आयुर्द्रव्यप्रदायकः।
मूषास्थं धमयेत् सूतं हठाग्नौ नैव कम्पते ॥ १५० ॥
जारयेत् सर्वरत्नानि बद्धः खेचरतां नयेत्।
इति लोहेऽष्टगुणिते जीर्णे स्याद्रसबन्धनम् ॥ १५१ ॥

सर्वग्रासी पारद :—पूर्वोक्त स्थितिप्राप्तपारद हठाग्नि (तीव्राग्नि) से धमन किये जाने पर आदर पूर्वक सभी लोहादिकों को ग्रास कर लेता है। चारण जारण किया हुआ पारद आयु एवं धन को देता है। मूषा में स्थित पारद को तीव्राग्नि से धमन करे। वह कम्पन नहीं करता है। उसके साथ सभी रत्नों का जारण करे। वह बद्ध पारद खेचरता को प्राप्त कराता है। इस प्रकार अठगुने लौह के जीर्ण हो जाने पर रसबन्धन हो जाता है ॥ १४९-१५१ ॥

लोहानि सत्त्वं त्रिगुणं द्विगुणं कनकं तथा।
धूमावलोकवेधी स्यात् भवेन्निर्वाणदो रसः ॥ १५२ ॥

निर्वाण देने वाला पारद :—अष्टगुण लौह जीर्ण पारद के साथ लौहसत्व तीन गुना तथा स्वर्ण दुगुना मिलाकर जारण करने से धूमावलोकवेधी होता है और वह रस निवार्ण (मोक्ष) देने वाला है ॥ १५२ ॥

आदावष्टगुणं जार्य्यं व्योमसत्त्वं महारसम्।
समं हेमदशांशेन वज्ररत्नानि जारयेत् ॥ १५३ ॥
सर्वं च जारयेद्वज्रं तदासौ खेचरो रसः।
भ्रमेत् प्रदक्षिणावर्त्तः कोटिवेधी च जायते ॥ १५४ ॥

विविध रूप को धारण करने वाला पारद :—सर्वप्रथम अभ्रकसत्व आठ भाग जारण करे। उसके बाद महारस (माक्षिक आदि) समभाग तथा स्वर्ण दशमांश के साथ वज्र रत्नों का जारण करे। रसोपरस लोहादिक तथा वज्र का

जारण करे तब यह पारद खेचर हो जाता हैं। यह खेचर पारद दक्षिणावर्त घूमता है तथा कोटि वेधी हो जाता है ॥ १५३-१५४ ॥

समे तु पन्नगे जीर्णे दशवेधी भवेद्रसः ।
द्विगुणे शतवेधी स्यात् त्रिगुणे तु सहस्रकम् ॥ १५५ ॥
चतुर्गणेऽयुतं देवि ! क्रमेणानेन वर्द्धयेत् ।
उत्तरोत्तरवृद्ध्यातु जारयेत् तत्र पन्नगम् ॥ १५६ ॥
कुटिलं पन्नगं जार्य्यं तत्र संख्याक्रमेण तु ।
तद्वादमेति देवेशि ! कोटिवेधी भवेद्रसः ॥ १५७ ॥

समभाग पन्नग के साथ जीर्ण पारद दशवेधी होता है, द्विगुण पन्नगजीर्ण पारद शतवेधी, त्रिगुण पन्नग जीर्ण पारद सहस्रवेधी, चतुर्गुण पन्नग जीर्णपारद अयुतवेधी होता है। हे देवि ! इसी क्रम से बढ़ाता जाय। इसी प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धिक्रम से वहाँ पर पन्नग का जारण करे। वहाँ पर कुटिल पन्नग (वंग जीर्ण पन्नग) संख्याक्रम (द्विगुण त्रिगुण जीर्ण आदि) के अनुसार जारण करे। इससे बाद (वाणी = वर्णन = शास्त्रार्थ या दश, शत, सहस्रलक्षादि वेधवाद) प्राप्त करता है और कोटिवेधी हो जाता है ॥ १५५-१५७ ॥

[रुरुणा दानवेन्द्रेण भक्षितो भस्म सूतकः]
जारितं द्वादशगुणं यत्र तीक्ष्णं सुरेश्वरि ! ॥ १५८ ॥
भक्षयित्वा पलैकं तु दानवो बलदर्पितः ।
जगदुत्पाटितं तेन कैलासोऽपि च चूर्णितः ॥ १५९ ॥
तत्र मया क्षणं ध्यात्वा दृष्ट्वा तन्मायया कृतम् ।
जारितं पन्नगे सूतं समांशं शिलया हतम् ॥ १६० ॥
तेन सूतेन संलिप्तं त्रिशूलं हिमशैलजे ! ।
तेन शूलेन निहतो दानवो बलदर्पितः ॥ १६१ ॥

[रुरु नामक दानवेन्द्र ने पारद भस्म खाया था]

पारद भक्षण जन्य दर्पनाशक त्रिशूल :—हे सुरेश्वरि ! जहाँ पर द्वादशगुण तीक्ष्ण जारित पारद भस्म एक पल (१० ग्रा०) खाकर रुरु नामक दानवेन्द्र बल से उन्मत्त होकर संसार को उखाड़ दिया तथा कैलास को भी चूर्ण कर दिया। तब वहाँ पर मैंने थोड़ी देर ध्यान कर उसकी माया के द्वारा किये हुए इस कर्म को देखा इसके बाद पन्नग में मैनसिल के साथ मर्दित समभाग पारद का जारण कर उस पारद से त्रिशूल लिप्त कर दिया। हे हिमशैलपुत्रि ! उस त्रिशूल से बलोन्मत्त वह दानव मारा गया ॥ १५८-१६१ ॥

हेम शुल्वं तथा तीक्ष्णं वाजरं चपलाऽऽत्नयम् ।
रोहणं कान्तलोहं च जारयेत्तत्त्वसंख्यया ॥ १६२ ॥
एकैके रसराजोऽयं बद्धः खेचरतां नयेत् ।
गन्धनागे द्रुते देवि ! 'जारणां सुकरां शृणु' ॥ १६३ ॥

स्वर्णादि जीर्ण पारद के गुण :—सुवर्ण, ताम्र, तीक्ष्ण लोह, वाजर (लौह विशेष सामान्य लौह), चपला, (चपलधातु) रोहण (कान्तलौह योग राख) तथा कान्तलौह इन सबों को अपनी-अपनी मात्रा में पारद के साथ जारण करे। एक-एक द्रव्य में जारण किया हुआ पारद बद्ध हो जाता है और खेचरता (आकाश में संचरण करने की शक्ति को) प्राप्त कराता है। हे देवि ! गन्धनाग के द्रुत होने पर सरल जारण विधि सुनो ॥ १६२–१६३ ॥

आदौ संशोधितं सूतं रजनीचूर्णसंयुतम् ।
मर्दयेद्यावदाकृष्णं क्षालयेदुष्णकाञ्जिकैः ॥ १६४ ॥
एवं मुहुर्मुहुर्घृष्टो गन्धनागो द्रुतिं चरेत् ॥ १६५ ॥

गन्धकनागजारणविधि :—पहले शुद्ध किया हुआ पारद को हल्दी के चूर्ण के साथ मर्दन करे जब तक वह काला न हो जाय। इसके बाद गरम काञ्जी से प्रक्षालन करे। इस प्रकार बार-बार घर्षण करने से गन्धनाग द्रुति को प्राप्त होता है ॥ १६४–१६५ ॥

नागस्य मूत्रे देवेशि ! वत्सस्य महिषस्य वा ।
आवर्त्यावर्त्य भुजगं सप्तवारान् निषेचयेत् ॥ १६६ ॥
कृत्वा कण्टकवेध्यानि तस्य पत्राणि सुन्दरि ! ।
चतुर्थांशप्रमाणेन गन्धकस्य तु योजयेत् ॥ १६७ ॥
प्रसार्य्य लाक्षापटलं रोमाणि तदनन्तरम् ।
ऊद्र्ध्वं गन्धकचूर्णं च ततो नागदलं तथा ॥ १६८ ॥
गन्धकं नरलोमानि लाक्षायाः पटलं क्रमात् ।
ऊद्र्ध्वं प्रसार्य्य संस्थाप्य सूत्रैर्वर्त्तिं तु कारयेत् ॥ १६९ ॥
करञ्जतैलमध्ये तु दशरात्रं निधापयेत् ।
दीप्ताग्रभागां तां वर्त्तिं सण्डश्या तु विधारयेत् ॥ १७० ॥
तां द्रुतिं पातयेत् पात्रे सौवीरटङ्कणान्विते ।
काचकूप्याश्च मध्ये तु तत्तैलं स्थापयेत् प्रिये ! ॥ १७१ ॥

गन्धनागद्रुति :—हे देवेशि ! हाथी, बछड़ा या भैंस के मूत्र में नाग को तपा-तपा कर सात बार बुझायें। हे सुन्दरि ! इसके बाद उस नाग का कण्टक वेधी (सूक्ष्मातिसूक्ष्म) पत्र बनाकर गन्धक का चौथाई भाग मिला दे। नीचे

लाख का पटल (छाजन) देकर उसके बाद बालों को पसार दे ऊपर से गन्धक चूर्ण उसके बाद नागपत्र बिछा दे पुनः नाग पत्र के ऊपर गन्धक, मनुष्य का बाल तथा लाक्षा पटल क्रम से ऊपर पसार कर तथा सूत्रों को उसके ऊपर रखकर वर्ति बनावे। इस वर्ति को करञ्ज के तैल में दस रात्रि तक रक्खे। इसके बाद वत्ती के अग्रभाग को जलाकर सड़सी से पकड़ ले। इसके बाद सौवीराञ्जन तथा सुहागा से युक्त पात्र में उस वत्ती के द्रुति (द्रव) को गिराये और हे प्रिये उस तैल को कांच की शीशी के मध्य में रक्खे॥ १६६-१७१॥

कृत्वा गोस्तनमूषायां लिप्तायां शिलया रसम्।
चतुः षष्ट्यादिभागेन ज्ञात्वा देवि! बलाबलम्॥ १७२॥
गन्धनागद्रुतिं दत्त्वा तां मूषां सुरवन्दिते!।
गर्त्ते गोमयसम्पूर्णे विन्यस्य पुटपाचनम्।
दद्यात् करीषतुषयोः प्रसृतिद्वितयेन च॥ १७३॥
दद्यादजीर्णशङ्कायां सिंहवल्लीरसस्य तु।
चतुर्बिन्दून् पुटे प्राग्वदेवं प्रतिदिनं भवेत्॥ १७४॥
जारणात्त्रिगुणात् सूतो भवेज्जम्बूफलप्रभः॥ १७५॥

नागगन्धद्रुति से जीर्ण पारद का स्वरूप :—हे देवि! मैनशिल से लिप्त गोस्तन मूषा में पारद को रखकर तथा उसके बलाबल को देखकर पूर्वोक्त नागगन्धद्रुति (पूर्वोक्त तैल) को चौसठवां भाग देकर उस मूषा को गोबर से परिपूर्ण गड्ढे में रखकर पुट पाक करे। हे सुवन्दिते! पुट पाक के लिये दो प्रसृति (चार पल) उपले तथा धान की भूसी को गड्ढे के ऊपरि भाग में रख दें। पकने में सन्देह रहे तो सिंह वल्ली (सिंघी लता) का रस चार बूंद पहले की तरह मिला दे। इसी प्रकार प्रतिदिन मिलावे। इस प्रकार तीन बार जारण करने से पारद जामुन फल की प्रभा के समान हो जाता है॥ १७२-१७५॥

माक्षिकं सत्त्वमल्पाल्पं मृतनागसमन्वितम्।
मूषागतं भवेद्यावत् काचं दत्त्वाधरोत्तरम्।
एवं द्वादशवारांस्तु सुध्मातं रञ्जितं भवेत्॥ १७६॥

रंजनद्रव्यनिर्माणविधि :—मूषा में पहले विडनमक रखकर उसपर नाग भस्म रखे। इसके बाद ऊपर से विड़नमक रख दे और थोड़ा-थोड़ा माक्षिक सत्व मिलाकर बारह बार धमन करे। इससे वह रञ्जित हो जाता है॥ १७६॥

तेन पक्वं वीजचूर्णं पारदे पादभागिकम्।
मर्दितं चणकाम्लेन क्षणाद्गर्भद्रुतिर्भवेत्॥ १७७॥

गर्भद्रुतिनिर्माणविधिः—पूर्वोक्तरञ्जनद्रव्य के साथ पक्वबीजचूर्ण चौथाई

भाग पारद में मिलाकर चणकाम्ल के साथ मर्दित करें। इससे शीघ्र ही गर्भद्रुति हो जाती है ॥ १७७ ॥

गर्भद्रुतिर्न चेद्देवि ! वर्णिकाद्वयगन्धयोः ।
रक्तसिन्धूद्भवालर्क-टङ्कणाशुगपुङ्खतः ।
कल्केन लिप्तं पुटितं बीजं गर्भे द्रुतं भवेत् ॥ १७८ ॥
बीजे पादार्द्धतुल्यांशे जीर्णे वेधं करोति सः ।

द्वितीयगर्भद्रुतिनिर्माणविधिः—हे देवि ! इस विधि से गर्भद्रुति न होने पर वर्णिकाद्वय (हल्दी, दारुहल्दी), गन्धक रक्तसिन्धूद्भव (सेन्धानमक), अलर्क (राजार्क अर्क विशेष), सुहागा तथा आशुगपुङ्ख (शरपुंखा) इन द्रव्यों के कल्क के साथ बीज को लिप्त कर पुट देने से गर्भ (पारद) में द्रुति होती है। चौथाई आधा तथा समभाग बीज के जीर्ण होने पर गर्भद्रुत पारद वेध करता है ॥ १७८½ ॥

दशषोडशभागेन द्वाविंशांशेन च क्रमात् ॥ १७९ ॥
संयोज्य त्रिगुणां रीतिं तारे तारावशेषितैः ।
तारारिष्टमिदं लिप्त्वा तेन सूतेन वेधयेत् ॥ १८० ॥

तारारिष्टनिर्माणविधिः—दशवां भाग, सोलहवां भाग या बाइसवां (अथवा बत्तीसवां) भाग बीज के साथ चांदी में तीन गुना रीति (पित्तल) मिलाकर धमन करने से अवशिष्ट तार (चांदी) तारारिष्ट है। इस तारारिष्ट से पारद को लिप्त कर उससे वेध करे ॥ १७९–८० ॥

[अतः परन्तु संस्कारं वक्ष्ये नागाभ्रजारणम् ।]
करवीरारुणां देवि ! चूर्णयित्वा मनःशिलाम् ॥ १८१ ॥
भावयेद्विंशतिं वाराद् यावच्चिञ्चारसेन तु ।
तेन कल्केन संलिप्य नागपत्रं प्रयत्नतः ।
करीषानलेन विपचेत् यावत्तत् चूर्णितं भवेत् ॥ १८२ ॥
रसकस्य च भागांस्त्रीन् भागैकं दरदस्य च ।
पेषयेन्मातुलुङ्गेन पादगन्धं शिलाविषम् ॥ १८३ ॥
कल्केनानेन लिप्तायां मूषायां पुटपाचितम् ।
तं नागं धमयेदेवं सप्तधा हेमवद्भवेत् ॥ १८४ ॥

(इसके बाद नागाभ्रजारण संस्कार कह रहा हूँ) ।

नागाभ्रजारण विधिः—(नागरञ्जन) हे देवि ! लाल कनेर का चूर्ण बनाकर उसके साथ मनःशिला को इमली के रस से बीस बार भावित करे। इसके बाद इस कल्क से नाग के सूक्ष्मपत्र को प्रयत्न पूर्वक लिप्त कर गोहरी के आग

से तबतक पकावें जबतक वह चूर्ण न हो जाय। तदनन्तर खर्पर तीन भाग, हिंगुल एक भाग, गन्धक चौथाई भाग तथा मनःशिला चौथाई भाग इन सबों को बिजौरा निम्बु से पीसकर इस कल्क से लिप्तमूषा में नागचूर्ण को रखकर पुट पाक करे। उस नागचूर्ण को सात बार धमन करे। इससे वह नागचूर्ण सुवर्ण के रंग का हो जाता है ॥ १८१–१८४ ॥

पीताभ्रकं त्वेकदलं लिप्तायां मरिचेन तु।
मूषायां ध्मातमग्न्याभं [1]सौभाञ्जनरसे क्षिपेत् ॥ १८५ ॥
पातयेत् पूर्वविधिना तत् सत्त्वं हेमभासुरम् ॥ १८६ ॥

पीताभ्रक सत्वपातनः—पीत अभ्रक के एक दल को मरिच के कल्क से लिप्त मूषा में रखकर धमन करने से अग्निवर्ण के पीताभ्रक चूर्ण को सौवीराञ्जन के रस में पूर्वोक्त सत्वपातन विधि से पातन करे। वह सत्व सुवर्ण के वर्ण का हो जाता है ॥ १८५–१८६ ॥

पत्रं रञ्जितनागस्य सत्त्वं पीताभ्रकस्य च।
स्त्रीस्तन्यकाचधूमोत्थ-गुञ्जायस्कान्तटङ्कणैः ।
तुत्थेन संयुतेनैतन्नागाभ्रं द्वन्द्वितं भवेत् ॥ १८७ ॥

नागाभ्रद्वन्द्व निर्माणः—रञ्जित नाग के पल, पीताभ्रक का सत्व, स्त्री का दूध, सीसा, धूमोत्थ (बज्रक्षार या गृहधूम), गुञ्जा, लौह, टंकण तथा तूतिया इन सबों को एकत्र करने से द्वन्द्वित नागाभ्र होता है ॥ १८७ ॥

चिञ्चारनालसिद्धार्थ-धूमसारेष्टकागुडैः ।
मर्दयेत्रिदिनं सूतं दोलायां स्वेदयेत् त्र्यहम् ॥ १८८ ॥

पारद स्वेदन—इमली, काञ्जी, सरसों, गृहधूम ईंट का चूर्ण तथा गुड़ इन द्रव्यों के साथ पारद को मर्दन कर दोलायन्त्र में तीन दिन तक स्वेदन करे ॥ १८८ ॥

पुनर्नवामेषशृङ्गी-सर्पाक्षीकल्कसंयुतम् ।
अथासुरी सिन्धुविषं मरिचैः परिपेषितैः।
दोलायन्त्रे पुनरपि स्वेदयेद्दिवसत्रयम् ॥ १८९ ॥

पुनः पारद स्वेदनः—पुनर्नवा, मेढ़ा सिंघी तथा सर्पाक्षी (गन्धनाकुली) इन सबों के कल्क से युक्त राई सिन्धु विष (समुद्र विष) तथा पिसे हुए कालीमिर्च के साथ पारद को पुनः दोला यन्त्र में तीन दिन तक स्वेदन करे ॥१८९॥

अष्टमांशेन नागाभ्रं चारयित्वा सुरेश्वरि!।
शिलाभागद्वयं चैकं सिन्धुसौवर्च्चलं भवेत् ॥ १९० ॥

---

१. स्रोतोऽञ्जनरस—इति पाठान्तरम्।

टङ्कार्द्धं विषपादञ्च विडः पिण्डाष्टमांशतः ।
त्रिदिने कच्छपे जार्य्यमेवं जार्य्यन्तु षडगुणम् ॥ १९१ ॥

नागाभ्र जारणः—हे सुरेश्वरि ! अष्टमांश पारद के साथ नागाभ्र का चारण कर मनःशिला दो भाग, सेन्धानमक एक भाग, सौवंचल नमक एक भाग, सुहागा आधा भाग तथा विष (वत्सनाभ) चौथाई भाग इन सबों का पिण्ड बनाकर उसके अष्टमांश विड मिलाकर तीन दिन तक कच्छप यन्त्र में जारण करे। इसी प्रकार षड्गुण जारण भी करे ॥ १९०–१९१ ॥

शैलं तुत्थोरगं ताम्रं तीक्ष्णघोषारकाञ्चनम् ।
क्रमवृद्धमिदं तुत्थं ताप्यसत्त्वनिपातनात् ॥ १९२ ॥
हेमावशेषं तद्बीजं पदांशं मातुलाम्भसा ।
चारयेद्रसराजस्य जारयेत् कनकान्वितैः ॥ १९३ ॥

रस जारणः—मनःशिला एक भाग, तुत्थोरग (तुत्थ जीर्ण नाग) दो भाग, ताम्र तीन भाग, तीक्ष्ण (तीक्ष्ण लौह) चार भाग घोषार (कांस्य) पांच भाग स्वर्ण छः भाग, तूतिया सात भाग माक्षिक सत्वपातन से अवशिष्ट स्वर्ण तथा स्वर्णबीज चौथाई भाग बिजौरा निम्बु के रस के साथ पारद का चारण करे तथा स्वर्ण के साथ जारण करे ॥ १९२–१९३ ॥

ताप्यसौवर्चलशिला-गन्धकासीसटङ्कणैः ।
पद्मयन्त्रे निवेश्याथ कीलं दत्त्वा सुरेश्वरि ! ॥ १९४ ॥
धमेद्दिनत्रयं मन्दं यावद्बीजं द्रुतं भवेत् ।
तमेव समजीर्णन्तु वह्नौ निष्कम्पनं रसम् ॥ १९५ ॥
ततः षड्गुणबीजेन सारणा क्रमयोगतः ।
तारारिष्टमहिं शुल्बं सहस्रांशेन वेधयेत् ॥ १९६ ॥

निष्कम्पन रसः—माक्षिक, सौवर्चल, मनःशिला, गन्धक, कासीस तथा टंकण तथा स्वर्ण से युक्त जारित पारद को पद्मयन्त्र में रखकर तथा कील (शंखे) देकर हे सुरेश्वरि ! तीन दिन तक मन्द मन्द आँच से धमन करे जबतक बीज द्रव न हो जाय। इसी को अग्नि में समजीर्णनिष्कम्पनरस कहते हैं। इसके बाद हजारहवां भाग षड्गुण जारित बीज से सारणा क्रम के अनुसार तारारिष्ट, नाग तथा ताम्र का वेध करे ॥ १९४–१९६ ॥

विषगन्धकताप्याभ्र-काकविष्ठा घनध्वनिः ।
सहदेवी-वह्निशिखा-कल्केन क्रमते रसः ॥ १९७ ॥

रस क्रामण द्रव्यः—विष (वत्सनाभ), गन्धक, माक्षिक, अभ्रक, काकविष्ठा, नागरमोथा, सहदेई तथा वह्नि शिखा (कलिहारी) इन सबों के कल्क से पारद क्रामण करता है ॥ १९७ ॥

मूर्च्छितो मृतसूतश्च जलूकाबन्ध एव च।
चतुर्थो मूर्त्तिबन्धस्तु पट्टबन्धस्तु पञ्चमः।
भस्मसूतश्च खोटश्च संस्कारात् सप्तधा रसः॥ १९८॥

संस्कारभेद से सात प्रकार का रसः—मूर्च्छित,मृतपारद, जलूकबन्ध, चौथा मूतिबन्ध, पांचवाँ पट्टबन्ध, छठवाँ भस्मसूत तथा सातवां खोटबन्ध इस प्रकार संस्कार भेद से पारद सात प्रकार का होता है॥ १९८॥

नागवर्णं भवेत् सूतं विहाय घनचापलम्।
लक्षणं दृश्यते यस्य मूर्च्छितं तं वदन्ति हि॥ १९९॥

मूर्च्छितरसः—जब पारद घन तथा चाञ्चल्य दोष को छोड़कर नागवर्ण का होता है तथा जिसमें नाग के लक्षण दिखाई देते हैं उसको मूर्च्छित पारद कहते हैं॥ १९९॥

आर्द्रत्वञ्च घनत्वञ्च तेजोगौरवचापलम्।
यस्यैतानि न दृश्यन्ते तं विद्यान्मृतसूतकम्॥ २००॥

मृत सूतः—जिस पारद में आर्द्रता (गीलापन), घनत्व, तेज (चमक) भारीपन तथा चञ्चलता न दिखाई पड़े उसको मृत सूत कहते हैं॥ २००॥

नानवर्णं तथा स्वच्छं द्रुतं योनौ जलूकवत्।
बध्यते सूतकं यच्च जलूकाबन्धलक्षणम्॥ २०१॥

जलौकाबन्धरसः—अनेक वर्ण स्वच्छ जलौका की तरह योनि में द्रुत यो पारद जलौका की तरह बँध जाता है उसे "जलूका बन्ध' कहते हैं॥ २०१॥

गुरुत्वमरुणत्वञ्च तेजसा सूर्य्यसन्निभम्।
शिखिमध्ये धृतं तिष्ठेत् मूर्तिबन्धस्य लक्षणम्॥ २०२॥

मूर्तिबन्ध रसः—गुरुता, अरुणिमा तथा सूर्य के सदृश तेज से युक्त होकर अग्नि के मध्य में रखने से स्थिर हो जाता है यह मूर्तिबन्ध रस का लक्षण है। २०२॥

शलाकाजारणाद्वापि मूर्त्तिबन्धत्वमिष्यते॥ २०३॥

अथवा शलाका जारण से भी मूर्तिबन्धत्व माना जाता है॥ २०३॥

श्वेतं पीतं गुरु तथा मृदु सिक्थकसन्निभम्।
अग्निमध्ये यदा तिष्ठेत् पट्टबन्धस्य लक्षणम्॥ २०४॥

पट्टबन्ध रसः—जब सफेद तथा पीत वर्ण से युक्त गुरु तथा मोम की तरह मृदु पारद अग्नि में स्थिर रहता है तब यह लक्षण पट्टबन्ध पारद का है॥२०४॥

कृष्णं श्वेतं तथा पीतं नीलं भस्मनिभं तथा।
चपलत्वं यदा नष्टं भस्मसूतस्य लक्षणम्॥ २०५॥

भस्मनिभ पारद:—कृष्ण, श्वेत, पीत, नील तथा भस्म की कान्ति की तरह होकर जब पारद का चञ्चलत्व दोष नष्ट हो जाता है यह लक्षण भस्मसूत का है ॥ २०५ ॥

कुक्कुटाण्डनिभं सूतं यदा लवणभेदि च।
आवर्त्तते रसस्तद्वत् खोटकस्य च लक्षणम् ॥ २०६ ॥

खोटक सूतः—जब पारद मुर्गी की अण्ड सदृश लवण को भेदन करनेवाला आवर्तित होता है इस प्रकार का लक्षण खोटबन्ध पारद का है ॥ २०६ ॥

अथवा छेदने स्निग्धं रश्मिना मृदुना द्रवेत्।
अक्षयं कठिनं श्वेतं खोटबन्धस्य लक्षणम् ॥ २०७ ॥

या छेदन करने पर स्निग्ध प्रकाश से मृदुता के साथ द्रव हो जाय अक्षय, कठिन तथा श्वेत वर्ण युक्त हो यह खोटबन्ध का लक्षण है ॥ २०७ ॥

खोटादयस्तु ये पञ्च विहाय जलुकाकृति।
हठाग्नौ धामिताः सन्ति न तिष्ठत्येव मूर्च्छितः ॥ २०८ ॥

खोट आदि यो पाँच बन्ध है वे जलुका को छोड़कर तीव्राग्नि में धमन करने से मूर्च्छित अवस्था में नहीं ठहरते हैं ॥ २०८ ॥

तरुणादित्यसंकाशो नानावर्णः सुरेश्वरि !।
वेधयेद्देहलोहानि रञ्जितो रसभैरवः ॥ २०९ ॥

हे सुरेश्वरि ! तरण सूर्य के तेज सदृश अनेक वर्ण वाला रञ्जित रस भैरव (पारद) लोह तथा देह को वेध करता है ॥ २०९ ॥

शोधनं सूतकस्यादौ ग्रासमानमतः परम्।
जारणं व्योमसत्त्वस्य सर्व्वसत्त्वस्य जारणम् ॥ २१० ॥
गर्भवाह्यद्रुतिः पश्चात् सुवर्णस्य तु जारणम्।
दिव्यौषधिपुटः पश्चात् रत्नबन्धमतः परम् ॥ २११ ॥
रञ्जनञ्च ततो देवि ! जारणा चानुसारणा।
क्रामणञ्च ततो देयं सूतकस्य विचक्षणैः ॥ २१२ ॥

पारद के शोधन आदि क्रम का निरूपण:—पहले पारद का शोधन करना चाहिए। उसके बाद ग्रास देना, अभ्रक सत्व का जारण, सभी सत्वों का जारण, गर्भवाह्यद्रुति, उसके वाद सुवर्ण जारण, बाद में दिव्यौषधियों का पुट उसके बाद रत्न बन्धन, तत्पश्चात् हे देवि ! जारणा, सारणा तथा इसके बाद विद्वान् द्वारा पारद का क्रामण संस्कार कराना चाहिए ॥ २१०–२१२ ॥

एवं क्रमं तु यो वेत्ति तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ २१३ ॥

पारद के शोधन आदि के ज्ञान से सिद्धि का निरूपणः—पूर्वोक्त प्रकार से जो

पारद का शोधन आदि संस्कार जानता है, उसको सिद्धि मिलती है इसमें संदेह नहीं है ॥ २१३ ॥

बेधकं यस्तु जानाति देहे लोहे रसायने।
तस्य जन्म जरा व्याधिर्नश्यत्येव न संशयः ॥ २१४ ॥

जो व्यक्ति देह लौह तथा रसायन में वेध को जानता है उसका जन्म, जरा तथा रोग नष्ट हो हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१४ ॥

देहे तु पञ्चरत्नानि नागं वङ्गं तथायसम्।
क्रामणं रसराजस्य भेषजं व्याधिनाशनम् ॥ २१५ ॥

जो देह में पञ्चरत्न, नाग, वंग तथा लौह का वेध जानता है तथा पारद का क्रामण जानता है उसका भेषज व्याधि नाशक होता है ॥ २१५ ॥

औषधैः क्रमते सूतो योगशक्तिक्रमेण तु।
क्रमते व्याधिसङ्घाते ग्रसते दुष्टमामयम् ॥ २१६ ॥
तस्य तु क्रामणं ज्ञात्वा ततो वैद्यरुपाचरेत्।
क्रामणेन विना सूतो न क्रमेत् न च वेधयेत्।
देहलोहामयान् सर्व्वान् वृथा स्यात् केवलं श्रमः ॥ २१७ ॥

पारद औषधि से क्रमण करता है, योगशक्ति क्रम से क्रमण करता है तथा व्याधि समूह में क्रमण करता है और दुष्ट रोगों को खा जाता है। पारद के क्रमण को जानकर ही वैद्य उपचार करे। क्रामण के बिना पारद देह, लौह तथा आमय (रोग) को न क्रमण करता है और न बेध करता है। अतः क्रामण के बिना पारद का प्रयोग करना व्यर्थ श्रम करना है ॥ २१६-२१७ ॥

यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सह योजयेत्।
रसेन्द्रो हरति व्याधीन् नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥ २१८ ॥

जिस रोग की जो औषध है उसी रोग में उस औषध का प्रयोग करे। रसेन्द्र, मनुष्य, हाथी तथा घोड़ों के रोग को दूर करता है ॥ २१८ ॥

आखोटो बलमाधत्ते मूर्च्छितो व्याधिनाशनः।
बद्धेन खेचरीसिद्धिः मारितेनाऽजरामरः ॥ २१९ ॥

खोट बन्ध पारद बल का आधान करता है, मूर्च्छित पारद रोग का नाश करता है। बद्ध होने से खेचरी सिद्धि होती है तथा मारित पारद से अजर-अमर हो जाता है ॥ ११९ ॥

विशेषाद्व्याधिशमनो गन्धकेन तु मूर्च्छितः।
ओषध्या घातितः सूतो यथा भूयो न जीवति ॥ २२० ॥

गन्धक के साथ मूर्च्छित पारद विशेष रूप से व्याधि को नाश करता है जैसे

ओषधियों द्वारा मारित पारद पुनः जीवित नहीं होता। अर्थात् उसमें चञ्चलता आदि दोष नहीं आते ॥ २२० ॥

सहि क्रामति लोहेषु तेन कुर्य्याद्रसायनम् ।
तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २२१ ॥

इति श्रीपार्व्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
बालजारणो नाम एकादशः पटलः ॥ ११ ॥

उपसंहारः—वह पारद लोहोंमें क्रमण करता है अतः उसको रसायन बनाना चाहिए। हे देवेशि ! और क्या सुनना चाहती हो वह मुझ से कहो ॥ २२१ ॥

॥ एकादश पटल समाप्त ॥

द्वादशः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

ओषधी कीदृशी नाथ ! रसमूर्च्छाकरी शुभा ।
केन वा भस्मसूतः स्यात् केन वा खोटबन्धनम् ॥ १ ॥

पारद के मूर्च्छन आदि संस्कार से सम्बन्धित प्रश्न :—पार्वती बोली ! हे नाथ, पारद को अच्छी तरह मूर्च्छित करने वाली ओषधि कैसी होती है, या किस ओषधि से पारद भस्म बनता है, अथवा किससे खोट[1] बन्ध होता है ॥१॥

श्रीभैरव उवाच ।

शृणु भैरवि ! यत्नेन रहस्यं रसबन्धनम् ।
ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राद्यैर्न ज्ञातं वीरवन्दिते ! ॥ २ ॥

रसबन्धकारक ओषधियों का कार्यविधि वर्णन :—रसबन्धकारक ओषधियों के सम्बन्ध में पार्वती का प्रश्न सुनकर श्री भैरव जी बोले—हे भैरवि ! गोपनीय रसबन्धन को सावधानी पूर्वक सुनो। हे वीरों से वन्दित पार्वति ! यह रसबन्धन ब्रह्मा विष्णु तथा सुरेन्द्रादिकों को भी ज्ञात नहीं है ॥२॥

"गङ्गायमुनयोर्मध्ये प्रयोगो नाम राक्षसः ।
तस्यासन्ने वरारोहे क्षणाद्बध्येत सूतकः ॥ ३ ॥

रसबन्धनयोग्यस्थान :—हे वरारोहे ! गंगा-यमुना के मध्य भाग में प्रयोग नाम का राक्षस रहता है, उसके समीप में पारद क्षणमात्र में बंध जाता है ॥ ३ ॥

निशाचरस्य पत्राणि गृह्णीयात् साधकोत्तमः ।
अधो निष्पीडितं देवि ! रसो भवति चोत्तमः ॥ ४ ॥
रसं संमर्द्य तेनैव दिनानि त्रीणि वार्त्तिकः ।
आखोटं बन्धयेत् क्षिप्रं गगनं तत्र जारयेत् ॥ ५ ॥

निशाचर ओषधि से रसबन्धन :—उत्तम साधक निशाचर (सोमलता) के पत्तों को ग्रहण करे। हे देवि, उसको नीचे निष्पीड़न (मसलना) करने से

---

१. बन्धश्चतुर्विधः प्रोक्तो जलौका खोट पाटकौ ।
तथा भस्माभिधः साक्षात्कथितोऽपि रसागमे ॥
(र० प्र० सु० २।२)

उत्तम रस निकलता है। वार्तिक (रसवृत्ति करनेवाला साधक) उसी के रस से पारद को तीन दिन तक मर्दन कर आरोट बन्धन करे और उसमें तुरन्त अभ्रक का जारण करे ॥ ४–५ ॥

तेन पत्ररसेनैव साधयेद्गगनं पुनः।
सप्तधा भावितं तेन त्र्यूषणेन सहैकतः।
यन्त्रे विद्याधरे देवि! गगनं तत्र जारयेत् ॥ ६ ॥
मासमात्रेण देवेशि! जीर्य्यते तत् समं समे।
समजीर्णे रसे देवि! शतवेधो भवेद्रसः ॥ ७ ॥

अभ्रक समजीर्ण पारद :—पुनः निशाचर (सोमलता) के पत्तों के रस से ही अभ्रक को मर्दन, निषेकादि विधि से सिद्ध करे और पहले त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच) के साथ उस रस से सात बार भावित करे। इसके बाद अभ्रक को "विद्याधर" यन्त्र में रख कर जारण करे। हे देवि! एक मास में ही सम भाग अभ्रक पारद में जीर्ण हो जाता है। हे देवि! समभाग अभ्रक जीर्ण पारद होनेपर शतवेधी होता है ॥ ६-७ ॥

निशाचररसे देवि! गन्धकं भावयेत्ततः।
भावयेत् सप्तवारं तु द्विपद्याश्च रसेन तु ॥ ८ ॥
तारस्य पत्रलेपेन अर्द्धार्द्धकाञ्चनोत्तमम्।
गन्धके समजीर्णेऽस्मिन् शतवेधी रसो भवेत् ॥ ९ ॥

समगन्धक जीर्ण पारद :—हे देवि! निशाचर के रस में गन्धक को भावित करे। इसके बाद द्विपदी (द्विपादिका = नागकेशर वृक्ष) के रस से सात बार भावित करे। तदनन्तर भावित गन्धक से आधा भाग चाँदी पत्र तथा आधा भाग उत्तम काञ्चन पत्र को लिप्त कर तथा पारद को मिला कर समभाग गन्धक जारण करे। सम भाग गन्धक जीर्ण पारद होने पर पारद शतवेधी होता है ॥ ८-९ ॥

पुनस्तं गन्धकं दत्त्वा पत्रलेपे रविं हरेत्।
तं रविं तारमध्ये तु त्रिगुणं वाहयेत्ततः ॥ १० ॥
हेमार्द्धं मिलितं हेम मातृका समतां व्रजेत्।
पुनस्तं गन्धकं साक्षाद्द्रावयित्वा द्रुतं कुरु ॥ ११ ॥
रसेन्द्रं मर्दयेत्तेन गतदेहं तु कारयेत्।

सगन्ध पारद लेप निर्माण:—पुनः भावित गन्धक से ताम्र पत्र को लिप्त करे। उस ताम्र को तीन भाग चाँदी में मिलाकर मर्दन करे। उसके बाद आधा भाग स्वर्ण मिला दे। इस प्रकार यह हेम समानता को प्राप्त करता है। इसके बाद

पुनः उस गन्धक को प्रत्यक्ष द्रावण कर द्रव बना ले। तदनन्तर उस गन्धक द्रव के साथ पारद को मर्दन कर गत देह (एकरस) बना ले। १०-११½

लेपमात्रेण तेनैव कुष्ठानष्टादश प्रिये !।
अर्शो भगन्दरं लूतां शिरोरोगांश्च नाशयेत् ॥ १२ ॥

गन्ध पारद लेप का उपयोग :—यह गन्धपारद लेप करने मात्र से ही अट्ठारह प्रकार के कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, लूताविष तथा शिरो-रोगों को नाश करता है ॥ १२ ॥

निशाचररसे भाव्यं सप्तवारं तु तालकम।
तनैव घातयेद्वङ्गं वङ्गं तारे तु निर्वहेत् ॥ १३ ॥
तं तारं जारयेत् सूते तत्सूतं बन्धनं व्रजेत्।
लेपमात्रेण तेनैव चतुःषष्टितमो भवेत् ॥ १४ ॥

हरताल सूत बन्धन :—निशाचर के रस में हरताल को सात बार भावित करे, उसी के साथ वंग का मारण करे, वंग को रजत में मारण करे। उस रजत को पारद में जारण करे वह पारद बँध जाता है। उसी के चौसठवां भाग से लेप करने से रसबन्ध होता है ॥ १३-१४ ॥

चतुःषष्टितमे भागे शुल्ववेधं तु दापयेत्।
शुल्वं तु दापयेत्तारे तत्तारं काञ्चनं भवेत्।
तत्तारं जायते श्रेष्ठं धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ १५ ॥

रजतकाञ्चनीकरण :—पूर्वोक्त रसबन्ध के चौसठवें भाग में ताम्रवेध कराये। ताम्र को रजत में वेध कराये इससे वह रजत स्वर्ण हो जाता है। वह रजत काञ्चन उत्तम होता है तथा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को देने वाला है ॥ १५ ॥

निशाचरस्य पुष्पाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
पलानि दश चूर्णस्य रसैर्धात्र्यास्तु भावयेत् ॥ १६ ॥
घृतेन मधुनालोड्य नवभाण्डे विनिक्षिपेत्।
धान्यराशौ निधातव्यं त्रिसप्ताहं सुरेश्वरि ! ॥ १७ ॥
तेन भक्षितमात्रेण वलीपलितवर्जितः ॥ १८ ॥

निशाचर पुष्प चूर्ण प्रयोग :—निशाचर के पुष्प का सूक्ष्म चूर्ण बनावें। उसमें से दशपल चूर्ण लेकर आंवला के रस से भावित करे। उस चूर्ण को घृत तथा मधु में मिलाकर नवीन मिट्टी के पात्र में रक्खें। हे सुरेश्वरि ! उस पात्र को धान्य के राशि में तीन सप्ताह तक रहने दे। इसके भक्षण मात्र से मनुष्य वलि-

पलित (असमय में बाल का पकना तथा बाल का गिरना) रोग से मुक्त हो जाता है ॥ १६-१८ ॥

बल्कलं सूक्ष्मचूर्णं तु मधुना सहितं लिहेत् ।
अर्द्धमासप्रयोगेण प्रत्यक्षोऽयं भवेत् प्रिये ! ॥ १९ ॥
तस्य मूत्रपुरीषेण शुल्वं भवति काञ्चनम् ।
मासमात्रप्रयोगेण पन्नगः कञ्चनं भवेत् ॥ २० ॥

निशाचर के वल्कल का सूक्ष्म चूर्ण मधु के साथ चाटे । हे प्रिये ! आधा मास प्रयोग करने से यह प्रत्यक्ष हो जाता है । उस व्यक्ति के मूत्र तथा पुरीष (विष्ठा) से तांबा स्वर्ण हो जाता है एक मांस प्रयोग करने से पन्नग (नाग) स्वर्ण हो जाता है ॥ १९-२० ॥

ग्राह्यं तत्फलतैलं वा यन्त्रे पातालसञ्ज्ञके ।
तेन तैलेन देवेशि ! रसं सङ्कोचयेद्बुधः ॥ २१ ॥
तत्क्षणाज्जायते देवि ! पट्टबद्धो महारसः ॥ २२ ॥

निशाचर फल तैलः—अथवा-पाताल संज्ञक यन्त्र में निशाचर का फल रख कर तैल निकाल ले । हे देवेशि ! बुद्धिमान व्यक्ति उस तैल से पारद को संकुचित (स्थिर) कर ले । हे देवि ! उसी समय महारस (पारद) पट्टबद्ध हो जाता है ॥ २१-२२ ॥

कटुकं कङ्कणं कार्य्यं रसलिङ्गे वरानने ।
सङ्कोच्य मारणं तेन कर्त्तव्यं परमाद्भुतम् ॥ २३ ॥

हे वरानने ! रसलिंग में कटुक (त्रिकटुक-सोंठ, पीपर, मरिच) का कङ्कण बनाये और निशाचर फल तैल से संकुचित कर उत्तम प्रकार का मारण करे ॥ २३ ॥

निशाचररसे क्षिप्तं सप्तवारं तु भास्करम् ।
कालिकारहितं तेन जायते कनकप्रभम् ॥ २४ ॥

निशाचर के रस में ताम्र को सात बार प्रक्षेप करने से वह कालिमा (कृष्ण वर्ण) को छोड़ कर स्वर्ण के सदृश वर्ण वाला हो जाता है ॥ २४ ॥

तत्तारेण समं बाह्यं तेन सिक्तं तु वापितम् ।
दशांशं वेधयेत् सूतं दश पीतं शतेन च ॥ २५ ॥
शतं वेधयते लक्षं सहस्रं कोटिवेधकम् ।
दशांशं कोटिवेधि स्यात् कोटिवेधि समेन च ॥ २६ ॥"

पूर्वोक्त कनक प्रभ ताम्र को रजत के बराबर लेकर उससे सिक्त करे तथा वापित (प्रक्षेप) करे । उससे दशांश सूत को बेध करे दशवां भाग पीत (वापित = प्रक्षिप्त) होने पर सौवां भाग से वापित करे उससे शतवेधि होता

है, शत वेधी से वापित होने पर सहस्र वेधी होता है। सहस्रवेधी से वापित करने पर लक्षवेधी होता लक्षवेधी से वापित करने पर कोटि वेधक होता है। कोटि वेधि के साथ दशमांश वापित करने पर कोटिवेधि होता है ॥ २५-२६ ॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रसबन्धं सदुर्लभम् ॥ २७ ॥
त्रैलोक्यजननी या स्यादोषधी अजनायिका।
तस्याः सम्पर्कमात्रेण बद्धस्तिष्ठति पारदः ॥ २८ ॥

अजनायिका ओषधि का रसकर्म में प्रयोग :—पुनः दूसरे अत्यन्त दुर्लभ रस बन्ध को कहता हूँ। जो तीनों लोक की माता अजनायिका नामक ओषधो है, उसके सम्पर्क मात्र से पारद बद्ध होकर स्थिर रहता है ॥ २७-२८ ॥

सप्ताहं मर्दितस्तस्या महौषध्या रसेन सः।
शतांशेनैव वेधेन कुरुते दिव्यकाञ्चनम् ॥ २९ ॥
द्विसप्ताहं रसे तस्या मर्द्दनाद्वरवर्णिनि !।
लक्षवेधी रसः साक्षादष्टौ लोहानि काञ्चनम् ॥ ३० ॥
त्रिसप्ताहेन देवेशि ! दशलक्षाणि विध्यति।
चतुर्थे चैव सप्ताहे कोटिवेधी महारसः ॥ ३१ ॥

अजनायिका महौषधि के रस से सात बार मर्दित पारद शतांश मात्र वेध करने से दिव्य काञ्चन बना देता है। हे वरवर्णिनि ! अजनायिक के रस में दो सप्ताह मर्दन करने से लक्षवेधी पारद साक्षात् आठों प्रकार के लोहों को काञ्चन बना देता है। हे देवि ! पूर्वोक्त ओषधि के रस से तीन सप्ताह तक मर्दित पारद दशलक्षका वेध करता है। चार सप्ताह पूर्वोक्त ओषधी से मर्दित होने पर महा-रस (पारद) कोटि वेधी होता है। २८-३१ ॥

स्वेदतापननिर्घृष्टो महौषध्या रसेन तु।
ददाति खेचरीं सिद्धिमनिवारितगोचरः ॥ ३२ ॥
कामयेत् कामिनीनां तु सहस्रं दिवसान्तरे।
नष्टच्छायो ह्यदृश्यश्च त्रैलोक्यं च भ्रमेद्रसैः ॥ ३३ ॥

अजनायिका महौषधी के रस से स्वेदित, तापित तथा निर्घृष्ट (मर्दित) पारद प्रत्यक्ष होकर खेचरी सिद्धि देता है। एक दिन में हजारों कामिनियों की कामना शक्ति को बढ़ाता है। उस पारद के साथ छाया रहित अदृश्य होकर तीनों लोकों में परिभ्रमण कर सकता है ॥ ३२-३३ ॥

महौषध्या रसेनैव मृतसञ्जीवनं भवेत्।
अनेन घातयेत् सूतं पञ्चावस्थं कुरु प्रिये ॥ ३४ ॥

मृतस्य दापयेन्नस्यं हस्तपादौ तु मर्द्दयेत्।
तस्य तु प्रविशेज्जीवो मृतस्यापि वरानने!॥ ३५॥"

महौषधी अजनायिका रस से ही मृत संजीवन (मृत व्यक्तियों को जीवित करने वाला) होता है। हे प्रिये अजनायिका के रस के साथ पारद को पाँच बार मारण करे। मृत पारद का नस्य दे और दोनों हाथ तथा दोनों पैरों का मर्दन करे। हे वरानने! उस मृत व्यक्ति का भी जीव शरीर में पुनः प्रवेश करता है अर्थात् वह जीवित हो जाता है॥ ३४-३५॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रसबन्धं सुदुर्लभम्।
नरसाररसेनैव क्षणाद् बध्येत सूतकः॥ ३६॥

रसकर्म में नर सार (नवसादर) का प्रयोग :—पुनः अत्यन्त दुर्लभ दूसरे रसबन्ध को कहता हूँ। नरसार (नवसादर) के रस में ही क्षणमात्र में पारद बद्ध जाता है। ३६॥

नरसाररसं दत्त्वा द्विपदीरजसा सह।
दिनान्ते बन्धमायाति सर्वलोहानि रञ्जयेत्॥ ३७॥

द्विपदी (नागकेशर) के चूर्ण के साथ नरसार देकर मर्दन करने से पारद दिन के अन्त में बद्ध जाता है तथा सभी लौहों को रंग देता है॥ ३७॥

नरसाररसेनैव जीर्णे षड्गुणपन्नगे।
तारे ताम्रेऽपि वा देवि! भावयेत मनः शिलाम्॥ ३८॥
निर्गन्धा जायते सा तु घातयेत्तद्रसायनम्।
द्विपदीरजसा सार्द्धं निःसत्त्वः पन्नगो भवेत्॥ ३९॥

नरसार रस के साथ षड्गुण पन्नग के जीर्ण होने पर, या तार (रजत) के षड्गुण जीर्ण होने पर, अथवा ताम्र के भी षड्गुण जीर्ण होने पर मनःशिला को भावित करे। वह मनःशिला निर्गन्ध हो जाती है और रस को मारण करती द्विपदी रस के साथ (मारण करने पर) पन्नग निःसत्व होता है। ३८-३९॥

नरसाररसेनैव जीर्णे षड्गुणपन्नगे।
तारे ताम्रेऽपि वा देवि! कोटिवेधी भवेद्रसः॥ ४०॥

नरसार के रस से ही पूर्वोक्त षड्गुण जारित पन्नग के जीर्ण होने पर, या रजत के षड्गुण जीर्ण होने पर, अथवा ताम्र के जीर्ण होने पर हे देवि। पारद कोटि बेधी होता है॥ ४०॥

नरसाररसस्तन्ये भावनाः सप्तधा पृथक्।
रसेन्द्रं दापयेद्ग्रासं यन्त्रे विद्याधराह्वये॥ ४२॥
जीर्य्यते गगनं देवि! निर्मुखं च वरानने!।

नरसाररसेनैव कीटमारीरसेन च ।
द्रावयेद्गगनं देवि ! तीक्ष्णं लोहञ्च पन्नगम् ॥ ४२ ॥

नरसार के रस तथा स्त्री के दूध में (या नरकसा = नीली वृक्ष के रस तथा दूध में) अलग-अलग अभ्रक को सात भावना दे । इसके बाद विद्याधर नामक यन्त्र में पारद को ग्रास दे । हे देवि ! हे वरानने ! इससे निर्मुख अभ्रक जीर्ण हो जाता है । हे देवि ! नरसार रस के रस से तथा कीटमारी (रक्त लज्जालु) के रस से अभ्रक, तीक्ष्ण, लोह तथा पन्नग का द्रावण करे ॥४१-४२॥

नरसाररसेनैव हनूमत्या रसेन च ।
जायते काञ्चनं दिव्यं निषेकाद् भास्करप्रिये ॥ ४३ ॥

नर सार का रस तथा हनुमती (वानरी = शूक शिम्बी) के रस से भास्कर-प्रिय (ताम्र) में निषेक करने से दिव्य काञ्चन हो जाता हैं । अर्थात् नरसार तथा हनुमती के रस में ताम्र पत्र को तपाकर बुझाने से ताम्र दिव्य काञ्चनवर्ण का हो जाता है ॥ ४३ ॥

नरसाररसे दत्त्वा मञ्जिष्ठारक्तचन्दनम् ।
स्वरसे मर्दयेत् पश्चात् पन्नगं देवि ! सेचयेत् ॥ ४४ ॥
तत्क्षणात् काञ्चनं दिव्यं सप्तवारं निषेचितम् ।

नरसार के रस में मंजीठ, रक्त चन्दन मिलाकर उसके स्वरस में पन्नग को मर्दन करे तथा हे देवि बाद में सेंचन करे । इस प्रकार सात बार सेंचन करने से उसी समय दिव्य काञ्चन हो जाता है ॥ ४४½ ॥

रविघृष्टं तु तं देवि ! पन्नगं त्रिगुणं प्रिये ! ॥ ४५ ।
तच्छुल्वं हेमसङ्काशं तारपञ्चांशयोजितम् ।
अष्टमांशयुतं हेम हेमकर्म्मणि चौषधम् ॥ ४६ ॥

रवि (ताम्र) के साथ मर्दित पारद, तीन गुना कांचनीभूत पन्नग, हेम सदृश वर्ण प्राप्त ताम्र समभाग काञ्चनीभूत रजत पांचवां भाग, स्वर्ण आठवां भाग ये सब हेम कर्म (स्वर्ण निर्माण) में औषध हैं ॥ ४५-४६ ॥

नरसाररसे भाव्यं सप्तवारं तु हिङ्गुलम् ।
तेनैव घातयेत्तीक्ष्णं भस्मीभूतत्वमादिशेत् ॥ ४७ ॥
तद्भस्म ताम्रपिष्टं तु त्रिगुणं तेन निर्वहेत् ॥ ४८ ॥
तच्छुल्वं हेमसङ्काशं तारमष्टांशयोजितम् ।
तारहेम समांशं तु द्विगुणं पित्तलं भवेत् ॥ ४९ ॥

नरसार के रस में हिंगुल को सात बार भावित करे । उसी के साथ तीक्ष्ण

लोह को मारण करे जिससे वह भस्म हो जाय। वह भस्म ताम्र की पीठी तीन भाग के साथ मिला दे। हेमसदृश वह ताम्र तथा रजत आठवाँ भाग मिला दें। रजत तथा स्वर्ण समभाग और पित्तल दुगुना होना चाहिए॥ ४७-४९॥

नरसाररसे भाव्यं रसकं सप्तवारतः।
तं रसं रसकं चैव तीक्ष्णं लोहं च पन्नगम्।
नरसाररसेनैव तेनैवैकत्र मर्दयेत्।
तत्क्षणाज्जायते बन्धो रसस्य रसकस्य च॥ ५०॥

नरसार के रस में रसक (खर्पर) सात बार भावित करे। इसके बाद पूर्वोक्त रस, खर्पर, तीक्ष्ण, लोह तथा पन्नग इन सबों को एकत्रकर उसी नरसार के साथ मर्दन करे। इससे उसी समय रस तथा रसक का बन्ध हो जाता है॥ ५०॥

तीक्ष्णं नागं तथा शुल्बं रसकेन तु रञ्जयेत्।
समस्तं जायते हेम कूष्माण्डकुसुमप्रभम्॥ ५१॥"

तीक्ष्णलोह, नाग तथा ताम्र इन सबों को खर्पर से रञ्जन करे। इससे पूर्वोक्त सभी कूष्माण्ड के पुष्प की प्रभा के सदृश स्वर्ण हो जाता है॥ ५१॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रसबन्धं सुदुर्लभम्॥ ५२॥
कङ्कालखेचरी नाम ओषधी परमेश्वरि!।
तस्यास्तैलं तु संगृह्य माघखेचरिसंयुतम्।
भावयेत् दिनमेकन्तु पात्रे भास्करनिर्मिते॥ ५३॥
द्वितीये वासरे प्राप्ते वज्ररत्नं तु घातयेत्।
अनले धामयेत्तत् तु सुतप्तज्वलनप्रभम्॥ ५४॥

कंकाल खेचरी ओषधी का रसकर्म में प्रयोग—पुनः अत्यन्त दुर्लभ दूसरे रसबन्ध को कहता हूँ। हे परमेश्वरि! कंकाल खेचरी नामक दिव्योषधि है। उसके तैल को लेकर माघखेचरी नामक ओषधी के साथ पारद को ताम्र निर्मित पात्र में एक दिन तक भावित करे। दूसरे दिन वज्ररत्न (हीरा) का मारण करे। उसके बाद आग में धमन करे। वह सुतप्त अग्नि की प्रभा सदृश हो जाता है॥ ५२-५४॥

कङ्कालखेचरीतैले वज्ररत्नं निषेचयेत्।
दशवारं निषिक्तं तु भस्माकारं हि जायते॥ ५५॥
तद्धेमपक्वबीजं तु तेन भस्मसमं कुरु।
त्रिभागं टङ्कणं दत्त्वा अन्धमूषागतं धमेत्।
तत्क्षणान्मिलति द्वन्द्वं वज्ररत्नं च काञ्चनम्॥ ५६॥

चन्द्रहेम वरारोहे समं जारयते यदि।
कोटिवेधी रसो देवि लौहान्यष्टौ च विध्यति ॥ ५७ ॥"

कंकाल खेचरी तैल में वज्र रत्न को डुबो दे। दस बार निषिक्त करने पर भस्म के आकार का हो जाता है। उस हेमपक्वबीज के समभाग वज्रभस्म को मिला दे और तीन भाग सुहागा देकर अन्धमूषा यन्त्र में रखकर फूँक दे। इससे उसी समय द्वन्द्व मिल जाता है और वज्ररत्न स्वर्ण हो जाता है। हे वरारोहे ! यदि रजत तथा स्वर्ण सममाग मिलाकर जारण किया जाय तो हे देवि ! यह कोटि वेधी रस आठों प्रकार के लोहों को वेधता है ॥ ५५-५७ ॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रसबन्धं सुदुर्लभम् ॥ ५८ ॥
सबीजा चौषधी ग्राह्या काचिद्गुल्मलता प्रिये ! ।
मन्त्रसिंहासनी नाम द्वितीया देवि ! खेचरी ।
पातालयन्त्रे तत्तैलं गृह्णीयात्ताम्रभाजने ॥ ५९ ॥
तस्य तैलस्य मध्ये तु प्रक्षिपेत् खेचरीरसम् ।
मेदिनीयन्त्रमध्ये तु स्थापयेत्तु वरानने ॥ ६० ॥
पूर्वौषध्या तु तद्देवि ! गगनं मेदिनीतले ।
रसग्रासं ततो दत्त्वा मर्दनात् गोलकं कुरु ॥ ६१ ॥
बद्ध्वा पोटलिकां तेन गगनं तेन जारयेत् ।
समे तु गगने जीर्णे बद्धस्तिष्ठति सूचकः ॥ ६२ ॥
भस्त्राफूत्कारयुक्तेन धाम्यमानेन नश्यति ।
काकविष्ठासमं रूपं समजीर्णस्य जायते ॥ ६३ ॥
द्विगुणे गगने जीर्णे अष्टौ लोहानि संहरेत् ॥ ६४ ॥"

मन्त्र सिंहासनी दिव्यौषधी का रसकर्म में प्रयोगः—पुनः अत्यन्त दुर्लभ दूसरे प्रकार का बन्ध कह रहा हूँ। हे प्रिये ! बीजसहित किसी गुल्मलता औषधी को ग्रहण करे। इसका नाम "मन्त्र सिंहासनी" है और यह दूसरी खेचरी है। इसका तैल पाताल यन्त्र में रखकर पुट द्वारा ताम्र के पात्र में रख ले। इस तैल के मध्य में "खेचरी रस" छोड़ दे। हे वरानने ! इस खेचरी युक्त तैल पात्र को मेदिनी यन्त्र के मध्य में रखे। हे देवि ! पूर्व औषधि के साथ अभ्रक को मेदिनी के तलभाग में रसग्रास देकर उसके बाद मर्दन कर गोलक बना ले। पोटली में बांधकर उस गोलक के साथ अभ्रक का जारण करे। सम-अभ्रक जीर्ण हो जाने पर पारद बद्ध होकर स्थिर हो जाता है। भस्त्रा (भाथी) के हवा के साथ धमन करने पर वह गोलक भस्म हो जाता है। काकविष्टा

सदृश रूप धारण कर लेता है यह समजीर्ण अभ्रक रस का लक्षण है। द्विगुण अभ्रक जीर्ण पारद होने पर आठों लौहों को भस्म कर देता है॥ ५८-६४॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रसबन्धं सुदुर्लभम्॥ ६५॥
शिवदेहात् समुत्पन्ना ओषधी सुरसिंहनी।
जारयेद्गन्धकं सा तु जारयेत् सापि तालकम्॥ ६६॥
काञ्चनं जारयेत् सापि रसेन्द्रं सा च 'बद्धयेत्।
प्रवालं जारयेत् सा तु गगन द्रावयेत् तथा।
वज्रञ्च घातयेत् सा तु सर्व्वसत्त्वं च पातयेत्॥ ६७॥
(जारयेत् सर्व्वलोहानि सत्त्वान्यपि च पाचयेत्।)

तुरसिंहनी महौषधी का रस कर्म में प्रयोगः—पुनः अन्य प्रकार का अत्यन्त दुर्लभ रसबन्ध को कहता हूँ। तुरसिंहनी नामक औषधी शंकर के देह से उत्पन्न हुई है। यह गन्धक का जारण करती है और हरि ताल का भी जारण करती है। वह स्वर्ण का जारण करती है तथा रस का बन्धन करती है। वह प्रवाल का जारण करती है तथा अभ्रक का द्रावण करती है। वह हीरा का मारण करती है तथा सभी सत्वों का पातन करती है। (यह सभी लौहों का जारण करती है तथा सत्वों का भी पाचन करती है)॥ ६५-६७½॥

"हरींदरीरसे न्यस्य गोशृङ्गे तु वरानने।
धान्यराशौ निधातव्यं मृतं तिष्ठति सूतकम्॥ ६८॥
दिव्यौषध्या रसेनैव रसेन्द्रः सुरवन्दिते!।
समे तु कनके जीर्णे दशकोटीस्तु वेधयेत्॥ ६९॥
पञ्चमे लक्षकोटिस्तु षड्गुणे स्पर्शवेधकः।
सप्तमे धूमवेधी स्यात् अष्टमे त्ववलोकतः।
नवमे शब्दवेधी स्यादत ऊर्द्ध्वं न विद्यते॥ ७०॥

हरींदरी (हयमार) महौषधी का रसकर्म में प्रयोगः—हे वरानने। गाय के शृंग में हरींदरी का रस रखकर उसमें पारद रखकर धान्य की राशि में रखे इससे पारद मृत (बद्ध) होकर स्थिर हो जाता है। हे सुवन्दिते! दिव्यौषधी के रस से ही पारद समभाग स्वर्ण में जीर्ण होने पर दश करोड़ को वेधता है। पञ्चगुण कनकजीर्ण पारद लक्षकोटि वेधी तथा षड्गुण कनकजीर्ण पारद स्पर्श वेधक होता है। सप्तगुणकनक जीर्णपारद धूम वेधी होता है तथा अष्टगुणकनक

बद्धं कुर्याद् बद्धयेत्-तत्करोतीति णिच्।

जीर्ण पारद अवलोकन मात्र से ही बेधक होता है। नवगुणकनक जीर्ण पारद शब्द[1] वेधी होता है। इसके बाद कुछ नहीं होता है ॥ ६८-७० ॥

भ्रमन्ति पशवो मूढाः कुलौषधिविवर्जिताः।
तृणौषधिरसानाञ्च नैव सिद्धिः प्रजायते ॥ ७१ ॥
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन ज्ञातव्या तु कुलौषधी ॥ ७२ ॥

कुल-औषधि (रस परम्परा में प्रयुक्त होने वाली औषधि) को न जानने वाले मूढ़ पशु की तरह परिभ्रमण करते हैं। तृणौषधि रस से रस कर्म में सिद्धि नहीं होती है। अतः प्रत्येक सुलभ प्रयत्न से कुलौषधियों का ज्ञान करना चाहिए ॥ ७१-७२ ॥

दिव्यौषधी चतुःषष्टिः कुलमध्ये व्यवस्थिता।
नैव जानन्ति मूढास्ते देवमोहेन मोहिताः ॥ ७३ ॥

दिव्य तथा अदिव्य औषधियों का गुण वर्णनः—चौसठ दिव्यौषधियां कुल के मध्य (रसौषधि परम्परा) में स्थित हैं। मूर्ख जन दैव मोह से मोहित होकर नहीं जानते हैं ॥ ७३ ॥

अदिव्यास्तु तृणौषध्यो जायन्ते गिरिगह्वरे ॥ ७४ ॥
तृणौषध्या रसे सूतं नैव बद्धं कदाचन।
अक्षयं च वरारोहे वह्निमध्ये न तिष्ठति ॥ ७५ ॥
न खोटो न च वा भस्म नैव द्रव्यं करोति सः।
किं तत् द्रव्यं प्रकुर्व्वीत धाम्यमानो न तिष्ठति ॥ ७६ ॥
पत्रे पाके कटे छेदे नैव तिष्ठति काञ्चने।
न वेधं च शतादूर्द्ध्वं करोति स रसः प्रिये ! ॥ ७७ ॥
यावन्न बद्धमेकन्तु विक्रीतं तत्तु काञ्चनम्।
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थं नैव दद्यात्तु तत् प्रिये ! ॥ ७८ ॥

अदिव्य तृणौषधियां पर्वत की गुफाओं में उत्पन्न होती हैं। तृणौषधी के रस में कभी भी पारद बद्ध नहीं होता है। हे वरारोहे ! पारद क्षय रहित अग्नि के मध्य में स्थिर नहीं रहता है। तृणौषधि संयुक्त पारद खोट, भस्म तथा द्रव निर्माण नहीं करता है। वह द्रव्य क्या कर सकता है जो धमन करने पर स्थिर नहीं रहता है। हे प्रिये काञ्चन के पत्र, पाक, करने तथा छेदने में नहीं ठहरता है और वह सौ से अधिक वेध भी नहीं करता है। हे प्रिये ! जब तक पारद

---

१. मुख-स्थित-रसेनाल्पलोहस्य धमनात्खलु।
स्वर्णरूप्यत्व-जननं शब्द-बेधः प्रकीर्तितः ॥ (र० चू० ४।१०९)

बद्ध तथा एक होकर काञ्चन को अपने में नहीं मिला लेता है तबतक वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नहीं देता है ॥ ७४-७८ ॥

श्रीदेव्युवाच ।

निर्जीवत्वं गतः सूतः कथं जीवं ददाति च ।
निर्जीवेन तु निर्जीवः कथं जीवति शङ्कर ! ॥ ७९ ॥

मृत पारद के सजीव करने के सम्बन्ध में प्रश्न:—पार्वती ने पूछा हे शंकर जी ! मारण संस्कार द्वारा मृतपारद कैसे जीवन प्रदान करता है । निर्जीव पदार्थ से निर्जीव पदार्थ कैसे जीवित होता है ॥ ७९ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

दिव्यौषध्या यदा देवि ! रसेन्द्रो मूर्च्छितो भवेत् ।
कालिकारहित सूतस्तदा भवति पार्वति ॥ ८० ॥

दिव्योषधो से पारद का मूर्च्छन आदि संस्कार का निरूपण:—पारद के मूर्च्छनादि संस्कार के सम्बन्ध में पार्वती का प्रश्न सुनकर भैरवजी बोले—हे देवेशि ! जब दिव्यौषधियों से पारद मूर्च्छित होता है तब हे पार्वति ! पारद कालिका (कृष्णवर्ण) से रहित होता है ॥ ८० ॥

परस्य हरते कालं कालिकारहितो रसः ।
[1]अष्टानां चैव लोहानां मलं शमयति क्षणात् ॥ ८१ ॥
महामूर्च्छागतं सूतं को वापि कथयेन्मृतम् ।
दिव्यौषध्या रसेनैव जायते [2]नष्टचेतनः ॥ ८२ ॥
पञ्चभूतात्मकः सूतस्तिष्ठत्येव सदाशिवः ॥ ८३ ॥"

कालिका (कालिमा या चाञ्चल्य, गिरि, वह्नि आदि दोष) से रहित पारद दूसरे के काल को दूर करता है और आठों लौहों के मल को क्षण मात्र में शान्त करता है । महान् मूर्च्छा को प्राप्त किये पारद को कौन मृत कहता है । दिव्यौषधी के रस से ही नष्ट चेतन (अदृष्ट चेतन) होता है । पञ्चभूतात्मक पारद सदा शिव स्वरूप होकर ही रहता है ॥ ८१-८३ ॥

---

१. पूर्वं लोहाः षट् परिगणिताः, अष्टत्वमत्र प्रतिपाद्यते-इति-अष्टौलोहाः-इत्येव तन्त्र-सिद्धान्तः ।

२. नष्ट-चेतनः = अदृष्टचेतनः, न तु निर्गतचेतनः अतः एव मृतत्वम् = नाम महामूर्छितत्वम्-अतो निर्जीवत्वं गतः 'कथञ्जीवं ददाती' त्यस्योत्तरं जातम् । अतोऽस्मिन् तन्त्रे यत्र २ रसस्य मृतत्वं निर्जीवत्वं वा प्रतिपद्यते तत्र २ महामूर्छित्वत्वं बोध्यम्-अत एव-'तिष्ठत्येव सदा शिवः' इत्युक्तम् ।

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रसबन्धनमीश्वरि ! ॥ ८४ ॥

क्षमापाल नामक महौषधी का रसकर्म में प्रयोगः—हे ईश्वरि ! पुनः दूसरे रसबन्धन को कहता हूँ ॥ ८४ ॥

क्षमापालेन हृतं वज्रमनेनैव तु काञ्चनम।
वज्रभस्म हेमभस्म तद्वै एकत्र बन्धयेत् ॥ ८५ ॥
निशाचररसे जार्य्यं नरजीवेन जारयेत्।
तं सूतं मारयेद्भद्रे गजारिदिव्यकौषधी ॥ ८६ ॥
भक्षितः स रसो येन सोऽपि साक्षात् सदाशिवः।
भक्षिते तोलकैकेन स्पर्शवेधी भवेन्नरः ॥ ८७ ॥
प्रस्वेदात्तस्य गात्रस्य रसराजश्च वेध्यते।
प्रस्वेदादपि मूत्रेण अष्टौ लोहानि काञ्चनम् ॥ ८८ ॥
लक्षवर्षसहस्राणि स जीवेत् साधकोत्तमः।
प्रजापतिः कृष्णतेजाः क्षणाद्बध्नाति सूतकम् ॥ ८९ ॥

क्षमापालः—क्षमापाल नामक महौषधी से मृत वज्र तथा काञ्चन वज्र भस्म तथा स्वर्ण भस्म को एकत्र बन्धन करे। निशाचर नामक दिव्यौषधी के रस में पारद का जारण करे, पुनः नरजीव के रस के साथ जारण करे। हे भद्रे ! इस पारद को गजारि (गंजमादन-शल्लकी वृक्ष) दिव्यौषधी मारण करती है। इस रस को जो भक्षण करता है वह भी सदा शिव स्वरूप होता है। एक तोला भक्षण करने पर मनुष्य स्पर्श वेधी होता है। उस पुरुष के शरीर के स्वेद से रसराज पारद का बेध हो जाता है और उसके स्वेद से ही तथा मूत्र से आठों लोह काञ्चन हो जाता है। वह उत्तम साधक लाख हजार वर्ष जीवित रहता है। वह प्रजापति कृष्ण के सदृश तेजवाला क्षणमात्र में पारद को बद्ध कर देता है ॥ ८५-८९ ॥

गजारिस्पर्शनाद्देवि क्षमापालेन च बध्यते ॥ ९० ॥
वज्रवल्लीरसेनैव भावितं गगनं प्रिये !।
जारयेद्वालुकायन्त्रे खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ ९१ ॥

विभिन्न दिव्यौषधियों का रसकर्म में प्रयोगः—हे देवि ! गजारि (गजमादन शल्लकी वृक्ष) के स्पर्श मात्र से क्षमापाल नामक दिव्यौषधी से पारद बद्ध हो जाता है। हे प्रिये ! वज्रवल्ली (हड़जोड़) के रस के साथ अभ्रक को भावित करे और उसको बालुका यन्त्र में जारण करे। इससे वह उसी समय खोट हो जाता है। ९०-९१ ॥

मृतगीलकमाषैकं माषैकं हेमगोलकम्।

एकीकृत्य तु सम्मर्द्य लुङ्गाम्लेन दिनत्रयम् ।
कर्षैकं नागपत्राणि रसकल्केन लेपयेत् ॥ ९२ ॥
वेष्टयेद्वृश्चिकाल्या च तत्पिण्डं लेपयेत् ततः ।
मारयेत् पन्नगं देवि ! शक्रगोपनिभं भवेत् ॥ ९३ ॥

मृत गोलक एक कर्ष (एक मासा) हेम गोलक एक मासा इन दोनों को एक में मिलाकर बिजौरा निम्बु के रस से तीन दिन तक मर्दन करे। इसके बाद एक तोला नाग पत्र को रस कल्क से लेप करे और वृश्चिकाली (बहंटा) के पत्तों से वेष्ठित कर उस पिण्ड को लिप्त कर दे। हे देवि, इसके बाद पन्नग (नाग) का मारण करे, वह वीर वहूटी के वर्ण का हो जाता है ॥ ९२-९३ ॥

कर्षैकं तारपत्राणि मृतनागेन लेपयेत् ।
वृश्चिकाल्या च तत्पत्रं लेपितं वेष्टयेत्ततः ॥ ९४ ॥
तत्तारं म्रियते देवि ! सिन्दूरारुणसन्निभम् ।
सहस्रांशेन तेनैव शुल्बवेधं प्रदापयेत् ॥ ९५ ॥
जायते कनकं दिव्यं देवाभरणभूषणम् ॥ ९६ ॥

तार (रजत) का पत्र एक कर्ष (एक तो०) मृत नाग से लिप्त कर दे। उस लिप्त रजत पत्र को वृश्चिकाली के पत्तों से वेष्ठित कर दे। इसके बाद वह रजत पत्र मारण करने से सिन्दूर के सदृश वर्ण वाला हो जाता है। हे देवि ! वह सिन्दूर संक्षिप्त रजत के हजारहवां भाग से शुल्व (ताम्र) को वेध करे। वह देवताओं के आभरण दिव्य कञ्चन हो जाता है ॥ ९४–९६ ॥

क्षीरयुक्ता बहुफला ग्रन्थियुक्ता च पार्व्वति ! ।
नाम्ना चटुलपर्णीति शस्यते रसबन्धने ॥ ९७ ॥

चटुल पर्णी:—हे पार्वति ! क्षीर युक्त, बहुत फल वाली, ग्रन्थि युक्त चटुल-पर्णी (वर्तुलपर्णी) नामक दिव्यौषधी रसवन्धन में प्रशस्त है ॥ ९७ ॥

एकवीराकन्दरसे मूकमूषागतं रसम् ।
धमेन्मुखानिलैर्बद्धो भक्षणाय प्रशस्यते ॥ ९८ ॥

एक वीरा :—एक वीरा (वन्ध्याकर्कोटकी-बांझ खेकसा) कन्द के रस में मूक मूषा मे पारद को रख कर मुख को हवा से धमन करे। यह बद्ध पारद-भक्षण के लिये प्रशस्त हो जाता है ॥ ९८ ॥

रक्तकञ्चुकिकन्दं तु स्त्रीस्तन्येन तु पेषितम् ।
मूषायां पूर्वयोगेन कुरुते रसबन्धनम् ॥ ९९ ॥

रक्त कञ्चुकी :—रक्त कञ्चुकी (कञ्चुकी शाक) के कन्द को स्त्री के

दूध के साथ पीस कर उसके साथ पूर्व योग को मिलाकर मूषा में रख कर धमन करने से रसबन्धन करता है ॥ ९९ ॥

वृश्चिकापत्रिका बीजं नारीक्षीरसमन्वितम् ।
धमयेत् पूर्ववत् सूतं भक्षणार्थाय वार्त्तिकः ॥ १०० ॥

वृश्चिका पत्रिका :—रस साधक वृश्चिका पत्रिका (वृश्चिकाली) के बीज को स्त्री के दूध के साथ पूर्ववत् पारद को मूषा यन्त्र में धमन करे। यह भक्षण के लिये प्रयोग करने योग्य है ॥ १०० ॥

वज्रकन्दं समादाय रसमध्ये विनिक्षिपेत् ।
गजेन्द्राख्यं पुटं दत्त्वा सप्तधा बद्धतां नयेत् ॥ १०१ ॥
भक्षयेत् तं रसं प्राज्ञः षण्मासादमरो भवेत् ॥ १०२ ॥
लाङ्गलीकन्दमादाय कर्कोटीकन्दमेव च ।
रसं तन्मध्यगं कृत्वा स्वेदयेन्मर्दयेत् पुनः ॥ १०३ ॥
म्रियते नात्र सन्देहो ध्मातस्तीव्रानलेन तु ।

वज्र कन्द :—वज्र कन्द (वन सूरण) को लेकर पारद में छोड़ दे। सात बार गजेन्द्र नामक पुट देकर बद्ध करे। प्राज्ञ व्यक्ति इस रस को भक्षण करे। वह छः मास में अमर हो जाता है ॥ १०१-१०२ ॥

लांगली कन्द :—लाङ्गली कन्द (कलिहारी कन्द) तथा कर्कोटी (खेकसा) कन्द लेकर उसके मध्य में पारद रख कर बार-बार स्वेदन तथा मर्दन करे। तीव्राग्नि में धमन करने से वह मृत हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १०३½ ॥

शुकचञ्चुगतं सूतं पुटयेद्धामयेत्ततः ॥ १०४ ॥
शतांशं वेधकर्त्तायं देहसिद्धिकरो भवेत् ॥ १०५ ॥

शुक चञ्चु :—शुक चञ्चु (शुकतुण्डी) में पारद को रख कर पुट दे तथा धमन करे। उसका शतांश वेध कारक होता है और देह सिद्धि कारक होता है ॥ १०४-१०५ ॥

हंसपादीरसं सूतं शूककन्दोदरे क्षिपेत् ।
गजेन्द्रपुटनं दद्यात् म्रियते नात्र संशयः ॥ १०६ ॥

हंसपादी :—हंसपादी (गोधावती) का रस तथा पारद दोनों को सूरण-कन्द में रख दे। इसके बाद गजेन्द्र पुट में रख कर पुट दे। पारद मृत हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ १०६ ॥

हंसाङ्घ्रि शुकतुण्डीं च गृहीत्वा मर्दयेद्रसम् ।
क्रौञ्चपादोदरे दत्त्वा ततो दद्यात् पुटत्रयम् ॥ १०७ ॥
म्रियते नात्र सन्देहो लक्षवेधी महारसः ॥ १०८ ॥

हंसाघ्रि :—हंसाघ्रि (लाल लज्जावती) तथा शुकतुण्डी (शुकनासा) दोनों को लेकर उसमें पारद का मर्दन करे। क्रौञ्चपाद (क्रौंच पक्षी या क्रौंचिका यन्त्र) के उदर में रखकर तीन पुट दे। इससे पारद का मारण हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है और यह महारस लक्षवेधी होता है ॥१०७-१०८॥

तृणज्योतिरिति ख्याता शृणु दिव्यौषधी प्रिये !।
निशासु प्रज्वलेन्नित्यं नाऽह्नि ज्वलति पार्व्वति !।
तस्या मूले तु निक्षिप्तं क्षीरं रक्तं भवेत् प्रिये !॥ १०९ ॥

तृण ज्योति :—हे प्रिये ! तृण ज्योति नाम से प्रसिद्ध दिव्यौषधी है उसको सुनो। हे पार्वति ! वह रात को प्रतिदिन प्रकाश करती है किन्तु दिन में प्रकाश नहीं करती है। हे प्रिये ! उसकी जड़ में दूध छोड़ने पर रक्तवर्ण की हो जाती है ॥ १०९ ॥

तन्मूलरसगन्धाभ्रैर्मातुलुङ्गाम्लपेषितैः ।
शुल्बपत्रं विलिप्तं तु भवेद्धेम पुटत्रयात् ॥ ११० ॥

उस तृणज्योति नामक औषधी की जड़, पारद, गन्धक तथा अभ्रक इन सबों को बिजौरा निम्बु के रस में पीस कर उससे ताम्र पत्र को लिप्त कर तीन पुट देने से स्वर्ण हो जाता है ॥ ११० ॥

तन्मूलचूर्णसंयुक्तो रसराजः सुरेश्वरि !।
मातुलुङ्गरसे घृष्टमभ्रकं चरति क्षणात् ॥ १११ ॥"

हे सुरेश्वरि ! तृण ज्योति महौषधी के मूल के चूर्ण से युक्त पारद बिजौरा निम्बु के रस में मर्दन किया हुआ अभ्रक को शीघ्र ही ग्रास कर लेता है ॥ १११ ॥

'अथोच्चटीं' प्रवक्ष्यामि रसबन्धकरीं प्रिये !।
एकमेव भवेन्नालं तस्य रोम तु वेष्टनम् ॥ ११२ ॥
तस्याग्रे च भवेत् पुष्पं शुकतुण्डस्य सन्निभम्।
तत्पत्राणि च देवेशि ! शुकपिच्छनिभानि च।
तत्कन्दं कुष्ठसंस्थानं क्षीरं सिन्दूरसन्निभम् ॥ ११३ ॥
जलं स्रवेन्मधूच्छिष्टं तत्समादाय पार्व्वति !।
वेधयेत् सर्व्वलोहानि काञ्चनानि भवन्ति च ॥ ११४ ॥

उच्चटी :—हे प्रिये ! रसबन्ध करने वाली दिव्यौषधी "उच्चटी" को कहता हूँ। उसको एक ही नाल होता है और उसका रोम नाल को वेष्टित किया रहता है। उसके अग्र भाग में शुक के चोंच के वर्ण के समान पुष्प होता है। हे देवेशि ! उसके पत्र शुक के पुच्छ के समान होते हैं। उसका कन्द कूठ के

समान तथा दूध सेन्दुर के समान होता है। उसका जल मोम के समान निकलता है। हे पार्वति ! उसको ग्रहण कर उससे सभी लोहों का वेध करे। इससे सभी लौह काञ्चन हो जाते हैं ॥ ११२-११४ ॥

रसतालकतुत्थानि मर्दयेदुच्चटीरसैः।
आतपे म्रियते तप्तो रसो दिव्यौषधीबलात् ॥ ११५ ॥
वेधयेत् सप्त लोहानि लक्षांशेन वरानने ॥ १६ ॥"

पारद, हरिताल तथा तूतिया को उच्चटी के रस से मर्दन करे। वह रस धूप में तपाने पर दिव्यौषधी के बल से मृत हो जाता है ॥ हे वरानने उसके लाखवां भाग से सातों लौहों का वेध करे ॥ ११५-११६ ॥

"अथ रक्तस्नुहीकल्पं वक्ष्यामि सुरसुन्दरि !।
स्नुहीक्षीरेण शुल्बस्य पत्रलेपं तु कारयेत् ॥ ११७ ॥
क्षीरेण तापयेद्भूयः सप्तवारं वरानने।
आवर्त्तितं भवेद्यावज्जाम्बूनदसमप्रभम् ॥ ११८ ॥

रक्तस्नुही :—हे सुर सुन्दरि ! इसके बाद रक्त सेंहुड़ का कल्प कहता हूँ। सेँहुड़ के दूध से ताम्र के पत्रों को लिप्त करे। हे वरानने ! पुनः उसके दूध के साथ सात बार तपाये। तब तक उसको पकाता रहे जब तक वह स्वर्ण वर्ण का न हो जाय ॥ ११७-११८ ॥

(अथातस्तिलतैलेन पाचयेच्च दिनत्रयम्।
तथा शुल्वस्य पत्राणि वेध्यं जाम्बूनदं भवेत् ॥)
रसं रक्तस्नुहीक्षीरं कुनटीं गन्धकाभ्रकम्।
दरदञ्चैव लोहानि सहस्रांशेन वेधयेत् ॥ ११९ ॥

(इसके बाद तिल तैल के साथ तीन दिन तक पाचन करे। इससे ताम्र पत्रों का वेध करे वह स्वर्ण हो जाता है ॥)

पारद, रक्त सेंहुँड़ का दूध, केवटी मोथा, गन्धक, अभ्रक तथा हिंगुल इन सबों का मर्दित एवं तापित योग हजारहवाँ भाग से सभी लोहों को बेध करता है ॥ ११९ ॥

स्नुहीक्षीरं समादाय निशार्द्धं हेम चोभयम्।
कुनटीं गन्धचूर्णञ्च सर्व्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १२० ॥
अनेनैव प्रकारेण निशार्द्धं हेम शोधयेत्।
गुटिकाकृत्य तेनैव नागं विध्यति तत्क्षणात् ॥ १२१ ॥"

रक्त सेंहुड़ का दूध, हल्दी तथा हल्दी के आधा दोनों स्वर्ण, केवटी-मोथा तथा गन्धक चूर्ण इन सबों को एकत्र मर्दन करे, और उसकी गुटिका बनाये। उससे उसी समय नाग का बेध होता है ॥ १२०-१२१ ॥

"अथातः स्थलपद्मिन्या दिव्यौषध्या विधिं शृणु ॥ १२२ ॥

पद्मिनीसदृशी पत्रैः पुष्पैरपि च तादृशी।
भङ्गे चैव भवेत् क्षीरं रक्तवर्णं सुशोभनम् ॥ १२३ ॥
आक्रम्य वामपादेन पश्येद्गगनमण्डलम्।
पश्येच्च तारकायुक्तं ग्रहनक्षत्रमण्डलम्।
लक्षयोजनतो देवि ! सा ज्ञेया स्थलपद्मिनी ॥ १२४ ॥

स्थल पद्मिनी :—अब इसके बाद दिव्यौषधी स्थल पद्मिनी की विधि सुनो। यह पत्तों तथा पुष्पों से कमलिनी के समान है। टूटने पर इसका दूध सुन्दर रक्त वर्ण का होता है। हे देवि ! बायें पैर से उसको दबा कर आकाश को देखे और ताराओं से युक्त ग्रह नक्षत्र मण्डल को देखे। यदि लाख योजन से ग्रह आदि दिखाई दे तो स्थल पद्मिनी समझे ॥ १२२-१२४ ॥

तस्याः पञ्चाङ्गमादाय हरगौरीसमन्वितम्।
मनःशिलातालयुक्तं माक्षिकेण समन्वितम् ॥ १२५ ॥
मर्द्दयेत् सप्तरात्रं तु तेन शुल्वञ्च वेधयेत्।
सहस्रांशेन देवेशि ! विद्धं भवति काञ्चनम् ॥ १२६ ॥

स्थल पद्मिनी का पञ्चाङ्ग लेकर हर गौरी (पारदगन्धक), मनशिला, हरताल तथा माक्षिक मिलाकर सात रात्रि तक मर्दन करे और उससे ताम्र का वेधन करे। हे देवि ! उसके हजारहवां भाग से काञ्चनविद्ध होता है ॥ १२५-१२६ ॥

तस्याः पञ्चाङ्गमादाय पूर्वोक्तविधिना प्रिये !।
चारयेत सूतराजन्तु मूकमूषागतं धमेत् ॥ १२७ ॥
म्रियते मूषिकामध्ये सङ्कोचेन न संशयः।
तेनैव सर्व्वलोहानि सहस्रांशेन वेधयेत् ॥ १२८ ॥"

हे प्रिये ! स्थलपद्मिनी का पञ्चाग लेकर पूर्व विधि से पारद का चारण (स्वर्ण आदि का ग्रास) करे और मूषा में रख कर धमन करे। वह संकोच के द्वारा मृत हो जाता है। उसमें संशय नहीं है। उसके हजारहवां भाग से सभी लोहों का वेध करे ॥ १२७-१२८ ॥

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कुमुदिन्या विधिं प्रिये !।
भित्त्वा काश्मीरिपाषाणे पूर्णिमायान्तु कारयेत् ॥ १२९ ॥
तस्याः पञ्चाङ्गमादाय भावयेत्तु मनः शिलाम्।
खर्परे धारयित्वा तु भावयेत्तु पुनः पुनः ॥ १३० ॥
खर्परे द्रावितं नागं तत्कल्केन युतं कुरु।
काश्मीरद्रवतुल्यं हि जायते कनकं ध्रुवम् ॥ १३१ ॥

कुमुदिनी :—हे प्रिये ! इसके बाद कुमुदिनी (कुंइयां) का विधि कहता

हूँ। यह विधि काश्मीरी पत्थर को भेदन कर पूर्णिमा के दिन करना चाहिए ॥

कुमुदिनी का पञ्चांग लेकर उससे मनःशिला को भावित करे, और खर्पर (कड़ाही) में रख कर उसको बार-बार भावित करे। खर्पर (कड़ाही) में द्रावित नाग को पूर्वोक्त कल्क के साथ मिला दे। वह निश्चित ही केशर के जल के समान वर्ण वाला कनक स्वर्ण हो जाता है ॥ १२९-१३१ ॥

"चित्रकस्य यथा ग्राह्यं कथयामि समासतः ॥ १३२ ॥
चित्रकस्त्रिविधो ज्ञेयो रक्तः कृष्णो रसायने।
शुक्लो व्याधिप्रशमने श्रेष्ठो मध्यः [1]कनीयसः ॥ १३३ ॥
कृष्णं रक्तं सितं वापि हेमन्ते नोद्धरेद्बुधः ॥ १३४ ॥

चित्रक :—चित्रक को जैसे ग्रहण करना चाहिए उसे संक्षिप्त में कहता हूँ। चित्रक तीन प्रकार का होता है। रक्त (लाल) तथा कृष्ण (काला) रसायन कार्य में तथा श्वेत रोग को प्रशमन करने में प्रयुक्त होता है। क्रमशः रक्त श्रेष्ठ कृष्ण मध्यम तथा श्वेत कनिष्ठ होता है। कृष्ण, रक्त या श्वेत चित्रक को बुद्धिमान् व्यक्ति हेमन्त में जमीन से निकाले । १३२-१३४ ॥

कृष्णचित्रकमुत्पाट्य गोभिर्नाऽऽघ्रातमीश्वरि !।
क्षीरमध्यस्थितं क्षीरं कृष्णवर्णं भवेत् क्षणात् ॥ १३५ ॥
तस्य पञ्चाङ्गचूर्णेन पारदं सह मर्दयेत्।
धमेच्च मूकमूषायां खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ १३६ ॥

हे ईश्वरि ! गौ के द्वारा बिना सूँघा हुआ काला चित्रक निकाल कर दूध में रखने पर शीघ्र ही दूध काला हो जाता है। उसके पञ्चांग चूर्ण के साथ पारद को मर्दन करे और मूक मूषा में धमन करे। इससे शीघ्र ही खोट (पिष्टि स्तम्भ-पीठी) बंधना हो जाता है ॥ १३५-१३६ ॥

रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तमाल्यानुलेपनः।
कृष्णपक्षे तु पञ्चम्यां रक्तशाल्योदनेन तु।
बलिं दत्त्वा महादेवि! रक्तचित्रकमुद्धरेत् ॥ १३७ ॥"

हे महादेवि ! रक्त वस्त्र धारण कर तथा रक्त माला एवं रक्त चन्दन लगाकर कृष्ण पक्ष की पाचवी तिथि में लाल जड़हन धान के चावल के भात की बलि देकर रक्त चित्रक को उखाड़े ॥ १३७ ॥

रक्तचित्रकचूर्णेन वङ्गस्तापैस्त्रिभिस्त्रिभिः।
सर्व्वदोषविनिर्म्मुक्तः स्तम्भमायाति तत्क्षणात् ॥ १३८ ॥

---

१. अत्र बहवः पाठाः, सर्वे भ्रामकाः, 'कनिष्ठकः'-इति समुचितः प्रतिभाति।

रक्त चित्रक चूर्ण के साथ वंग को तीन-तीन बार तपाने से सभी दोषों से रहित शीघ्र ही स्तम्भित (स्थिर) हो जाता है ॥ १३८ ॥

तन्मूलं सूतकं चाम्ले कङ्गुणीतैलसेचनात् ।
एकविंशतिवारेण शुल्वं शुद्धं भविष्यति ॥ १३९ ॥

रक्तचित्रक का मूल तथा पारद को अम्ल में तथा कङ्कुणीतेल से ताम्र को एक्कीस बार सेंचन करने से ताम्र शुद्ध हो जायेगा ॥ १३९ ॥

रक्तचित्रकभल्लात-तैललिप्तं पुटेन तु ।
चन्द्रार्कपत्रं देवेशि ! जायते हेम शोभनम् ॥ १४० ॥

हे देवेशि ! रक्त चित्रक मूल तथा भल्लातक के तैल से चन्द्रार्कपत्र (रजत तथा तांबा का मिश्रित पत्र) को लिप्त कर पुट देने से वह सुन्दर स्वर्ण हो जाता है ॥ १४० ॥

नागिनीकन्दसूतेन्द्रं रक्तचित्रकसंयुतम् ।
पत्रलेपप्रमाणेन चन्द्राकं काञ्चनं भवेत् ॥ १४१ ॥
रक्तचित्रकसंयुक्तो रसोऽपि सर्व्वदो भवेत् ॥ १४२ ॥

[1]नागिनी कन्द (नागि दन्ती-एक लता) पारद तथा रक्त चित्रक इन सबों के कल्क से चन्द्राकं (रजत तथा ताम्र) लेप करने से वह काञ्चन हो जाता है। रक्त चित्रक से संयुक्त पारद भी सब कुछ देने वाला हो जाता है ॥१४१-१४२॥

"ज्योतिष्मतीतैलविधिं" वक्ष्यामि श्रृणु पार्व्वति ! ॥१४३॥
ज्योतिष्मती नाम लता या च काञ्चनसन्निभा ।
बल्लीवितानबहुला हेमवर्णफला शुभा ॥ १४४ ॥
आषाढपूर्व्वपक्षे तु गृहीत्वा बीजमुत्तमम् ।
तिलवत् क्वाथयित्वा तु हस्तैः पादैरथापि वा ।
तस्य तैलं समादाय कुम्भे ताम्रमये क्षिपेत् ॥ १४५ ॥
तापयेद्भूगतं कुम्भं क्रमादूर्द्ध्वं तुषाग्निना ।
षण्मासे तु व्यतिक्रान्ते स घटः काञ्चनं भवेत् ॥ १४६ ॥

ज्योतिष्मती :—हे पार्वति ज्योतिष्मती तैल विधि को कहता हूँ सुनो। ज्योतिष्मती नामक लता जो स्वर्ण के वर्ण की होती है। वल्ली वितानों से अधिक शुभ हेम वर्ण के समान फल वाली है। आषाढ़ के पूर्व पक्ष में उसके बीज को लेकर तिल की तरह क्वाथ कर हाथों से तथा पादों से भी निकाल कर

१. नागिनी त्युच्यते वल्ली नाग भोग समाङ्गिका। सर्पादिक विवन्धी च सास्वच्छ रसवन्धिनी ॥ (र० का० धे०)।

ताम्र के कुम्भ में छोड़ दे और कुम्भ को जमीन के अन्दर रख कर क्रमशः मृदु, मध्य तथा तीव्र भूसी की आग में तपाये। छः माह बीत जाने पर वह घड़ा काञ्चन हो जाता है। १४३-१४६ ॥

तं तु हेममयं कृत्वा तैलकाक्षिकमिश्रितम्।
प्रतिवापे निषिञ्चेत् तत् हेम ताम्रसमं भवेत् ॥ १४७ ॥
तथाच शतवेधिस्यात्—विद्यारत्नमनुत्तमम् ॥ १४८ ॥"

पूर्वोक्त प्रकार से स्वर्ण कुम्भ बनाकर उसमें ज्योतिष्मती तैल तथा माक्षिक मिलाकर प्रतिवाप में सींचे। इससे वह स्वर्ण ताम्र के समान हो जाता है, और वह शतवेधी होता है। यह सबसे उत्तम विद्या रत्न है ॥ १४७-१४८ ॥

"दग्धारोहां प्रवक्ष्यामि रसबन्धकरीं प्रिये!।
स्पर्शवेधे तु सा ज्ञेया सर्व्वकार्य्यार्थसाधिनी ॥ १४९ ॥
शस्त्रच्छिन्ना महादेवि! दग्धा वा पावकेन तु।
प्ररोहति क्षणाद्दिव्या दग्धा च्छिन्ना महौषधी ॥ १५० ॥
रक्तं पीतं सितं कृष्णं तस्याः पुष्पं प्रजायते।
चणकस्येव पत्राणि सुप्रसूतानि लक्षयेत् ॥ १५१ ॥

दग्धारोहा :—हे प्रिये! रस बन्ध करने वाली दग्धारोहा नामक दिव्यौषधी को कहता हूँ। वह स्पर्श वेध करने वाली है। सभी कार्य के प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है। हे महादेवि वह शस्त्र से छिन्न तथा अग्नि से दग्ध भी क्षण-मात्र में उग जाती है। यह दिव्य दग्धा तथा छिन्न महौषधी है। इसका पुष्प लाल, पीला, काला तथा सफेद होता है। चना के पत्र के समान उत्पन्न हुए दिखाई देते हैं ॥ १४९-१५१ ॥

सा स्थिता गोमतीतीरे गङ्गायामर्बुदे गिरौ।
उज्जयिन्या दक्षिणतो वनान्तेषु च दृश्यते ॥ १५२ ॥

वह दग्धारोहा महौषधी गोदावरी के तीर पर गंगा के अर्बुद्र (झील) में पहाड़ में उज्जयिनी के दक्षिण में तथा बनान्त प्रदेश में दिखाई देता है ॥१५२॥

तस्याः कन्दरसं दिव्यं कृष्णराजिसमन्वितम्।
ताम्बूलेन समं समं कृत्वा गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ १५३ ॥
सर्व्वेषामेव लोहानां द्रुतानां वह्निमध्यतः।
सहस्रं वेधयित्वा तु काञ्चनं कुरुते क्षणात् ॥ १५४ ॥

दग्धारोहा के कन्द के दिव्य रस को काली राई में मिलाकर ताम्बूल के साथ रखकर बुद्धिमान् व्यक्ति गुटिका बनाये। वह अग्नि में द्रुत सभी लौहों को सहस्र वेधी बनाकर क्षणमात्र में काञ्चन बना देती है ॥ १५३-१५४ ॥

तथैव म्रियते सूतः कान्तहेमाभ्रसंयुतः।
कुरुते काञ्चनं दिव्यं देवाभरणभूषणम् ॥ १५५ ॥

उसी प्रकार रुधारोहा की गुटिका से कान्त लोह, स्वर्ण तथा अभ्रक से युक्त पारद मृत हो जाता है और वह देवताओं के उत्तम आभूषण रूप दिव्य काञ्चन बना देती है ॥ १५५ ॥

"कटुतुम्बीति विख्यातां देवि ! दिव्यौषधीं शृणु ॥ १५६ ॥
तस्या बीजानि संगृह्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १५७ ॥
एकविंशतिवारांस्तु भाव्यं धात्रीरसेन तु।
पयसा सहितेनैव विश्वभेषजसंयुतम् ॥ १५८ ॥
बीजं यन्त्रे विनिक्षिप्य तैलं संगृह्य पण्डितः।
रसं मूर्च्छापयेत्तेन चक्रमर्दन मर्दयेत् ॥ १५९ ॥
गोपित्तं शिखिपित्तञ्च काङ्क्षाकाशीससंयुतम्।
तारतुल्यानि चैतानि सर्व्वेषां सूतकः समः ॥ १६० ॥
मेषश्रृङ्गनिधातव्यं मासमेकं निरन्तरम्।
लोहदण्डेन संसिक्तं सर्व्वलोहानि वेधयेत् ॥ १६१ ॥

कटुतुम्बी :—हे देवि ! कटु तुम्बी नाम से विख्यात दिव्यौषधी को सुनो। कटुतुम्बी के बीज को ग्रहण कर सूक्ष्म चूर्ण बनाये। उस चूर्ण को इक्कीस बार आंवला के रस के साथ भावित करे। दूध के साथ सोंठ मिलाकर उस भावित बीज चूर्ण को यन्त्र में छोड़कर विद्वान् साधक तैल निकाल कर उस तैल से पारद को मूच्छित कर चक्रमर्द (चक्रवड़) के साथ मर्दन करे। गाय का पित, मोर का पित्त कांक्षी (सौराष्ट्र मृतिका) तथा कासीस से इन सबों को मिलाकर रजत के बराबर ग्रहण कर ले और सब के बराबर पारद लेकर भेड़ की श्रृंग में एक मास तक निरन्तर रक्खें। उस से लोहदण्ड (लोहयष्टि या मञ्जिष्टा) को संसिक्त कर उससे सभी लोहों का वेध करे ॥ १५६-१६१ ॥

गन्धकं लोहदण्डेन एकविंशतिभावितम्।
युक्तं लोहमनेनैव जम्बीररससंयुतम्।
सबीजं सूतकोपेतम् अन्धमूषानिवेशितम्।
भूगतं मासमेकन्तु तारं काञ्चनतां नयेत् ॥ १६२ ॥

गन्धक को लोह[1] दण्ड (लोहयष्टि या मञ्जिष्टा) से इक्कीस बार भावित करे। उस के साथ जम्बीरी निम्बु के रस तथा लोह युक्त और बीज सहित पारद

१. यहाँ मञ्जिष्टा लेना उचित है क्योंकि भावना द्रवपदार्थ से सम्पन्न होती है।

को अन्ध मूषा में रखकर एक मास तक जमीन के अन्दर रक्खे। निकाल कर रजत के साथ संसर्ग करने से रजत (चांदी) स्वर्ण हो जाता है ॥ १६२ ॥

दलस्य भागमेकं तु तारपञ्चकमेव च।
शुल्वस्य पञ्चभागञ्च वीजस्यैकञ्च योजयेत् ॥ १६३ ॥
एते द्वादश भागाः स्युः सर्व्वं तद्धारयेत् क्षितौ।
स्थानस्यास्य निषेकं तु भूदण्डेन तु कारयेत् ॥ १६४ ॥
पञ्चविंशद्दिनान्ते तु जायते कनकोत्तमम् ॥ १६५ ॥"

दल एक भाग, रजत पाँच भाग, ताम्र पाँच भाग तथा कटुतुम्बी का बीज एक भाग इन सबों को एकत्र करे। ये बारह भाग हुए। इन सबों को जमीन के अन्दर रक्खे। इस स्थान का निषेक (छिड़काव) भूदण्ड से कराये। यह पाँच दिन के अन्त में उत्तम स्वर्ण हो जाता है ॥ १६३-१६५ ॥

"क्षीरकन्दविधिं वक्ष्ये सर्व्वसिद्धिकरं परम्।
चतुर्वर्णविधं तत्र रक्तकन्दः प्रशस्यते ॥ १६६ ॥
भग्नमेतच्छ्रवेत् क्षीरं रक्तवर्णं सुशोभनम् ॥ १६७ ॥
मेघानां तु निनादेन सञ्जातैरुपशोभितैः।
पत्रैः स्नुहीसमैः स्निग्धैः सप्तभिर्हेमसुप्रभैः।
बन्धनं रसराजस्य सर्व्वसत्त्ववशङ्करम् ॥ १६८ ॥

क्षीर कन्द :—अच्छी तरह सभी सिद्धियों को देने वाला क्षीरकन्द विधि को कहता हूँ। यह चार वर्ण का होता है, किन्तु उनमें रक्तकन्द प्रशस्त होता है। यह टूटने पर श्वेत दूध, उत्तम रक्त वर्ण, मेघों के शब्द से उत्पन्न विद्युत् के समान प्रभावाले, सेंहुड़ के समान स्निग्ध तथा सात पत्रों से सुशोभित हैं। यह पारद का बन्धन करता है तथा सभी सत्वों को वश में करने वाला है ॥ १६६-१६८ ॥

तस्य क्षीरन्तु सङ्गृह्य तारं निर्वापयेद्बुधः।
धमेद्धवाग्निना चैव जायते हेम शोभनम् ॥ १६९ ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति क्षीर कन्द का रस लेकर उसमें रजत को तपाकर नियेक को (बुझाये) और धव (धाय) को लकड़ी के आग से धमन करे। इससे सुन्दर स्वर्ण तैयार हो जाता है ॥ १६९ ॥

तिन्तिणीपत्रनिर्यासैरीषत्ताम्ररजोयुतम् ।
मर्द्दयेत पारदं प्राज्ञो रसबन्धो भविष्यति ॥ १७० ॥
तोयमध्ये विनिक्षिप्य गुटिका वज्रवद्भवेत् ॥ ७१ ॥

तिन्तिणो :—बुद्धिमान् साधक इमली के पत्र के रस के घनसत्व के साथ

थोड़ा ताम्र भस्म मिलाकर पारद को मर्दन करे। यह रसबन्ध कारक होता है। जल के मध्य में छोड़ने पर यह गुटिका वज्र के समान हो जाती है। । १७०-१७१ ॥

शाकवृक्षस्य देवेशि! निष्पीड्य रसमुत्तमम्।
रक्तचन्दनसंयुक्तं सर्वलोहानि जारयेत् ॥ १७२ ॥

शाकवृक्ष :—हे देवेशि! अच्छी तरह पीस कर शाकवृक्ष का उत्तम रस निकाल ले। इसमें रक्त चन्दन को मिला दे। यह सभी लोहों को जारण करता है ॥ १७२ ॥

गन्धपाषाणगन्धेन आयसे विनियोजयेत्।
मिलन्ति सर्वलोहानि द्रवन्ति सलिलं यथा ॥ १७३ ॥

शाक वृक्ष का पूर्वोक्त रस गन्धपाषाणगन्ध (गन्धक) के साथ लौह में मिला दे। इससे सभी लौह एक में मिल जाते हैं तथा जल के सदृश द्रव हो जाते हैं ॥ १७३ ॥

गन्धकं रसकं ताप्यं पारदं रक्तचन्दनम्।
रुदन्त्या रससंयुक्तं तारमायाति काञ्चनम् ॥ १७४ ॥"

रुदन्ती :—गन्धक, खर्पर, माक्षिक, पारद तथा रक्त चन्दन ये सब रुदन्ती के रस के साथ संयुक्त होने पर रजत को स्वर्ण बना देते हैं ॥ १७४ ॥

"शाकवृक्षस्य निर्यासं पत्रे तस्य च गालयेत्।
शिग्रुमूलस्य चूर्णं तु तद्रसेन विमर्दयेत् ॥ १७५ ॥
प्रलिप्य शुल्वपत्राणि पुटे क्षिप्त्वा विपाचयेत्।
तद्द्रुतं काञ्चनं दिव्यं भवेल्लक्षणसंयुतम् ॥ १७६ ॥

शाकवृक्षनिर्यास :—शाक वृक्ष का गोंद उसी के पत्र के रस में मिला ले और उससे सहिजन की जड़ का चूर्ण मर्दन करे। इस कल्क से ताम्र पत्र को लिप्त कर पुट के द्वारा पकाये। यह (द्रुत पिघला हुआ द्रव्य) दिव्य लक्षणों से युक्त स्वर्ण हो जाता है ॥ १७५-१७६ ॥

फलानि शाकवृक्षस्य परिपकानि' सङ्गृहेत'।
तद्रसेन युतं प्राज्ञः सप्तरात्रन्तु भावयेत् ॥ १७७ ॥
तद्रसेन समायुक्तं मञ्जिष्ठामिश्रितं तथा।
लेपयेत्तारपत्राणि ध्मातं भवति काञ्चनम् ॥ १७८ ॥"

शाक वृक्ष के परिपक्व फलों को ग्रहण कर ले और उन फलों को विद्वान् साधक शाकवृक्ष के रस से सात दिन तक भावित करे। इसके बाद उस रस के

मजीठ को मिला दे और इस कल्क से चाँदी के पत्रों को लिप्त करे। यह धमन करने पर स्वर्ण हो जाता है ॥ १७७-१७८ ॥

"देवदाल्या महौषध्या विधिं वक्ष्यामि तत्परम्।
सा श्वेता व्याधिनाशे च कृष्णा पीता रसायने ॥ १७९ ॥
पौर्णमास्यां त्रयोदश्यां राहुग्रस्ते दिवाकरे।
अथवा कृष्णपञ्चम्यामिमां विधिवदुद्धरेत् ॥ १८० ॥
देवदालीफलं देवि! विष्णुक्रान्ता च सूतकम्।
मूर्च्छयेद्बन्धयेत् क्षिप्रं शुल्वं हेम करोति च ॥ १८१ ॥

देवदाली :—देवदाली महौषधी के विधि को कहते हैं। शुक्ल वर्ण वाली देवदाली रोग नाशक तथा कृष्ण एवं पीत देवदाली रसायन कार्य में प्रयुक्त होती है। इस देवदाली को पूर्णमासी, त्रयोदशी या सूर्य ग्रहण के दिन अथवा कृष्ण पञ्चमी के दिन विधिपूर्वक जमीन से निकाले। हे देवि! देवदाली का फल, विष्णुकान्ता तथा पारद को एकत्र कर मूर्च्छन तथा बन्धन करे। यह शीघ्र ही ताम्र को स्वर्ण बनाता है ॥ १७९-१८१ ॥

देवदालीफलं मूल-मीश्वरीरस एव च।
तोयेन मर्दितं कृत्वा वङ्गं स्तम्भयति क्षणात् ॥ १८२ ॥"

देवदाली का फल तथा मूल और ईश्वरी (वन्ध्या कर्कोटकी = बांझ खेकसा) का रस इन सबों को रस तोय (तोयवल्ली = रुदन्ती) के साथ मर्दन करने से वंग को क्षणमात्र में स्तम्भित करता है ॥ १८२ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि श्वेतगुञ्जाविधिं प्रिये! ॥ १८३ ॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा सुरार्चिते।
कपाले मृत्तिकां न्यस्य सेचयेत् सलिलेन तु ॥ १८४ ॥
वीजानि सितगुञ्जायाः पुष्पयोगेन वापयेत्।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कुर्य्यात् सङ्ग्रहणं तथा ॥ १८५ ॥

श्वेतगुञ्जा :—हे प्रिये! इसके बाद श्वेतगुञ्जा की विधि कहता हूँ। हे देवताओं से पूजित पार्वति! चतुर्दशी या अष्टमी तिथि को कपाल (शराब) में मिट्टी रख कर जल से सींचे और श्वेतगुञ्जा के बीज को पुष्प के साथ (या पुष्य में नक्षत्र में सूर्य के होने पर) वपन कर दे (अर्थात् बो दे)। इसके बाद वक्ष्यमण मन्त्र से बीजों को ग्रहण करे ॥ १८३-१८५ ॥

ॐ नमो भगवति श्वेतवल्लि श्वेतपर्व्वतवासिनि।
सर्व्वकार्याणि कुरु कुरु अप्रतिहते नमो नमः स्वाहा ॥
अनेन मनुना प्रोक्ता सिद्धिर्भवति नान्यथा।

षण्मासेन तथा वल्लीं मन्त्रपूतेन रक्षयेत् ॥ १८६ ॥
शुद्धशुल्वं तु सङ्गृह्य मूषामध्ये तु संस्थितम् ।
त्रिपञ्चपलसङ्ख्यं तु कर्षार्द्धसितगुंजया ॥ १८७ ॥
सहैकत्र भवेत्तारं तस्य गन्धविर्ज्जितम् ।
ब्रह्मरीतिसमायुक्तं गुञ्जाचूर्णं सहैकतः ।
देवानां भूषणं देवि ! जायते हेम शोभनम् ॥ १८८ ॥
॥ इत्यौषधिक्रिया ॥

ॐ नमो भगवति श्वेत वल्लि······अप्रतिहते नमो नमः स्वाहा ॥

उक्त मन्त्र द्वारा वीज ग्रहण करने पर मनु के द्वारा कथित सिद्धि प्राप्त होती है। अन्यथा सिद्धि नहीं प्राप्त होती है ॥ इस प्रकार छः मास तक श्वेत गुञ्जा वल्ली की मन्त्र पूत से रक्षा करे। शुद्ध ताम्र पन्द्रह पल (लगभग ९०० ग्रा०) श्वेत गुञ्जा आध कर्ष (६ ग्रा.) के साथ लेकर मूषा यन्त्र में स्थापित करे। उसके साथ गन्धक रहित रजत एकत्र करे और एक तरफ ब्रह्मरीति (उत्तम पित्तल) तथा गुञ्जा चूर्ण एकत्र करे। इन सबों को मूषा यन्त्र में रख कर धमन करे। हे देवि इससे देवताओं का भूषण सुन्दर सुवर्ण हो जाता है ॥१८६-१८८॥

—: इत्यौषधि क्रिया :—

"चन्द्रोदकेन देवेशि ! वक्ष्यामि रसबन्धनम् ॥ १८९ ॥
शुक्लपक्षे पूर्णमास्यां दृष्ट्वा पूर्णेन्दुमण्डलम् ।
निर्गच्छन्ति महीं भित्त्वा चन्द्रतोयान्यनेकधा ॥ १९० ॥
कानिचिन्मृत्तिवर्णाहि रसेन लवणानि तु ।
कानिचिच्चन्द्रतुल्यानि व्योमभासानि कानिचित् ।
चन्द्रवृद्धयाभिवर्द्धेरन् क्षीयेरन् तत्क्षयेण तु ॥ १९१ ॥
दृष्ट्वा चन्द्रोदकं [1]मन्त्री पौर्णमास्यां विशेषतः ।
निर्गच्छति महीं भित्वा चन्द्रवृद्ध्या विवर्द्धते ॥ १९२ ॥

रसबन्धन कर्म में दिग्बन्धन मन्त्रों का प्रयोग :—हे देवि ! चन्द्रोदक (चन्द्र जल) से रसबन्धन कह रहा हूँ। शुक्ल पक्ष की पूर्णमासी में पूर्ण मण्डल चन्द्रमा को देख कर चन्द्रतोय (चन्द्रजल) जमीन को भेदन कर अनेक प्रकार से निकलते हैं। कुछ मृत्तिका के वर्ण के समान लवण रस से युक्त, कुछ चन्द्रमा के वर्ण के समान आकाश की तरह भासमान् होते हैं। ये चन्द्रोदक चन्द्रमा की वृद्धि के अनुसार बढ़ते हैं तथा उनके क्षय के अनुसार क्षय होते हैं। विशेषकर मन्त्री[1] (मन्त्र जप करने से) पौर्णमासी के दिन चन्द्रमा को देख कर चन्द्रोदक पृथ्वी को भेदन कर निकलता है तथा चन्द्रवृद्धि के अनुसार बढ़ता है ॥ १८९-१९२ ॥

१. मन्त्री-मन्त्र जप कर्तासन् ।

क्षत्रबन्धं पुरा कृत्वा देवमभ्यर्च्य शङ्करम् !
चतुर्दश्यां च तत्क्षेत्रं पूजयित्वा विचक्षणः।
अहोरात्रोषितो भूत्वा बलिं तत्र निवेदयेत् ॥ १९३ ॥

बुद्धिमान् साधक पहले क्षेत्र बन्धन कर, शंकर देव की पूजाकर शुक्ल चतुर्दशी के दिन क्षेत्र की पूजा कर एक दिन-रात वहाँ रहे और वहाँ बलि निवेदन करे ॥ १९३ ॥

पूर्णमास्यां च रात्रौ च गत्वा तस्य समीपतः।
चन्द्रोदकं तु सङ्गृह्य मन्त्रयुक्तं सुमन्त्रितम्।
आलोड्य मधुसर्पिर्भ्यां पिबेत्तत् समाहितः ॥ १९४ ॥
पीतमात्रेण तेनैव मूर्च्छा भवति तत्क्षणात्।
चन्द्रोदये ततो दृष्टे क्षीरं तस्य तु दापयेत्।
सप्तरात्रप्रयोगेण चन्द्रवन्निर्मलो भवेत् ॥ १९५ ॥
एकविंशतिरात्रेण जीवेद्ब्रह्मदिनत्रयम्।
एकमासप्रयोगेण ब्रह्मायुः स भवेन्नरः ॥ १९६ ॥

पूर्णमासी के रात्रि में उसके समीप जाकर मन्त्र जप करता हुआ मन्त्र से अभिमन्त्रित कर चन्द्रोदक ग्रहण करे और उसको मधु तथा घी में मिलाकर स्वस्थ चित्त होकर पान करे। उसके पान करने मात्र से ही उसी समय मूर्च्छा होती है। इसके बाद चन्द्रोदय दिखाई देने पर उस मूर्च्छित साधक को क्षीर पान कराये सात रात्रि तक ऐसा करने से चन्द्रमा के समान निर्मल हो जाता है। इक्कीस रात्रि तक प्रयोग करने से ब्रह्मा के तीन दिन तक जीवित रहता है। एक माह तक प्रयोग करने से ब्रह्मा की आयु प्राप्त करता है ॥ १९४–१९६ ॥

चन्द्रोदकेन गगनं रसं हेम च मर्दयेत्।
मूषामध्यगतं ध्मातं तत्क्षणाद्गुटिका भवेत् ॥ १९७ ॥
अयं च स्पर्शमात्रेण लोहान्यष्टौच वेधयेत् ॥ १९८ ॥
तद्रसेन रसं भाव्यं वज्रेण समजारितम्।
चतुःषष्ठ्यंशतः पिण्डे द्विगुणे तु सहस्रकम् ॥ १९९ ॥
दशसङ्कलिकाबद्धं गुञ्जामात्रं रसं नरः।
त्रिलोहवेष्टितं वक्रे धृत्वा चादृश्यतां व्रजेत् ॥ २०० ॥

चन्द्रोदक के साथ अभ्रक, पारद तथा स्वर्ण को मर्दन करे। उन सबों को मूषा में रखकर धमन करने से उसी समय गुटिका हो जाती है। यह गुटिका

१. मन्त्री = मन्त्र-जपकर्त्ता सन्।

स्पर्श मात्र से ही आठों लोहों को बेध देती है। उसके रस के साथ पारद को भावित करे, और वज्र (हीरा) के साथ जारण करे। चौसठवां अंश से पिण्ड में द्विगुण होने पर एक हजार बद्ध होता है। दश हजार बद्ध होने पर मनुष्य गुञ्जा मात्र (एक रत्ती) त्रिलोह वेष्टित (अभ्रक, पारद तथा स्वर्ण से वेष्ठित) पारद मुख में रखकर अदृश्य (अन्तर्ध्यान) हो जाता है ॥ १९७–२०० ॥

ॐ नमो रुद्राय दंष्ट्रोत्कटाय विघ्ननाशाय दिशां रक्ष रक्ष विदिशां रक्ष रक्ष रुद्रो विज्ञापयति हुं फट् स्वाहा ॥

॥ इति दिग्बन्धनमन्त्रः ॥

ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिशूलहस्ताय अमृतोद्भवाय रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा ॥

॥ इति पानमन्त्रः ॥

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कर्त्तरीरसबन्धनम् ॥ २०१ ॥

दिग्बन्धमन्त्र—ॐ नमो रुद्राय दष्ट्रोत्कटाय··· हूँ फट स्वाहा।

चन्द्रोदक पान मन्त्र—ॐ नमो भगवते रक्ष रक्ष फट् स्वाहा। इस मन्त्र से चन्द्रोदक पान करना चाहिये।

कर्तरी रस बन्ध का निरूपण—दिग्बन्धन निरूपण के बाद कर्तरी रस बन्धन का निरूपण करता हूँ ॥ २०१ ॥

असुराणां समायोगे क्रोधाविष्टेन चेतसा।
सुदर्शनं महाचक्रं प्रेरितं मुरवैरिणा ॥ २०२ ॥
भालपट्टात्ततस्तस्य निपेतुः स्वेदबिन्दवः।
ते भूमौ पतिता दिव्याः सञ्जाताः कर्त्तरीरसः ॥ २०३ ॥

असुरों के साथ समायोग (युद्ध) में क्रोधाविष्ट चित्त से विष्णु ने सुदर्शन महाचक्र छोड़ा। उस श्रम से उनके ललाट पटल से स्वेद बिन्दु निकले। वे सब पृथ्वी पर गिरने से दिव्य "कर्तरी रस" हो गये ॥ २०२–२०३ ॥

रक्षार्थं स्थापितं तत्र विष्णुना च सुदर्शनम्।
चक्रतुल्यं भ्रमत्येतदायुधानि निकृन्तति ॥ २०४ ॥
कुरुते गर्जितं नादं धूमं ज्वालां विमुञ्चति।
कर्त्तरी दृष्टिमात्रेण तथान्या शब्दकर्त्तरी ॥ २०५ ॥
सा स्पर्शकर्त्तरी छाया कर्त्तरी धूमकर्त्तरी।
सा ज्वालाकर्त्तरी चैव शक्तिर्घोरस्य कर्त्तरी ॥ २०६ ॥
लोकानां तु हितार्थाय घोरशक्तिर्व्यवस्थिता।
रसरूपा महाघोरा असिद्धानां तु छेदिनी ॥ २०७ ॥

तस्याः क्षेत्रं यदा गच्छेत् अघोरास्त्रं जपेत्तदा।
पुनर्घोरं न्यसेत्तत्र अथास्त्रं विन्यसेद्बुधः॥२०८॥
अनुलोमविलोमेन देहेऽधिष्ठाप्य कर्त्तरीम्।
मुद्रया मुद्रयेत्तां तु अघोरास्त्रेण योजिताम्॥२० ॥
दीपेनाराधयेत्तां तु स्तम्भयेद्धूपनेन च।
विष्टरा-मुद्रया तां तु स्थानयोगं नियोजयेत्॥२१०॥

वहाँ पर उसकी रक्षा के लिये विष्णु ने सुदर्शन चक्र को रक्खा। चक्र के समान यह घूमता है और शस्त्रों को काट देता है। वह गर्जन के साथ शब्द करता है और धूम युक्त ज्वाला को छोड़ता है। यह उत्पन्न रस कर्तरी दृष्टि मात्र से ही कर्तरी है। दूसरी शब्द कर्तरी है। वह स्पर्श कर्तरी, छाया कर्तरी तथा धूम कर्तरी है। वह कर्तरी ज्वाला कर्तरी है तथा घोर की कर्तरी शक्ति है। लोक के हित के घोर शक्ति व्यवस्थित है। यह शक्ति रसरूप महाघोर (भयंकर) है और असिद्धों को छेदन करने वाली हैं। जब उसके क्षेत्र में जाय तो [1]अघोरास्त्र मन्त्र का जप करे। पुनः वहाँ पर घोर का न्यास करे। इसके बाद बुद्धिमान् व्यक्ति अस्त्र का विन्यास करे। अनुलोम तथा विलोम प्रकार से शरीर में कर्तरी को स्थापित कर उस कर्तरी को कर्तरी अघोरास्त्र से युक्त मुद्रा से मुद्रण करे। दीप से उसकी आराधना करे और धूप से स्तम्भन करे। उस कर्तरी का विष्टरा मुद्रा से उचित स्थान पर नियोजन करे॥ २०४–२१०॥

कञ्चुकी तु शिला क्रान्ता कुमारी वज्रकन्दकम्।
योषिद्रक्तं गवां मूत्रं तिलकः सर्व्ववश्यकृत्॥२११॥"

कञ्चुकी (क्षीर कञ्चुकी) मनःशिला, कान्ता (अपराजिता) घृत कुमारी, वज्र कन्द (सूरण) स्त्री का रक्त तथा गाय का मूत्र इन सबों का तिलक लगाना सभी को वश में करने वाला है॥ २११॥

"अथातः संप्रवक्ष्यामि विषोदरसबन्धनम्॥२१२॥

विषोद के द्वारा रस बन्धन की विधिः—कर्तरी रसबन्धन विधि के बाद विषोद रसबन्धन विधि को कहते हैं॥ २१२॥

विषोदकं विषसमं घृतवच्च घृतोदकम्।
सितपीतादिवर्णाढ्यं तच्च देवि! रसोत्तमम्॥२१३॥

विषोदक विष के समान तथा घृतोदक घृत के समान होता है। हे देवि! वह शीत-पीत आदि वर्णों से युक्त उत्तमरस है॥ २१३॥

---

१. अघोर मन्त्र

तत्र गत्वा वनोद्देशे स्मरेद् घोरसहस्रकम् ।
केशाः क्षिप्ताः स्फुटन्त्यस्मिन् आत्मच्छाया न दृश्यते ॥ २१४ ॥
तैलञ्च गोलकाकारं घृतञ्चैव विसर्पति ।
गन्धकस्य हरेद्गन्धं [1]लवणाम्लञ्च जायते ॥ २१५ ॥

विषोदक प्रदेश वाले बन के एक देश में जाकर घोरसहस्रक (एक हजार अघोर मन्त्रों) को स्मरण करे । विषोदक में केश फेंकने पर फुरफुराते हैं, और अपनी छाया नहीं दिखाई देती । तेल तथा घृत गोलाकार में फैलते हैं । गन्धक का गन्ध नष्ट हो जाता है और लवण द्रव्य अम्ल (खट्टा) हो जाता है । विषोदक को प्राप्त कर कड़वी लौकी के पात्र में रक्खे ॥ २१४–२१५ ॥

आप्त्वा पालाशपत्रेण कटुकालाबुके क्षिपेत् ।
विषोदकं गन्धकं च हरवीजञ्च तत्समम् ॥ २१६ ॥
अजाक्षीरेण पिष्ट्वा तु शुल्वपत्राणि लेपयेत् ।
तत् पुटेन च देवेशि ! सिन्दूरारुणसन्निभम् ।
शतांशेनैव देवेशि ! सर्व्वलोहानि वेधयेत् ॥ २१७ ॥

विषोदक, गन्धक तथा पारद इन तीनों को समभाग ग्रहण करे । और बकरी के दूध के साथ पीसकर उसके कल्क से ताम्र पत्र के ऊपर लेप करे । हे देवेशि ! वह ताम्र पत्र पुट देने पर सिन्दूर सदृश अरुण वर्ण का हो जाता है । हे देवेशि ! इसके सौवें भाग से सभी लौहों को वेध करे ॥ २१६–२१७ ॥

अनेन विधिना देवि ! नागः सिन्दूरतां व्रजेत् ।
सहस्रांशेन तस्यैवं तारं वेधं प्रदापयेत् ॥ २१८ ॥
रक्तं पीतं तथा कृष्णमुत्तरोत्तरकार्य्यकृत् ॥ २१९ ॥

हे देवि ! पूर्वोक्त विधि से नाग सिन्दूर वर्ण का हो जाता है । उसके सौवें भाग से चाँदी का वेध करे । रक्त, पीत तथा कृष्ण वर्ण का विषोदक उत्तरोत्तर उत्तम कार्य करने वाला होता है ॥ २१८–२१९ ॥

त्रिपलं कान्तपात्रे या पात्रेऽलावुमयेऽपि वा ।
गृहीत्वा पूर्व्ववत् पत्रैः पालाशैर्वेष्टयेद्बहिः ॥ २२० ॥
स्थापयेद्धान्यराशौ तु दिवसानेकविंशतिम् ।
महिषी क्षीरमध्ये तु विन्दुमेकन्तु साधयेत् ॥ २२१ ॥
पायसं भक्षयेद्यस्तु मध्वाज्येन तु संयुतम् ।
यावच्चूर्णपलं देवि ! जीवेत्तद्विन्दुसङ्ख्यया ॥ २२२ ॥

---

१. लवण-रसस्य अम्लत्वं जायते-इत्यर्थः ।

ताम्र के पात्र में अथवा कड़वी तुम्बी के पात्र में पूर्ववत् (विषोदक गन्धक तथा पारद समभाग लेकर उससे ताम्र पत्र को लिप्त कर पुट दे उससे निर्मित अरुण वर्ण के सिन्दूर) तीन पल सिन्दूर को ग्रहण कर पलाश के पत्रों के द्वारा बाहर से वेष्टित कर दे । इसके बाद धान्य की राशि में इक्कीस दिन तक रक्खे। उसमें से एक बिन्दु भैंस के दूध में सिद्ध करे और उस पायस को मधु तथा घृत के साथ भक्षण करे । इस चूर्ण को एक पल (पचास ग्राम) तक भक्षण करे । हे देवि ! संख्या में जितने बिन्दु भक्षण करता है । उतने वर्ष तक जीवित रहता है ॥ २२०–२२२ ॥

लाङ्गली गृहधूमञ्च सिन्दूरं रजनीद्वयम् ।
मेषशृङ्गी च शृङ्गी च कृष्णोन्मत्तं च मारकम् ।
सबीजं सूतकञ्चैव विषतोयेन मर्दितम् ।
विषतोयेन मेधावी सप्तवारांश्च भावयेत् ॥ २२३ ॥
अथवा भावयेत् तत्तु यावच्चूर्णं तु तद्भवेत् ।
तेन नागं प्रतीवाप्य षोडशांशेन संभवेत् ॥ २२४ ॥
मूषाख्ये वेणुयन्त्रे च त्रिवारमपि भावयेत् ।
धूमं परिहरेत्तस्य अङ्गव्याधिकरं परम् ॥ २२५ ॥
स्थापयेन्नागसिन्दूरं पात्रेऽलावुमये ततः ।
तच्चूर्णं तु शतांशेन तारपत्राणि वेधयेत् ॥ २२६ ॥
विषपानीयमादाय यवागौ वर्त्तितं शुभम् ।
निषिक्तं तच्च वर्त्तेऽयं तारं भवति शोभनम् ॥ २२७ ॥

लाङ्गली, गृहधूम, सिन्दूर, निशाहल्दी, दारुहल्दी, मेढ़ासिंघी, काकड़ासिंघी, काला धतूर, मारक (हिंगुल) तथा बीज (हेम बीज तथा रजत बीज) सहित पारद (सम भाग) विषोदक के साथ मर्दन करे । और बुद्धिमान् साधक विषोदक के साथ सात दिन तक भावित करे । अथवा तब तक भावित करे जब तक वह चूर्ण न हो जाय । उस चूर्ण के सोलहवें भाग के साथ नागभस्म को मिला दे । इसके बाद मूषा यन्त्र में तथा वेणु यन्त्र में तीन बार भावित करे । उसके धूम को दूर कर दे। क्योंकि वह शरीर के रोग को उत्पन्न करने वाला होता है । इसके बाद नागसिन्दूर को कड़वी तुम्बी पात्र में रक्खे । उसके सौवां भाग चूर्ण से चाँदी के पत्रों को वेध करे । विषोदक को लेकर यवागु में मिला दे । उसमें वह निषिक्त करने से सुन्दर चाँदी हो जाता है ॥ २२३–२२७ ॥

विषपानीयमादाय प्रक्षिपेच्च रसोत्तमे ।
कुनटी-गन्धपाषाण-विषटङ्कण-लाङ्गली ।

नष्टपिष्टीकृतं खल्ले तारपत्राणि लेपयेत्।
अन्धमूषा गतं ध्मातं निर्वीजं कनकं भवेत् ॥ २२८ ॥

विषोदक लेकर उत्तम पारद में छोड़ दे, और उसमें केवटी मोथा, गन्धक, विष, सुहागा तथा लांगली इन सवों को खरल में डालकर [1]नष्टपिष्ट होने तक मर्दन करे और उस कल्क से रजत पत्रों को लेप करे। इसको मूषा यन्त्र में रख कर धमन करने से निर्वीज कनक हो जाता है।

॥ ॐ श्रीनीलकण्ठाय ठठः ॥ अस्यायुतं जपेत् ॥
॥ इति विषोदकग्रहणमन्त्रः ॥

ॐ श्री नीलकण्ठाय ठठः ॥ इस मन्त्र को दस हजार जप करे ॥ २२८ ॥

इति विषोदक ग्रहण मन्त्रः

"विषतृणविधिं वक्ष्ये समाहितमनाः शृणु ॥ २२९ ॥

विष तृण विधि का निरूपण:—विष तृण विधि को कहता हूँ। सावधान चित्त से सुनो ॥ २२९ ॥

गन्धमाक्षीकदरदं कुनटया रससंयुतम्।
विषतृणसमायुक्तं मातुलुङ्गाम्लमर्दितम् ॥ २३० ॥
एतत् कल्कं पलमात्रं चौषध्या लेपनं कुरु।
निर्यासे तु पुटं कुर्यात्त्रिवारं हेम शोभनम् ॥ २३१ ॥"

गन्धक, स्वर्णमाक्षिक, हिंगुल, केवटी मोथा तथा पारद इन सवों को विष तृण के साथ मिलाकर बिजौरा निम्बु के रस के साथ मर्दन कर कल्क बना ले। इस औषधी के एक पल (पचास ग्राम) कल्क से (ताम्र या रजत पत्र को) लेप करे और विष तृण के रस में तीन बार पुट दे। इससे सुन्दर स्वण हो जाता है ॥ २३०–२३१ ॥

"सञ्जीवनीजलस्याथ विधिं वक्ष्यामि पार्वति ! ॥ २३२ ॥

संजीवनी जल विधि का निरूपण:—हे पार्वति ! संजीवनी जल की विधि कहता हूँ ॥ २३२ ॥

शुक्रेणाराधितो देवि ! प्रागहं सुरवन्दिते !।
दानवानां हितार्थाय मृतानां देवसङ्गरे ॥ २३३ ॥
मया सञ्जीवनी विद्या दत्ता चोदकरूपिणी।
तया सञ्जीविता दैत्या ये मृता देवसङ्गरे ॥ २३४ ॥
निक्षिप्ता मर्त्यलोके सा सम्यक् ते कथयाम्यहम् ॥ २३५ ॥

---

१. स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टतापादनं हि यत्।
विद्वद्भिर्निर्जितः सूतो नष्टपिष्टः स उच्यते ॥ (र० चू० ४।५८)

हे देवताओं से पूजित देवि ! देवदानव-युद्ध में मरे हुए दानवों के हित के लिये पहले आराधन करने पर मैंने उदकरूपी संजीवनी विद्या को दिया। उस संजीवनी से देवासुर संग्राम में मरे हुए दैत्य जीवित होकर मर्त्य लोक में भेज दिये गये उस संजीवन जल को मैं तुम्हारे लिये कहता हूँ ॥ २३४-२३५ ॥

अस्ति मर्त्ये महापुण्या पवित्रा दक्षिणापथे।
नदी गोदावरी नाम प्रसिद्धा जाह्नवी यथा ॥ २३६ ॥
दक्षिणे च तटे तस्याः कदलीनगरं परम्।
तस्य दक्षिणतः शैलः सर्व्वलोकेषु विश्रुतः ॥ २३७ ॥
नाम्ना 'कृष्णगिरिश्चेति' दृश्यते सर्व्वमङ्गले !।
सुप्रसिद्धाम्बिका नाम ग्रामस्तस्यास्ति सन्निधौ ॥ २३८ ॥
तत्राप्युदकमालोक्य परीक्ष्येत सुरार्चिते ! ॥ २३९ ॥

मृत्यु लोक के दक्षिण भाग में अत्यन्त पुण्यशालिनी पवित्र गंगा के समान प्रसिद्ध गोदावरी नाम की नदी है। उसके पश्चिम तट पर उतम कदली नगर है। हे सर्वमंगले ! उसके दक्षिण पूरे संसार में प्रसिद्ध कृष्णगिरि नामक पर्वत दिखाई देता है। उस पर्वत के समीप बहुत प्रसिद्ध अम्बिका नामक ग्राम है। हे देववन्दित पार्वति ! वहाँ पर भी जल को देखकर परीक्षा करे ॥२३६-२३९॥

गृहीत्वा शुष्कवंशं तु क्षिपेत्तोयस्य मध्यतः।
जायते हरितं स्निग्धमहोरात्रेण निश्चितम्।
मुञ्चत्यङ्कुरपत्राणि दृश्यते तन्मनोहरम् ॥ २४० ॥

सूखा बांस लेकर जल के मध्य में छोड़े वह एक दिन रात में निश्चित ही हरा तथा चिकना हो जाता है। उसमें अंकुर पत्र निकलते हैं और वे सुन्दर दिखाई देते हैं ॥ २४० ॥

बलिपुष्पोपहारेण ततो देवीं समर्च्चयेत्।
क्षेत्राधिपं गणेशञ्च चण्डयोनीश्वरं तथा ॥ २४१ ॥
तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २४२ ॥

इसके बाद बलि-पुष्प आदि उपहार से देवी क्षेत्राधिपति गणेश तथा चण्ड योनीश्वर की पूजा करे। उसके मन्त्र को कहता हूँ जो तीनों लोक में दुर्लभ है ॥ २४१-२४२ ॥

॥ ॐ चण्डाय पिनाकिने शूलहस्ताय ॐ दिशां बन्धय विदिशां बन्धय ठठः ॥

मन्त्र :—ॐ चण्डाय पिनाशिने शूलहस्ताय ॐ दिशां बन्धय विदिशां बन्धय ठठः ॥

तिलांश्च तण्डुलांश्चैव मन्त्रेणानेन सर्षपान् ।
सप्ताभिमन्त्रितान्कृत्वा साधको दिक्षु निक्षिपेत् ॥ २४३ ॥
कटुकालाबुके तोयं कृतरक्षं समाहितः ।
गृहीत्वा तत्प्रयत्नेन निजस्थानं समाश्रयेत ॥ २४४ ॥

साधक इस मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित कर तिल, चावल तथा सरसों को दश दिशाओं में प्रक्षेपण करे। इसके बाद उस संजीवन जल को कड़वी लौकी के पात्र में सुरक्षित रखकर सावधान चित्त से लेकर प्रयत्नपूर्वक अपने स्थान पर ले जाय ॥ २४३--२४४ ॥

॥ ॐ नमोऽमृतेऽमृतरूपिणि अमृतं मे कुरु कुरु एवं रुद्र आज्ञापयति स्वाहा ॥

मन्त्र :—ॐ नमोऽमृतेऽमृतरूपिणि अमृतं मे कुरु कुरु एवं रुद्र आज्ञापयति स्वाहा ॥

सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा मन्त्रेणानेन तज्जलम् ।
दिनमेकं तथा सूतं स्वर्णमाषद्वयान्वितम् ।
मर्दयेत्तेन तोयेन पिबेत्तत्तु विचक्षणः ॥ २४५ ॥
एकविंशतिरात्रेण क्षीराहारोऽथ यत्नतः ।
जीवेत् कल्पायुतं साग्रं कामरूपो महाबलः ॥ २४६ ॥
योजनानां शतं गत्वा पुनरेव निवर्त्तते ।
अवध्यः सर्व्वभूतानां स्वेच्छाचारः स खेचरः ॥ २४७ ॥

विद्वान् साधक संजीवन जल को पूर्वोक्त मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित कर पारद तथा स्वर्ण दो मासा (लगभग २ ग्राम) एकत्र कर उस जल से एक दिन रात मर्दन करे और पान करे। इक्कीस दिन-रात प्रयत्नपूर्वक दुग्धाहार करे। वह महान् बल से युक्त कामदेव की तरह रूपवान् होकर सम्मानपूर्वक हजार कल्प तक जीवित रहता है। वह सौ योजन जाकर पुनः लौट आता है। वह सभी प्राणियों से अवध्य अपनी इच्छा से विचरण करने वाला तथा आकाश में संचरण करने वाला होता है ॥ २४५--२४७ ॥

कनकं पारदं व्योम सममेकत्र योजयेत् ।
मर्दयेत्तेन तोयेन सप्तवारं तु स्वेदयेत् ॥ २४८ ॥
स रसः सर्व्वलोहानि षष्ठ्यंशेन तु वेधयेत् ॥ २४९ ॥

स्वर्ण, पारद तथा अभ्रक समभाग एकत्र करे और संजीवन जल से मर्दन तथा सात बार स्वेदन करे। यह पारद साठवां भाग से सभी लौहों को बेध देता है ॥ २४८-२४९ ॥

अथवा तं रसं दिव्यं मधुना सह भक्षयेत् ।
मासमात्रप्रयोगेग जीवेद्ब्रह्मदिनायुतम् ॥ २५० ॥
तस्य मूत्रमलस्वेदैः शुल्वं भवति काञ्चनम् ॥ २५१ ॥

अथवा पूर्वोक्त दिव्य पारद को शहद के साथ भक्षण करे। इसको एक माह तक प्रयोग करने से ब्रह्मा के एक हजार दिन तक जीवित रहता है। उसके मल, मूत्र तथा स्वेद से ताम्र स्वर्ण हो जाता है ॥ २५०-२५१ ॥

निर्वाते तोयमादाय अञ्जलित्रितयं पिबेत् ।
पीतमात्रे भवेन्मूर्च्छा स्वास्थ्यं स्यात् प्रहरत्रयात् ॥ २५२ ॥
एकविंशद्दिनान्येवं क्षीराहारो भवेत्ततः ।
अष्टवर्षाकृतिः प्राज्ञः कामरूपो महाबलः ॥ २५३ ॥
पश्येच्छिद्रां[1] महीं सर्व्वां सप्तपातालसंयुताम् ।
अवध्यो देवदैत्यानां कल्पायुश्च प्रजायते ॥ २५४ ॥

संजीवन जल को लेकर निर्वात स्थान में तीन अञ्जलि पीवे। पीने के बाद मूर्च्छा होती है और तीन पहर के बाद स्वस्थ होता है। इस प्रकार इक्कीस दिन तक संजीवन जल पीवे और दूध का आहार करे। इससे आठ वर्ष की आकृति वाला विद्वान् अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाला तथा बहुत बड़ा बलवान होता है॥ वह सात पाताल (तल, सुतल, तलातल आदि) सहित सभी पृथ्वी को छिद्रमय देखता है। वह देव तथा दैत्यों से अवध्य होकर एक कल्प आयु को प्राप्त करता है ॥ २५१-२५४ ॥

अथवोदकमादाय पारदञ्च मनःशिलाम् ।
मर्दयेत् खल्लपाषाणे नष्टपिष्टं भवेत्ततः ॥ २५५ ॥
स्वेदयेत् सप्तरात्रं तु त्रिलोहेन च वेष्टयेत् ॥ २५६ ॥
अन्तर्द्धानं क्षणाद्गच्छेत् विद्याधरपतिर्भवेत् ।
सिद्धकन्याशतवृतो यावत् कल्पान् चतुर्द्दश ॥ २५७ ॥
दिनेषु तेषु सर्व्वेषु दद्याच्छाल्योदनं घृतम् ।
पयसा च समायुक्तं नित्यमेवं तु कारयेत् ॥ २५८ ॥

अथवा—संजीवन जल को लेकर उनसे पारद तथा मनःशिला को पत्थर के खरल में मर्दन करे। नष्ट पिष्ट होने पर सात दिन तक स्वेदन करे और तीनों लोह (स्वर्ण, रजत, ताम्र) से वेष्ठित कर दे इसको पास में रखने पर वह क्षण मात्र में अदृश्य हो जाता है तथा विद्याधरों का स्वामी होता है। वह चौदह कल्प तक सौ सिद्धकन्याओं के साथ घिरा हुआ रहता है। उन सभी

---

१. छिद्रां छिद्रवतीम्, अर्शआद्यजन्तः ।

दिनों में जड़हन का भात तथा घृत दूध के साथ निरन्तर सेवन करे ॥ २५५-२५८ ॥

"उष्णोदकविधिं वक्ष्ये समाहितमनाः शृणु !
पश्येदुष्णोदकं यत्र वासं तत्रैव कारयेत् ॥ २५९ ॥

उष्णोदक विधि का निरूपण :—अब उष्णोदक विधि को कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। हे पार्वति ! जहाँ पर उष्णोदक देखे वहीं अपना निवास स्थान बनाये ॥ २५९ ॥

अस्ति गोदावरी नाम महाराष्ट्रेऽतिविश्रुता।
तस्या उत्तरभागे तु सह्याद्रिः पुण्यपर्व्वतः ॥ २६० ॥
तत्र मातापुरं नाम प्रसिद्धं देवतागृहम्।
तस्मादुत्तरतो देवि ! कम्पाख्यं नगरं परम् ॥ २६१ ॥
तत्र कम्पेश्वरो देवस्तत्रास्त्युष्णोदकं ध्रुवम्।
प्रणीताख्या नदी तत्र स्नात्वा वै साधकोत्तमः।
पश्चादुष्णोदके कुण्डे विधिं कुर्य्याद्यथोदितः ॥ २६२ ॥
शर्व्वरीमुषितस्तत्र धनवांश्च दिने दिने।
भक्षयेन्माससमात्रं तु जीवेद्वर्षशताष्टकम् ॥ २६३ ॥
वर्षमेकं प्रयुञ्जीत जीवेद्वर्षायुतं सुखी।
बलीपलितनिर्मुक्तो भोगी चैव पुरन्दरः ॥ २६४ ॥
वर्षमेकं पिबेत्तोयं जीवे[1]चन्द्रार्कतारकम्।
तस्य मूत्रपुरीषेण शुल्वं भवति काञ्चनम् ॥ २६५ ॥

महाराष्ट्र में अत्यन्त प्रसिद्ध गोदावरी नाम की नदी है। उसके उत्तर भाग में सह्याद्रि नामक पुण्य पर्वत है। वहां पर मातापुर नामक प्रसिद्ध देवता गृह है। हे देवि ! उसके उत्तर उत्तम कम्प नामक नगर है। वहाँ पर कम्पेश्वर देवता हैं और वहाँ पर निश्चय ही उष्णोदक हैं। वहाँ प्रणीता नाम की नदी है। उसी नदी में उत्तम साधक स्नान कर बाद में उस उष्णोदक कुण्ड में जैसा कहा गया है उसके अनुसार विधि करे। धनवान साधक वहाँ पर रात भर रह कर एक माह तक भक्षण करने से आठ सौ वर्ष तक जीवित रहता है। एक वर्ष तक प्रयोग करे तो दस हजार वर्ष तक सुख पूर्वक जीवित रहे। बलि-पलित रोग से छुटकारा पाकर इन्द्र के समान भोग करे। एक वर्ष तक उस जल को पीवे तो चन्द्रमा, सूर्य

---

१. 'जीवेदाचन्द्रतारकमि'ति भावः।

एवं ताराओं को रहने तक जीवित रहता है। उसके मूत्र एवं विष्ठा से ताम्र स्वर्ण हो जाता है ॥ २६०-२६५ ॥

उष्णोदकञ्च कासीसं गन्धपाषाणसंयुतम् ।
चतुर्थांशेन रसकं दशभागं विनिक्षिपेत् ॥ १६६ ॥
शुल्वञ्च मर्द्दयेत् सर्व्वं नष्टपिष्टं क्षणेन तु ।
तेन लेपितमात्रेण शुल्वं भवति काञ्चनम् ॥ २६७ ॥

उष्णोदक, कासीस तथा गन्धक चार-चार भाग लेकर उसमें खर्पर दश-भाग मिला दे और ताम्र पत्र को मर्दन करे। वह थोड़े ही देर में नष्ट पिष्ट हो जाता है। उसके लेपमात्र से तांबा स्वर्ण हो जाता है ॥ २६६-२६७ ॥

निषिक्तं तेन तोयेन प्रतिवापं दद्द्बुधः ।
शुल्वञ्च जायते हेम तरुणादित्यवर्चसम् ॥ २६८ ॥

उष्णोदक से सींच कर बुद्धिमान् व्यक्ति प्रतिवाप दे। वह ताम्र तरुण सूर्य के प्रकाश सदृशवर्णवाला स्वर्ण हो जाता है ॥ २६८ ॥

तज्जलेन निषिक्तञ्च हेम बीजार्थसंयुतम् ।
तारं चानेन मार्गेण निषिक्तं हेमतां व्रजेत् ॥ २६९ ॥

उष्णोदक से निषिक्त बीज के लिये लिया हुआ स्वर्ण तथा रजत इसी प्रकार सेंचन करने से स्वर्ण हो जाता है ॥ २६९ ॥

उष्णोदकेन भल्लातं तिलपिष्टं च भक्षयेत् ।
मासद्वयप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ २७० ॥

उष्णोदक के साथ शु० भल्लातक तथा तिल की पीठी भक्षण करे। दो मास तक प्रयोग करने से तीन सौ वर्ष तक जीवित रहता है ॥ २७० ॥

रसगन्धाश्मरसकं तुत्थं दरदमाक्षिकम् ।
याममुष्णाम्भसा घृष्टं तारपत्राणि लेपयेत् ॥ २७१ ॥
द्विवारं तु धमेद्देवि ! स्याच्चतुर्दशवर्णकम् ।
क्रमेणानेन देवेशि ! शुल्वं षोडशवर्णकम् ॥ २७२ ॥

पारद, गन्धक, शिलाजीत, खर्पर, तूतिया, हिंगुल तथा माक्षिक इन सबों को उष्णोलक के साथ घिस कर उसी कल्क से चाँदी के पत्रों को लिप्त करे और दो बार धमन करे। हे देवि ! वह रजत चतुर्दश वर्णक चौदह करेन्ट वाला (स्वर्ण) हो जाता है। हे देवेशि ! इसी क्रम से धमन करने पर ताम्र षोडश वर्णक (सोलह करेण्ट) वाला स्वर्ण हो जाता है ॥ २७१-२७२ ॥

एकैकं हेमतारांशं द्वन्द्वं कान्ताभ्रयोः पृथक् ।
उष्णोदकेन सम्मर्द्य धमनात् खोटतां व्रजेत् ॥ २७३ ॥

स्वर्ण एक भाग, रजत एक भाग, कान्त तथा अभ्रक का द्वन्द्व अलग-अलग एक-एक भाग इन सबों को उष्णोदक के साथ मर्दन कर धमन करने से खोट बन जाता है। उसके मुख में एक मास तक धारण करने से मनुष्य वज्र के समान दृढ़ स्वर वाला हो जाता है ॥ २७३ ॥

तन्मुखे धारयेन्मासं वज्रकायो भवेन्नरः ।
तच्चूर्णं यवमात्रं तु भक्षयेन्मधुसर्पिषा ।
यावत् पलं तस्य मलैः शुल्वं भवति काञ्चनम् ॥ २७४ ॥
उष्णोदपाचितान् खादेत् कुलत्थान् क्षीरपो भवेत् ।
स्नानमुष्णाम्भसा कुर्यात् वर्षाद्वर्षशतायुषम् ॥ २७५ ॥

उपरोक्त खोट का भस्म एकयव की मात्रा में मधु तथा घृत के साथ भक्षण करे। एक पल (पचास ग्राम) की मात्रा तक सेवन करने पर उसके मल (विष्ठा) से ताम्र स्वर्ण हो जाता है। उष्णोदक से पकाये हुए कुलत्थ (कुरथी) को खाय और दूध पीवे। उष्ण जल से स्नान करे। एक वर्ष स्नान करने से सौ वर्ष तक आयु हो जाती है ॥ २७४-२७५ ॥

क्षीरमुष्णोदकं क्राथं त्रिफलायाश्च पाचयेत् ।
पायसं कान्तपात्रे तन्मासमेकन्तु भक्षयेत् ।
भुक्त्वा जीवेत् कल्पशतं वैष्णवायुर्भवेन्नरः ॥ २७६ ॥

दूध, उष्णोदक तथा त्रिफला का पायस पकाये। उस पायस (खीर) को कान्त लौह के पात्र में रखकर एक मास तक भक्षण करे। इस पायस को खाकर मनुष्य सौ कल्प तक जीवित रहता है और विष्णु के समान आयु प्राप्त करता है ॥ २७६ ॥

"अतः परं प्रवक्ष्यामि शैलोदकविधिं प्रिये ! ।
कर्दमापो महीशैलं शिलञ्चेति चतुर्विधम् ॥ २७७ ॥
कानिचित् क्षणवेधीनि दिनवेधीनि कानिचित् ।
पक्षमासादिषण्मास-वेधनानि महीतले ॥ २७८ ॥
क्षिप्तं यदा भवेत् काष्ठं शैलीभूतं च दृश्यते ।
बहिरन्तश्च देवेशि ! वेधकं तत् प्रकीर्त्तितम् ॥ २७९ ॥

शैलोदक विधि का निरूपण :—हे प्रिये ! उष्णोदक विधि के निरूपण के बाद शैलोदक विधि को कहता हूँ। कर्दम, आप, मही, शैल या शिल ये चार प्रकार के शैलोदक कहते हैं ॥ पृथ्वी पर कुछ शैलोदक क्षण वेधी तथा कुछ दिन

बेधी और पक्ष वेधी, मास वेधो एवं षडमास वेधी होते हैं। उसमें जब काष्ट छोड़ा जाय तो वह पत्थर दिखाई देता है। हे देवेशि! यह अन्दर तथा बाहर वेधक होता है ॥ २७७-१७९ ॥

हिङ्गलं हरितालञ्च गन्धकञ्च मनःशिला।
एषां गन्धापहारं यत् कुरुते तच्च वेधकम् ॥ २८० ॥
गन्धकं तालकञ्चैव तोयपूर्णे घटे क्षिपेत्।
यदा तद्बुब्दुदाकारं तदा शैलादकं भवेत्।
अन्यथा वेष्टकं देवि! तदग्राह्यं निरर्थकम् ॥ २८१ ॥

हिंगुल, हरताल, गन्धक तथा मनः शला इन सबों के गन्ध को जो दूर करता है वह वेधक है। गन्धक तथा हरताल को जलपूर्ण घट में छाड़े। जब वह बुद्-बुद् आकार का हो जाय तब शैलोदक होता है। जब बुद्-बद् आकार का न हा तब 'वेष्टक" होता है और हे देवि! वह अग्राह्य तथा निरर्थक होता है ॥ २८०–२८१ ॥

श्रीशैले श्रीवनप्रान्ते पर्य्यङ्काख्ये शिलातले।
तत्रस्थं क्षणवेधि स्यात् नदीभगवतीतटे।
ऐकाहे वेधकं तत्र गोकर्णे तु दिनत्रयम् ॥ २८२ ॥
भद्राङ्गे दिनवेधि स्यात् त्रिस्थलान्ते त्रिवासरम्।
धारेश्वरे पाक्षिकं स्यात् वर्षापुर्य्यां दिनेकतः ॥ २८३ ॥
ब्रह्मश्वरे मासिकं स्यात् व्याघ्रपुर्य्यान्तु वासरम्।
अधारशे मासिकं तु सिंहद्वीपे तथा पुनः।
दिनमेकं ब्रह्मगिरौ विन्ध्ये तु क्षणवेधकम् ॥ २८४ ॥
वासरं माल्यवन्तेषु क्षणवेधि शिलोदकम् ॥ २८५ ॥
किष्किन्ध्या पर्व्वते रम्ये पम्पातीरे तृणोदकम्।
तस्य पश्चिमतो देवि! योजनद्वितये पुनः।
भूशैलमस्ति तत्रैव त्रिदिनं वेधि पर्व्वते ॥ २८६ ॥
सह्याचले पुरे देवगाः क्षीरक्षेत्रस्य सन्निधौ।
शैलादकं कोटिवेधि दुर्जदेशेऽपि वासरम्।
लक्षवेधि नृसिंहस्य नगरे गोकुलाभिधे ॥ २८७ ॥

श्री वन के किनारे श्री शैल में पर्यङ्क नामक भगवती नदी के तटपर शिला के नीचे स्थित जल क्षणवेधी होता है। वहां पर एक दिन में वेध करता है। गोकर्ण में तीन दिन में वेध करता है। भद्राङ्ग में दिनभर में वेध करता है त्रिस्थल के समीप में तीन दिन में वेध होता है। धारेश्वर में एक पक्ष में वेध

स्वर्ण एक भाग, रजत एक भाग, कान्त तथा अभ्रक का द्वन्द्व अलग-अलग एक-एक भाग इन सबों को उष्णोदक के साथ मर्दन कर धमन करने से खोट बन जाता है। उसके मुख में एक मास तक धारण करने से मनुष्य वज्र के समान दृढ़ स्वर वाला हो जाता है ॥ २७३ ॥

तन्मुखे धारयेन्मासं वज्रकायो भवेन्नरः।
तच्चूर्णं यवमात्रं तु भक्षयेन्मधुसर्पिषा।
यावत् पलं तस्य मलैः शुल्वं भवति काञ्चनम् ॥ २७४ ॥
उष्णोदपाचितान् खादेत् कुलत्थान् क्षीरपो भवेत्।
स्नानमुष्णाम्भसा कुर्यात् वर्षाद्वर्षशतायुषम् ॥ २७५ ॥

उपरोक्त खोट का भस्म एकयव की मात्रा में मधु तथा घृत के साथ भक्षण करे। एक पल (पचास ग्राम) की मात्रा तक सेवन करने पर उसके मल (विष्ठा) से ताम्र स्वर्ण हो जाता है। उष्णोदक से पकाये हुए कुलत्थ (कुरथी) को खाय और दूध पीवे। उष्ण जल से स्नान करे। एक वर्ष स्नान करने से सौ वर्ष तक आयु हो जाती है ॥ २७४-२७५ ॥

क्षीरमुष्णोदकं क्वाथं त्रिफलायाश्च पाचयेत्।
पायसं कान्तपात्रे तन्मासमेकन्तु भक्षयेत्।
भुक्त्वा जीवेत् कल्पशतं वैष्णवायुर्भवेन्नरः ॥ २७६ ॥

दूध, उष्णोदक तथा त्रिफला का पायस पकाये। उस पायस (खीर) को कान्त लौह के पात्र में रखकर एक मास तक भक्षण करे। इस पायस को खाकर मनुष्य सौ कल्प तक जीवित रहता है और विष्णु के समान आयु प्राप्त करता है ॥ २७६ ॥

"अतः परं प्रवक्ष्यामि शैलोदकविधिं प्रिये !।
कर्दमापो महीशैलं शिलञ्चेति चतुर्विधम् ॥ २७७ ॥
कानिचित् क्षणवेधीनि दिनवेधीनि कानिचित्।
पक्षमासादिषण्मास-वेधनानि महीतले ॥ २७८ ॥
क्षिप्तं यदा भवेत् काष्ठं शैलीभूतं च दृश्यते।
बहिरन्तश्च देवेशि ! वेधकं तत् प्रकीर्त्तितम् ॥ २७९ ॥

शैलोदक विधि का निरूपण :—हे प्रिये ! उष्णोदक विधि के निरूपण के बाद शैलोदक विधि को कहता हूँ। कर्दम, आप, मही, शैल या शिल ये चार प्रकार के शैलोदक कहते हैं ॥ पृथ्वी पर कुछ शैलोदक क्षण वेधी तथा कुछ दिन

वेधी और पक्ष वेधी, मास वेधी एवं षडमास वेधी होते हैं। उनमें जब काष्ट छोड़ा जाय तो वह पत्थर दिखाई देता है। हे देवेशि ! यह अन्दर तथा बाहर वेधक होता है ॥ २७७-१७९ ॥

हिङ्गुलं हरितालञ्च गन्धकञ्च मनःशिला।
एषां गन्धापहारं यत् कुरुते तच्च वेधकम् ॥ २८० ॥
गन्धकं तालकञ्चैव तोयपूर्णे घटे क्षिपेत्।
यदा तद्बुद्बुदाकारं तदा शैलादकं भवेत्।
अन्यथा वेष्टकं देवि ! तदग्राह्यं निरर्थकम् ॥ २८१ ॥

हिंगुल, हरताल, गन्धक तथा मनः शला इन सबों के गन्ध को जो दूर करता है वह वेधक है। गन्धक तथा हरताल को जलपूर्ण घट में छाड़े। जब वह बुद्-बुद् आकार का हो जाय तब शैलोदक होता है। जब बुद्-बद् आकार का न हो तब 'वेष्टक" होता है और हे देवि ! वह अग्राह्य तथा निरर्थक होता है ॥ २८०–२८१ ॥

श्रीशैले श्रीवनप्रान्ते पर्य्यंङ्काख्ये शिलातले।
तत्रस्थं क्षणवेधि स्यात् नदीभगवतीतटे।
ऐकाहे वेधकं तत्र गोकर्णे तु दिनत्रयम् ॥ २८२ ॥
भद्राङ्गे दिनवेधि स्यात् त्रिस्थलान्ते त्रिवासरम्।
धारेश्वरे पाक्षिकं स्यात् वर्षापुर्य्यां दिनेकतः ॥ २८३ ॥
ब्रह्मश्वरे मासिकं स्यात् व्याघ्रपुर्य्यान्तु वासरम्।
अधारशे मासिकं तु सिंहद्वीपे तथा पुनः।
दिनमेकं ब्रह्मगिरौ विन्ध्ये तु क्षणवेधकम् ॥ २८४ ॥
वासरं माल्यवन्तेषु क्षणवेधि शिलोदकम् ॥ २८५ ॥
किष्किन्ध्या पर्व्वते रम्ये पम्पातीरे तृणोदकम्।
तस्य पश्चिमतो देवि ! योजनद्वितये पुनः।
भृशैलमस्ति तत्रैव त्रिदिनं वेधि पर्व्वते ॥ २८६ ॥
सह्याचले पुरे देङ्गाः क्षीरक्षेत्रस्य सन्निधौ।
शैलादकं कोटवेधि दुर्जदेशेऽपि वासरम्।
लक्षवेधि नृसिंहस्य नगरे गोकुलाभिधे ॥ २८७ ॥

श्री वन के किनारे श्री शैल में पर्यङ्क नामक भगवती नदी के तटपर शिला के नीचे स्थित जल क्षणवेधी होता है। वहां पर एक दिन में वेध करता है। गोकर्ण में तीन दिन में वेध करता है। भद्राङ्ग में दिनभर में वेध करता है त्रिस्थल के समीप में तीन दिन में वेध होता है। धारेश्वर में एक पक्ष में वेध

१४ र० सा०

होता है वर्षापुरी में एक दिन में वेध होता है। ब्रह्मेश्वर में एक मास में वेध होता है। व्याघ्रपुरी में एक दिन में बेध हाता है। अघ रेश में एक मास में वेष होता है। पुनः सिंहद्वीप में भी एकमाह में ही वेष होता है। ब्रह्मगिरि में एक दिन में तथा विन्ध्यपर्वत में क्षणभर में वेध हो जाता है। माल्यवन्त में एक दिन में तथा शिलोदक क्षणभर में वेध करना है। किष्किन्धा के पम्पापुर के रम्य पर्वत पर तृणोदक है। हे देवि! पुनः उसके पश्चिम दो योजन में भूशैल है उस पर्वत पर तीन दिन मे वेध करना है। देवी के सह्याचलपुर में क्षीरक्षेत्र के पास शैलोदक कोटिवेधि होता है, दुर्ज देश में भी एक दिन में वेत्र करता है। गोकुल नामक नृसिंह के नगर में लक्षवेत्री होता है ॥ २८२–२८७ ॥

अन्यत्र यत्र तत्रापि ब्रह्मविष्णुशिवोद्भवम्।
अमृतं तत्र तत्रापि वज्रीकरणमुत्तमम् ॥ २८८ ॥
तस्योत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि यथा जानन्ति साधकाः ॥ २८९ ॥

अन्यत्र जहाँ तहाँ भी ब्रह्म विष्णु तथा शिव से उत्पन्न अमृत होता है वहाँ-वहाँ भी उत्तम वज्रीकरण होता है। उस अमृत की उत्पत्ति बताते हैं जैसा साधक जानते हैं ॥ २८७–२८९ ॥

महीं समुद्धृतवतो वराहस्य कलेवरात्।
यः स्वेदः पतितस्तस्माज्जातं शैलोदकं परम् ॥ २९० ॥
तन्मुखे क्षणिकं जातं क्रोडदेशे तु वासरम्।
बाहुभ्यां त्र्यहवेधि स्यात् मासवेधि तु पार्श्वयोः।
षण्मासमपराङ्गे च सर्वं समफलं भवेत् ॥ २९१ ॥
अघोरास्त्रेण तत्क्षेत्रं रक्षां कृत्वा दिशां बलिम्।
दत्त्वा लक्षं जपित्वा तु गृह्णीयादमृतं परम् ॥ २९२ ॥

पृथ्वी का उद्धार करते हुए वराह के शरीर से जो स्वेद-विन्दु गिरा उससे उत्तम शैलोदक उत्पन्न हुआ। मुख के स्वेद-विन्दु से उत्पन्न शैलोदक क्षण मात्र में, क्रोडप्रदेश के स्वेद से उत्पन्न शैलोदक एक दिन, बाहु से उत्पन्न तीन दिन पार्श्वों से उत्पन्न एकमास तथा अपाङ्ग से उत्पन्न शैलोदक छः मास में वेध करता है। सभी समान फल देने वाले हैं। अघोरास्त्र मन्त्र से उस स्थान की रक्षा कर, दिशाओं को बलि देकर अघोरास्त्र मन्त्र एक हजार जप कर उत्तम अमृत (शैलोदक) ग्रहण करे ॥ २९०–२९२ ॥

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु हेमन्ते वा सुरार्चिते!।
आयसे ताम्रपात्रे वा पात्रेऽलाबुमयेऽथवा।
शैलाम्बुपलमेष्टौ तु पलं क्षीरस्य निक्षिपेत् ॥ २९३ ॥

क्षीरावशेषं सङ्क्वाथ्य त्रिसप्ताहं पिबेन्नरः ।
जीवेद्वर्षसहस्रं तु बलीपलितबर्जितः ॥ २९४ ॥

हे देवपूजित पार्वति ! शरद्, ग्रीष्म, वसन्त तथा हेमन्त ऋतु में लौह-पात्र, ताम्र-पात्र अथवा कड़वी तुम्बी के पात्र में शैलाम्बु आठ पल (लगभग ४०० ग्रा०) रक्खे और उसमें दूध एक पल (५० ग्रा०) छोड़ दे। दूध शेष रहने तक उसका क्वाथ कर तीन सप्ताह तक मनुष्य पान करे। इससे मनुष्य वलि-पलित रोग से रहित एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है ॥ २९३–२९४ ॥

अथवाष्टपलं क्षीरं पलैकेनाम्बुना युतम् ।
क्षीरावशेषं सेवेत पूर्वोक्तं लभते फलम् ॥ २९५ ॥

अथवा—आठ पल (४०० ग्रा०) दूध, शैलोदक एक पल (५० ग्रा०) मिलाकर दूध शेष रहने तक पकावे तथा सेवन करे। इस से पूर्वोक्त (बलिपलित रोगरहित हजार वर्ष का जीवन) फल प्राप्त करता है ॥ २९५ ॥

कुलत्थाष्टगुणं वारि पचेदष्टावशेषितम् ।
चतुर्गुणेन तेनाज्यं पाचयेद्घृतशेषितम् ॥ २९६ ॥
लिह्यान्मधुसमोपेतं त्रिसप्ताहं बृहस्पतिः ।
मासेन शास्त्रसम्पत्तिं ज्ञात्वा देवि ! बलाबलम् ।
द्विरष्टवर्षकाकारः सहस्रायुर्न संशयः ॥ २९७ ॥

कुलत्थ (कुरथी) आठ पल (४०० ग्रा०) अठ गुने जल (३२०० ग्रा०) में पकावे। आंठवां भाग अवशेष रह जाने पर उतार कर छान ले। इसके बाद चौगुना (१ किलो ६०० ग्रा०) घी मिलाकर पकावे घृत मात्र अवशेष रहने पर उतार कर चीनी मिट्टी या कांच-पात्र में रख ले। इस अवलेह को सम-भाग मधु मिलाकर तीन सप्ताह बल के अनुसार सेवन करे। इससे वह बृहस्पति के समान विद्वान् होता है। हे देवि ! एक मास सेवन करने से सभी शास्त्रों की सम्पत्ति (विशेषता) को जानकर सोलह वर्ष के आकार का होकर एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है। इसमें सन्देह नहीं हैं ॥ २९६–२९७ ॥

अवशिष्टकुलत्थं तु पादांशं मधुसर्पिषा ।
भक्षयेद्वर्षमेकन्तु मासेनायुतजीवतः ॥ २९८ ॥

पूर्वोक्त शेष कुलत्थ (कुरथी की सीठी) का चौथाई भाग मधु तथा घी के साथ एक वर्ष तक भक्षण करे। एक मास तक सेवन करने से दश हजार वर्ष जीवित रहता है ॥ २९८ ॥

तत्सिद्धतैलेनाभ्यङ्गं मर्दनञ्चापि कारयेत् ।
मासमेकं ततो मर्त्यं देहसिद्धिं करोति च ॥ २९९ ॥

पामाविचर्चिकादद्रु कुष्ठानि सहसा जयेत् ।
बलीपलितनिर्मुक्तः सहस्रायुश्च जायते ॥ ३०० ॥

पूर्वोक्त कुलत्थ-शैलोदक से सिद्ध तैल (तैल निर्माण विधि के अनुसार) का अभ्यङ्ग तथा मर्दन कराये। एक मास तक मर्दन करने से देह सिद्धि करता है॥ यह पामा (खुजली) विचर्चिका, दाद तथा कुष्टों को सहसा जीत लेता है और बलि-पलित रोग से रहित एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है॥ २९९–३०० ॥

यः पिबेत् प्रातरुत्थाय शैलाम्बुचुलुकः त्रयम् ।
षण्मासात् स्यात् सहस्रायुबलीपलितवर्जितः ॥ ३०१ ॥

यो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शैलोदक को तीन चुल्लू पीता है वह छः मास तक बराबर पीते रहने से बलि-पलित रोग से रहित एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है ॥ ३०१ ॥

अथवा सूनकं देवि ! वारिणा सह मर्दयेत् ।
मासेनैकेन देवेशि ! नष्टपिष्टं भविष्यति ॥ ३०२ ॥
मासमात्रं समश्नीयात् स भवेदजरामरः ॥ ३०३ ॥

अथवा—हे देवि पारद को शैलोदक के जल के साथ मर्दन करे। हे देवि एक मास तक मर्दन करने से वह नष्टपिष्ट हो जाता है। उसको एक मास तक भक्षण करे। इससे वह अजर-अमर हो जाता है। अर्थात् अधिक आयु को प्राप्त करता है। ३०२-३०३ ॥

अथवा तं रसं हेम्ना हेमभस्म ततो बली ।
मर्दयेत्तेन तोयेन धामयेत् खदिराग्निना ॥ ३०४ ॥
गुटका सुन्दरी नाम सर्वायुधनिवारणी ।
कर्त्ता हर्त्ता स्वयं सिद्धो जीवेच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ३०५ ॥

अथवा—पारद, स्वर्णभस्म तथा गन्धक इन सबों को उस शैलादक के साथ मर्दन करे तथा खैर की आग से पुट दे। यह सुन्दरी नाम की गुटिका है और सभी शस्त्रों के प्रहार को रोकने वाली है। करने वाला तथा हरन वाला स्वयं सिद्ध होकर चन्द्रमा सूर्य तथा ताराओं की अवधि तक जीवित रहता है। ३०४-३०५ ॥

कुनटी चाभ्रमाक्षीकं हेम तारं तथैव च ।
तत् सर्व पयसा क्षीरेमद्यं पाच्यं दिनत्रयम् ।
मासमात्रप्रयोगेण बलीपलितवर्जितः ॥ ३०६ ॥

मनः शिला, अभ्रक, माक्षीक, स्वर्ण तथा रजत इन सबों को शैलोदक

तथा दूध के साथ मर्दन कर तीन दिन तक पकावें। एक मास तक प्रयोग करने से बलिपति रोग से रहित हो जाता है ।। ३०६ ।।

अथ तेनोदकेनैव क्षीरार्द्धं पायसं पचेत्।
मासमात्रप्रयोगेण बलीपलितनाशनम् ।। ३०७ ।।

पूर्वोक्त शैलोदक के साथ आधा दूध मिलाकर पायस पकावे। एक मास प्रयोग करने से बलि-पलित रोग को नाश करता है ।। ३०७ ।।

पक्त्वा तेनाम्भसा पथ्याः षष्ठि त्रीणि शतानि च।
मधु संयोज्य भाण्डस्थं भूमौ सर्व्वं निधापयेत् ।। ३०८ ।।
दिने दिने तथैकैकं भक्षयेत् प्रातरुत्थितः।
बलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षसहस्रकम्ः ।। ३०९ ।।
शैलाभूतं कुलत्थं वा भक्षयेन्मधुसर्पिषा।
षण्मासेन प्राशनेन जीवेद्वर्षसहस्रकम् ।। ३१० ।।

शैलोदक के साथ तीन सौ साठ हर्रे को पकाकर और उसमें मधु मिलाकर पात्र में बन्द कर सभी को जमीन के अन्दर रख दे। इसके बाद निकालकर प्रति दिन प्रातः उठकर एक-एक हर्रे भक्षण करे। इसके भक्षण करने से मनुष्य बलि-पलित रोग से रहित होकर एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है। अथवा शैलोदक में क्वथत कुलत्य को मधु तथा घी के साथ भक्षण करे। इसको छः मास तक सेवन करने से एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है ।। ३०८-३१० ।।

कूष्माण्डं मारितं कृत्वा यानि कानि फलानि च।
जले क्षिप्तानि लोहानि शैलीभूतानि भक्षयेत्।
क्षीराहारश्च जीर्णान्ते वज्रकायो भवेन्नरः ।। ३११ ।।

कुष्माण्ड को पकाकर या जिस किसी फल को पकाकर जल में लौहों को छोड़ने पर शैलीभूत (शैलोदक में सिद्ध) हो जाता है उसको भक्षण करे। पच जाने पर दूध का आहार करे। इससे मनुष्य वज्र के सदृश शरीर वाला हो जाता है ।। ३११ ।।

तेनोदकेन संमर्द्य अभ्रकं काथयेत् प्रिये!।
कटुत्रययुतं खादेत् जीवेद्वर्षंसहस्रकम् ।। ३१२ ।।

हे प्रिये! शैलोदक के साथ अभ्रक को मर्दन कर क्वाथ करे। और उसमें त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरीच) चूर्ण मिलाकर खाय। इससे एक हजार वर्ष जीवित रहता है ।। ३१२ ।।

अथवा रसकर्षैकं तज्जलेन तु मर्द्दयेत्।
इङ्गुदीफलमध्यस्थं तच्छैलोदकमध्यगम्।

कालेन त्रिगुणेनैव काठिन्यं तस्य जायते ॥ ३१३ ॥
षण्मासं तन्मुखे धार्य्यं वज्रकायं करोति च ।
दशनागसमप्राणो देवैः सह च मोदते ॥ ३१४ ॥

अथवा—पारद एक वर्ष (लगभग दश ग्राम) शैलोदक के साथ मर्दन करे। उसको इङ्गुदी फल के मध्य में रखकर शैलोदक के मध्य में रखे। तीन गुने समय में वह कड़ा हो जाता है। उसको छः माह तक मुख में धारण करने से वज्र के सदृश दृढ़ शरीर वाला बनता है। तथा दश हाथियों के सदृश शक्ति को प्राप्त कर देवताओं के साथ प्रसन्न रहता है ॥ ३१३-३१४ ॥

गृहीत्वा त्रिफलां तत्र शैलवारिणि निक्षिपेत् ।
यदा भवति तच्छैलं गृहीत्वा चूर्णयेत्ततः ॥ ३१५ ॥
कान्तजीर्णरसं तेन सार्द्धं घृतमधुप्लुतम् ।
भक्षयेद्वर्षमेकन्तु ततः क्षीराशनो भवेत् ॥ ४१६ ॥
उदयादित्यसङ्काशो मेधावी प्रियदर्शनः ।
नीलकुञ्चितकेशश्च जीवेच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ३१७ ॥

शैलोदक प्रदेश में त्रिफला को लेकर शैलोदक में छोड़ दे। जब वह शैल के आकार का हो जाय तब उसको लेकर चूर्ण बना ले। इसके बाद कान्त लौह का भस्म तथा उस चूर्ण के साथ घृत तथा मधु मिलाकर एक वर्ष तक भक्षण करे और केवल दूध का आहार करे। इस प्रकार सेवन करने से उदय कालीन सूर्य के प्रकाश के समान तेजस्वी मेधावीं तथा सभी का प्रिय हो जाता है। उसके केश नील वर्ण के कुञ्चित हो जाते हैं तथा चन्द्र, सूर्य एवं ताराओं की अवधि तक जीवित रहता है ॥ ३१५-३१७ ॥

पारदं हरितालं च शिला माक्षिकमेव च ।
दरदं च विषं चैव सर्व्वमेकत्र कारयेत् ॥ ३१८ ॥
मर्द्दयेत् खल्लपाषाणे मातुलुङ्गरसेन च ।
गोलकं कारयित्वा तु वारिमध्ये निधापयेत् ॥ ३१९ ॥
तेन तारं च शुल्वं च काञ्चनं भवति ध्रुवम् ॥ ३२० ॥
उपयुञ्जीत् मासैकं बलीपलितवर्जितः ।
सहस्रं जीवितं तस्य महाबलपराक्रमः ॥ ३२१ ॥

पारद, हरिताल, मनःशिला, माक्षिक, हिंगुल तथा विष (वत्सनाभ) इन सबों को एकत्र कर पत्थर के खरल में विजौरा निम्बु के रस के साथ मर्दन करे और इसको गोला बनाक शैलोदकर में रखे। इससे चांदी तथा तांबा निश्चय ही स्वर्ण हो जाता है। इसको एक मास तक सेवन करे। इसके सेवन से मनुष्य

वलि-पलित रोग से रहित हजार वर्ष तक जीवित रहता है और उसको महान् बल तथा पराक्रम प्राप्त होता है ॥ ३१८-३२१ ॥

शैलीभूतां हरिद्रां तु तच्चूर्णवापमात्रतः।
हेमत्वं लभते नागो बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ३२२ ॥

शैलोदक में रखने से शैल के आकार की हल्दी को चूर्ण कर मिला देने से नाग (सीसा) बालसूर्य के सदृश प्रभा वाला स्वर्ण हो जाता है ॥ ३२२ ॥

शैलोदके विनिक्षिप्य भूशैले कर्द्दमेऽपि वा।
ज्ञात्वा कालप्रमाणेन बन्धयेत् पारदं ततः ॥ ३२३ ॥
रक्तक्षारयुतं ध्मातं सुवर्णं समस्मारितम्।
शतांशेन तु लोहानां सर्व्वेषां हेमकारकम् ॥ ३२४ ॥
द्वितीयसारणां प्राप्य भक्षयेन्मधुसर्पिषा।
तत्कालं चित्तजातानामूर्द्ध्वं भवति चानिलः ॥ ३२५ ॥
कालज्ञानं भवेत्तस्य जीवेदयुतपञ्चकम् ॥ ३२६ ॥
द्वितीयसारणां प्राप्य सहस्रांशेन विध्यति।
तं खोटं धारयेद्वक्त्रे दिव्यत्वं लभते ध्रुवम् ॥ ३२७ ॥

पारद को शैलोदक, भूशैल या कर्दम (पङ्क) में छोड़कर काल के प्रभाव को जानकर बन्धन करे। इसके बाद रक्त वर्ग की औषधें तथा क्षार मिलाकर सुवर्ण के साथ धमन करे और सारण कर ले। उसके सौवें भाग से सभी लौह स्वर्ण हो जाते हैं। उसको द्वितीय बार सारणा कर मधु तथा घृत के साथ खाय। तत्काल गत चेतना (मृत्युप्राप्त) वालों को वायु ऊपर आ जाती है। अर्थात् मरणासन्न व्यक्ति भी जीवित हो जाता है। उसको समय का ज्ञान हो जाता है और पांच अयुत (५० हजार) वर्ष जीवित रहता है। द्वितीय सारणा को लेकर उसके हजारवां भाग से वेध करे और उस खोट का मुख में धारण कर। इससे वह दिव्य लोक को प्राप्त करता है। यह निश्चित है ॥ ३२३-३२७ ॥

निचुले ककुभे चैव किंशुके मधुकेऽपि वा।
इङ्गुदीफलमध्ये वा रजनीद्वयमध्यतः ॥ ३२८ ॥
पारदं गन्धकं चैव मर्द्दयेत् गुलिकाकृति।
पाचयेद्दिनमेकं तु हेम्ना संवेष्ट्य धारयेत् ॥ ३२९ ॥

निचुल (बड़हर), अर्जुन, पलास, महुआ या इंगुदी के फल के मध्य में अथवा दोनों हलदियों के मध्य में रखकर पारद तथा गन्धक को मर्दन करे और

गोलक बना ले। इसके बाद उसको एक दिन तक पकाकर स्वर्ण के पत्रों से वेष्टित कर धारण करे॥ ३२८-३२९॥

त्रिफलाव्योषकल्केन वेष्टयित्वा प्रयत्नतः।
पादेन कनकं दत्त्वा पारदं तत्र योजयेत्।
क्षिपेच्छैलाम्बुमध्यस्थं गुलिका वज्रवद्भवेत्॥ ३३०॥
पूर्ववत् सारणा कार्य्या पूर्ववत् सिद्धिदा भवेत्।
धार्य्यमाणा मुखे सा तु सहस्रायुष्करी भवेत्॥ ३३१॥
द्वितीयसारणायोगादयुतं वेधयेत्तु सा।
धार्य्यमाणा मुखे सेयमयुतायुःप्रदा भवेत्॥ ३३२॥

त्रिफल (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) इन सबों के कल्क अच्छी तरह वेष्टित कर चौथाई भाग स्वर्ण तथा पारद मिला दे और उसको शैलोदक में छोड़ दे। वह गुलिका वज्र के समान हो जाती है। इसको पूर्ववत् सारणा करनी चाहिए। यह पहले की तरह सिद्धि देने वाली है। यह मुख में धारण करने से एक हजार वर्ष की आयु देने वाली है। द्वितीय सारणा के योग से यह गुटिका दश हजार को वेध करती है। वह मुख में धारण करने से दश हजार वर्ष आयु को देने वाली है॥ ३३०-३३२॥

तृतीयसारणायोगाज्जायते लक्षवेधिनी।
तं खोटं धारयेद्वक्त्रे लक्षायुर्जायते नरः॥ ३३३॥
चतुर्थीं सारणां प्राप्य कोटिवेधो न संशयः।
कोट्यायुर्जीवितं तस्य खेचरत्वं च लभ्यते॥ ३३४॥
पञ्चभिर्दशकोटिः स्यात् षड्भिः कोटिशतं भवेत्।
यावच्चन्द्रार्कजीवित्वमनन्तबलवीर्य्यवान्॥ ३३५॥

तृतीय सारणा के योग से वह गुटिका लक्ष वेधिनी होती है। उस खोट को मुख में धारण करने से मनुष्य एक लाख वर्ष की आयु वाला होता है॥३३३॥

चौथी सारणा को प्राप्त कर वह गुटिका कोटि वेधी होती है। इसमें सन्देह नहीं है। उसको मुख में धारण करने से उसकी आयु करोड़ वर्ष को होती है तथा आकाश में परिभ्रमण करने की शक्ति प्राप्त होती है। पांचवीं सारणा से वह गुटिका दश करोड़ को बेध करती है तथा छठीं सारणा से सौ करोड़ बेध करती है। जब तक चन्द्रमा तथा सूर्य रहता है तब तक अनन्त बल और वीर्य को प्राप्त कर जीवित रहता है॥ ३३४-३३५॥

ददाति सप्तमीं सापि सारणां गुटिका परा।
खेचरी नाम विख्याता भैरवेण प्रचोदिता॥ ३३६॥

यस्तु तद्राजिकामात्रं मासमेकन्तु भक्षयेत्।
वज्रदेहः स सिद्धः स्यात् दिव्यस्त्रीजनवल्लभः।
क्राडते खेचरैर्भोगैः स्वेच्छया शिवतां व्रजेत् ॥ ३३७ ॥

वह उत्तम गुटिका सातवीं सारणा को देती है उसका नाम खेचरी गुटिका है और इसको भैरव ने कहा है। जो व्यक्ति इसको राई के बराबर एक मास तक खाता है वह वज्र के समान शरीर प्राप्त कर देवाङ्गनाओं का प्रिय सिद्ध हो जाता है। वह आकाश में संचरण करने वाले भोगों से खेलता है और अपनी इच्छा के अनुसार शिवत्व को प्राप्त करता है ॥ ३१६-३३७ ॥

नानाविधफलं च स्यात् तद्रसैर्बीजतैलतः।
तद्बद्धं पारदं चैव गुटिकां शृणु सुन्दरि! ॥ ३३८ ॥

सारणा युक्त उसके रस बीज तथा तैल से अनेक प्रकार का फल होता है। हे सुन्दरि! उससे बद्ध पारद तथा गुटिका को सुनो ॥ ३३८ ॥

शुद्धबद्धरसेन्द्रस्तु गन्धकं तत्र जारयेत्।
त्रिगुणे गन्धके जीर्णे तेन हेमं तु कारयेत् ॥ ३३९ ॥
कारयेद्भस्मसूतन्तु काञ्चनं तत्र सूतकम्।
तद्भस्म सूतके जीर्य्यं रसेन्द्रस्य समे समम् ॥ ३४० ॥
तेन सूतकजार्णेन वज्ररत्नन्तु जारयेत्।
तद्वज्रं जायते भस्म सिन्दूरारुणसन्निभम् ॥ ३४१ ॥
तद्भस्म जारयेत् सूते त्रिगुणे तु सुरार्चिते!।
हाटके सारयेत्तं तु गुटिकां तेन कारयेत् ॥ ३४२ ॥
त्रिलोहावेष्टितं तं तु मुखे प्रक्षिप्य साधकः।
नष्टच्छायो भवेत् सोऽयमदृश्यो देवदानवैः ॥ ३४३ ॥
तत्क्षणाद्वेधयेद्देवि! सर्वलोहानि काञ्चनम्।
बहुवर्षसहस्राणि निर्वलीपलितो भवेत् ॥ ३४४ ॥

शुद्ध एवं बद्ध पारद लेकर उसमें गन्धक का जारण करे। त्रिगुण गन्धक जीर्ण होने पर उससे स्वर्ण बनाये। उसके बाद स्वर्ण तथा पारद का भस्म बनाये पुनः उसमें स्वर्ण तथा पारद मिलाकर भस्म बनाये और उस भस्म को पारद में जारण करे। पारद समभाग में स्वर्ण समभाग होना चाहिए। उस जीर्ण पारद से वज्ररत्न का जारण करे। वह वज्र भस्म सिन्दूर के समान अरुण वर्ण का हो जाता है। हे देवपूजित पार्वति! उस भस्म को तीन गुने पारद में जारण करे। उस त्रिगुण जारित भस्म को स्वर्ण में सारण करे और उससे गुटिका बनाये। तीन लोह (स्वर्ण, रजत ताम्र) से वेष्टित उस गुटिका को मुख

में रखकर साधक छायारहित हो जाता है और वह देवता तथा दानवों से अदृष्ट हो जाता है। हे देवि वह उसी समय सभी लोहों को वेधता है तथा काञ्चन बना देता है। वह बहुत वर्ष तक बलि-पलित रोगरहित जीता है ।। ३३९-३४४ ।।

शूलिनं शक्तिसंयुक्तं रत्नादिगुणभूषितम् ।
वक्त्रे करे च बिभृयात् सर्व्वायुधनिवारणात् ॥ ३४५ ॥

रत्न-आदि से विभूषित शक्ति से युक्त शंकर जी को मुख में तथा हाथ में धारण करे। वह शस्त्रास्त्रों को निवारण करता है ।। ३४५ ।।

व्योम माक्षिकसत्त्वञ्च तारामात्रं सुरायुधम् ।
वैक्रान्तं तालकं सूतं रत्नादिगुणभूषितम् ॥ ३४६ ॥
गुटिका सा वरारोहे! मधुरत्रयसंयुता।
वक्त्रस्था नाशयेत् साक्षात् पलितं नात्र संशयः।
शिवशक्तिश्च देवेशि! रत्नादिशिवगा यथा ॥ ३४७ ॥

अभ्रक, माक्षिक सत्व, ताम्र (या रजत), वज्रवैक्रान्त, हरताल, रत्नादि गुणों से विभूषित पारद इन सबों को त्रिमधुर (घृत, शक्कर तथा मधु) के साथ मिलाकर गुटिका बनाये। हे वररोहे! यह गुटिका मुख में रखने से साक्षात् पलित रोग को नाश करती है, इसमें सन्देह नहीं है। हे देवेशि! उससे शिवशक्ति प्राप्त होती है जैसे रत्न आदिक कल्याणकारक होते हैं ।। ३४६-३४७ ।।

हेमं तारं तथा भानुं समभागानि कारयेत् ।
स्त्रीरजो व्याघ्रमध्यस्थं पद्मसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ ३४८ ॥
सेचयेत्तत् तथावेष्ट्य गुह्यस्थाने निधापयेत् ।
रणे राजकुले द्यूते दिव्ये काम्ये जयो भवेत् ।
यन्मुखे चैव तद्गोलं स सर्व्वरञ्जको भवेत् ॥ ३४९ ॥

स्वर्ण, रजत तथा ताम्र इन सबों को समभाग ग्रहण करे और इन द्रव्यों को तथा स्त्रीरज व्याघ्र (करञ्ज) के मध्य में रखकर पद्मनाल के सूत्र से बांध दे। इस प्रकार वेष्टित कर सींचे तथा गुह्य स्थान में रक्खे। इससे युद्ध, राजकुल, द्यूत, दिव्य तथा काम्य कर्म मे विजय होती है। जिसके मुख में यह गोलक होता है वह सभी को प्रसन्न करने वाला होता है ।। ३४८-३४९ ।।

वैक्रान्ताभ्रककान्तं तु शस्यकन्तु सुरायुधम् ।
विभीतकादिसम्भूतकाञ्जिकस्य समं भवेत् ॥ ३५० ॥

राजावर्त्तं ततः सूते योजयेत् पादयोगतः।
कुमारीरससंघृष्टा कृतैका गुटिका शुभा।
रोगमृत्युजरा हन्ति वक्त्रस्था नात्र संशयः ॥ ३५१ ॥

वैक्रान्त, अभ्रक, कान्त लोह, सस्यक, वज्र तथा बहेड़ा आदि के द्वारा निर्मित काञ्जी समभाग ग्रहण करे। इसके बाद राजावर्त चौथाई भाग पारद में मिला दे, और घृतकुमारी के रस के साथ मर्दन कर एक गुटिका बनावे। वह मुख में रखने पर रोग, मृत्यु तथा जरावस्था नष्ट करती है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५०-३५१ ॥

पञ्चतारं वरारोहे! सूतकं द्वयमेव च।
त्रयो गगनभागाः स्युरेकैकं हेमकान्तयोः ॥ ३५२ ॥
अर्द्धशुल्बविधानेन गुटिकामरसुन्दरि!।
अक्षयो ह्यजरश्चैव भवेत्तेन महाबलः।
सर्व्वरोगविनिर्मुक्तो जीवेद्वक्त्रे विधारणात् ॥ ३५३ ॥

हे वरारोहे! रजत पाँच भाग, पारद दो भाग, अभ्रक तीन भाग, स्वर्ण एक भाग, कान्त लोह एक भाग इन सबों के आधा ताम्र मिलाकर गुटिका बनाये। हे सुन्दरि! इस गुटिका के मुख में रखने से अजर, अमर तथा महान् बलवान् होता है और सभी रोगों से मुक्त होकर जीवित रहता है ॥ ३५२-३५३ ॥

भस्मसूतपलैकञ्च मृतकान्तपलं तथा।
माक्षिकस्य पलञ्चैव शिलाजतुपलं पुनः ॥ ३५४ ॥
पलमेकं विडङ्गस्य पथ्याचूर्णपलं तथा।
एकीकृत्याथ तत् सर्व्वं मध्वाज्येन तु पेषयेत् ॥ ३५५ ॥
गुटिकाः कारयेद्देवि! षष्ठ्यधिकशतत्रयम्।
एकैकं भक्षयेन्नित्यं वर्षमेकं निरन्तरम् ॥ ३५६ ॥
जीवेद्वर्षसहस्राणि रुद्रतुल्यो महाबलः ॥ ३५७ ॥

पारद भस्म (रस सिन्दूर) एक पल (पचास ग्राम) कान्त लोह भस्म एक पल, माक्षिक भस्म एक पल, शिलाजीत एक पल, विडंग का चूर्ण एक पल तथा हर्रे का चूर्ण एक पल इन सबों को एकत्र करे मधु तथा घृत के साथ पीसे और हे देवि! तीन सौ साठ गुटिका बनावे। इस गुटिका को प्रतिदिन एक गुटिका के हिसाब से एक वर्ष तक निरन्तर भक्षण करे। इस प्रकार सेवन करने से शंकर के समान महान् बलवान होकर एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है ॥ ३५४-३५७ ॥

"अतः परं प्रवक्ष्यामि रसभस्मरसायनम् ।
विज्ञेयं निष्परीहारं साक्षाद्दिव्यौषधं परम् ॥ ३५८ ॥

रस भस्म तथा रसायन-आदि विधि का निरूपण—इसके बाद रस, भस्म तथा रसायन विधि को बताता हूँ। इसको परिहार रहित साक्षात् उत्तम दीव्यौषध समझे ॥ ३५८ ॥

आमलक्यादि कान्तञ्च पारदञ्च मनःशिलाम् ।
वाकुचीसप्तभागञ्च क्षीरिणी रसपेषितम् ।
मेघनादरसोपेतं मूकमूषागतं पुटेत् ॥ ३५९ ॥
माषं त्रिमाषं त्रिगुणं भक्षयेत्तु क्रमेण तु ।
वर्षत्रयपरं देवि! पादनिष्कार्द्धकं क्रमात् ॥ ३६० ॥
षट् सप्ताष्टौ च वर्षाणि क्रमान्निष्कप्रमाणतः ।
भुञ्जीत स च दिव्यान्नं जरावैरूप्यवर्जितः ॥ ३६१ ॥
किञ्चित् काञ्चनसंयुक्तं निष्कं निष्कार्द्धमेव च ।
यो भक्षयेत् त्रिभिर्वर्षैः सर्वव्याधीन् जयत्यलम् ॥ ३६२ ॥
अष्टवर्षे सहस्रायुः द्वादशे लक्षवेधकः ।
षोडशे वत्सरे देवि! दिव्यरूपः स जायते ॥ ३६३ ॥

आमलक-आदि द्रव्य, कान्तलौह-भस्म, पारद-भस्म (रस सिन्दूर), मनःशिला समभाग तथा वाकुची सात भाग इन द्रव्यों को लेकर क्षीरिणी वृक्ष के रस के साथ पीसकर तथा मेघनाद (चौराई) का रस मिलाकर मूकमूषा में रखकर पुट दे। इसको एक मासा, तीन मासा तथा नव मासा क्रमशः सेवन करे। हे देवि ! तीन वर्ष के बाद चौथाई निष्क का आधा क्रमशः सेवन करे। छः वर्ष, सात वर्ष तथा आठ वर्ष क्रमशः एक निष्क की मात्रा में सेवन करे और वह दिव्य अन्न (दूध, पायस आदि) भक्षण करे। इसको भक्षण करने से वह जरा तथा विरूपता से मुक्त हो जाता है। इसमें थोड़ा काञ्चन (स्वर्ण) एक निष्क का आधा मिलाकर जो भक्षण करता है वह तीन वर्ष में सभी रोगों को जीत लेता है। आठ वर्ष तक सेवन करने से हजार वर्ष की आयु प्राप्त होती है। बारह वर्ष सेवन करने से लक्ष वेधक होता है। हे देवि सोलहवें वर्ष में वह दिव्यरूप हो जाता है ॥ ३५८-३६३ ॥

शतपलमभयानामक्षधात्र्योस्तथैव ।
क्वथितजलशताष्टौ भागमष्टावशेषम् ।
घृतमधुसितयाढ्यं व्योषचित्रं दशांशं ।
रसफलरससिद्धं लोहजीर्णं मृतञ्च ॥ ३६४ ॥

गिरिजतु-सममभ्रं कान्तभृङ्गं विडङ्गं
रससहितसुभाव्यं तण्डुलैर्दिव्यमख्यैः ।
अहिमरकृतकल्कं लोहपात्रस्थमाषं
त्रिदिनतनुसुसिद्धं कल्कमेतद्वरिष्ठम् ॥ ३६५ ॥
लिहति शयनकाले वामनेत्रात्रसेवी
घननिबिडसुमध्यो मत्तमातङ्गदर्पः ।
विगतसकलदोषः सर्व्वदिग्दिव्यचक्षुः
मदन इव सुकान्तिः कामिनीनां प्रवीरः ॥ ३६६ ॥
जलद-लव-वपुष्मान् कुञ्चिताऽऽनीलकेशः
सुरगुरुरिव शुद्धः सत्कविश्चित्रकारो ।
वृषभगतिविचेष्टः स्निग्धगम्भीरघोषः
सुरगज इव लोके श्रान्तिहन्ताऽऽशु नित्यम् ॥ ३६७ ॥
प्रभवति खलु लोके सोमताराऽर्कजीवी
कमलसदनसुश्रीर्न्यायशस्त्रादिवेत्ता ।
सुजनसमयपाता धर्म्मदीक्षानुमाता
[1]हरिहरसमगभीरः सूर्य्य-सोमाऽब्धधीरः ॥ ३६८ ॥

हरीतक्यादि रसायन—हर्रे, बहेड़ा, आंवला सौ-सौ पल (४ किलो ३६५ ग्राम ५२० मि० ग्राम) जल आठ सौ पल में क्वाथ कर अष्टमांशावशिष्ट क्वाथ ग्रहण कर ले और उसमें घृत, मधु, मिश्री, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) चित्रक दशमांश (दश-दश पल) मिला दे । आंवला फल के रस के साथ जारित एवं मृत लोह, शिलाजीत, अभ्रक, कान्त लोह, भृंगराज तथा विडंग समभाग (दशमांश) तथा पारद मिलाकर दिव्य एवं मुख्य चावल के साथ अच्छी तरह भावित करे । इसके बाद अहिमार (विट् खदिर) का कल्क तथा माष (उड़द) इन सबों को एकत्र कर तीन दिन तक पतला पकाकर कल्क (अवलेह) बना लें । यह उत्तम अवलेह है । यो सुन्दर नेत्र वाली स्त्रियों को सेवन करने वाला रात्रि में सोते समय चाटता है वह घनघोर अन्धकार तुल्य मध्य शरीर वाला मदोन्मत हाथी के सदृश पराक्रम से युक्त, सम्पूर्ण दोषों से रहित सभी दिशाओं में दिव्य चक्षु वाला कामदेव की तरह कान्ति वाला कामिनी स्त्रियों के लिये उत्तम पराक्रमी होता है । मेघ की बिजली की तरह शरीर वाला, कुञ्चित एवं नील केशवाला, वृहस्पति की तरह शुद्ध उत्तम कवि तथा चित्रकार, सांड़ की गति की तरह

---

१. हरिहरसमवीरः-इति पाठः प्रतिभाति । पञ्चमालन्यः ।

चेष्टा करने वाला, स्निग्ध तथा गम्भीर शब्द करने वाला, संसार में ऐरावत हाथी की तरह नित्य ही शीघ्र परिश्रम को दूर करने वाला होता है। इस अवलेह को सेवन करने वाला इस लोक में चन्द्रमा, तारा तथा सूर्य की तरह जीने वाला कमलों के गृह की तरह सुन्दर, न्याय शास्त्र को जानने वाला सज्जनों की तरह समय को व्यतीत करने वाला, धार्मिक दीक्षाओं को मानने वाला, विष्णु शंकर सदृश वीर तथा सूर्य चन्द्रमा एवं समुद्र सदृश गम्भीर होता है ॥ ३६४-४६८ ॥

कान्त हेमरविचन्द्रमभ्रकं, गोलकं निहितमिङ्गुदीफले।
शैलवारिवरसिद्धगोलकं, सुन्दरं ह्यमररञ्जकं शुभम् ॥ ३६९ ॥

कान्त लौह, स्वर्ण, ताम्र रजत तथा अभ्रक इन सबों का गोला बनाकर इंगुदी के फल में रखकर शैलोदक में पका कर सिद्ध करे। यह सुन्दर गोलक अच्छी तरह देवताओं को प्रसन्न करने वाला होता है ॥ ३६९ ॥

कान्तहेमरविचन्द्रमभ्रकं, वज्ररत्नमहिराजगोलकम्।
क्षिप्रमामलककाष्ठकोटरे, भूमिशैलनिहितं समुद्धृतम्।
शैलतां गतमथाऽऽहितं मुखे वज्रकायकरमल्पवासरैः ॥३७०॥

कान्तलौह स्वर्ण, ताम्र, रजत, अभ्रक, वज्ररत्न, तथा नाग इन सबों के गोलक को आंवला की लकड़ी के अन्दर रखकर भूशैल नामक शैलोदक में रखकर निकाला हुआ पत्थर सदृश वह गोलक मुख में रखने पर थोड़े ही दिनों में वज्र सदृश शरीर को दृढ करने वाला होता है ॥ ३७० ॥

तालहेमवरशुल्वसूतकैः गोलकं वरणकाष्ठयन्त्रितम्।
शैलवारिकृतसुन्दरीरसं, खेचरीति गुटिका निगद्यते ॥ ३७१ ॥

हरताल, स्वर्ण ताम्र तथा पारद इन सबों का गोलक बनाकर तथा वरुण की लकड़ी में बन्द कर शैलदक में रखकर निकाल ले। इसको सुन्दरी रस "खेचरी गुटिका" कहा जाता है ॥ ७१ ॥

शैलाम्बुनिक्षिप्तपलाशबीज शैलीकृतं क्षौद्रघृतेन खादेत्।
त्रिःसप्तरात्रं दिनमेकमेकं, सहस्रजीवी विजयी नरः स्यात् ॥ ३७२ ॥

शैलोदक में पलाश-बीज को रखकर निकाल ले। शैलोदक से निकाले हुए इस पलाश-बीज को शहद तथा घृत के साथ प्रतिदिन एक-एक बीज एक्कीस दिन तक भक्षण करे। इसके सेवन करने से मनुष्य हजार वर्ष जीने वाला तथा विजयी होता है ॥ ३७२ ॥

सूतकं चाभ्रकञ्चैव वज्रीक्षीरसमन्वितम्।
हाटकेन समायुक्तं गुटिका खेचरी भवेत् ॥ ३७३ ॥

करञ्जफलमध्यस्थं सूतकं तत्र निक्षिपेत् ।
घृतशैलाम्बुमध्यस्थं सहस्रायुः प्रयच्छ त ॥ ३७४ ॥

पारद तथा अभ्रक को वज्रोक्षीर (सेंहुड़ का दूध) में घोंट कर स्वर्ण मिला दे। यह "खेजरी" गुटका होती है। उसमें करञ्ज फल के मध्य में रक्खा हुआ पारद को छोड़ दे और घृत तथा शैलोदक में रखकर निकाल ले। वह मुख में रखने से हजार वर्ष को आयु प्रदान करती है ॥ ३७३-३७४ ॥

तिन्दुके द्विसहस्रायुः जंबीरे त्रिसहस्रकम् ।
मालुङ्गे च नारङ्गे चतुःपञ्चसहस्रकम् ॥ ३७५ ॥
रम्भाफले षट्सहस्रं पनसे सप्तसङ्ख्यकम् ।
विभीतकफले चैव दशसाहस्रसङ्ख्यकम् ॥ ३७६ ॥
नारिकेले महाभागे सहस्राणि चतुर्द्दश ।
त्रिंशत्सहस्रं पद्मे च लक्षमामलके पुनः ॥ ३७७ ॥

पूर्वोक्त खेचरी गुटिका दो हजार वष का आयु जम्बीरी निम्बु में रखने पर तीन हजार वर्ष की आयु, बिजोरा निम्ब में रखने पर चार हजार वर्ष की आयु तथा नारङ्गी में रखने पर पाँच हजार वर्ष की आयु प्रदान करतो है। केले में छः हजार वर्ष कटहल में सात हजार वर्ष बहेड़ा में दश हजार वर्ष, नारियल में चौदह हजार वर्ष पद्म में तीस हजार वर्ष तथा आंवला में रखने पर लाख वर्षों की आयु देने वाला है ॥ ३७५-३७७ ॥

अभ्रपत्रद्रवे क्वाथमहोरात्रं शिलोदके ।
तस्मात्तु चोद्धतं सूतं मृत्युदारिद्यनाशनम् ॥ ३७८ ॥
सारणाक्रमयोगेन नवीनं जायते वपुः ।
रसे रसायने चैव लक्षवेधी न संशयः ॥ ३७९ ॥

अभ्रक-पत्र द्रव तथा शिलादक में एक दिन रात क्वाथ कर निकाल लेने पर पारद धारण करने से मृत्यु तथा दारिद्य का दूर करता है। सारणा क्रम के योग से नवीन शरीर हो जाता है। रस तथा रसायन में प्रयोग करन से लक्ष वेधी होता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३७८-३७९ ॥

कर्द्दमञ्च कुमार्य्याश्च रसेन कृतगोलकम् ।
धमनात् पतते सत्त्वं मुखे तद्धारयेन्नरः ।
षण्मासेन प्रयोगेण ह्यजरामरतां व्रजेत् ॥ ३८० ॥

कर्दम शैलोदक तथा घृत कुमारी के रस के साथ पारद का बनाया हुआ गोलक धमन करने से निकले हुए सत्व को मनुष्य मुख में धारण करे। इसको छः मास तक प्रयोग करने से मनुष्य अजर तथा अमर हो जाता है ॥ ३८० ॥

स्रोतोऽञ्जनयुतं ध्मातं सत्त्वं पारदमिश्रितम् ।
तं खोटं धारयेद्वक्त्रे अदृश्यो भवति ध्रुवम् ॥ ३८१ ॥

स्रोतोऽञ्जन मिलाकर पारद का धमन करने से सत्व निकलता है । इस को मुख में रखने से मनुष्य निश्चित ही अदृश्य हो जाता है ॥ २८१ ॥

यस्य यो विधिराम्नात उदकस्य शिवाऽऽगमे ।
रसेनैव तु काले तु कुर्य्यादेव रसायनम् ॥ ३८२ ॥

इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
रसबन्धनो नाम द्वादशः पटलः ॥ १२ ॥

शिवागम (शिवशास्त्र) में जिस जल का जो विधि कहा गया उसको उसी रस से उचितसमय पर रसायन कार्य करे । इससे रसायन की प्राप्ति होती है ॥ ३८२ ॥

रसार्णव में रसबन्धन नामक बारहवाँ पटल समाप्त ।

त्रयोदशः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

देव[1] त्वं पारदेन्द्रस्य प्रोक्ता मे बालजारणा ।
अतः परं समाचक्ष्व सम्यग्बद्धस्य जारणाम् ॥ १ ॥

श्री देव्युवाच :—

बद्ध जारणा के सम्बन्ध में पार्वती का प्रश्न :—बालजारणा को अच्छी तरह समझ कर पार्वती ने पूछा । हे देव ! आपने मेरे लिए पारद की बाल-जारणा को कहा । इसके बाद पारद की अच्छी तरह बद्धजारणा को कहें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच

या पूर्व्वं वर्णिता सेयमधमा बालजरणा ।
उत्तमा दुर्लभा चैव श्रूयतां बद्धजारणा ॥ २ ॥

बद्ध जारणा की प्रशंसा तथा उसका क्रम :—पारद को बद्धजारणा के सम्बन्ध में भैरव जी ने उत्तर दिया । हे पार्वति ! मैंने जो पहले बालजारणा का वर्णन किया है वह अधम (निम्न प्रकार का) है उत्तम बद्धजारणा दुर्लभ है, उसको सुनो । २ ॥

अबद्धं जारयेद् यस्तु जीर्य्यमाणः क्षयं व्रजेत् ।
बद्धस्य जीर्य्यते ग्रासो जीर्णस्य च मुखं भवेत् ॥ ३ ॥
सुमुखो निर्मुखो धत्ते सम्पूर्णोत्तमलक्षणे ।
सामान्योऽग्निसहत्वेन महारत्नानि जारकः ॥ ४ ॥

जो अबद्ध पारद जलाया जाता है वह जलाने पर नष्ट हो जाता है । सम्पूर्ण उत्तम लक्षण होने पर सुमुख पारद निमुख हो जाता है । सामान्य पारद अग्नि सह होने पर महारत्नों का जारण करता है ॥ ३-४ ॥

सामान्यः प्रथमं कार्य्यः सम्प्राप्तस्तुः सुसम्मतः ।
वसुदेहकरो देवि ! सामान्यो हि भवेदयम् ॥ ५ ॥

---

१. हे देव ! 'त्वया' मे = मह्यं पारदेन्दस्य बालजारणा प्रोक्ता = कथिता, अतः परं त्वं सम्यग्बद्धस्य जारणां समाचक्ष्व-इत्यन्वयः ।

ग्रासहीनस्तु यो बद्धो दिव्यसिद्धिकरो भवेत् ॥ ६ ॥

सर्व प्रथम सुसम्मत सग्रास सामान्य जारण करना चाहिए। हे देवि ! सामान्य जारण धन एवं देह की सिद्ध करने वाला है। ग्रास हीन यो बद्ध होता है वह दिव्य सिद्धि को करने वाला है ॥ ५-६ ॥

उत्तमो मूलबन्धस्तु मध्यमं रसबन्धनम्।
अधमः पाकबन्धः स्यादेवं त्रिविधबन्धनम् ॥ ७ ॥
मूलबन्धस्तु यो बन्धो वासनाबन्ध उच्यते।
स्याच्चतुःषष्ठिमूलेभ्यः किञ्चन्मूलेन बन्धनम् ॥ ८ ॥

तीन प्रकार के बन्ध का विवरण :—वनस्पितियों के मूल के साथ जो पारद का बन्ध किया जाता है वह उत्तम बन्ध, उपरस महारसादि के साथ जो बन्धन किया जाता है वह रसबन्ध मध्य होता है और पाक-आदि (जारणा विशेष) से जो बन्ध किया जाता है वह पाक बन्ध अधम होता है। इस प्रकार तीन प्रकार का पारद का बन्धन होता है। मूलबन्ध जो बन्ध होता है वह वासना बन्ध कहलाता है। यह मूल बन्ध कुछ चौसठ औषधि के मूल से होता है ॥७-८॥

प्राण्यङ्गमसुरादीनां मूलाङ्गं देवतामतम्।
पाषाणं चैव सिद्धानां मानुषाणाञ्च पूजितम् ॥ ९ ॥

प्राणियों का अंग तथा असुरादि औषधियों के मूल का अंग देवता माना गया है और पाषाण सिद्ध एवं मनुष्यों का पूज्य है ॥ ९ ॥

पिण्डिकाद्रुतिसङ्कोचैस्त्रिविधं बन्धनं भवेत्।
दिव्याभिरोषधीभिश्च प्रागुक्तं शुद्धबन्धनम् ॥ १० ॥
द्रुताभवध्यते सूतः क्षणबन्ध उदाहृत ॥ ११ ॥

पुनः बन्धन तीन प्रकार का होता है। पिण्डिका बन्ध, द्रुतिबन्ध तथा संकोच बन्ध। दिव्य औषधियों के साथ जो बन्ध होता है वह शुद्ध रस बन्ध होता है यह पहले कहा गया है॥ द्रुति के द्वारा बन्धपारद क्षण बन्ध कहा गया है ॥ १०-११ ॥

अभ्रकं हरबीजं च षोडशांशेन काञ्चनम्।
ध्मातं प्रकाशमूषायां शोधयेत् काचटङ्कणैः ॥ १२ ॥
दक्षिणावर्त्तितं ध्मातं हरबीजेन मेलकम्।
मूषां त्यक्त्वा वरारोहे तिष्ठते बद्धवद्रसः ॥ १३ ॥
रक्तकार्द्धार्द्धमात्रेण पञ्चतानपि वधयेत्।
भक्षणात्तस्य देवेशि ! रुद्रतुल्यो भवेन्नरः।

क्रीडते सप्तलोकेषु शिवतुल्यपराक्रमः ॥ १४ ॥

पिण्डिका बन्ध :—अभ्रक एक भाग, पारद एक भाग तथा स्वर्ण सोलहवाँ भाग इन सबों को प्रकाश मूषा में रखकर काच (विड़ नमक) तथा टङ्कण के साथ धमन कर शुद्ध करे। दक्षिण क्रम से मिलाते हुए धमन कर पारद के साथ मिलावे। हे वरारोहे ! पारद मूषा को छोड़कर बन्ध (पिण्डिका) की तरह बद्ध होकर स्थिर हो जाता है। यह बद्ध रस चौथाई रत्ती की मात्रा से पर्वतों को भी बढ़ा देता है। हे देवेशि ! इसको भक्षण करने से मनुष्य रुद्र के तुल्य हो जाता है और शंकर के समान पराक्रमी होकर सातों लोक में क्रीड़ा करता है ॥१२-१४॥

"द्रुतीनां मेलनं देवि ! दिव्यौषधिपरं[1] शृणु ॥ १५ ॥

द्रुतिबन्ध :—हे देवि ! दिव्यौषधियों के कारण जो द्रुतियों का मेलन होता है उसको सुनो ॥ १५ ॥

वज्रकन्दं लाङ्गली च उच्चाटेन समन्वितम् ।
अभ्रकं क्रमते शीघ्रमन्यथा नास्ति सङ्क्रमः ॥ १६ ॥

वज्रकन्द (सूरण), लाङ्गली (कलिहारी) तथा उच्चटा[2] (गुञ्जा-रत्ती एक प्रकार की लता) इन सबों के साथ मिलाने से पारद शीघ्र ही अभ्रक को क्रामण करता है। अन्यथा संक्रम (क्रामण) नहीं होता है ॥ १६ ॥

कृष्णागुरुशङ्खनाभी रसोन-सितरामठैः ।
नारीकुसुमपालास-बीजतैलसमन्वितैः ।
सोष्णैर्मिलन्ति कथिता द्रुतयः सकला रसैः ॥ १७ ॥

पीपर, अगरु, शंखनाभी (सुगन्धि द्रव्य) रसोन (लहसुन) सित (सित-वर्ग की ओषधियाँ) हिंगु, नारी (अश्वबला) कुसुम (धाय का फूल), पलास का बीज तथा तैल इन सबों को मिलाकर रस के साथ क्वाथ करने से उष्णा-वस्था में सभी द्रुतियाँ मिल जाती हैं ॥ १७ ॥

माक्षिकं च विषं गुञ्जा टङ्कणं स्त्रीरजस्तथा ।
स्त्रीस्तन्येन विलिप्तश्च सर्व्वद्वन्द्वानि मेलयेत् ॥ १८ ॥

माक्षिक, विष (वत्सनाभ), गुञ्जा, सुहागा, स्त्रीका रज तथा स्त्री के दूध के साथ लेप करने पर पारद सभी द्वन्द्वों को मिलाता है ॥ १८ ॥

जीवाहिव्योमपाषाणैः कोष्टुजिह्वासुभावितम् ।
क्रामणं सर्व्वलोहानां द्रुतीनामपि मेलकम् ॥ १९ ॥

---

१. दिव्योषधिपरं = दिव्यौषधिकारणकं मेलनमित्यन्वयः ।

२. उच्चटा सा शुकत्रोटि पुटाकारदलान्विता । (रस. का. धे.)

जीवक, नाग, अभ्रक तथा दुग्ध पाषाण के साथ शृगाल की जिह्वा को भावित करने पर पारद सभी लौहों का क्रामण तथा सभी द्रुतियों का मेलन करता है ॥ १९ ॥

अश्वस्य लाला लशुनमार्द्रकं निम्बपल्लवम् ।
टङ्कणञ्च रसं व्योम वज्रं चापि प्रवेशयेत् ॥ २० ॥
अभ्रं हेम द्रुतिं सूतं त्रयमेकत्र मेलयेत् ।
क्रमणेन तु मूषायां लेपं दत्त्वा विचक्षणः ।
[1]तुषकर्ष्वग्निना भूमौ स्वेदेन मिलति क्षणात् ॥ २१ ॥
शतवेधी भवेत् सोऽयमारतारे च शुल्वके ।
तस्य मध्ये तथा देया अभ्रहेमद्रुतिः पुनः ॥ २२ ॥
तुषकर्ष्वग्निना स्वेद्यं यावत् सूतावशेषितम् ।
सहस्रवेधी स भवेत् नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २३ ॥
संकलैः संकलैर्बन्धे वेधं दशगुणोत्तरम् ।
सप्तसंकलिकाबद्धः कोटिवेधी महारसः ॥ २४ ॥
शरीरार्थं यदा भक्षेत् गुञ्जामात्रं विचक्षणः ।
त्रिकटुत्रिफलायुक्तं घृतेन मधुना सह ।
जीर्णे जीर्णे तु संग्राह्यं यावत् स्यादष्टरक्तिकाः ॥ २५ ॥

घोड़े का लार, लहसुन, अदरक, नीम का पल्लव, सुहागा, पारद, अभ्रक तथा वज्र (हीरा) इन सबों को एकत्र करे। अभ्रक, हेमद्रुति तथा पारद इन तीन को एकत्र मिलावे और इन सबों के क्रामण से विद्वान् पुरुष मूषायन्त्र में लेप करे धान की भूसी तथा गोहरी की आग से जमीन मे स्वेदन करने से क्षणमात्र में मिल जाता है। यह आर (पीतल), चाँदी तथा ताम्र मे शतवेधी होता है। पुनः उसके मध्य में उसी प्रकार अभ्रक तथा स्वर्ण की द्रुति मिलाकर धान की भूसी तथा गोहरी की आग से पारद अवशिष्ट रहने तक स्वेदन करे। यह सहस्रवेधी होता है। यहाँ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। संकल (मेलापक) के साथ संकल के बेध में उत्तरोत्तर दशगुना वेध होता है। सात संकलिका (मेलापक) से बद्ध होने पर महारस कोटिबेधी होता है। विद्वान् मनुष्य शरीर के लिये एक रत्ती की मात्रा में त्रिकटु, (सोंठ, पीपर,

---

१. कर्षूः = करीषाऽग्निः कर्षूशब्दः स्त्रीलिङ्गः, वधूवत् । तुषश्चेति द्वन्द्वे—अग्निशब्देन षष्ठीसमासः । द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते,

मरिच), तथा त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) मिलाकर घृत तथा मधु के साथ भक्षण करे। जैसे-जैसे पचता जाय वैसे-वैसे आठ रत्ती तक सेवन करे ॥ २०–२५ ॥

शतादिकोटिपर्य्यन्तं संकलैर्यो हतो रसः।
जीवेत्तेन प्रमाणेन वज्रवल्ली यथा रसः ॥ २६ ॥

सौ से लेकर करोड़ पर्यन्त संकलो (मेलापों) से जो मारित पारद है उसके सेवन से उतने ही प्रमाण वर्ष तक जीवित रहता है जैसे वज्रवल्ली का रस सजीव रहता हैं ॥ २६ ॥

हेमाऽभ्र-शुल्बद्रुतिभिः पारदस्तु समन्वितः।
बेधयेत् पूर्व्वयोगेन भक्षयेत् सर्व्वयोगतः।
लभते वैष्णवं स्थानं विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥ २७ ॥

स्वर्ण, अभ्रक तथा ताम्र की द्रुतियों से युक्त पारद का पूर्वोक्त योगों से वेध करे और पूर्वोक्त योगों के साथ भक्षण करे। इससे विष्णु का स्थान तथा विष्णु के तुल्य पराक्रम प्राप्त करता है ॥ २७ ॥

अराभ्रहेमद्रुतयः पारदेन समन्विताः।
बङ्गस्य प्रतिवापेन शतांशे स्तम्भनं ध्रुवम् ॥ २८ ॥

आर (पीतल), अभ्रक तथा स्वर्ण की द्रुतियाँ पारद के साथ मिलाकर बंग के प्रति वाप (प्रक्षेप) से शतांश में अवश्य ही स्तम्भन होता है ॥ २८ ॥

तीक्ष्णमारं तथा हेम पारदेन समन्वितम्।
नागस्य प्रतिवापेन शतांशे स्तम्भनं भवेत् ॥ २९ ॥

तीक्ष्णमार (तीक्ष्ण लोह) तथा स्वर्ण पारद के साथ मिलाकर नाग (सीसा) के प्रतिवाप (प्रक्षेप) से शतांश में अवश्य ही स्तम्भन होता हैं ॥ २९ ॥

तीक्ष्णं घोषं तथा तारं पारदेन समन्वितम्।
बङ्गस्य प्रतिवापेन स्तम्भनं स्याच्छतांशतः ॥ ३० ॥

तीक्ष्ण लोह, घोष (कांस्य) तथा रजत इन सबों को पारद के साथ मिलाकर बङ्ग का प्रतिवाप (प्रक्षेप) देने से सौवें भाग से स्तम्भन होता है ॥ ३० ॥

एवं हि द्रुतियोगास्तु विज्ञातव्या विधानतः।
अनेन द्रुतियोगेन देहलोहकरो रसः[1] ॥ ३१ ॥
इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
द्रुतिबन्धनो नाम त्रयोदशः पटलः ॥ १३ ॥

इस प्रकार विधानपूर्वक द्रुति योगों को जानना चाहिए। इस द्रुतियोग से पारद देह तथा लोह को सिद्ध करने वाला होता है ॥ ३१ ॥

द्रुतिबन्धन नामक त्रयोदश पटल समाप्त।

---

१. द्वादशत्रयोदशपटलयोरन्ते-'तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि' इति न दृश्यते, तत्र द्वादशपटलान्ते, लेखक-प्रमादादन्यस्माद्वा कारणात्त्रुटितं स्यादिति-प्रतीयते। त्रयोदशपटलान्ते तु न त्रुटिः, चतुर्दशपटलादौ देवीप्रश्नं विनैव भैरवोक्तेः।

चतुर्द्दशः पटलः ।

श्रीभैरव उवाच ।

पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि वज्रबन्धं सुरेश्वरि ! ॥ १ ॥

वज्रबन्ध विधि :—बद्ध जारणा निरूपण के बाद भैरव जी बोले। हे सुरेश्वरि ! पुनः मैं दूसरा वज्रबन्ध कहता हूँ ॥ १ ॥

गन्धकं भक्षयेन्नारी दिनानामेकविंशतिम् ।
तद्रजो रसराजस्य बन्धने जारणे हितम् ॥ २ ॥

स्त्री एक्कीस दिन तक गन्धक खाय। उस स्त्री का रज पारद का बन्धन तथा जारण में हितकर है ॥ २ ॥

वज्रभस्म तु भागैकं भागाः शुद्धरसात्त्रयः ।
द्विपदी रजसामर्द्यं यावत्तत् कल्कतां गतम् ॥ ३ ॥
पादांशेन सुवर्णस्य पत्रलेपं तु कारयेत् ॥ ४ ॥
व्योमवल्लीरसं कान्तं टङ्कणं च सुचूर्णितम् ।
अभ्रकमष्टमांशेन खल्ले कृत्वा विमर्द्दयेत् ॥ ५ ॥
नष्टपिष्टं चतुष्कं तद्बन्धयित्वा पुटेत्ततः ।
अन्धमूषागतं ध्मातं क्रामणेन समन्वितम् ।
खोटस्तु[1] जायते देवि ! शतवेधी महारसः ॥ ६ ॥

वज्र भस्म एक भाग, शुद्ध पारद तीन भाग इन दोनोंको द्विपदी (नागकेशर) के रस के साथ मर्दन कर कल्क बनाये। इसके चौथाई भाग से सुवर्ण के पत्र को लिप्त करे। इसके बाद व्योमवल्ली (आकाश वंवर) का रस, कान्त लौह तथा सुहागा का चूर्ण तथा आठवाँ भाग अभ्रक खरल में रखकर मर्दन करे। नष्टपिष्ट (एकरस-एकमेल) हो जाने पर इन चारों को गन्धक मिलाकर पुट दे। इसके बाद अन्धमूषा में रखकर क्रामण के साथ धमन करे। हे देवि ! इससे महारस खोटबन्ध हो जाता हैं तथा वह शतवेधी होता है ॥ ३–६ ॥

सौवीर टङ्कणं काचं दत्त्वा दत्त्वा विशोधयेत् ।

---

१. मूर्छितो मृतसूतश्च, जलूकाबन्ध एव च ।
चतुर्थो मूर्तिबन्धस्तु, पट्टबन्धस्तु पञ्चमः ॥
भस्मसूतश्च 'खोट'श्च संस्कारात्सप्तधा रसः ।

अजीर्णे मिलिते हेम्ना समावर्त्तस्तु जायते ॥ ७ ॥
[१]एकोत्तरक्रमे वृद्धया सङ्कलैः क्रामयेत्ततः ॥ ८ ॥

उस पारद में सौबीराञ्जन, सुहागा तथा काच (विड़ नमक) मिला-मिलाकर शोधन करे। बिना जारण किये ही स्वर्ण के साथ मिल जाने पर समावर्त होता है। इसके बाद एकोत्तर वृद्धिक्रम में संकलों के द्वारा क्रामण कराये ॥ ७–८ ॥

एकगणेन सूतेन एका संङ्कलिकोच्यते।
त्रिगुणेन तु सूतेन द्वितीया सङ्कली भवेत् ॥ ९ ॥
षडगुणेन तु सूतेन तृतया सङ्कली भवेत्।
दश-गुणेन सूतेन चतुर्थी सङ्कली भवेत् ॥ १० ॥
पञ्चदशगुणेनेशि ! पञ्चमी सङ्कली भवेत्।
[२]एकविंशद्गुणेनेशि ! षष्ठी सङ्कलिका मता ॥ ११ ॥
[३]अष्टाविंशद्गुणेनेशि ! सप्तमी सङ्कलो स्मृता।
षट्त्रिंशद्गुणमस्बद्धा भवेत् सङ्कलिकाष्टमी ॥ १२ ॥
पञ्चचत्वारिंशद्गुणैः सङ्कली नवमी मता।
पञ्चपञ्चाशद्गुणेन दशमी सङ्कली स्मृता ॥ १३ ॥
एवञ्च क्रमवृद्धयास्य सङ्कलीदशबन्धनम् ॥ १४ ॥

एकगुना पारद से एक संकलिका कही जाती है। तीनगुना पारद से दूसरी संकलिका होती है। छः गुना पारद से तोसरी संकलिका होती है। दशगुना पारद से चौथी संकलिका होती है। हे ईश्वरि ! पन्द्रहगुना पारद से पाँचवी संकलिका होती है। एक्कीस गुना पारद से छठवीं संकलिका होती है। अठाइस

---

१. एकोत्तरक्रमे = एकोत्त-वृद्ध्या सङ्कलनं (योगे) सङ्कलैः सङ्कलनाजनित-कक्षाभिः, यथा प्रथमम् एकगुणसूतेन एकासङ्कलना, तत्र एकस्मिन् एकोत्त-रक्रमः द्वौ तस्य वृद्धिरेकस्यां सङ्ख्याया योजना अत-उक्तम् त्रिगुणेन तु सूते-न-इति। द्वित्वे—एकोत्तरक्रमवृद्धौ त्रित्वम् त्रिगुणेसूते तस्य योजनाया षट-त्वम्-अत उक्तम्, षड्गुणेन तु सूतेनेति, एवं षड्गुणत्वे-एकोत्तरक्रमस्य चतुष्टयस्य वृद्धौ दशगुणत्वं चतुर्थ्याः सङ्कलनायाः, एवमुत्तरत्र बोध्यम्।

२. अस्मिन् ग्रन्थे'–'एक—विंशत्'—'पञ्च—विंशत्—इत्यादयः प्रयोगा, दृश्यन्ते,—भैरवोक्तत्वात् 'विंशति' शब्दस्यान्त्यलोपः पृषोदरादित्वात्समाधेयः, सिद्धस्य गतिश्चिन्तनोयेति नियमात्।

३. 'दशकोटिस्तथा'–इति पा०।

गुना पारद से सातवीं संकलिका होती है। छत्तीसगुना पारद से आठवीं संकलिका होती है। पैंतालिस गुना पारद से नवीं संकलिका होती है तथा पचपनगुना पारद से दशवीं संकलिका होती है। इस प्रकार क्रमवृद्धि के अनुसार संकली दशबन्धन होता है ॥ ९-१४ ॥

प्रथमे दशवेधी स्यातशतवेधी द्वितीयके।
तृतीये सहस्रवेधी [1]च चतुर्थेऽयुतवेधकः ॥ १५ ॥
पञ्चमे लक्षवेधी स्यात् दशलक्षं तु षष्टके।
सप्तमे कोटवेधी च [2]दशकोटि तथाष्टमे ॥ १६ ॥
भूमावलोको नवमे दशमे शब्दवेधकः।
सङ्कलैः सङ्कलैर्बद्धो वेधो दशगुणो भवेत् ॥ १७ ॥
दश सङ्कलिकाबद्धः शब्दवेधी महारसः।
यथा लोहे तथा देहे क्रमते नात्र संशयः ॥ १८ ॥

एक-एक संकलबन्ध का फल—प्रथम संकल में पारद दशबेधी, द्वितीय संकल में शतबेधी, तृतीय संकल में सहस्र (हजार) बेधी चतुर्थ संकल में अयुत (दश हजार) बेधी, पञ्चम संकल में लक्षबेधी, षष्ठ संकल में दक्षलक्ष बेधी, सप्तम संकल में कोट बेधी, अष्टम संकल में दश कोटि (दश करोड़) बेधी, नवम संकल में भूमावलोक तथा दशम संकल में शब्दवेधक होता है। संकल के साथ संकल का बेध दशगुना होता है। दश संकलिका बद्ध पारद शब्दबेधी होना है। यह बेध जैसे लोह में क्रमण करता है वैसे ही शरीर में भी क्रमण करता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५-१८ ॥

वेधयेत्तत्प्रमाणेन धातूँश्चैव शरीरकम्।
कारयेद्गुटिकां दिव्यां बदरास्थि प्रमाणतः ॥ १९ ॥
महाकालीं पूजयित्वा धारयेत् सततं बुधः।
तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि त्रिदशैरपि दुर्लभम् ॥ २० ॥
प्रणवो [1]भुवनेशीबीजं लक्ष्मीबीजं ततः परम् ॥ २ ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रमाण के अनुसार धातुओं तथा शरीर को बेध करे और बैर की गुठली के प्रमाण की दिव्य गुटिका बनाये। इस गुटिका को विद्वान् व्यक्ति महाकाली की पूजकर निरन्तर धारण करे। देवताओं को भी दुर्लभ उस मन्त्र को बताता हूँ। पहले प्रणव, भुवनेशीबीज और उसके बाद में लक्ष्मी बीज मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए ॥ १९-२१ ॥

---

१ नवाक्षरः पादः, षष्ठस्य लघुत्वम्। २. समासान्तो निपातनात्।

ॐ ह्रीं श्रीं कालिका कालि महाकालि मांसशोणित भोजिनि।
ह्रीं ह्रीं हुं रक्तकृष्णमुखे देवि रससिद्धिं ददस्व मे ॥ २२ ॥
श्रीं ह्रीं ऐं रमा शक्तिश्च ताराख्यो मन्त्रोऽयं सर्वसिद्धिदः ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्रीं कालिका कालि रससिद्धि ददस्व मे श्री ह्रीं ऐं रमा शक्तिश्च यह ताराख्य मन्त्र सभी सिद्धियों को देने वाला है ॥ २२-२३ ॥

पूजयित्वा ततो देवीं सिद्धचक्रं विशेषतः
तां क्षिपेद्वक्त्रमध्ये तु गुटिकां दिव्यरूपिणीम् ॥ २४ ॥

इसके बाद देवी तथा विशेषकर सिद्धचक्र की पूजाकर उस दिव्यरूपवाली गुटिका को मुख में रखे ॥ २४ ॥

शतवेधेन या बद्धा रसेन गुटिका प्रिये!।
मासमेकं तु वक्त्रस्था जीवेच्चैव युगावधि ॥ २५ ॥
तथा सहस्रवेधेन या बद्धा गुटिका शुभा।
मासद्वयं तु वक्त्रस्था जीवेच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २६ ॥
दशसहस्रवेधेन बद्धा च गुटिका यदि।
शक्रतुल्यं तदायुः स्यात् त्रिभिर्मासैर्वरानने! ॥ २७ ॥
लक्षवेधेन या बद्धा गुटिका दिव्यरूपिणी।
चतुर्मासं तु वक्त्रस्था ब्रह्मायुषं प्रयच्छति ॥ २८ ॥
दशलक्षेण या बद्धा गुटिका दिव्यरूपिणी।
पञ्चमासं तु वक्त्रस्था विष्णुतुल्यायुषं[१] लभेत् ॥ २९ ॥
कोटिवेधेन या बद्धा गुटिका दिव्यरूपिणी।
षण्मासं संस्थिता वक्त्रे साक्षाद्वै रुद्रतां नयेत् ॥ ३० ॥
शतकोटिप्रभेदेन गुटिका दिव्यरूपिणी।
सप्तमासं तु वक्त्रस्था स लभेदैश्वरं पदम् ॥ ३१ ॥
धूमावलोकने बद्धा गुटिका शिवरूपिणी।
अष्टमासं तु वक्त्रस्था ईशानस्य फलं लभेत् ॥ ३२ ॥
शब्दवेधेन या बद्धा गुटिका शिवरूपिणी।
नवमासं तु वक्त्रस्था स भवेद्व्यापको नरः ॥ ३३ ॥
नवसङ्कलिकाबद्धः स्वयम्भुर्वा[१] महेश्वरः।

१. 'मितद्र्वादयश्चे'ति डुप्रत्ययः।

कर्त्ता हर्त्ता स्वयं भोक्ता शापानुग्रहकारकः ॥ ३४ ॥
सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सूक्ष्मरूपो निरञ्जनः ।
इच्छया कुरुते सृष्टिमिच्छया संहरेज्जगत् ॥ ३५ ॥
स्वच्छन्दगमनो भूत्वा विश्वरूपो भवेन्नरः ।
पूज्यते सर्वदेवैश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ ३६ ॥

हे प्रिये ! शत वेध रस से जो बद्ध गुटिका है वह एक मास तक मुख में रखने से युगपर्यन्त जीवित रहता है। उसी प्रकार सहस्र वेध से जो बद्ध गुटिका है, वह दो मास तक मुख में रखने से चन्द्र, सूर्य तथा ताराओं की अवधि तक जीवित रहता है। दशसहस्र वेध से बद्ध गुटिका को तीन मास तक मुख में धारण करने पर हे वरारोहे ! उसको आयु इन्द्र के समान हो जाती है। जो दिव्यरूप वाली गुटिका लक्षवेध से बद्ध हो उसको चार माह मुख में धारण करने से ब्रह्मा की आयु को देती है। दशलक्ष वेध से बद्ध गुटिका दिव्यरूप वाली पाँच मास तक मुख में धारण करने से विष्णु के तुल्य आयु प्राप्त करता है। जो दिव्य रूपवाली गुटिका कोटिवेध से बद्ध हो उसको छः मास तक मुख में रखने से वह साक्षात् रुद्ररूप को प्राप्त कराती है। शतकोटि वेध से बद्ध दिव्यरूपवाली गुटिका सात मास तक मुख में रखने से वह मनुष्य ईश्वर के पद को प्राप्त करता है। धूमावलोकन वेध से बद्ध शिवरूप वाली गुटिका आठ मास तक मुख में रखने से ईशान के फल को प्राप्त करता है। शब्दवेध से बद्ध शिवरूपिणी गुटिका को नव मास तक मुख में रखने से मनुष्य व्यापक (सर्वव्यापी) होता है। नव संकलिका से बद्ध पारद मुख में रखने से मनुष्य स्वयंभू या महेश्वर होता है। वह स्वयं कर्ता हर्ता, भोक्ता, शापानुग्रहकारक, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सूक्ष्मरूप तथा निरञ्जन होता है। वह अपनी इच्छा के अनुसार सृष्टि करता है और वह अपनी इच्छा से ससार का संहार करता है। वह मनुष्य स्वच्छन्द गामी होकर विश्वरूप धारण करता है और वह सभी देव, ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर जी से पूज्य होता है ॥ २५–३६ ॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि वज्रबन्धं सुदुर्लभम् ॥ ३७ ॥
समांशं भक्षणं हेम शुद्धसूतेन कारयेत् ।
मृतवज्रं पलांशेन मर्दयेद्विपदीरसैः ॥ ३८ ॥
प्रागवच्छेषं पुराजातं हंसपाद्या विमर्द्दितम् ।
भावितं पुटितं रत्नैः पूर्ववत् सफलं भवेत् ॥ ३९ ॥
वज्रबद्धो भवेत् सिद्धो देवदानवदुर्जयः ।
चतुर्विंशतिसिद्धानां नायकः सर्वसिद्धिदः ॥ ४० ॥

पुनः दूसरे अत्यन्त दुर्लभ वज्रबन्ध कहता हूँ। समभाग स्वर्ण को शुद्ध पारद से भक्षण कराये और वज्रभस्म एक पल के साथ द्विपदी (नागकेशर) के रस के साथ मर्दन करे। पहले की तरह शेष तथा पहले का निर्मित कल्क को हंसपादी (गोधावती) के रस के साथ मर्दन करे और भावित कर रत्नों के साथ पुट देने से पूर्ववत् सफल (सिद्ध) हो जाता है। वज्र-बद्ध पारद से सिद्ध मनुष्य देवता तथा दानवों से दुर्जय होता है। वह चौबीस सिद्धों का नायक तथा सभी सिद्धियों का देने वाला है॥ ३७–४०॥

वज्रचूर्णसमं सूतं हंसपाद्या विमर्दयेत्।
पुटित्वा मारयेत्तं तु पुनस्तुल्यं रसं क्षिपेत्॥ ४१॥
ध्मातः खोटो भवत्याशु शोधितः काचटङ्कणैः।
यावच्छक्रोदयप्रख्यो जायते स रसः प्रिये!॥ ४२॥
वज्रसत्त्वं च गगनं रसं हेम च मेलयेत्।
अमरत्वमवाप्नोति वक्त्रस्थेन सुराधिपे!॥ ४३॥

वज्र (हीरा) चूर्ण के बराबर पारद मिलाकर हंसपादी (गोधावती) के रस के साथ मर्दन करे और पुट देकर उसका मारण करे। पुनः समभाग पारद छोड़ दे। वह धमन करने से शीघ्र ही खोट हो जाता है। इसको विड़ नमक तथा सुहागा के साथ शुद्ध करने से जब शक्रोदय (वीरबहूटी) की तरह पारद हो जाता है, उस रस में वज्रसत्व, अभ्रक, पारद तथा स्वर्ण को मिला दे। हे सुराधिप! इसको मुख में धारण करने से अमरत्व को प्राप्त करता है॥ ४१-४३॥

जारयित्वा रसं तद्धि पुनस्तेनैव जारयेत्।
कोटिवेधी न सन्देहो वक्त्रस्थः खेचरं पदम्॥ ४४॥

पूर्वोक्त रस का जारण कर पुनः पूर्ववत् जारण करे। वह रस कोटिवेधि होता है और वह मुख में रखने पद खेचर पर (आकाश में परिभ्रमण करने की शक्ति) को प्राप्त करता है॥ ४४॥

वेधयेत्तत्प्रमाणेन धातुं चैव शरीरकम्।
कारयेद्गुटिकां दिव्यां वज्रसिद्धेन काञ्चने॥ ४५॥
अनेन क्रमयोगेन यावच्छक्यं तु मारयेत्।
तद्भस्मसूतकं देवि! सर्वरोगनिवर्हणम्॥ ४६॥

पूर्वोक्त प्रमाण के अनुसार धातु तथा शरीर का वेध करे और स्वर्ण में सिद्ध वज्र से दिव्य गुटिका बनावे। इसी क्रम से जबतक शक्य हो तबतक मारण करे। हे देवि! यह पारद भस्म सभी रोगों को दूर करता है॥ ४५–४६॥

हेम्ना च सारयित्वादौ चन्द्रार्कं[1] लेपयेत्ततः।
द्वात्रिंशांशेन हेमार्द्धं मात्रिकाभ्यधिकं भवेत् ॥ ४७ ॥
बदरास्थिप्रमाणेन कारयेद्गुटिकां बुधः।
यथा लोहे तथा देहे क्रमते नान्यथा क्वचित् ॥ ४८ ॥

पहले पारद को स्वर्ण के साथ सारण कर उससे रजत तथा ताम्र पत्र को लिप्त करे। इसके बाद बत्तीसवें भाग के साथ स्वर्ण का आधा भाग अधिक होता है। बुद्धिमान् व्यक्ति उसका बेर की गुठली के प्रमाण की गुटिका बनावे। यह गुटिका जैसे लोह में वैसे ही शरीर में क्रमण करती है। अन्यथा कभी भी क्रमण नहीं करती ॥ ४७-४८ ॥

वज्रेण द्रुन्द्रितं हेम कान्तशुल्वकयोजितम्।
रञ्जयेत् सप्तवाराणि तं खोटं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ४९ ॥
भावितं स्त्रीरजस्येव गुञ्जापञ्चमितं युतम्।
भूर्ज्जपत्रे निवेश्याथ बद्ध्वा वस्त्रेण पोटलीम्।
स्वेदयेद्देवदेवेशि ! यावद्भवति गोलकम् ॥ ५० ॥
लाङ्गला जीवकश्चैव मुस्तायुक्तेन्द्रवारुणी।
एतेषां निक्षिपेत् पिण्डे वज्रगालं तु वेष्टयेत् ॥ ५१ ॥
मूषामध्ये तु निक्षिप्य, अन्धयित्वा प्रयत्नतः।
भूमौ मूषां विनिक्षिप्य पुटं मूर्ध्नि प्रदापयेत् ॥ ५२ ॥
अनेनैव प्रदानेन बन्धमेति महारसः ॥ ५३ ॥

वज्र के साथ द्रुन्द्रित कान्त लौह तथा ताम्र मिलाकर सात बार रञ्जित करे। इसके बाद उस खोट को चूर्ण कर स्त्री के रज में पांच रत्ती की मात्रा में मिलाकर भावित करे और उसे भोजपत्र पर रखकर तथा वस्त्र की पोटली में बांध कर स्वेदन करे। हे देवेशि ! तब तक स्वेदन करे जब तक गोलक न बन जाय। इस गोलक को लांगली (कलिहारी), जीवक, नागरमोथा, इन्द्रवारुणी इन सबों के कल्क के मध्य में रक्खे और वज्रगालक को वेष्टित कर दे। तदनन्तर मूषा में रखकर प्रयत्नपूर्वक बन्द कर तथा जमीन में मूषा को रखकर उसके ऊपर पुट दे। इसी प्रकार से पुट देने से पारद बन्धन में आ जाता है ॥ ४९-५३ ॥

गोलकं धारयेद्वक्त्रे वर्षमेकं यदि प्रिये !।
जीवेत् कल्प सहस्राणि यथा नागो महाबलः ॥ ५४ ॥
वर्षैर्द्वादशभिः साक्षात् रुद्ररूपस्तु जायते।

---

१. चन्द्रा रजतम्, अर्कस्ताम्रम्।

गात्रस्य तस्य प्रस्वेदात् अष्टौ लोहास्तु काञ्चनम् ॥ ५५ ॥

हे प्रिये ! इस गोलक को यदि एक वर्ष तक मुख में रक्खे तो सहस्र कल्प तक जीवित रहता है जैसे महान् पराक्रमी नाग सहस्र कल्प तक जीवित रहता है। ग्यारह वर्ष तक मुख में रखने पर साक्षात् रुद्ररूप हो जाता है। उसके गात्र के स्वेद से आठों लोह स्वर्ण हो जाते हैं ॥ ५४–५५ ॥

वज्रभस्म तथा सूतं काञ्चनेन समन्वितम् ।
वक्त्रस्थं कुरुते यस्तु सोऽब्दात् पलितवर्जितः ॥ ५६ ॥

वज्रभस्म तथा पारद को स्वर्ण के साथ मिलाकर एक वर्ष तक मुख में जो रखता वह पलित (असमय में बाल पकना) रोग से रहित हो जाता है ॥ ५६ ॥

कृष्णाभ्रकस्य सत्वं च तारं ताम्रं च हाटकम् ।
माक्षिकं कान्ततीक्ष्णं च समभागानि कारयेत् ॥ ५७ ॥
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ।
तं खोटं सूक्ष्मचूर्णन्तु द्रुतसूतेन गोलकम् ॥ ५८ ॥
मृतवज्रस्य भागैकं भागाश्चत्वारि गोलकम् ।
मर्दयेत्तप्तखल्वेन भस्मीभवति सूतकः ॥ ५९ ॥
मारयेद्भूधरे यन्त्रे सप्तसङ्कलिकाक्रमात् ।
गुञ्जामात्रं तु तद्भस्म मध्वाज्येन तु लेहयेत् ॥ ६० ॥
संवत्सरप्रयोगेण ह्ययुतायुर्भवेन्नरः ।
वलीपलितनिर्मुक्तो महाबलपराक्रमः ॥ ६१ ॥

काली अभ्रक का सत्व, रजतभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्ण, माक्षिक तथा कान्त तीक्ष्ण लोह समभाग इन द्रव्यों को एकत्र कर अन्धमूषा में रखकर धमन करने से क्षणमात्र में खोट हो जाता है। उस खोट को सूक्ष्म चूर्ण बनाकर द्रुत पारद के साथ गोलक बना ले। वज्रभस्म एक भाग तथा गोलक चार भाग इन दोनों को तप्तखरल में रखकर मर्दन करे। इस प्रकार मर्दन करने से पारद भस्म हो जाता है। पुनः भूधर यन्त्र में रखकर सात संकलिका क्रम से धमन करे। इसके बाद इस भस्म को एक रत्ती (१२० मि० ग्रा०) की मात्रा में मधु तथा घृत के साथ चाटे। इस भस्म को एक वर्ष तक सेवन करने से मनुष्य दश हजार वर्ष तक की आयु वाला हो जाता है और बली-पलित रोग से रहित महान् बल तथा पराक्रम से युक्त होता है ॥ ५७–६१ ॥

तद्भस्मपलमेकन्तु पलैकं गन्धकस्य च ।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ ६२ ॥

जीवेत् कल्पसहस्राणि यथानङ्गो महाबलः।
तस्य मूत्रपुरीषेण लोहान्यष्टौ च काञ्चनम् ॥ ६३ ॥

पूर्वोक्त भस्म एक पल (५० ग्राम) तथा गन्धक एक पल इन दोनों को मूषा में रखकर धमन करने से शीघ्र ही खोट हो जाता है। इसको सेवन करने से मनुष्य कामदेव के सदृश बलवान् होकर हजार कल्प तक जीवित रहता है। उसके मूत्र तथा विष्ठा से आठों लोह स्वर्ण हो जाते हैं ॥ ६२-६३ ॥

तं खोटं रञ्जयेत् पश्चात् बङ्गाभ्रक-कपालिना।
रञ्जयेत् सप्तवाराणि भवेत् कुङ्कुमसन्निभम् ॥ ६४ ॥
हेम्ना सह समावर्त्त्य सारणात्रय-सारितम्।
सहस्रांशेन तेनैव सर्वलोहानि वेधयेत् ॥ ६५ ॥

पूर्वोक्त खोट को बंग तथा अभ्रक का दो कपाल (शराव के आकार का) बनाकर उसमें रखकर धमन के द्वारा रञ्जन करे और यह रञ्जन सात बार करे। इससे कुंकुम के सदृश वर्ण वाला हो जाता है। इसको स्वर्ण के साथ मिलाकर तीन बार सारणा के द्वारा सारित करे और उसी के हजारवें भाग से सभी लौहों का वेध करे ॥ ६४-६५ ॥

कृष्णाभ्रकस्य सत्त्वञ्च तारं ताम्रञ्च हाटकम्।
तीक्ष्णं च बद्धसूतं च माक्षिकञ्च समन्वितम् ॥ ६६ ॥
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटी भवति तत्क्षणात्।
हेम्ना सह समावर्त्त्य सारणात्रयसारितम् ॥ ६७ ॥
शतांशेन तु तेनैव शुल्ववेधं प्रदापयेत्।
जायते कनकं दिव्यं देवाभरणभूषणम् ॥ ६८ ॥

काले अभ्रक का सत्त्व, रजत, ताम्र, स्वर्ण, तीक्ष्णलोह, बद्ध पारद तथा माक्षिक को मिलाकर अन्धमूषा में रखकर धमन करने से तत्काल खोट हो जाता है। इस खोट को स्वर्ण के साथ तीन सारणा से सारित कर उसी के सौवें भाग से ताम्र का वेध करे। इससे देवताओं का आभरण भूषण दिव्य स्वर्ण हो जाता है ॥ ६६-६८ ॥

बद्धसूतस्य भागैकं भागैकं पन्नगस्य च।
हाटकस्य च भागैकं भागैकं चाभ्रकान्तयोः ॥ ६९ ॥
एकीकृत्य तु तद्ध्माप्यं रसे जीर्णं तु जारयेत्।
शतांशेन तु तेनैव शुल्ववेधं प्रदापयेत् ॥ ७० ॥

बद्ध पारद एक भाग, पन्नग एक भाग, स्वर्ण एक भाग तथा अभ्रक एवं कान्त लोह एक-एक भाग इन सबों को एकत्र कर धमन करे और धमन करने

से रस के जीर्ण हो जाने पर जारण करे। इसी के सौंवा भाग से शुल्व वेध करे। (इससे स्वर्ण हो जाता है)॥ ६९-७० ॥

बद्धसूतस्य भागैकं भागैकं कुटिलस्य च।
अन्धमूषा गतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ ७१ ॥
तस्य खोटस्य भागैकं भागैकं गन्धकस्य च।
अन्धमूषागतं ध्मातं यावद्वङ्गावशेषितम् ॥ ७२ ॥
अनेन क्रमयोगेन वङ्गं निर्वाप्य षड्गुणम्।
अनेन क्रमयोगेन वहेन्नागञ्च षड्गुणम् ॥ ७३ ॥
तद्रस रञ्जयेत् पश्चात् तीक्ष्णशुल्वकपालिना।
रञ्जयेत् तत् प्रयत्नेन यावत् कुङ्कुमसन्निभम् ॥ ७४ ॥
हेम्ना सह समावर्त्य सारणात्रयसारितम्।
शतांशे वेधयेत् शुल्वं दिव्यं हेम प्रजायते ॥ ७५ ॥

बद्ध पारद एक भाग, बंग एक भाग इन दोनों को अन्ध मूषा में रखकर धमन करने से तत्काल खोट हो जाता है। उस खोट का एक भाग तथा गन्धक एक भाग इन दोनों को अन्धमूषा में रखकर वंग अवशेष रहने तक धमन करे। इस क्रम से छःगुना वंग का निर्वाप (एक-एक भाग वंग मिलाकर) कर धमन करे। इसी प्रकार नाग का छः बार निर्वाप कर धमन करे। इसके बाद उस रस को तीक्ष्ण लोह तथा ताम्र के कपाल से रञ्जन करे। तबतक रञ्जन करे जबतक वह कुंकुम के सदृश वर्ण वाला न हो जाय। इसको स्वर्ण के साथ मिलाकर तीन बार सारणा के द्वारा सारित करे और शुल्व (ताम्र) को शतांश से वेध करे। इससे दिव्य स्वर्ण हो जाता है ॥ ७१-७५ ॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि द्रवसंस्कारमुत्तमम् ॥ ७६ ॥
रञ्जयेत् शुद्धकनकं तीक्ष्णशुल्बकपालिना।
पक्वबीजस्य भागैकं भागैकं द्रुतसूतकम्।
मर्द्दयेन्मध्यमाम्लेन गोलकं भवति क्षणात् ॥ ७७ ॥

द्रव्यों के संस्कार का निरूपण।—पुनः उत्तम द्रव्य संस्कार को कहता हूँ। तीक्ष्ण लोह तथा ताम्र के कपाल से शुद्ध कनक (स्वर्ण) का रञ्जन करे। पक्वबीज[1] एक भाग द्रुत पारद एक भाग इन दोनों को मध्यम-अम्ल के साथ मर्दन करे। इससे वह क्षणभर में गोलक हो जाता है ॥ ७६-७७ ॥

---

१. अष्टम पटल में बीज निर्माण, पक्वबीज एवं बीज रञ्जन देखें।

मृतवज्रस्य भागैकं भागाश्चत्वारि गोलकम् ।
मर्द्दयेत् तप्तखल्लेन भस्मीभवति सूतकम् ॥ ७८ ॥
मारयेद्भूधरे यन्त्रे सप्तसङ्कलिका क्रमात् ।
तद्भस्म तु पुनः पश्चात् मध्यमाम्लेन मर्द्दयेत् ॥ ७९ ॥
पुटं दद्यात् प्रयत्नेन [1]षष्ठ्याऽधिकशतत्रयम् ।
तद्भस्म जायते दिव्यं सिन्दूरारुणसन्निभम् ॥ ८० ॥
तेनैव वेधयेत्तारं सहस्रांशेन काञ्चनम् ।

वज्रभस्म एक भाग तथा गोलक (पूर्वोक्त) चार भाग इन दोनों को तप्त खरल में रखकर मर्दन करे । इससे पारद भस्म हो जाता है । पुनः उसको भूधर यन्त्र में रखकर सप्त संकलिका के क्रम से मारण करे । उस भस्म का पुनः मध्यमाम्ल के साथ मर्दन करे और प्रयत्नपूर्वक तीन सौ साठ बार पुट दे । वह भस्म दिव्य सिन्दूर की अरुणिमा के सदृश हो जाता है । उसी के हजारहवां भाग से चाँदी का बेध करे । वह स्वर्ण हो जाता है ॥ ७८–८०½ ॥

मृतवज्रस्य भागैकं भागाः षोडश सूतकम् ॥ ८१ ॥
देवदाली-शंखपुष्पी रसेन मर्दितं क्रमात् ।
मारयेद्भूधरे यन्त्रे भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ८२ ॥
फूत्काराणां सहस्रेण [2]धाम्यमानो न गच्छति ।
ईदृशं भस्मसूतं च देहे लोहे च योजयेत् ॥ ८३ ॥

वज्रभस्म एक भाग तथा पारद सोलह भाग इन सबों को देवदाली (बन्दाल-बांझी) एवं शंखपुष्पी के साथ क्रमशः मर्दन कर भूधर यन्त्र में मारण करे । वह तत्काल भस्म हो जाता है । वह हजारों फूक से धमापन करने पर भी नहीं जाता अर्थात् नष्ट नहीं होता है । इस प्रकार के पारद भस्म को देह सिद्धि एवं लोह सिद्धि में प्रयोग करे ॥ ८१-८३ ॥

तद्भस्मपलमेकं तु पलमेकं तु गन्धकम् ।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ ८४ ॥
तं खोटं रञ्जयेत् पश्चात् कापालिक्रमयोगतः ।
सारणात्रययोगेण शुल्ववेधं प्रदापयेत् ॥ ८५ ॥

पूर्वोक्त पारद भस्म एक पल तथा गन्धक एक पल (५० ग्राम) लेकर

---

१. अधिकं च तच्छतत्रयमिति—सापेक्षतायां समासे—निरपेक्षतार्थमाह—षष्ठ्या—इति । देवदत्तस्य गुरुकुलमितिवत् ।

२. ध्माप्यमानो न गच्छति—इति पाठः साधुः ।

अन्ध मूषा यन्त्र में रखकर धमन करने से तत्काल खोट हो जाता है। उस खोट को कपालिका क्रम योग (पूर्वोक्त लोह-ताम्र कपाल आदि) से रञ्जन करे तीन बार सारणा द्वारा सारित कर ताम्र का वेध करे ॥ ८४-८५ ॥

भस्मसूतपलैकं च पलैकं पन्नगस्य च।
पुटेन जायेत भस्म [1]सिन्दूरारुणसन्निभम् ॥ ८६ ॥
तद्भस्म तु [2]पुनः पश्चाद्-गोपित्तेन तु मर्दयेत्।
ताम्रपात्रेण तत् कृत्वा मर्दयेल्लोहमुष्टिना ॥ ८७ ॥
मृद्वग्निना ततः पाच्यं यावन्नागेन मेलनम् ॥ ८८ ॥

पारद का भस्म एक पल तथा पन्नग का भस्म एक पल इन दोनों की पुट देने से सिन्दूर की लालिमा सदृश भस्म हो जाता है। उस भस्म को गाय के पित्त के साथ मर्दन करें और उसको ताम्र के पात्र में रखकर लोहे की मुष्टि (लोहे का लाढ़िया) से मर्दन करे। इसके बाद मन्द आंच से पकावे जब तक वह नाग (पन्नग) मिल न जाय ॥ ८६-८८ ॥

तद्भस्मभागमेकं तु भागैकं हेमगोलकम्।
एकीकृत्याथ संमर्द्य क्रामणेन सहैकतः ॥ ८९ ॥
तारारिष्टं तु तेनैव सहस्रांशेन काञ्चनम्।
अनेन क्रमयोगेण वङ्गभस्म प्रजायते ॥ ९० ॥
सहस्रांशेन तेनैव शुल्ववेधं प्रदापयेत्।
तच्छुल्वं जायते तारं शङ्खकुन्देंदुसन्निभम् ॥ ९१ ॥

पूर्वोक्त वह भस्म एक भाग तथा हेम गोलक एक भाग इन दोनों को एकत्रकर तथा क्रामण के साथ मर्दन कर एक तरफ से ताराग्ष्टि को भी मिला कर उसी के हजारहवां भाग से स्वर्ण बनाये। इसी क्रम के अनुसार वंग भस्म भी तैयार हो जाता है। इसी वंग के भस्म हजारहवां भाग से ताम्र को वेध दे। इससे वह ताम्र शंख, कुन्द तथा चन्द्रमा सदृश स्वच्छ आभा वाला रजत हो जाता है ॥ ८९-९१ ॥

श्वेताभ्रकस्य सत्त्वं च कान्ताकान्तं तथाऽयसम्।
वङ्गं तारं श्वेतं वैक्रान्तञ्च कदम्बकम् ॥ ९२ ॥
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटं कुन्देन्दुसन्निभम्।

१. सिन्दूरस्य यदरुणमरुणत्वं तत्तुल्यमित्यर्थः।
२. 'पुनः पश्चादित' द्विरुक्ता भाषा लोकेऽपि प्रचलति। एव मुत्तरत्रं।

तं खोटं सूक्ष्मचूर्णं तु द्रुतसूतेन गोलकम् ॥ ९३ ॥

श्वेताभ्रक का सत्व, कान्त लौह तथा सामान्य लौह, वंग, रजत, श्वेत-वैक्रान्त तथा कदम्ब (कदम्ब को छाल) इन सबों को अन्धमूशा में रखकर धमन करने से कुन्द तथा चन्द्रमा सदृश शुभ्रवर्ण वाला खोट हो जाता है। इस खोट को महीन चूर्ण बनाकर द्रुत पारद के साथ गोलक बनाये ॥ ९२-९३ ॥

मृतवज्रस्य भागैकं भागाश्चत्वारि गोलकम्[1] ।
मर्द्दयेत्तप्तखल्लेन भस्मीभवति सूतकः ॥ ९४ ॥
मारयेद्भूधरे यन्त्रे सप्तसङ्कलिका क्रमात् ।
ततश्च जायते भस्म शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ ९५ ॥

वज्रभस्म एक भाग तथा पूर्वोक्त गोलक चार भाग इन दोनों को तप्त खरल में मर्दन करने से पारद भस्म हो जाता है। उस भस्म को भूधर यन्त्र में रखकर सप्त सकलिका के क्रम से मारण करे। इसके बाद वह शंख, कुन्द तथा चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण का भस्म हो जाता है ॥ ९४–९५ ॥

तद्भस्म पलमेकं तु पलमेकं तु गन्धकम् ।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ ९६ ॥
तारेण च समावर्त्य सारणात्रयसारितम् ।
सहस्रांशेन तेनैव शुल्ववेधं प्रदापयेत् ॥ ९७ ॥

पूर्वोक्त भस्म एक पल तथा गन्धक एक पल (५० ग्राम) इन दोनों को अन्धमूषा में रखकर धमन करने से तत्काल खोट हो जाता है। उसको रजत के साथ मिलाकर तीन बार सारणा द्वारा सारित कर उसी के हजारहवां भाग से ताम्र का वेध करे ॥ ९६-९७ ॥

तीक्ष्णसूतपलान्यष्टौ द्रुतसूतपलाष्टकम् ।
मर्द्दयेत्तप्तखल्लेन कुष्ठच्छीली रसेन च ॥ ९८ ॥
तत्क्षणाज्जायते पिण्डं तीक्ष्णेन सह गोलकम् ।
मर्द्दयेत्तप्तखल्लेन भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ९९ ॥
मारयेद्भूधरे यन्त्रे सप्तसङ्कलिकाक्रमात् ।
षोडशांशेन तेनैव वङ्गवेधं प्रदापयेत् ॥ १०० ॥

तीक्ष्ण सूत आठ पल तथा द्रुत सूत आठ पल इन सबों को तप्त खरल में कुष्ठच्छीली रस (कुष्ठ चोली रस) के साथ मर्दन करे वह उसी समय पिण्ड

---

१. भाग--चत्वारि, गोलकम्--इति समस्तः-पाठः सुगमः, गोलकविशेषणत्वेन क्लीबत्वम् एवमुत्तरत्र ।

गोलक हो जाता है। पिण्ड गोलक को लौह के साथ तप्त खरल में मर्दन करे। उससे तत्काल भस्म हो जाता है। पुनः उसको भूधर यन्त्र में सप्त संकलिका क्रम से मारण करे और उसी के सोलहवां भाग से वंग का वेध करे ॥ ९८-१०० ॥

तद्भस्मपलमेकन्तु पलैकं गन्धकस्य च।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ १०१ ॥
तस्य खोटस्य भागं च तीक्ष्णचूर्णं च तत्समम्।
द्वौ भागौ द्रुतसूतस्य सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १०२ ॥
तप्तखल्ले तु सम्मर्द्य गोलको भवति क्षणात्।
मारयेद्भूधरे यन्त्रे सप्तसङ्कलिकाक्रमात् ॥ १०३ ॥
तत् सर्वं जायते भस्म शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम्।
तद्भस्म कारयेत् खोटं तीक्ष्णेन द्वन्द्वितं सह ॥ १०४ ॥
अनेन क्रमयोगेण सप्तसङ्कलिकाक्रमात्।
तद्भस्म जारयेत् पश्चात् सारणात्रयसारितम् ॥ १०५ ॥
लक्षांशेन तु तेनैव वङ्गवेधं प्रदापयेत्।

पूर्वोक्त भस्म एक पल तथा गन्धक एक पल (५० ग्राम) इन दोनों को अन्धमूषा में रखकर धमन करने से तत्काल खोट हो जाता है। उस खोट का एक भाग तथा तीक्ष्ण लोह चूर्ण एक भाग, द्रुत सूत दो भाग इन सबों को एकत्र मर्दन करे। तप्तखरल में मर्दन करने से उसी समय गोलक हो जाता है। उसको भूधर यन्त्र में रखकर सप्त संकलिका क्रम से मारण करे। यह सब शंख, कुन्द एवं चन्द्रमा के सदृश श्वेतवर्ण का भस्म हो जाता है ॥ १०१-१०३½ ॥

पूर्वोक्त भस्म को तीक्ष्ण लोह के साथ द्वन्द्वित खोट बनाये। इस क्रमयोग के अनुसार सप्त संकलिका क्रम से उस भस्म का जारण करे। तत्पश्चात् तीन बार सारणा क्रम से सारित उसी भस्म के लक्षांश से वङ्ग का बेध करे ॥ १०४-१०५½ ॥

भस्मसूतपलैकं तु शुद्धं वङ्गं प्रलेपयेत् ॥ १०६ ॥
मर्दयेदायसे पात्रे वङ्गन्तु म्रियते क्षणात्।
द्विपलं मृतवङ्गस्य तारचूर्णं पलद्वयम् ॥ १०७ ॥
द्विपलं गन्धकं दद्यात् पलकं टङ्कणस्य च।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ १०८ ॥
पलैकं चूखोटणस्य पलैकं द्रुतसूतकम्।

मर्द्येन्मातुलुङ्गाम्लैः गोलको भवति क्षणात् ॥ १०९ ॥
षोडशांशेन तेनैव शुल्ववेधं प्रदापयेत् ।

पारद भस्म एक पल से शुद्ध वंग को लिप्त करे और लौह पात्र में मर्दन करे। इसमें वंग तत्काल मृत हो जाता है। मृतवंग दो पल (१०० ग्राम) रजत चूर्ण दो पल, गन्धक दो पल तथा सुहागा एक पल इन सबों को अन्धमूषा में रखकर धमन करने से थोड़े समय में खोट हो जाता है। खोट चूर्ण एक पल (५० ग्राम) तथा द्रुतपारद एक पल इन दानों को विजौरा निम्बु के रस के साथ मर्दन करे। इससे तत्काल गोलक हो जाता है। उसी के सोलहवां भाग से ताम्र का वेध करे ॥ १०६–१०९½ ॥

वङ्गस्थाने ददेन्नागं तारस्थाने तु काञ्चनम् ॥ ११० ॥
पूर्ववत् [1]क्रमयोगेण रसं खोटन्तु कारयेत् ।
तं खोटं सूक्ष्मचूर्णं तु द्रुतसूतेन गोलकम् ॥ १११ ॥
षोडशांशेन तेनैव तारारिष्टं तु वेधयेत् ॥ ११२ ॥

वंग के स्थान में नाग का तथा रजत के स्थान में स्वर्ण का प्रयोग करे। पूर्ववत् क्रमयोग के अनुसार पारद को खोट करे। उस खोट के सूक्ष्म चूर्ण को द्रुत सूत के साथ गोलक बनाये। उसी गोलक के सोलहवां भाग से तारारिष्ट का वेध करे। ११०–११२ ॥

मृतवङ्गपलैकं तु पलैकं सूतकस्य च ।
सत्त्वचूर्णपलैकं तु त्रयमेकत्र मेलयेत् ॥ ११३ ॥
मर्द्येन्मातुलुङ्गाम्लैः गोलको भवति क्षणात् ॥ ११४ ॥

मृत वंग एक पल, पारद एक पल तथा सत्व चूर्ण एक पल इन तीनों को एकत्र मिला दे और विजौरा निम्बु के रस के साथ मर्दन करे। यह तत्काल गोलक हो जाता है ॥ ११३–११४ ॥

मृतवज्रस्य भागैकं भागाश्चत्वारि गोलकम् ।
एकत्र मर्दयेत् खल्ले ओषधीद्रवसंयुतम् ॥ ११५ ॥
मारयेद्भूधरे यन्त्रे पुटानां सप्तकेन तु ।
तत् सर्वं जायते भस्म वज्रस्यैव प्रभावतः ॥ ११६ ॥
सामुद्रं त्रिफलं देवि ! भास्ममध्ये प्रदापयेत् ।
एकीकृत्याथ संमर्द्य वज्रीक्षीरे दिनत्रयम् ॥ ११७ ॥

---

१. क्रमयोगेणेत्यत्र 'कुमतिचेति' णत्वनिषेधो न्याय्यः, एवमुत्तरत्र ।

विश्वामित्रकपालस्थं पुटं दद्यात्तु भूधरे।
तत् सर्वं जायते भस्म शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ ११८ ॥
तेनैव यवमात्रेण वङ्गं स्तम्भयति क्षणात्।

मृतवज्र एक पल और पूर्वोक्त गोलक चार भाग इन सबों को खरल में ओषधि (वनस्पति) के साथ मर्दन करे और भूधर यन्त्र में रख सात बार पुट देकर मारण करे। वे सब वज्र के प्रभाव से भस्म हो जाते हैं। हे देवि ! भस्म के मध्य में सामुद्र नमक तथा त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) मिला दें। इन सबों को एकत्र कर सेंहुड़ के दूध के साथ तीन दिन तक मर्दन करे विश्वामित्र कपाल में रखकर भूधर यन्त्र में पुट दे। इससे वह सब शंख, कुन्द तथा चन्द्रमा सदृश श्वेत वर्ण का भस्म हो जाता है। इसी भस्म के केवल एक यव क्षणभर में वंग को स्तम्भन करता है ॥ ११५–११८½ ॥

वङ्गं तारं तथा सत्त्वं समसूतेन गोलकम् ॥ ११९ ॥
अनेन क्रमयोगेण मारयेच्च पृथक् पृथक्।
तत् सर्वं जायते भस्म वज्रस्यैव प्रभावतः ॥ १२० ॥

वंग, रजत, सत्व तथा पारद समभाग मिलाकर गोलक बनाये। इस क्रम से अलग-अलग मारण करे। इस प्रकार वज्र के प्रभाव से वह सब भस्म हो जाता है ॥ ११९–१२० ॥

भस्मसूतपलैकं च वङ्गभस्मपलद्वयम्।
द्वे पले मृततारस्य सत्त्वभस्मपलद्वयम् ॥ १२१ ॥
शङ्खचूर्णपलं पञ्च सामुद्रस्य पलाष्टकम्।
टङ्कणस्य पलान्यष्टौ सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १२२ ॥
वज्रीक्षीरेण संपेष्य पुटं दद्याच्चतुर्दश।
एष सिद्धरसः साक्षात् दुर्लभस्त्रिदशैरपि ॥ १२३ ॥

पारद भस्म एक पल, वंग भस्म दो पल, रजत भस्म दो पल, सत्व भस्म दो पल, शंख चूर्ण पांच पल (२५० ग्राम), सामुद्र नमक आठ पल तथा सुहागा आठ पल इन सबों को एकत्र कर मर्दन करे और सेंहुड के दूध के साथ पीसकर चौदह पुट दे। यह साक्षात सिद्ध रस देवताओं को भी दुर्लभ है ॥१२१-१२३॥

वङ्गं तु द्रावयेत् पश्चात्, भाण्डे चैव तु मृन्मये।
सिद्धं भस्म भवेल्लोह-शलाकेन च चालयेत् ॥ १२४ ॥
वापयेच्च प्रयत्नेन यावत कठिनतां व्रजेत्।
मूअन्ध षागतं ध्मातं तारं भवति शोभनम् ॥ १२५ ॥

पहले वंग का द्रावण करे मिट्टी के पात्र में रखकर बाद में सिद्ध भस्म मिला दे तथा लोहे को शलाका से चलायें तथा सिद्ध भस्म छोड़ता रहे जब तक वह कठोर न हो जाय। इसके बाद अन्धमूषा में रखकर धमन करने से सुन्दर रजत हो जाता है ॥ १२४-१२५ ॥

कदाचित् पुटिते तारे पुनर्वङ्गं प्रदापयेत्।
पत्रे दाहे कषे च्छेदे तत्तारं शाश्वतं भवेत् ॥ १२६ ॥
स्तम्भितं तत्तु गोलं च षोडशांशसमन्वितम्।
मृतवज्रस्य भागैकमेकत्रैव तु मर्दयेत् ॥ १२७ ॥
देवदाली शङ्खपुष्पी तद्रसेन तु मर्दयेत्।
मारयेद्भूधरे यन्त्रे पुटानां सप्तकेन तु ॥ १२८ ॥
तद्भस्म तु पुनः पश्चात् दीपयन्त्रेण पाचयेत् ॥ १२९ ॥

किसी समय रजत के पुट में पुनः वंग को मिला दे। वह पत्र बनाने में जलाने में कसने में तथा छेदन करने पर निरन्तर वह रजत ही रहता है। सोलहवां भाग वंग के साथ स्तम्भित रजत गोलक में वज्र भस्म एक भाग मिलाकर एक जगह मर्दन करे। देवदाली (बंदाल) तथा शंखपुष्पी के रस के साथ उसको मर्दन करे और भूधर यन्त्र में रखकर सात पुट देकर मारण करे। पुनः उस भस्म को दीपयन्त्र के द्वारा पाचन करे ॥ १२६-१२९ ।

भस्मसूतपलैकं च श्वेताभ्रकपलद्वयम्।
शङ्खचूर्णपलैकं तु पलैकं तु टङ्कणस्य च।
एकीकृत्याथ तत् सर्वं वज्रीक्षीरेण पेषयेत् ॥ १३० ॥
आरण्योपलकैः पश्चात् पुटं दद्याच्चतुर्दश।
रसोऽयं यवमात्रेण बङ्गं स्तम्भयति क्षणात् ॥ १३१ ॥

पारद भस्म एक पल, श्वेत अभ्रक दो पल, शंख का चूर्ण एक पल तथा सुहागा एक पल (५० ग्रा०) इन सबों को एकत्र कर सेंहुड़ के दूध के साथ पीसकर गोला बना सुखा ले। इसके बाद जंगली गोहरी के साथ चौदह पुट दे। यह भस्म केवल यव मात्र से क्षणभर में वंग को स्तम्भित कर देता है ॥ १३०-१३१ ॥

कृष्णाभ्रकपलैकन्तु द्वे पले मृतसूतकम्।
गन्धकस्य पलञ्चैकं एकीकृत्याथ मर्दयेत् ॥ १३२ ॥
सदूर्द्यमानं प्रयत्नेन गोलकं भवति क्षणात् ॥ १३३ ॥
मृतवज्रस्य भागैकं चतुर्भागं च गोलकम्।

मर्दयेत् प्रहरैकं तु भस्मीभवति सूतकः ॥ १३४ ॥
आरण्यगोमयेनैव पुटं दद्यात्तु भूधरे ।
अनेन क्रमयोगेण सप्तसङ्कलिकां कुरु ॥ १३५ ॥
शतांशेन तु तेनैव नागवेधं प्रदापयेत् ।

कृष्णाभ्रक एक पल (५० ग्रा०), मृत पारद दो पल तथा गन्धक एक पल इन सबों को एकत्र कर मर्दन करे। प्रयत्नपूर्वक मर्दन करने से क्षणभर में गोलक हो जाता है। मृत वज्र एक भाग तथा गोलक चार भाग इन सबों को एक पहर तक मर्दन करे इससे पारद भस्म हो जाता है। इसको भूधर यन्त्र में रखकर जंगली उपलों से पुट दे। इस क्रम से सात संकलिका करे। इसी के सौवां भाग से नाग का वेध करे ॥ १३२–१३५½ ॥

तं खोटं रञ्जयेत् पश्चात् शुल्वाभ्रक-कपालिना ॥ १३६ ॥
पुनस्तं रञ्जयेत् पश्चात् तीक्ष्णशुल्वकपालिना ।
पुनस्तं रञ्जयेत् पश्चात् नागाभ्रककपालिना ॥ १३७ ॥
हेम्ना सह समावर्त्य सारणात्रयसारितम् ।
सहस्रांशेन तेनैव शुल्ववेधं प्रदापयेत् ॥ १३८ ॥
जायते कनकं दिव्यं देवाभरणमुत्तमम् ॥ १३९ ॥

इसके बाद उस खोट को ताम्र तथा अभ्रक के कपाल के द्वारा रञ्जन करे। पुनः तीक्ष्ण लौह तथा ताम्र के कपाल द्वारा रञ्जन करे। पुनः नाग तथा अभ्रक के कपाल के द्वारा रञ्जन करे। इसके बाद स्वर्ण के साथ मिलाकर तीन बार सारणा के द्वारा सारित करे और उसी के हजारहवां भाग से ताम्र का वेध करे। इससे ताम्र देवताओं का उत्तम आभरण दिव्य स्वर्ण हो जाता है ॥ १३६–१३९ ॥

वज्रभस्म स्नुहीक्षीरे पुटितं दशभिः पुटैः ।
तत्तुल्यं मर्दयेत् सूतं देवदाल्या रसैः पुटेत् ॥ १४० ॥
तत्तुल्यञ्च पुटेत्तीक्ष्णं त्रिफलाया रसेन तु ।
तत्तुल्यं पुटयेन्नाग-महिमाराटरूषकैः ॥ १४१ ॥
हेमवर्णप्रदं तद्धि विंशत्यंशेन योजितम् ।
चतुःषष्ट्यंशकेनेदं शुद्धताररञ्ज रञ्जयेत् ॥ १४२ ॥
अष्टमांशेन तेनैव नागपत्राणि लेपयेत् ।
पुटयेन्मारयेन्नागं सिन्दूरारुणसन्निभम् ॥ १४३ ॥
तत्तुल्यं मारयेद्धेम काञ्चनाररसे पुटेत् ।

तत्तुल्यं मारयेच्छुल्वं गृहकन्यारसेन च ॥ १४४ ॥
पश्चादम्लेन पुटयेद् यावत् सिन्दूरसन्निभम् ।
चन्द्रार्कं रञ्जयेत्तेन शतांशेन तु वेधयेत् ॥ १४५ ॥

वज्र भस्म को सेंहुड के दूध में दस बार भावित कर दश पुट दे । वज्रभस्म के बराबर पारद लेकर देवदाली (बंदाल) के रस के साथ मर्दन करे । और पुट दे । पुनः वज्रभस्म के समभाग तीक्ष्ण लौह भस्म को त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) के रस के साथ मर्दन कर पुट दे । पुनः वज्रभस्म के समभाग नाग भस्म को अहिमार (विटखदिर) तथा अखरोट के साथ मर्दन कर पुट दे । स्वर्ण के समान वर्ण देने वाले इसका बीसवां भाग मिलाकर तथा चौसठवां भाग मिलाकर शुद्ध रजत का रञ्जन करे । उसी के आठवां भाग से नागपत्रों को लिप्त करे । इसके बाद पुट देकर मारण करे । इससे नागभस्म सेन्दूर के सदृश अरुण वर्ण का हो जाता है । पुनः वज्रभस्म के समभाग स्वर्णभस्म को कांचनारके रस में मर्दन कर पुट दे । पुनः उसके समभाग ताम्र भस्म को घृतकुमारी के रस के साथ मर्दन कर तथा बाद में इमली के रस के साथ मर्दन कर तबतक पुट दे करे जबतक वह सेन्दूर के वर्ण का न हो जाय । इससे रजत तथा ताम्र को रञ्जन और उसके सौवां भाग से बेध करे ॥ १४०-१४५ ॥

सबीजं बीजवर्जं वा वज्रेण सह सूतकम् ।
तद्भस्म मर्दयेत् पश्चात् स्वर्णपत्ररसेन तु ॥ १४६ ॥
तेनैव वेधयेच्छुल्वं शुल्वं तारे तु योजयेत् ॥ १४७ ॥
वज्रेण द्वन्द्वयेद्धेम हेम्ना च द्वन्द्वयेद्रसम् ।
रसेन द्वन्द्वयेद्देहं स देहो ह्यजरामरः ॥ १४८ ॥

बीज के साथ या बिना बीज के ही पारद को वज्रभस्म के साथ मर्दन करे। पुनः उस भस्म को स्वर्णपत्र (सोना मुखी या सनाय) के रस के साथ मर्दन करे और उसी के साथ शुल्व (ताम्र) का वेध करे पुनः ताम्र को रजत के साथ मिला दे । वज्रभस्म के साथ स्वर्ण को द्वन्द्वित करे स्वर्ण के साथ पारद को द्वन्द्वित करे और पारद के साथ शरीर को द्वन्द्वित करे । वह देह अजर (जरा रहित) तथा अमर (दीर्घजीवी) होता है ॥ १४६-१४८ ॥

कदलीकंदसौवीरं कण्टकारीरसप्लुतम् ।
क्रामणं सर्वधातूनां सर्वद्वन्द्वेषु मेलनम् ॥ १४९ ॥

केले का कन्द, सौवीराञ्जन तथा कण्टकारी के रस में भावित रस (पारद) सभी धातुओं का क्रामण करता है और सभी द्वन्द्वों में मिलाता है ॥ १४९ ॥

तिमिरस्य तु पञ्चाङ्गं मार्जारीबीजसंयुतम्।
एकीकृत्याथ संमर्द्य वज्रं तेनैव वेधयेत्॥ १५०॥
वज्रमूषागतं ध्मातं हेमद्वन्द्वन्तु कारयेत्॥ १५१॥

तिमिर (तमाल) का पञ्चाङ्ग, मार्जारी (कुबेराक्षि = कञ्जा) का बीज एकत्रकर मर्दन करे और उसी से वज्र का वेध करे। इसके बाद इस वज्र को वज्रमूषा में रखकर धमन कर हेम द्वन्द्व कराये॥ १५०-१५१॥

कान्तपाषाणचूर्णं तु भूलता रामठं मधु।
गुञ्जाटङ्कणकाचं च कर्कटास्थि स्नुहीपयः॥ १५२॥
एतत् सर्वं समं योज्यं स्त्रीस्तन्येन च मर्दयेत्।
मूषालेपगतं प्रान्ते वज्रमेलापकः सुखी॥ १५३॥
हठाग्नौ वज्रमूषायां दृढवज्रा मिलन्ति च।
सुसूक्ष्मा रजका भूत्वा ह्येकीभावं व्रजन्ति ते॥ १५४॥
काचटङ्कणयोगेन ध्मातः शुद्धिमवाप्नुयात्।
बहुभिश्चैव मूषाभिस्तेजःपुञ्जोऽभिजायते॥ १५५॥

कान्त पाषाण (कान्त लौह का चूर्ण), भूलता (केंचुआ) हिंगु, मधु, घुंघुची, सुहागा, विडनमक, केकड़ा की हड्डी, सेंहुड़ का दूध समभाग इन सबों को एकत्र कर स्त्री के दूध के साथ मर्दन करे। इसके कल्क से मूषा के अन्दर लेपकर वज्र रक्खे यह सुखपूर्वक वज्र का मेलापक होता है। इसको वज्रमूषा में रखकर तीव्राग्नि से फूकने पर दृढ़ वज्र मिल जाते हैं। वे सब अत्यन्त सूक्ष्म भस्म होकर एकरस हो जाते हैं। विडनमक तथा सुहागा के साथ धमन करने से शुद्ध हो जाता है। अनेक बार मूषा में रखकर पुट देते से अधिक तेजयुक्त हो जाता है॥ १५२-१५५॥

मृतवज्रस्य भागैकं भागाः षोडश हाटकम्।
श्वेतकाचस्य चूर्णं तु भागान् षोडश दापयेत्॥ १५६॥
अन्धमूषागतं ध्मातं वज्रबन्धं तु कारयेत्।
अनेन क्रमयोगेण सप्तवारांश्च दापयेत्।
मिलते तत्क्षणं वज्रं हेम्ना तु सलिलं यथा॥ १५७॥

वज्र भस्म एक भाग, स्वर्ण भस्म सोलह भाग तथा सफेद विडनमक का चूर्ण सोलह भाग मिला दे। इन सबों को अन्धमूषा में रखकर धमन करे और वज्रबन्ध कराये। इसी क्रम से सात बार पूर्वोक्त द्रव्यों के साथ वज्रबन्ध कराये। इससे तत्काल वज्र स्वर्ण के साथ जल के समान मिल जाता है॥ १५६-१५७॥

चूर्णे नरकपालस्य मृतवज्रं तु दापयेत्।
अन्धमूषागतं ध्मातं हेम्ना मिलति तत्क्षणात्॥ १५८॥

मनुष्य के खोपड़ी के चूर्ण में वज्रभस्म मिलाकर अन्धमूषा में रखकर धमन करने से तत्काल स्वर्ण के साथ मिल जाता है॥ १५८॥

भृङ्गपक्षं नृकेशं च मृतकान्तं सटङ्कणम्।
बालवत्सपुरीषं च स्त्रीस्तन्येन च पेषयेत्॥ १५९॥
मूषालेपं ततः कृत्वा वज्रं हेम च दापयेत्।
अन्धमूषागतं ध्मातं वज्रं मिलति नान्यथा॥ १६०॥

भृंग (भृङ्गपक्षी) की पखना, मनुष्य का बाल, कान्त लौहभस्म, सुहागा तथा बाल बछड़ा का गोबर इन सबों को स्त्री के दूध के साथ मर्दन कर मूषा के अन्दर लेप करे और उसमें वज्रभस्म रखकर स्वर्ण भस्म मिला दे। इसके बाद अन्धमूषा में धमन करने से वज्र स्वर्ण के साथ मिल जाता है। अन्यथा नहीं मिलता॥ १५९-१६०॥

कान्तं वज्रं तथा गुञ्जा गन्धकं च चतुष्टयम्।
स्तनक्षीरेण पिष्टं तु मूषालेपं तु कारयेत्॥ १६१॥
अन्धमूषागतं ध्मातं वज्रं मिलति तत्क्षणात्। १६२॥

कान्त लौह, वज्र, घुंघुची तथा गन्धक इन चारों को स्त्री के दूध के साथ पीसकर मूषा लेप करे। इसमें वज्र रखकर स्वर्ण के साथ अन्धमूषा में धमन करने से तत्काल मिल जाता है॥ १६१-१६२॥

क्षीरेणोत्तरवारुण्या मृतवज्रं तु भावयेत्।
हेमपिष्टिकया मध्ये वज्रं तत्रैव निक्षिपेत्॥ १६३॥
वेष्टयेद्भूर्ज्जपत्रेण बहिर्वस्त्रेण वेष्टयेत्।
धान्यमध्ये तु संस्थाप्यं पक्षमेकं निरन्तरम्॥ १६४॥
उद्धृतं तत् प्रयत्नेन वज्रबन्धं तु कारयेत्।
द्रुता वज्रास्तु तेनैव मेलनीयास्तु पार्वति !॥ १६५॥
द्रुतबन्धः स विज्ञेयः शतसाहस्रवेधकः॥ १६६॥
रत्नानां तु तथा सर्वान् वेधयित्वा यथाविधि।
शतसाहस्रवेधी च देहसिद्धिप्रदायकः॥ १६७॥

उत्तर वारुणी (इन्द्र वारुणी) के दूध के साथ वज्र भस्म को भावित करें और स्वर्ण की पीठी के साथ मध्य में वज्र को रक्खे। इसके बाद भोजपत्र से वेष्ठित कर बाहर से कपड़ा लपेट दे और धान्य के मध्य में निरन्तर एक पक्ष

(१५ दिन) तक रक्खे। वह प्रयत्नपूर्वक निकालने पर वज्रबन्ध कराता है। हे पार्वति ! द्रुत वज्र को उसी के साथ मिलाये। इसको द्रुत बन्ध कहते हैं। वह सौ हजार को वेध करता है और वह विधि पूर्वक सभी रत्नों को वेधकर सौ हजार को बेध करने वाला तथा देह सिद्धि को देने वाला है ॥१६३–१६७॥

मुसली चित्रकं बन्ध्या-कर्कोटी कन्दपद्मिनी।
कञ्चुकी नीलसिन्दूरी वासा नागबला तथा ॥ १६८ ॥
कांस्यपात्रे रसांश्चासां रत्नानां द्रुतयस्तथा।
आतपे धारयित्वा तु अधः कुर्यात्तथाऽनलम् ॥ १६० ॥
ओषधीनां रसं कृत्वा स्वच्छं कृत्वा पुनः पुनः।
याममात्रं च घर्म्मे तु द्रुतिर्मिलति वै रसम् ॥ १७० ॥
न तेषां क्रामणं शक्यं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ १७१ ॥

मुसली, चित्रक, बांझ ककड़ी, कन्दकमलिनी, कञ्चुकी (क्षीर कञ्चुकी) नील सिन्दूरी, अडूसा तथा नाग बला इन सबों के रस को कांस्य पात्र में रखकर तथा रत्नों की द्रुतियों को रखे और धूप में रखकर नीचे से आग रक्खे। औषधियों का पूरा रस मिलाकर बार-बार स्वच्छ कर एक पहर तक धूप में रक्खे। इससे रस द्रुत होकर मिल जाता है। सैकड़ों वर्ष में भी इसके क्रामण को कहने में समर्थ नहीं है ॥ १६८–१७१ ॥

सैन्धवं निम्बपत्राणि वाकुची वेष्टिता नले।
द्रुताभ्रस्य रसेनैव मेलनं परमं मतम् ॥ १७२ ॥
वज्रं द्वन्द्वनमीशानि ! वज्रेण रसमारणम्।
सबीजं मारणं प्रोक्तं खोटबन्धनमेव च ॥ १७३ ॥
तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १७४ ॥
इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
वज्रबन्धो नाम चतुर्दशः पटलः ॥ १४ ॥

सेन्धानमक, निम्ब का पत्र तथा वाकुची इस सबों के रस में द्रुत अभ्रक के रस के साथ उत्तम मिलाप हो जाता है। हे इशानि ! वज्र का द्वन्द्वन, वज्र से रस का मारण, सबीज मारण तथा खोट बन्धन मैंने कहा। हे देवेशि ! तुम अब यह बताओ की और दूसरा क्या सुनना चाहती हो ॥ १७२–१७४ ॥

वज्र बन्ध नामक चौदहवां पटल समाप्त।

पञ्चदशः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

[1]महारसैरुपरसैर्लोहैश्च परमेश्वर ! ।
आज्ञापय समस्तं तु रसराजस्य बन्धनम् ॥ १ ॥

महारस, उपरस तथा लोहों के द्वारा रसबन्धन के सम्बन्ध में प्रश्न—महारसादि के द्वारा रसबन्धन के सम्बन्ध में पार्वती ने पूछा कि हे परमेश्वर ! महारस, उपरस तथा धातुओं के द्वारा तथा सभी प्रकार से रसराज (पारद) का बन्धन निरूपण करें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

[बीजानि कल्पितान्येवं रञ्जितानि परं शृणु ।
घनं माक्षिकचूर्णेन शुल्व चूर्णेन रञ्जितम् ॥
द्वन्द्वानं वाप्यसत्त्वेन रसराजस्य रञ्जनम् ।
आरक्तवल्लीभिर्मूत्रैर्बहुधा परिकीर्त्तितम् ॥
कुमुदीगन्धपाषाणे सह माक्षिकहिङ्गुलैः ।
भावितः सेवितो रक्तगणस्नेहैर्मतो रसः ॥
रञ्जनं रसराजस्य 'पुनरन्यद्ब्रवीम्यहम्'[2]]
वैक्रान्तस्य तु भागैकं चाष्टभागन्तु सूतकम् ।
कनकस्य तु सप्तांशं द्विपदीरसटङ्कणम् ॥ २ ॥
नष्टपिष्ठं च शुष्कं च ध्मातं खोटो भवेत् प्रिये ! ।
सौवीरं टङ्कणं काचं दत्त्वा दत्त्वा तु शोधयेत् ॥ ३ ॥
समहेम्नि समावर्त्त्य सूतं मूषागतं ततः ।
समांशभक्षणं तं तु शुद्धतेन कारयेत् ॥ ४ ॥
वैक्रान्तं षोडषांशेन पूर्वयोगेन ध्मामयेत् ।
दशमङ्कलिकायोगात् वेधो दशगुणोत्तरः ॥
[सप्तमंकलिकायोगो वेधो दशगुणोत्तरः ।]
वैक्रान्तो वज्रवत् ज्ञेयो नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ५ ॥

पहले बनाये गये बीज रञ्जन-आदि का विवरण—पार्वती के महारसादि के

---

१. महारसाः, उपरसाश्च, पूर्वमुक्ताः ।
२ अयं पाठः पुस्तकेषु नासीत् ।

द्वारा रसबन्धन के सम्बन्ध में प्रश्न सुनकर भैरव जी बोले [मैं पहले बीज-कल्पना को बता चुका हूँ। इसके बाद रञ्जन कह रहा हूँ सुनो। माक्षिक चूर्ण के साथ धन ताम्रचूर्ण के साथ रञ्जन वाप्यसत्व के साथ द्वन्द्वन, पारद का रञ्जन रक्तवल्ली तथा मूत्र आदि से अनेक प्रकार कहा गया है। कुमुदी तथा गन्ध पाषाण में माक्षिक तथा हिंगुल के साथ वापन तथा सेवन और रक्तगण के औषधों से सिद्ध स्नेह के साथ पारद का रञ्जन कहा जा चुका है। पुनः दूसरा प्रकार कहता हूँ।]

महारसादि के साथ रसबन्ध का निरूपण वैक्रान्त बन्ध—वैक्रान्त एक भाग, पारद आठ भाग, स्वर्ण सातवां भाग, द्विपदी (नागकेशर) का रस तथा सुहागा इस सबों को एकत्र मर्दन कर नष्टपिष्ट (एकरस) करे और सुखाकर धमन करे। हे प्रिये इससे खोट हो जाता है। इसमें सौवीराञ्जन, सुहागा तथा विड-नमक बार-बार मिलाकर शोधन करे। समभाग स्वर्ण में पारद मूषा में मिलाकर उसके बाद शुद्ध पारद से समभाग स्वर्ण का भक्षण कराये। पुनः पूर्व योग के सोलहवें भाग से वैक्रान्त को पाचन करे। इस प्रकार दश संकलिका योग से दशगुना उत्तरोत्तर वेध होता है। (सप्त संकलिका योग से उत्तरोत्तर दशगुना वेध होता है) वैक्रान्त वज्र के सदृश हो जाता है। यहाँ विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ २—५ ॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि प्रयोगं भुवि दुर्लभम् ॥ ६ ॥
वैक्रान्तसत्त्वं देवेशि! पारदेन समन्वितम्।
जारितं समहेम्ना तु शिलाभाण्डे निधापयेत् ॥ ७ ॥
मासमात्रोषितं भूमौ समुद्धृत्य प्रयत्नतः।
एष देवि! रसो दिव्यो देहद्रव्यकरो भवेत् ॥ ८ ॥

द्वितीय वैक्रान्त बन्ध—पुनः दूसरे प्रकार के वैक्रान्त बन्ध को बताता हूँ जो प्रयाग संसार में दुर्लभ है। हे देवेशि! वैक्रान्त का सत्व पारद के साथ मिलाकर समभाग स्वर्ण के साथ जारित कर पत्थर के पात्र में रक्खे और उसको एक मास तक जमीन में रक्खे। इसके बाद प्रयत्नपूर्वक निकाल ले। हे देवि! यह दिव्य रस देह तथा द्रव्य को सिद्धि देने वाला है ॥ ६—८ ॥

वैक्रान्तकास्तु ये केचित् त्रिफलाया रसेन च।
भूम्यामलकसारेण वसुहट्टरसेन च ॥ ९ ॥
एकैकं देवि! सप्ताहं स्वेदिता मर्दितास्तथा।
सुध्माता मूकमूषायां खोटो भवति चाक्षयः ॥ १० ॥

कान्तं रूप्यं सकनकं पारदं चैव योजयेत्।
शुल्वं तृतीयभागन्तु स्रोतोऽञ्जनसमन्वितम्।
तत् ध्मातं खोटतां याति देहलोहकरं भवेत्॥ ११॥"

जितने प्रकार के वैक्रान्त हैं उनको त्रिफला का रस, भूम्यामल को (मूई आंवला) का रस तथा वसुहट्ट (अगस्त्य) के रस के साथ एक-एक सप्ताह तक स्वेदन, मर्दन तथा वज्रमूषा में धमन करने से क्षय रहित खोट हो जाता है। कान्त लौह, रजत, स्वर्ण पारद तथा स्रोतोऽञ्जन समभाग एवं ताम्र तीन भाग मिला दे और धमन करे। वह खोट हो जाता है और यह देह तथा लौह को सिद्ध करने वाला है॥ ९–११॥

"श्वेतवैक्रान्तचूर्णन्तु हयमूत्रेण मर्दयेत्।
आदौ सुस्विन्नमादाय पले पलशतं क्षिपेत्॥ १२॥
तारस्य जायते भस्म विशुद्धस्फटिकाकृतिः।
तद्भस्म मेलयेत् सूते समभागे विचक्षणः॥ १३॥
चारयेत् रजतं सूते हयमूत्रण मर्दयेत्।
पुटयेदन्धमूषायां क्रमेण मृदुवह्निना॥ १४॥
क्रामणेन समायुक्तं मूषामध्ये विचक्षणः।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा भवेद्वग्निसहो रसः॥ १५॥
स्पर्शनात् सर्वलोहानि रजतञ्च करिष्यति।
भक्षिते वक्ष्यमाणेन जरादारिद्रनाशनम्॥ १६॥

श्वेत वैक्रान्त बन्ध—श्वेत वैक्रान्त का चूर्ण घोड़ा के मूत्र के साथ मर्दन पहले श्वेत वैक्रान्त का स्वेदन कर ग्रहण करे। एक पल श्वेतवैक्रान्त में सौ पल अश्वमूत्र छोड़े। विशुद्ध स्फटिक की आकृति वाला रजत भस्म समभाग पारद में विद्वान् पुरुष मिलावे। पारद में रजत का चारण करें और हयमूत्र के साथ मर्दन करे। इसके बाद क्रमशः वज्रमूषा में रखकर मन्द अग्नि से पुट दे। पुनः मूषा के मध्य में रखकर एक दिन रात या तीन दिन रात क्रामण करने से विचित्र प्रकार का अग्नि को सहन करने वाला पारद हो जाता है। यह रस स्पर्श मात्र से सभी लौहों को रजत बना देता है। आगे कहे जाने वाली विधि से भक्षण करने पर जरा तथा दरिद्रता को नाश करता है॥ १२–१६॥

"रक्तस्य[1] वक्ष्यते कर्म्म जरादारिद्रनाशनम्।
सप्तधा भावयेत्तस्य व्याघ्रीकन्दाम्भसा रजः॥ १७॥

---

1. रक्तस्य वैक्रान्तस्य = इति प्रकरणात्सम्बन्धः।

पलं तस्य पलं हेम्नः पलं शुद्धरसस्य च।
शुद्धं भस्म भवेत सर्वं पुनर्हेमशतं क्षिपेत्।
तद्भस्म जायते क्षिप्रं शुद्धहेमसमप्रभम् ॥ १८ ॥
तद्भस्म रसराजे तु पुनर्हेम्ना च मेलयेत्।
भवेदग्निसहो देवि! ततो रसधरो भवेत् ॥ १९ ॥
स्पर्शवेधी भवेत् सूतः कोटिवेधी महारसः ॥ २० ॥

रक्त वैक्रान्त बन्ध—जरा तथा दारिद्रय को नाश करने वाले रक्त वैक्रान्त का कर्म बताता हूँ। रक्त वैक्रान्त का चूर्ण व्याघ्रीकन्द (कण्टकारी) के रस के साथ सात दिन तक भावित करे। इसके बादे भावित रक्त वैक्रान्त चूर्ण एक पल (५० ग्रा०), स्वर्ण भस्म एक पल तथा शुद्ध पारद भस्म एक पल में इन सब शुद्ध भस्म को ग्रहण करे और पुनः सौ भाग स्वर्ण मिला दे। वह भस्म शीघ्र ही स्वर्ण की प्रभा के समान हो जाता है। पुनः उस भस्म को पारद में स्वर्ण के साथ मिला दे। हे देवि ! वह अग्नि सह हो जाता है। इसके बाद वह सभी रसों में श्रेष्ठ होता है। यह पारद स्पर्शवेधी तथा महारस कोटि वेधी होता है ॥ १७–२० ॥

रक्तवैक्रान्तसत्त्वं च हेम्ना तु सह मेलयेत्।
समं त जारयेत् सूतं सारयित्वा समेन तु।
सहस्रांशेन लोहानि वेधयेन्नात्र संशयः ॥ २१ ॥"

रक्त वैक्रान्त का सत्व स्वर्ण के साथ मिलाये और समभाग पारद मिलाकर जारण करे तथा समभाग के साथ सारण कर उसका हजारहवां भाग सभी लोहों को बेध देता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥

"कृष्णवैक्रान्तभागैकं शुद्धसूतपलांशकम्।
एकत्र मर्दयेत् खल्ले चूर्णं च भवति द्वयम् ॥ २२ ॥
अस्य चूर्णस्य भागकं हेमभागसहस्रकम्।
एकत्र मर्दयेत् तावत् यावद्भस्म तु जायते ॥ २३ ॥
धमेत्त्वान्धमूषायां यावत् खोटो भविष्यति ॥ २४ ॥
समांशभक्षणं तस्य शुद्धसूतं तु कारयेत्।
वेधयेत् सर्वलोहानि स्पर्शमात्रेण पार्वति ! ॥ २५ ॥

कृष्ण वैक्रान्त बन्ध—काला वैक्रान्त एक भाग शुद्ध पारद एक पल (५० ग्रा०), इन दोनों को एकत्रकर खरल में मर्दन करे ये दोनों चूर्ण हो जाते हैं। इस चूर्ण का एक भाग तथा स्वर्ण एक हजार भाग इन दोनों को एकत्रकर तब

तक मर्दन करे जबतक भस्म न हो जाय। इसके बाद उसको अन्धमूषा में धमन करे जबतक वह खोट न हो जाय। उसका समभाग शुद्ध पारद को भक्षण कराये। हे पार्वति ! यह स्पर्शमात्र से सभी लोहों का बेध करता है ॥२२-२५॥

तच्चूर्णमभ्रकं चैव रसेन सह मर्दयेत्।
एकत्र मर्दयेत्तावद्यावद्भस्म प्रजायते ॥ २६ ॥
धमेत्तदन्धमूषायां यावत् खोटो भविष्यति।
समांशं भक्षणं तस्य पिष्टिकां कारयेद्बुधः ॥ २७ ॥
वेधयेत् सर्वलोहानि स्पर्शमात्रेण हेमता।

पूर्वोक्तचूर्ण तथा अभ्रक को पारद के साथ मर्दन करे। इन सत्वों को एकत्र कर तबतक मर्दन करे जबतक वह भस्म न हो जाय। पुनः वज्रमूषा में वह बन्द कर धमन करने से खोट हो जाता है। बुद्धिमान् व्यक्ति उसके समभाग का भक्षण कराकर पिष्टिका कराये। यह सभी लोहों को वेध देता है तथा स्पर्श मात्र से स्वर्ण हो जाता है ॥ २६-२७½ ॥

तच्चूर्णमभ्रकं चैव रसेन सह मर्दयेत् ॥ २८ ॥
स्वेदयेज्जारयेच्चैव ततो वह्निसहो भवेत्।
स रसः सारितश्चैव सर्वलोहानि विध्यति ॥ २९ ॥"

पूर्वोक्त चूर्ण तथा अभ्रक को पारद के साथ मर्दन करे और स्वेदन तथा जारण करे। इसके बाद वह अग्नि सह हो जाता है। वह रस सारित करने पर सभी लोहों को वेधता है ॥ २८-२९ ॥

"पीतवर्णेऽपि वैक्रान्ते रक्तकृष्णविधिर्मतः ॥ ३० ॥
पीतवैक्रान्तचूर्णं तु हेमचूर्णसमन्वितम्।
पीताभ्रकस्य चूर्णेन मेलयित्वा महारसः।
स्वेदितो मर्द्दितश्चैव मासादग्निसहो रसः ॥ ३१ ॥

पीतवैक्रान्त बन्ध—पीत वर्ण वाले वैक्रान्त में रक्त तथा कृष्ण वैक्रान्त बन्ध के सदृश विधि करनी चाहिए। पीतवैक्रान्त का चूर्ण स्वर्ण चूर्ण तथा पीत अभ्रक चूर्ण के साथ मिलाकर महारस स्वेदित तथा मर्दित करने से एक माह में वह रस अग्निसह हो जाता है ॥ ३०-३१ ॥

"श्वेतं पीतं तथा कृष्णं रक्तवर्णं तथैव च।
एवं चतुर्विधा वर्णा वैक्रान्ते वरवर्णिनि ! ॥ ३२ ॥"

हे वर वर्णिनि ! इस प्रकार वैक्रान्त में श्वेत, पीत, कृष्ण एवं रक्त ये चार वर्ण होते हैं ॥ ३२ ॥

वज्रस्थाने तु वैक्रान्तो मेलनं परमं मतम्।
देहलोहकरो यश्च पारदो लौहवत् प्रिये!॥ ३३॥
नीलवर्णस्तु वैक्रान्तो म्रियते रससंयुतः॥ ३४॥
कृष्णाभ्रकेण सहितं मधुसर्पियुतं च यत्।
भक्षयेन्मण्डलं देवि! जीवेच्चन्द्रार्कतारकम्॥ ३५॥

वज्र के स्थान पर वैक्रान्त का मेलन उत्तम माना गया है। हे प्रिये! जो वैक्रान्त तथा पारद देह तथा लौह सिद्धि के लिये है वह लौह के समान है। नील वर्ण का वैक्रान्त रस के साथ मृत हो जाता है काला अभ्रक के साथ वैक्रान्त को मधु तथा शहद के साथ भक्षण करे। इससे चन्द्र, तारा सूर्य के समकाल जीवित रहता है॥ ३३–३५॥

यस्य यस्य हि यो योगः तस्य तस्य प्रयोगतः।
मेलयित्वा रसं गुञ्जामानं त्रिमधुसंयुतम्[1]॥ ३६॥
पथ्यं क्षीराज्यशाल्यन्नं भोज्यमन्यच्च वर्ज्जयेत्॥ ३७॥

जिस-जिस का यो योग होता है उसके-उसके साथ एक-एक रत्ती पारद मिलाकर त्रिमधु (दधि, मधु घृत) के साथ प्रयोग करे दूध घी तथा जड़हन का चावल पथ्य में ग्रहण करे और अन्य भोज्य पदार्थ को छोड़ दे॥ ३६-३७॥

[एकान्ते मञ्चिकामध्ये निर्वासः संस्थितो नरः।
रसमृत्युञ्जयो मन्त्रः सदा जप्यो हृदन्तरे॥
पशूनां विमुखस्तत्र स्त्रीणां चैव न दर्शनम्।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो मन्त्रध्यानपरायणः।
वत्सरं क्रमते मर्त्यस्तस्य सिद्धिर्न संशयः]॥

[एकान्त स्थान में माञ्चका के मध्य में निवास करता हुआ मनुष्य हृदय में रसमृत्युञ्जय मन्त्र को हमेशा जपे। वहां पशुओं से अलग रहे और स्त्रियों का दर्शन न करे। सर्वाङ्ग में भस्म लगाये और मन्त्र के ध्यान में सदा तत्पर रहे। इस प्रकार एक वर्ष समय जो विता देता है उसको सिद्धि मिल जाती है, इसमें सन्देह नहीं है।]

वैक्रान्तसत्त्वसंयुक्तं लुङ्गाम्ले मर्द्दयेद्रसम्।
तापयत् कोष्णतापेन जलेन परिपूरयेत्॥ ३८॥
सत्त्वं सूतञ्च संमिश्र्य धमेत् स्याद्रसबन्धनम्।
बद्धं रस मुखे क्षिप्त्वा भूमिच्छिद्राणि पश्यति॥ ३९॥

---

१ दधि-मधु-घृतं संयुक्तं "त्रिमधु" = इत्युच्यते।

वैक्रान्त सत्व में पारद मिलाकर विजौरा निम्बु के रस में मर्दन करे और तपाये इसके बाद थोड़े उष्ण जल से पूर्ण कर दे। वैक्रान्त सत्व तथा पारद एक में मिलाकर धमन करे, इससे रसबन्ध हो जाता है। इस बद्ध रस को मुख में रखकर मनुष्य जमीन के छिद्र को देखता है ॥ ३८-३९ ॥

निष्कमेकं च वैक्रान्तम् अश्वमूत्रेण मर्द्दयेत्।
दिनमेकमिदं देवि ! मर्दयित्वा मृतो भवेत् ॥ ४० ॥
चतुर्दिनमिदं कृत्वा समं सूतं समानयेत्।
मर्दनं स्वेदनं चैव पूर्ववच्छुद्धमानसः ॥ ४१ ॥
सप्तद्वन्द्वनमेकैकं सप्ताष्टमपलं भवेत्।
मर्द्दयेन्मातुलुङ्गाम्लैः चतुःषष्टिपुटं ददेत्।
उदयारुणसङ्काशः सर्वलोहानि वेधयेत् ॥ ४२ ॥

वैक्रान्त एक निष्क (तीन ग्राम) घोड़े के मूत्र के साथ मर्दन करे। हे देवि ! एक दिन इसको मर्दनकर मृत करे। इस प्रकार चार दिन तक मर्दन कर समभाग पारद मिला दे। पुनः शुद्ध मन से मर्दन तथा स्वेदन करे। एक-एक कर सप्त द्वन्द्व का आठ-आठ पल करे अर्थात् सातो द्वन्द्व मिलाकर छप्पन पल ग्रहण करे और विजौरा निम्बु के रस के साथ मर्दन करे और चोसठ पुट दे। यह उदयकालीन सूर्य के सदृश हो जाता है तथा सभी लौहों को बेधता है ॥ ४०–४२ ॥

कृष्णाभ्रकस्य सत्त्वं च रसं हेमसमं भवेत्।
निक्षिप्य वज्रमूषायां धामित्वा खोटतां नवेत् ॥ ४३ ॥
बद्धं रसं मुखे क्षिप्त्वा ह्यजरामरतां व्रजेत् ॥ ४४ ॥
तेनैव भस्म संमिश्रं कृष्णाभ्रकसमं भवेत्।
शल्या विशल्यामूलस्य वारिणा मर्द्दयेद्दिनम् ॥ ४५ ॥
भ्रमरायन्त्रमध्यस्थं पुटं सप्तदिनं भवेत्।
तच्छुद्धं भस्म सेव्यं स्यात् गुञ्जामानं तु मण्डलम् ॥ ४६ ॥
एकाद्यं पंचमं मध्यं पुनरेकं प्रशस्यते।
पूर्ववद्बन्धनाद्देवि ! कोटिवेधी महारसः ॥ ४७ ॥

॥ इति वैक्रान्तबन्धः ॥

काला अभ्रक का सत्व, पारद तथा स्वर्ण समभाग ग्रहण करे और वज्रमूषा में रखकर धमन के द्वारा खोट बनाये। इस बद्ध रस को मुख में रखकर मनुष्य अजर-अमर हो जाता है। उसी के साथ भस्म को मिलाकर समभाग काला अभ्रक को मिला दे और शल्या (मेदा) तथा विशल्या (गुडूवो या इन्द्रवारुणी)

के रस के साथ एक दिन मर्दन करे। इसके बाद भ्रमरा यन्त्र के मध्य में रखकर सात दिन तक पुट दे। उस शुद्ध भस्म को मण्डल क्रम से एक रत्ती की मात्रा में सेवन करे। पहले एक रत्ती, मध्य में पांच रत्ती तथा अन्त में एक रत्ती प्रशस्त है। हे देवि ! पूर्ववत् बन्ध न करने से महारस (पारद) कोटिवेधी होता है ॥ ४३-४७ ॥

वैक्रान्तबन्ध समाप्त।

रक्तवर्णमयस्कान्तं लाक्षारससमप्रभम् ।
भिन्नं स्त्रीरक्तसङ्काशं तच्चूर्णं सूतसंयुतम् ।
मर्दयेच्छागरक्तेन ध्मातं खोटो भवेत् प्रिये ! ॥ ४८ ॥
स सूतः शतवेधी तु सर्वव्याधिहरो भवेत् ।
गुटिकां धारयेद्वक्त्रे जीवेद्वर्षसहस्रकम् ॥ ४९ ॥
पीतवर्णमयस्कान्तं भिन्नं हेमसमप्रभम् ।
वेधयेत् सर्वलोहानि स्पर्शमात्रेण सुन्दरि ! ॥ ५० ॥
॥ इति कान्तबन्धः ॥

कान्त बन्ध—अयस्कान्त लौह रक्त वर्ण, लाक्षारस के समान प्रभावाला है और दूसरा स्त्री के रक्त के समान है। अयस्कान्त लौह का चूर्ण तथा पारद को मिलाकर बकरी के रक्त के साथ मर्दन करे। इसके बाद धमन करने से खोट हो जाता है। हे प्रिये ! वह पारद शतवेधी तथा सभी व्याधियों को दूर करने वाला होता है। इस गुटिका को मुख में धारण करने से हजार वर्ष तक जीवित रहता है। पीत वर्ण वाला अयस्कान्त भिन्न तथा स्वर्ण के समान प्रभा वाला है। हे सुन्दरि ! यह स्पर्शमात्र से सभी लौहों को वेध देता है ॥४८-५०॥

कान्तबन्ध समाप्त।

लाङ्गली करवीरञ्च चित्रकं गिरिकर्णिका।
स्त्रीस्तन्यं टंकसौवीरं मूषालेपन्तु कारयेत् ॥ ५१ ॥
चपलाद्विगुणं सूतं सूताद्विगुणकाञ्चनम् ।
नष्टापष्टं तु तत् कुर्यात् अन्धमूषागतं धमेत् ॥ ५२ ॥
तत्र स्थितो रसेन्द्रोऽयं खोटो भवति शोभनः ।
शतांशं वेधयेन्नागं गुञ्जावर्णस्तु जायते ॥ ५३ ॥
तेन नागशतांशेन शुल्वं रक्ताभं भवेत् ।
तेन शुल्वशतांशेन तारं विध्यति काञ्चनम् ॥ ५४ ॥

चपल बन्ध—लाङ्गली (कलिहारी), कनेर, चित्रक, गिरिकर्णी (अपराजिता) स्त्री का दूध, सुहागा तथा सौवीराञ्जन इन सबों के कल्क से मूषा लेप

करे। चपल एक भाग, पारद दो भाग तथा स्वर्ण चार भाग को मर्दन कर नष्ट-पिष्ट (एकरस) बनाये और उसे लिप्त अन्धमूषा यन्त्र में रखकर धमन करे। उसमें स्थित पारद सुन्दर खोट होता है। इसका शतांश नाग को वेधता है और वह गुञ्जा के वर्ण के सदृश हो जाता है। उस नाग के सौवां भाग से ताम्र रक्त वर्ण का हो जाता है। उस ताम्र के शतांश भाग से रजत तथा काञ्चन विद्ध होता है ॥ ५१–५४ ॥

चपलस्य तु षड्भागाः तारभागास्तु सप्त च।
अष्टौ कनकभागास्तु नव भागा रसस्य तु ॥ ५५ ॥
त्रिंशद्भागा मिलित्वा तु भवन्ति सुरवन्दिते ! ॥ ५६ ॥
चित्रकं करवीरं च लाङ्गली गृध्रविट् तथा।
मर्दितं मातुलुङ्गाम्ले मूषालेपन्तु कारयेत् ॥ ५७ ॥
अन्धयित्वा धमेद्देवि ! खोटो भवति शोभनः।
तेन खोटशतांशेन विद्धो नागोऽरुणो भवेत् ॥ ५८ ॥
तेन नागेन विद्धं तु शुल्वं गुञ्जानिभं भवेत्।
तेन शुल्वेन तारं तु विद्धं भवति काञ्चनम् ॥ ५९ ॥

चपल छः भाग, रजत सात भाग, स्वर्ण आठ भाग तथा पारद नव भाग हे सुखन्दिते ! ये सब मिलकर तीस भाग हो जाते हैं। चित्रक, कनेर, लाङ्गली तथा गीध की विष्ठा इन सबों को बिजौरा निम्बु के रस में मर्दन कर उस कल्क से मूषा लेप करे और इसमें पूर्वोक्त तीस भाग चपल आदि को रखे और बन्दकर धमन करे। इससे सुन्दर खोट हो जाता है। इस खोट के सौवां भाग से विद्ध होने पर नाग अरुण वर्ण का हो जाता है। उस नाग से विद्ध होने पर ताम्र गुञ्जावर्ण के सदृश हो जाता है। उस ताम्र के शतांश से विद्ध रजत स्वर्ण हो जाता है ॥ ५५–५९ ॥

हेमाभं चपलं देवि ! पादार्द्धेन तु संयुतम्।
पादेन कनकं दत्त्वा कुनट्या मर्द्दयेत् क्षणम् ॥ ६० ॥
लाङ्गली चित्रकञ्चैव स्त्रीस्तन्यं करवीरकम्।
गृध्रविष्ठा तथा सर्वं मूषालेपं तु कारयेत् ॥ ६१ ॥
तन्मध्ये तु स्थितं ध्मातं खोटो भवति शोभनः।
पूर्वोक्तं वेधयेदेतं निर्बीजं कनकं भवेत् ॥ ६२ ॥

हे देवि ! स्वर्ण वर्ण का चपल आधा भाग तथा स्वर्ण चौथाई भाग मिलाकर मनःशिला के साथ थोड़े देर मर्दन करे। लांगली, चित्रक, स्त्री का दूध,

कनेर तथा गीध का विष्ठा इन सबों के कल्क से मूषा लेप करे। उसके मध्य में चपल आदि को रखकर धमन करने से सुन्दर खोट होता है। पूर्वोक्त ताम्र बिद्ध स्वर्ण से इसको वेध करे। यह निर्बीज कनक होता है ॥ ६०-६२ ॥

[सुतप्ते लोहपात्रे च क्षिपेच्च पलपूर्णकम् ।
सबीजं पारदं कृत्वा चपलस्य तु वापयेत् ।
लाक्षाभो बध्यते सूतो गजेनेव महागजः ॥]

॥ इति चपलबन्धः ॥

[सुतप्त लोह पात्र में चपल चूर्ण को छोड़े और उसमें सबीज पारद को देकर चपल का वाप दे। वह पारद लाख के वर्ण सदृश बंध जाता है। जैसे गज से महागज बंध जाता है] चपल बन्ध समाप्त।

शुद्धसूतपलैकं तु पलैकं गन्धकस्य च ।
एकीकृत्याथ संमर्द्य [1]धुत्तूरस्य रसेन च ।
भावयेच्चक्रयोगेन भस्मीभवति सूतकम् ॥ ६३ ॥
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति शोभनः ।
सूतं हेम च नागं च चन्द्रार्कौ चापि वेधयेत् ॥ ६४ ॥

गन्धक बन्ध—शु० पारद एक पल (५० ग्रा०) तथा गन्धक एक पल इन दोनों को एकत्रकर धत्तूर के रस के साथ मर्दनकर चक्रयोग (वृद्धि क्षीण क्रम) से भावित करे। इससे पारद भस्म हो जाता है। इसको अन्धमूषा में रखकर धमन करने से सुन्दर खोट हो जाता है। यह पारद, स्वर्ण नाग रजत तथा ताम्र को भी बेध देता है ॥ ६३-६४ ॥

पलैकं शुद्धसूतस्य कर्षैकं गन्धकस्य च ।
मर्दयेत् स्निग्धखल्ले तु देवदालीरसप्लुतम् ॥ ६५ ॥
जम्बीरार्द्ररसेनैव दिनमेकन्तु मर्द्दयेत् ।
पलाशमूलक्वाथेन मर्द्दयेत् त्रिदिनं ततः ॥ ६६ ॥
पञ्चद्रावकसंयुक्तां वटिकां कारयेत् शुभाम् ।
पलाशमूलकल्केन वटिकां तां प्रलेपयेत् ॥ ६७ ॥
धमेत् खोटो भवेच्छ्वेतः काचटङ्कणयोगतः ।
शोधयेत् तत् प्रयत्नेन यावन्निर्म्मलतां व्रजेत् ॥ ६८ ॥
तत्खोटं रञ्जयेद्देवि ! त्रिगुणं पन्नगं ततः ।

---

१. उन्मत्तः कितवो धूर्तो धत्तूरः कनकाऽऽह्वयः । अमरः । धुस्तुरस्तु पुण्डरीशो, धूस्तूरः कनकाऽऽह्वयः । शब्दार्णवः ।

शतशो रञ्जयेत् पश्चात् शुद्धाभ्रक-कपालिना ॥ ६९ ॥
शुल्वे तारे च खोटोऽयं सहस्रांशेन वेधकः ।

शु० पारद एक पल (५० ग्राम) तथा गन्धक एककर्ष (१० ग्रा०) इन दोनों को स्निग्ध खरल में देवदाली (बन्दाल) के रस के साथ मर्दन करे जिससे हाथ की अंगुलि से पीठी बन जाय । इसके बाद जम्भीरी निम्बु के रस के साथ एक दिन मर्दन करे ओर पलाश मूल के क्वाथ से तीन दिन तक मर्दन करे। इसके बाद पञ्चद्रावक (सूरण, जलपीपर, मकोय, सहिजन तथा बन्दाल) द्रव्यों के साथ मर्दनकर सुन्दर वटिका बनाये । उस वटिका को पलासमूल के कल्क से लेप करे । तदनन्तर बिडनमक तथा सुहागा मिलाकर धमन करे । इससे श्वेत वर्ण का खोट हो जाता है । प्रयत्नपूर्वक उसका शोधन करे जबतक वह निर्मल न हो जाय । हे देवि ! उस खोट को तीन गुना पन्नग से रञ्जन करे । इसके बाद सैकड़ों बार शुद्ध अभ्रक के कपाल से रञ्जन करे । यह खोट शतांश से ताम्र तथा रजत में बेध करता है ॥ ६५-६९½ ॥

गन्धकेन हते सूते मृतलोहानि वाहयेत् ॥ ७० ॥
पुनर्हेम समावर्त्यं समांशं भक्षणं कुरु ।
जारिते शुल्वतारे च घोषं विध्यति सूतकः ॥ ७१ ॥

गन्धक के साथ मृत पारद में लौहों को वहन कराये पुनः समभाग स्वर्ण मिलाकर भक्षण कराये । ताम्र तथा रजत के साथ जारण करने पर पारद घोष (कांस्य) को बेध देता है ॥ ७०-७१ ॥

रसं हेमसमं कृत्वा पिष्टिकाद्र्धेन गन्धकम् ।
द्विपदीरजसा युक्तं मद्र्दयेट्टङ्कणान्वितम् ॥ ७२ ॥
नष्टपिष्टं च तत् शुल्वं ध्मातं खोटो भवेत्ततः ।
सौवीरं टङ्कणं काचं दत्त्वा दत्त्वा तु शोधयेत् ॥ ७३ ॥
अक्षीणो मिलते हेम्नि समावर्त्तस्तु जायते ।
समांशं भक्षणं हेम्नि शुद्धसूतेन कारयेत् ॥ ७४ ॥
नष्टापिष्टं च तच्छुल्वं ध्मातं खोटो भवेत्ततः ।
द्विपदीरजसा युक्तं मद्र्दयेत् टङ्कणान्वितम् ॥ ७५ ॥
चन्द्रार्कषोडशांशेन विद्धं भवति काञ्चनम् ।
हेमाद्र्धं मिलितं तत्तु मातृकासमतां व्रजेत् ॥ ७६ ॥
कुर्य्यात् सङ्कलिकायोगात् वेधं दशगुणोत्तरम् ।
यथा हेम्नि तथा तारेऽप्यादिबीजानि योजयेत् ॥ ७७ ॥

पारद तथा स्वर्ण समभाग और इस पिष्टी के आधा गन्धक इन सबों को एकत्रकर सुहागा मिलाकर द्विपदी (नागकेशर) के चूर्ण के साथ मर्दन करे। नष्टपिष्ट (एकरस) पूर्वोक्त द्रव्य तथा ताम्र धमन करने से खोट हो जाता है। इसके बाद सौवीराञ्जन, सुहागा तथा त्रिडनमक बार-बार मिलाकर शोधन करे। वह क्षीणरहित स्वर्ण में मिल जाने पर समावर्त (एकमेल) हो जाता है। हे देवि ! समभाग इस समावर्तको स्वर्ण में मिलाकर शुद्ध पारद से भक्षण कराये। नष्ट-पिष्ट उस ताम्र को धमन करने से खोट होता है। इसके बाद सुहागा मिलाकर द्विपदी (नागकेशर) के चूर्ण के साथ मर्दन करे। रजत तथा ताम्र के सोलहवें भाग से स्वर्ण विद्ध होता है। स्वर्ण का आधा भाग मिलाने पर वह मातृका के समान हो जाता है। यह संकलिका के योग से उत्तरोत्तर दश गुणा वेध करता है। अर्थात् एक संकलिका योग से दशवेधी दो संकलिका योग से शतवेधी तीन संकलिका के योग से सहस्रवेधी आदि होता है। जिस प्रकार स्वर्ण में उसी प्रकार रजत में भी आदि बीज का नियोजन करे ॥ ७२-७७ ॥

तृतीयसङ्कलाबद्धं षट्शतांशेन वेधयेत्।
चतुर्गुणेन तेनैव सहस्रांशेन काञ्चनम् ॥ ७८ ॥
अनेन क्रमयोगेन सप्त सङ्कलिका यदि।
कुरुते काञ्चनं दिव्यमष्टौ लोहानि सुन्दरि ! ॥ ७९ ॥
तं पुनश्चूर्णयित्वा तु पुटेद्भस्म प्रजायते।
सर्वव्याधिहरो देवि ! पलैके तस्य भक्षिते ॥ ८० ॥
द्विपले ब्राह्ममायुष्यं त्रिपले वैष्णवं भवेत्।
चतुःपले तु रुद्रत्व-मीशः पञ्चपले भवेत् ॥ ८१ ॥
षट्पले भक्षिते देवि ! सदाशिवतनुर्भवेत् ॥ ८२ ॥

तृतीय संकलिका बद्ध होने पर छः सौ भाग से वेध करे। चतुर्गुण संकलाबद्ध उसी के हजारवां भाग से स्वर्ण को वेध करे। इस क्रम से यदि सात संकलिका क्रम योग हो जाय तो हे सुन्दरि ! आठों लौहों को दिव्य काञ्चन बनाता है। उसको पुनः चूर्णकर पुट देने से भस्म हो जाता है हे देवि ! इसका एक पल भक्षण करने पर सभी रोगों को दूर करता है। दो पल भक्षण करने पर ब्रह्मा की आयु तथा तीन पल भक्षण करने पर विष्णु की आयु प्राप्त होती है। चार पल भक्षण करने पर शंकर का स्थान तथा पांच पल भक्षण करने पर ईश्वर का स्थान प्राप्त करता है। हे देवि ! छः पल भक्षण करने पर सदा शिव शरीर को प्राप्त करता है ॥ ७८-८२ ॥

सूतकं गन्धकं तारं मेषवल्लीरसेन च।
त्रिदिनं मर्द्दयेतीक्ष्णं वङ्गपादेन मेलयेत्।
अन्धमूषागतं ध्मातं वङ्गं स्तम्भयति क्षणात् ॥ ८३ ॥

पारद गन्धक तथा रजत को मेषवल्ली (मेढ़ासिंघी) के साथ तीन दिन तक मर्दन करे और तीक्ष्ण लोह के चौथाई भाग वंग मिला दे। इन सबों को अन्धमूषा में रखकर धमन करने से वंग को क्षणभर में स्तम्भित करता है ॥८३॥

चूर्णितं गन्धकं देवि! मर्कटी रसभावितम्।
भावयेच्छतवारांस्तु जीव भस्म तु गच्छति ॥ ८४ ॥
दीपयेन्मृन्मये पात्रे रसेन सह संयुतम्।
तापयेद्रवितापेन मर्कटी रससंयुतम्।
गन्धकं ग्रसते सूतः पिष्टिका भवति क्षणात् ॥ ८५ ॥

गन्ध पिष्टिका—हे देवि! गन्धक को चूर्ण बनाकर मर्कटी (केवाछ) के रस के साथ भावित करे। इस प्रकार पारद को सौ बार भावित करे। इससे जीव (जीवित) भस्म हो जाता है। इसके बाद मिट्टी के पात्र में पारद के साथ मिलाकर दीपन करे और केवाछ का रस मिलाकर सूर्य के ताप से तापित करे। इससे पारद गन्धक को भक्षण कर लेता है और क्षणभर में पीटी हो जाता है ॥ ८४-८५ ॥

तिलपर्णी रसेनैव गन्धकं भावयेत् प्रिये!।
सप्त वारांस्तु देवेशि! छायाशुष्कं पुनः पुनः ॥ ८६ ॥
शोधितं पातितं सूतं पलैकप्रमितं प्रिये!।
मूषामध्ये विनिक्षिप्य नरेन्द्ररससंयुतम्।
जारयेद्वालुकायन्त्रे भावितं गन्धकं पुनः ॥ ८७ ॥
त्रुटि त्रुटि प्रदातव्यं गन्धकञ्च पुनः पुनः।
अनेन क्रमयोगेन जायते गन्धपिष्टिका ॥ ८८ ॥

गन्ध पिष्टिका—हे प्रिये! तिलपर्णी (तिलोनी नामक शाक) के रस के साथ गन्धक को भावित करे। इस प्रकार सात बार भावित कर बार-बार छाया में सुखाये। हे प्रिये! शोधित तथा पातित पारद एक पल लेकर मूषा के मध्य में नरेन्द्र रस से युक्त भावित गन्धक को छोड़कर बालु का यन्त्र के द्वारा जारण करे और भावित गन्धक को त्रुटि (छोटी इलायची) के बराबर बार-बार मिलाकर जारण करे। इस क्रमयोग से गन्धकपिष्टिका तैयार हो जाती है ॥ ८६-८८ ॥

गन्धपाषाणचूर्णं तु कनकस्य रसेन तु।
एकीकृत्य तथा खल्ले मर्द्दयित्वा यथाविधि।
आतपे स्थापयेद्देवि! कनकस्य रसेन तत्॥ ८९॥
भावयेत् सप्तवारांस्तु स्त्रीपुष्पेण तु सप्तधा।
शुद्धसूतपलैकं च खर्परे दापयेत्ततः॥ ९०॥
भावितं गन्धकं दद्यान्नरपित्तेन संयुतम्।
दोलयेद्रवितापेन पिष्टिका भवति क्षणात्॥ ९१॥

गन्ध पाषाण (गन्धक) का चूर्ण धत्तूर के रस के साथ खरल में विधिपूर्वक मर्दन के द्वारा एक में मिलाकर धूप में रक्खे। हे देवि! पुनः धत्तूर के रस के साथ सात बार भावित करे पुनः स्त्री के पुष्परक्त के साथ सात बार भावित करे। इसके बाद शु० पारद एक पल खर्पर में रक्खे और भावित गन्धक को मनुष्य के पित के साथ मिलाकर सूर्य के धूप में चलाये। इससे क्षण भर में पिष्टिका हो जाती है॥ ९०-९१॥

गन्धकं सूक्ष्मचूर्णन्तु चणकाम्लेन भैरवि!।
भावयेत् सप्तवारांस्तु स्त्रीपुष्पेण च सप्तधा॥ ९२॥
द्रुतसूतकमध्ये तु कर्पूरं गन्धकं समम्।
दापयेन्निक्षिपेद्गोष्ठे सप्ताहाद्गन्धपिष्टिका॥ ९३॥
कटु-कोशातकीबीजं चण्डालीकन्दमेव च।
स्तनक्षीरेण सम्पेष्य पिष्टिकां तेन लेपयेत्॥ ४॥
पुटयेद्भूधरे यन्त्रे स्तम्भते नात्र संशयः।
हेमसम्पुटमध्ये तु समावर्त्तं तु कारयेत्॥ ९५॥
अष्टमांशेन तेनैव नागवेधं प्रदापयेत्।
तन्नागं जायते दिव्यं सिन्दूरारुणसन्निभम्॥ ९६॥
तन्नागेनाष्टमांशेन शुल्ववेधं प्रदापयेत्।
षोडशांशेन तेनैव तारवेधं प्रदापयेत्॥ ९७॥
तत्तारं जायते हेम सिद्धयोगेश्वरीमतम्॥ ९८॥

नाग पिष्टिका—हे भैरवि! गन्धक के सूक्ष्म चूर्ण को चणकाम्ल के साथ सात बार तथा स्त्री के पुष्प रक्त के साथ सात बार भावित करे। द्रुत पारद के मध्य में कर्पूर तथा समभाग गन्धक को मिला दे तथा गौ के निवास स्थान (गोष्ठ) में रक्खे। इससे गन्धपिष्टिका तैयार हो जाती है। कड़वी तरोई के बीज तथा चण्डाली (भूम्यामलकी—या लिङ्गिनीलता) को स्तनक्षीर (स्त्री

के दूध) के साथ पीसकर उससे गन्धपिष्टिका को लेप करे। इसके बाद उसको भूधर यन्त्र में पुट दे। इससे स्तम्भन हो जाता है यहाँ सन्देह नहीं है। इस स्तम्भित पारद को स्वर्ण के दो सम्पुटों में समावर्तन कराये और उसी के अष्टमांश से नाग वेध करे। वह नाग सिन्दूर की अरुणिमा के सदृश दिव्य हो जाता है। उस नाग के अष्टमाँश से ताम्रवेध करे और उसी के षोडशांश से रजत बेध करे। वह विद्ध रजत स्वर्ण हो जाता है। यह सिद्ध योगीश्वरो का मत है ॥ ९२-९८ ॥

गन्धपिष्टिपलैकं तु नागपिष्टिपलाष्टकम् ।
लेपयेन्नागपत्राणि छायायां शोषयेत्ततः ॥ ९९ ॥
आटरूषकपिण्डेन नागपत्राणि लेपयेत् ।
आरण्योपलके देवि ! दापयेच्च पुटत्रयम् ॥ १०० ॥
तन्नागं म्रियते दिव्यं सिन्दूरारुणसन्निभम् ॥ १०१ ॥

गन्धक पिष्टिका एक पल तथा नाग पिष्टिका आठ पल इन दोनों को लेकर नागपत्रों को लिप्त कर छाया में सुखाये। इसके बाद अखरोट के कल्क से नागपत्रों को लिप्त करे। हे देवि ! इसको जंगली उपलों में तीन पुट दें। इससे वह नाग मृत हो जाता है और सिन्दूर की अरुणिमा के सदृश दिव्य भस्म हो जाता है ॥ ९९-१०१ ॥

तन्नागपलमेकं तु शुल्वचूर्णपलाष्टकम् ।
वासकस्य रसेनैव प्रहरैकं तु मर्द्दयेत् ।
मारयेत् पातनायन्त्रे शुल्वं तन्म्रियते क्षणात् ॥ १०२ ॥
षोडशांशेन तेनैव तारवेधं प्रदापयेत् ।
जायते कनकं दिव्यं देवाभरणमुत्तमम् ॥ १०३ ॥

पूर्वोक्त (सिन्दूरारुणिमप्रभ) नाग एक पल तथा ताम्र चूर्ण आठ पल इन दोनों को अड़ूसा के रस के साथ एक पहर तक मर्दन करे और पातना यन्त्र में मारण करे। इससे वह ताम्र क्षण भर में मृत हो जाता है। उसी मृत ताम्र के षोडशांश से रजत का बेध करे इससे देवताओं का उत्तम आभरण दिव्य कनक हो जाता है ॥ १०२-१०३ ॥

या काचिद्गन्धपिष्टी तु आदौ नागं तु मारयेत् ।
नागं तु वेधयेच्छुल्वं शुल्वं तारं तु वेधयेत् ।
कनकं जायते दिव्यं सिद्धयोग उदाहृतः ॥ १०४ ॥

यो कुछ गन्ध पिष्टी है उसके पहले नाग का मारण करे। नाग ताम्र का

वेध करता है। ताम्र रजत का वेध करता है और रजत दिव्य कनक हो जाता है। यह सिद्ध योग कहा गया है ॥ १०४ ॥

गन्धकं मधुसंयुक्तं हरबीजेन मर्दितम् ।
भूमिस्थं मासषट्कं तु तारमायाति काञ्चनम् ॥ १०५ ॥
उद्वर्त्तनं तु तेनैव कुष्ठरोगस्य नाशनम् ।
घृतेन सह संयुक्तं व्रणरोगविनाशनम् ।
संवत्सरप्रयोगेण सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ १०६ ॥

॥ इति गन्धकबन्धः ॥

गन्धक को मधु मिलाकर पारद के साथ मर्दन करे और छः मास तक जमीन के अन्दर रक्खे। इसके साथ धमन करने से रजत काञ्चन हो जाता है। उससे शरीर में उद्वर्तन (उबटन) लगाना कुठ रोग को नाश करता है। वह घृत के साथ प्रयोग करने से व्रण रोग को नाश करता है। मनुष्य एक वर्ष तक प्रयोग करने से एक हजार वर्ष की आयु प्राप्त करता है ॥ १०५-६ ॥

गन्धक बन्ध समाप्त ।

शुद्धसूतपलैकं च पलैकं तालकस्य च ।
एकीकृत्याथ सम्मर्द्य उन्मत्तकरसेन[1] च ।
मारयेच्चक्रयन्त्रेण भस्मीभवति सूतकम् ॥ १०७ ॥
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति शोभनः ।
वङ्गं तारं च शुल्वं च क्रमशो वेधयेद्रसः ॥ १०८ ॥

तालक बन्ध :—शु० पारद एक पल (५० ग्रा०) तथा शु० हरताल एक पल इन दोनों को धतूर के रस के साथ मर्दन कर एकत्र करे और चक्र यन्त्र से मारण करे। इससे पारद भस्म हो जाता है। और अन्ध मूषा में रखकर धमन करने से सुन्दर खोट हो जाता है। क्रमशः यह रस वंग, रजत तथा ताम्र का वेध करता है ॥ १०७-१०८ ॥

शुद्धवङ्गपलैकं च पलैकं सूतकस्य च ।
द्विपलं तालकं चैव उन्मत्तरसमर्दितम् ।
मारयेत् पातनायन्त्रे धमनात् खोटतां नयेत् ॥ १०९ ॥

शु० वंग एक पल (५० ग्रा०) तथा पारद एक पल और हरताल दो पल (१०० ग्रा०) इन सबों को धतूर के रस के साथ मर्दन करे। और

---

१. उन्मत्ताको धत्तूरः ।

पातना यन्त्र में मारण करे। इसके बाद धमन करने से खोट हो जाता है॥ १०९॥

तालपिष्टीपलैकं तु पलैकं गन्धकस्य च।
द्वे पले शुद्धसूतस्य दिनमेकन्तु तेन वै॥ ११०॥
एकीकृत्याथ सम्मर्द्य उन्मत्तकरसेन च।
मारयेत् पातनायन्त्रे धमनात् खोटतां नयेत्॥ १११॥

॥ इति तालकबन्धः॥

हरताल पिष्टी एक पल गन्धक एक पल तथा शु० पारद दो पल इन सबों को धतूर के रस के साथ मर्दन कर एक मेल बना ले और पातना यन्त्र में मारण करे। यह धमन करने से खोट बन जाता है॥ ११०-१११॥

तालक बन्ध समाप्त।

शुद्धनागपलैकं च पलैकं सूतकस्य च।
पलद्वयं कुनट्याश्च सर्वमेकत्र मर्दयेत्।
मारयेत् पातनायन्त्रे धमनात् खोटतां नयेत्॥ ११२॥

अनेक प्रकार के खोट निर्माण की विधि :—शु० नाग एक पल (५० ग्रा०) शु० पारद एक पल तथा कुनटी (मनःशिला) दो पल इनसबो को एकल कर मर्दन करे और पातना यन्त्र में मारण करे। इसके बाद धमन के द्वारा खोट बनाये॥ ११२॥

हेमपिष्टिपलैकं तु पलैकं गन्धकस्य च।
एकीकृत्याथ सम्मर्द्य [1]धुत्तूरकरसेन च।
मारयेत् पातनायन्त्रे धमनात् खोटतां नयेत्॥ ११३॥

हेम पिष्टी एक पल तथा गन्धक एक पल इन दोनों का धतूर के रस के साथ मर्दन कर पाताल यन्त्र में मारण करे और धमन के द्वारा खोट बनाये॥ ११३॥

कृष्णाभ्रकस्य सत्त्वं च कान्तं तीक्ष्णं च हाटकम्।
शुद्धशुल्वं च तारं च माक्षिकं समभागिकम्।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात्॥ ११४॥

काला अभ्रक का सत्व, कान्त लोह, तीक्ष्ण लोह, स्वर्ण शु० ताम्र, रजत

---

१. धत्तूरः, धुत्तूरः धुस्तूरः, धूस्तूरः, इति नानाविधोऽयं शब्दः कोषेषु दृश्यते।

तथा माक्षिक समभाग इन सबों को अंध मूषा में रखकर धमन करने से तत्काल खोट होता है ॥ ११४ ॥

तत्खोटपलमेकं तु पलैकं सूतकस्य च।
पलद्वयं कुनट्याश्च सर्वमेकत्र मर्द्दयेत्।
मारयेत् पातनायन्त्रे धमनात् खोटतां नयेत् ॥ ११५ ॥

पूर्वोक्त खोट एक पल, पारद एक पल तथा मनःशिला दो पल इन सबों को एकत्र कर मर्दन करे और पातना यन्त्र में मारण करे तथा धमन के द्वारा खोट बनाये ॥ ११५ ॥

कृष्णाभ्रकपलैकं तु रसकस्य पलं तथा।
सूतकस्य पलैकं तु सर्वमेकीकृतं प्रिये! ॥ ११६ ॥
उन्मत्तकरसेनैव मर्द्दयेत् प्रहरद्वयम्।
मर्द्दयेद्दिनमेकं तु टङ्कणेन समन्वितम् ॥ ११७ ॥
गुटिकां कारयेद्देवि! छायाशुष्कां तु कारयेत्।
महावह्निगतं ध्मातं खोटो भवति सूतकम् ॥ ११८ ॥

हे प्रिये! काला अभ्रक एक पल, खर्पर एक पल पारद एक पल इन सबों को एकत्र कर धतूर के रस के ही साथ दो पहर तक मर्दन करे और टङ्कण के साथ एक दिन तक मर्दन करें। हे देवि, इसके बाद गुटिका बनाकर छाया में सुखा ले इसको तीव्राग्नि में रख कर धमन करने से पारद खोट हो जाता है ॥ ११७-११८ ॥

तं खोटं शोधयेच्छ्वेतकाचटङ्कणयोगतः।
हेम्ना सह समावर्त्य सारणात्रयसारितम् ॥ ११९ ॥
सहस्रांशेन तेनैव शुल्ववेधं प्रदापयेत्।
अनेन क्रमयोगेन कोटिवेधी भवेद्रसः ॥ १२० ॥

इस खोट को सफेद बिड नमक तथा सुहागा मिलाकर शोधन करे और स्वर्ण के साथ मिलाकर तीन बार सारणा के द्वारा सारित कर उसी के हजारवा भाग से ताम्र का वेध करे। इस क्रमयोग से पारद कोटि वेधी होता है ॥ ११९-१२० ॥

बीजद्वयं पलाशस्य पलमेकं तु सूतकम्।
जम्बीराम्लेन सम्मर्द्य छायाशुष्कं तु कारयेत् ॥ १२१ ॥
तुम्बी च मेघनादा च काकजङ्घा च चूलिका।
स्त्रीस्तन्येन प्रलिप्तायां मूषायां च विनिक्षिपेत् ॥ १२२ ॥

धमयेत् खदिराङ्गारैः खोटो भवति चाक्षयः ॥ १२३ ॥

पलास का दो बीज तथा पारद एक पल इन दोनों को जम्बीरी निम्बु के रस के साथ मर्दन कर छाया में सुखा ले। इसके बाद तुम्बी (कड़वा कद्दु), मेघनाद (चौराई), काक जङ्घा तथा चूलिका (नवसादर) इन सबों को स्त्री के दूध के साथ मर्दन कर उस कल्क से लिप्त मूषा में रक्खे और खैर की लकड़ी के अङ्गार से धमन करे। इस प्रकार धमन करने से अक्षय खोट होता है ॥ १२१-१२३ ॥

पलाशतैलं सम्मर्द्य यावत् स्याद्रसपिष्टिका।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ १२४ ॥

पलास तैल के साथ पारद का मर्दन कर रस पिष्टिका बनाये और उसको अन्ध मूषा में धमन करे। इस प्रकार धमन करने से तत्काल खोट हो जाता है ॥ १२४ ॥

पूर्वशुद्धेन सूतेन सह हेम्ना च पार्वति!।
गोलकं कारयेत्तेन मर्दयित्वा द्रुतं कृतम् ॥ १२५ ॥
ब्रह्मवृक्षस्य बीजानि कार्पासास्थि विभीतकम्।
यवचिञ्चा तु बन्ध्या च राजिका च समन्वितम् ॥ १२६ ॥
सूक्ष्मपिण्डीकृतं सर्वं तेन लिप्त्वा तु गोलकम्।
पुटनैः सप्तभिर्देवि! पिष्टिकास्तम्भनं भवेत् ॥ १२७ ॥
बृहत्पुटं ततो दत्त्वा मूषायां तत्तु भावयेत्।
समावर्त्तं तु तं सूतं समहेम्ना नियोजितम्।
शतांशेन तु चन्द्रार्कं वेधयेत् सुरवन्दिते! १२८ ॥

पिष्टिका स्तम्भन :—हे पार्वति! पूर्वोक्त शु० पारद तथा स्वर्ण के साथ गोलक बनाये और पलास तैल के साथ मर्दन कर द्रुत करे। इसके बाद ब्रह्म-वृक्ष (पलास) के बीज, कपास का बीज, बहेड़ा, यवचिञ्चा, (इमली), बन्ध्या कर्कोटकी तथा राई इन सबों को एकत्र महीन पीस कर उससे गोलक को लिप्त कर सात पुट दे। हे देवि! इससे पिष्टिकास्तम्भन हो जाता है। तदन्तर मूषा में बृहत्पुट देकर भावित करे और समावर्तित उस पारद को स्वर्ण के साथ नियोजित करे। हे सुरवन्दिते। इसके बाद उसके शतांश से रजत तथा ताम्र का वेध करे ॥ १२५-१२८ ॥

पुनस्तेनैव योगेन पिष्टास्तम्भं तु कारयेत्।
सारयित्वा ततो हेम्ना वेधयेच्च सहस्रकम् ॥ १२९ ॥

एवं लक्षाणि कोटिं च वेधयेत् क्रमयोगतः।
सप्तसङ्कलिकादूर्ध्वं कृत्वा वक्त्रे तु गोलकम्।
वर्षणैकेन स भवेत् वलीपलितवर्जितः ॥ १३० ॥

पुनः पूर्वोक्त योग से पिष्टिका स्तम्भ करे और सारण कर स्वर्ण से सहस्र वेध करे। इसी प्रकार क्रम योग से लक्षवेध तथा कोटिवेध करे। सप्त संकलिका क्रम योग के ऊपर गोलक बनाकर मुख में रखने से मनुष्य एक वर्ष में बलि पलित रोग से मुक्त हो जाता है ॥ १२९-१३० ॥

चाण्डाली राक्षसी चैव कुण्डगोलोद्भवो रसः।
बीजं सतं च वैक्रान्तं मर्द्दयेत् प्रहरत्रयम् ॥ १३१॥
विशुद्धं गोलकं कृत्वा मूकमूषागतं पुटेत्।
खोटस्तु जायते देवि! सुध्मातः खदिराग्निना ॥ १३२ ॥

चण्डाली[1] (लिङ्गिनी लता), राक्षसी (सुगन्धित द्रव्य विशेष) कुण्डगोल (काञ्जी) से उत्पन्न रस, बीज, सत तथा वैक्रान्त इन सबों को तीन पहर तक मर्दन करे और विशुद्ध गोलक बनाकर तथा मूक मूषा में रखकर पुट दे। इस प्रकार हे देवि! खैर की लकड़ी की आग से धमन करने पर खोट हो जाता है ॥ १३१-१३२ ॥

चाण्डालीराक्षसीपुष्प-रसमध्वाज्यटङ्कणैः ।
महारसाष्टमध्यैक-मभ्रकं चापि योजयेत् ॥ १३३ ॥
नागं वङ्गं समं सूतं हेम तारमथापि वा।
अभ्रकं द्रुतिसत्त्वं वा मर्द्दयेत् प्रहरद्वयम् ॥ १३४ ॥
छायाशुष्कं ततो गोलं मूकमूषागतं धमेत्।
दत्त्वा लघुपुटं देवि! खोटो भवति शोभनः ॥ १३५ ॥

चण्डाली तथा राक्षसी का पुष्प रस, मधु, घृत तथा टङ्कण के साथ आठ महारस (माक्षिक, बिमल, शैल, चपल, खर्पर, सस्यक दरद तथा स्रोतोऽञ्जन) तथा अभ्रक को भी मिला दे। नाग, वंग, पारद, स्वर्ण तथा रजत समभाग एवं अभ्रक या द्रुति सत्व इन सबों को दो पहर तक मर्दन करे और छाया में सुखाकर गोलक बनाये तथा मूक मूषा में रखकर धमन करे। हे देवि! लघु पुट देने से सुन्दर खोट हो जाता है ॥ १३३-१३५ ॥

---

१. चण्डालीति निर्दिष्टा त्रिचतुः पञ्च धारिणी। सरक्ताक्षीर कन्दा च तथा सूतो निबध्यते। (र० का० धे०)।

रम्भा वीरा स्नुहीक्षीरं कञ्चुकी यवचिञ्चिका।
वाराही चैव गोरम्भा मीनाक्षी काकमाचिका ॥ १३६ ॥
एभिर्मर्दितसूतस्य पुनर्जन्म न विद्यते।
पूर्ववत् क्रमयोगेण खोटो भवति शोभनः ॥ १३७ ॥

वानस्पतिक खोटबन्ध :—रम्भा (कदली कन्द), वीरा[1] (वीर वल्ली) सेहुड़ का दूध क्षीर कञ्चुकी, इमली वाराही कन्द, गोरम्भा (हरिद्रा) मीनाक्षी (मत्स्याक्षी) तथा मकोय इन द्रव्यों के कल्क के साथ पारद का मर्दन करने पर उसका पुनः जन्म नहीं होता है। अर्थात् पुनः वह पूर्व के आकार का नहीं होता इस प्रकार पूर्ववत् क्रम योग से पारद का सुन्दर खोट हो जाता है ॥ १३६-१३७ ॥

विष्णुक्रान्ता च चक्राङ्का बला च तुलसी तथा।
महासोमाऽहिवल्ली च सूर्यावर्त्तश्च सुन्दरि !।
एभिस्तु मर्दितः सूतः पूर्ववत् खोटतां व्रजेत् ॥ १३८ ॥

हे सुन्दरि ! विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), चक्राङ्का (चक्राङ्की, सुदर्शन लता) बला, तुलसी, महासोमा (सोमलता), अहिबल्ली (नाग वल्ली) तथा सूर्यावर्त (हुरहुर) इन द्रव्यों के साथ मर्दित पारद पूर्ववत् खोट हो जाता है ॥ १३८ ॥

मुखेन ग्रसते ग्रासं जारणा तेन सुन्दरि !।
रसोनराजिकामूलैर्मर्दितं वरवर्णिनि !।
दिव्यौषधिपुटं पाच्यं रसखोटस्य लक्षणम् ॥ १३९ ॥

रस खोटका लक्षण :—हे सुन्दरि ! खोट होने से जारणा मुख से ग्रास ग्रहण करती है। हे वर वर्णिनि ! लहसुन, राई तथा मूलो के साथ मर्दित तथा दिव्य–औषधियों के साथ पुट तथा पाचन करना रस खोट का लक्षण है ॥१३९॥

एतत्ते कथितं गुह्यं विज्ञेयं रसवादिभिः।
मत्प्रसादेन देवेशि ! तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ १४० ॥

मैंने इन गोप्य वस्तुओं को बताया। इसको रस वैज्ञानिक समझें। हे देवेशि ! मेरे प्रसाद से रस की सिद्धि होती है। इसमें सन्देह नहीं है ॥१४०॥

स्नुहीक्षीरं सकाञ्जीकं बीजानि कनकस्य च।

---

१. रक्त क्षीरवती विल्वदलोपम दलान्विता। (र० का० धे०)

कञ्चुकी लाङ्गली चेन्द्र-वारुणी विषमुष्टिका।
पलाशमूलतोयं च मर्दयेत्तेन सूतकम् ॥ १४१ ॥
समे हेम्नि समं सूतं पिष्टिकां कारयेद्बुधः।
महारसान् पिष्टिकार्थं मर्दयेदौषधीरसैः ॥ १४२ ॥
यामत्रयं मर्दयित्वा गोलकं कारयेद्बुधः।
पिष्टिकां बन्धयित्वा तु गन्धतैले विपाचयेत् ॥ १४३ ॥
अन्धमूषागतं गोलं छायाशुष्कं तु कारयेत्।
[ततो लघुपुटं दत्वा खदिराग्नौ तु धामयेत्।
खोटस्तु जायते हेम्नि सह हेम्ना तु सारयेत् ॥]
अक्षीणो मिलते हेम्नि समावर्त्तश्च जायते ॥ १४४ ॥
भक्षणादेव सूतस्य दिव्यदेहो भवेन्नरः।
वेधयेत् सर्वलोहानि रञ्जितः क्रामितो रसः ॥ १४५ ॥

अनेक प्रकार के खोट निर्माण विधि :—सेंहुड़ का दूध, काञ्जी धतूर के बीज, क्षीरकञ्चुकी, कलिहारी, इन्द्रवारुणी तथा विषमुष्टिका (कुचिला) इन सबों के कल्क और पलास मूल के रस के साथ पारद को मर्दन करे। इसके बाद समभाग स्वर्ण में समभाग पारद मिलाकर विद्वान् पुरुष पिष्टिका बनाये। पिष्टिका के लिए आठ महारसों को औषधि (वनस्पति) के रसों से मर्दन करे और तीन पहर मर्दन कर गोलक बनाये। तदनन्तर पिष्टिका को (कपड़ा में) बांधकर गन्ध तैल में पकावे। उस गोलक को छाया में सुखाकर तथा अन्धमूषा में रखकर धमन करे।

[इसके बाद लघुपुट देकर खैर की आग से धमन करे। यह खोट हो जाता है। सोना में सोना के साथ सारण करे।]

वह क्षय रहित स्वर्ण में मिलता है और समावर्त भी हो जाता है। इस पारद को भक्षण करने से मनुष्य दिव्य शरीर धारण करता है और रञ्जित तथा क्रामित रस सभी लोहों को वेध करता है ॥ १४१-१४५ ॥

समांशभक्षणं सूतं मर्द्दयेदोषधीरसैः।
नष्टपिष्टं तु तं कृत्वा पूर्वयोगेन धामयेत् ॥ १४६ ॥
खोटस्तु जायते दिव्यः षोडशांशेन वेधयेत्।
बद्धः सङ्कलिकायोगाद्विध्येद्दशगुणोत्तरम् ॥ १४७ ॥

समभाग स्वर्ण भक्षित पारद को ओषधि के रसों से मदन करे उसको नष्ट पिष्ट कर पूर्वोक्त योग से धमन करें। इससे दिव्य खोट हो जाता है। इसके

सोलहवे भाग से वेध करे। यह संकलिका क्रम योग से उत्तरोत्तर दसगुना वेध करता है ॥ १४६-१४७ ॥

मृगदूर्वा चन्द्रवल्ली पक्वा चिञ्चा तथैव च।
कोकिला करवीरं च बीजं चोन्मत्तकस्य च।
काकाण्डीफलसंयुक्तं मर्द्दयेत् सुरसुन्दरि! ॥ १४८ ॥
समहेम्नि समं सूतं पिष्टिकां कारयेद्बुधः ॥ १४९ ॥

हे सुन्दरि। मृग दूर्वा (सफेद दूब), चन्द्र वल्ली (प्रसारणी-सोमलता), पकी इमली, कोकिला (काकोली), कनेर, धतूर के बीज, तथा काकण्डीफल (माल कांगनीफल) इन सबों के साथ पारद का मर्दन करे और समभाग स्वर्ण में समभाग पारद मिलाकर बुद्धिमान् पुरुष पिष्टिका बनाये ॥१४८-१४९॥

अथवा सारयित्वा तु समेन सह सूतकम्।
महारसं पिष्टिकार्थं मर्द्दयेदोषधीरसैः ॥ १५० ॥
यामत्रयं मर्द्दयित्वा गोलकं कारयेत्ततः।
अन्धमूषागतं गोलं छायाशुष्कं तु कारयेत् ॥ १५१ ॥
ततो लघुपुटं दत्त्वा ध्मातः खोटो भवेत् प्रिये! ॥ १५२ ॥

अथवा समभाग स्वर्ण के साथ पारद को सारण कर तथा पिष्टिका के लिए महारसों को ओषधि के रसों के साथ तीन पहर तक मर्दन कर गोलक बनाये। इसके बाद अन्ध मूषा में रखकर छाया शुष्क करे और लघु पुट के द्वारा धमन करे। हे प्रिये। इस प्रकार धमन करने से खोट हो जाता है ॥ १५०-१५२ ॥

मृगदूर्वा-तमा-सोम-रसैः सूतकचारणम्।
मूलैस्त्रयाणां लाङ्गल्या रामठेन च हन्यते ॥ १५३ ॥
समेन हेम्ना संयुक्तां पिष्टिकां कारयेद्बुधः।
अथ तारकपिष्टं च समसूतेन कारयेत् ॥ १५४ ॥
पूर्ववत् क्रमयोगेण खोटो भवति शोभनः।
अन्धमूषागतं भूमौ स्वेदयेत् [1]करिषाग्निना ॥ १५५ ॥
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा चूर्णबन्धो भवेत्ततः।
तच्चूर्णबन्धः कुरुते वेधं दशगुणोत्तरम् ॥ १५६ ॥

सफेद दूर्वा। तमा (उत्तमा, भूई आंवला) तथा सोमलता इन सबों के रस के साथ पारद का चारण करे। तीनों के मूल, लाङ्गली तथा हिंगु के साथ

---

१. गोविट्, गोमयमस्त्रियाम्, तत्तु शुष्कं करीषोऽस्त्री,-अमरः। अत्र तु—छन्दोऽनुरोधाद् ह्रस्वः।

मारण हो जाता है। इस पारद को समभाग स्वर्ण के साथ पिष्टिका बनाये। इसके बाद समभाग रजतपिष्ट समभाग पारद के साथ मिला दे। इस प्रकार पूर्ववत् क्रम योग से सुन्दर खोट हो जाता है इसको अन्ध मूषा में रखकर गोहरी की आग से जमीन में स्वेदन करे। स्वेदन एक दिन रात या तीन दिन रात करने से चूर्णबन्ध हो जाता है। वह चूर्णबन्ध उत्तरोत्तर दश, दश गुना को बेध करता है ॥ १५३-१५६ ॥

शूलिनीरससूतञ्च स्रोतोञ्जनसमन्वितम् ।
पूर्ववत् पिष्टकायोगात् खोटो भवति शोभनः ॥ १५७ ॥

शूलिनी (सोला-वंगला नाम) का रस, पारद तथा स्रोतञ्जन इन सबों को मिलाकर पूर्ववत् पिष्टिका योग से पारद सुन्दर खोट हो जाता है ॥१५७॥

स्रोतोञ्जनं सतगरं पिष्टित्रययुतं रसम् ।
धमयेद्वह्निसङ्क्षिप्तं सूतकः सर्वकर्म्मकृत् ॥ १५८ ॥

स्त्रोतोऽञ्जन, तगर, तथा पिष्टित्रय (रजत पिष्टि, स्वर्ण पिष्टि तथा ताम्र पिष्टि) इन सबों के साथ पारद को (मूषा गत कर) आग में छोड़कर धमन करे। यह पारद सभी कर्म को करने वाला होता है ॥ १५८ ॥

हेमाभ्रं चैव ताराभ्रं शुल्वाभ्रं चाभ्रतीक्ष्णकम् ।
वङ्गाभ्रं चैव नागाभ्रं समसूतेन वेधयत् ॥ १५९ ॥
यथालाभौषधीघृष्टं महारससमन्वितम् ।
हेम्ना तारेण शुल्वेन तीक्ष्णवङ्गोरगैस्तथा ॥ १६० ॥
एभिर्व्यस्तैः समस्तैर्वा पिष्टिं कृत्वा समे समाम् ।
मारयेत् पूर्वविधिना गर्भयन्त्रे तुषाऽग्निना ॥ १६१ ॥
समांशं सूतकं दत्त्वा वारं [1]वारं पुनः पुनः ।
जायन्ते विविधाः खोटाः कान्तबद्धो महारसः ॥ १६२ ॥
भवेत् सङ्कलिकायोगात् वेधो दशगुणोत्तरः ॥ १६३ ॥

हेमाभ्र, ताराभ्र, शुल्वाभ्र, अभ्रतीक्ष्ण, वंगाभ्र तथा नागाभ्र इन सबों को समभाग पारद से वेध करे। जो औषधें उपलब्ध हो जाय उनके साथ घिसकर तथा महारस मिलाकर स्वर्ण, रजत, ताम्र, तीक्ष्ण लौह, वंग तथा नाग अलग-अलग इनके साथ या एक साथ पिष्टि बनाकर समभाग में समभाग को पूर्व विधि के अनुसार गर्भयन्त्र में भूसी की आग से मारण करे। बार-बार समभाग

---

१. नित्यवीप्सयोरिति द्वित्वम्, 'पुनः पुनः' इति—द्विरुक्ता भाषा, वारंवार-मित्यनेनैव गतार्थत्वात् ।

पारद देकर मारण करे। इससे विविध प्रकार के खोट हो जाते है और महारस (पारद) कान्तबद्ध हो जाता है। यह संकलिका क्रम योग से उत्तरोत्तर दशगुना बेध करता है ॥ १५९–१६३ ॥

खोटः पोटस्तथा भस्म धूलिः कल्कश्च पञ्चमः।
एते निगलगोलाभ्यां सर्वबन्धफलोदयाः ॥ १६४ ॥

खोट, पोट, भस्म, धूलि तथा पांचवां कल्क ये सब निगल तथा गोला के द्वारा सभी बन्धफल को उत्पन्न करने वाले हैं अर्थात् इन्हीं के संयोग से रस बन्ध सिद्ध होता है। १६४ ॥

शिग्रुसर्ज्जभवं क्षारं ब्रह्मबीजानि गुग्गुलुः।
सैन्धवं द्विगुणं दत्त्वा मर्द्दयित्वा विचक्षणः ॥ १६५ ॥
पिष्टिकावेष्टनं कृत्वा कल्केनानेन सुन्दरि!।
बिल्वप्रमाणं कृत्वा तु मूषामतिदृढां शुभाम् ॥ १६६ ॥
ऊर्द्धाधो लवणं दत्त्वा मूषामध्ये रसं क्षिपेत्।
मूषालेपः प्रदातव्यो दग्धशंखादिचूर्णकः ॥ १६७ ॥
मुखं तस्या दृढं बद्ध्वा लोणमृत्तिकया पुनः।
कारयेच्च सुधालेपं छायाशुष्कं च कारयेत् ॥ १६८ ॥
उक्तो निगलबन्धोऽयं पुत्र[1]स्यापि न कथ्यते ॥ १६९ ॥
तुषकर्षाग्निना भूमौ मृदुस्वेदं तु कारयेत्।
अहोरात्रप्रमाणेन पुटं दत्त्वा प्रयत्नतः ॥ १७० ॥
एवं मूषा महेशानि! रसस्य खोटतां नयेत्।
सुध्मातः खदिराङ्गारैः रसेन्द्रः खोटतां व्रजेत् ॥ १७१ ॥
सौवीरं सङ्कणं काचं दत्त्वा खोटं तु शोधयेत्।
अक्षीणी मिलते हेम्नि समावर्त्तस्तु जायते ॥ १७२ ॥
समांशभक्षणं तं तु शुद्धसूतेन कारयेत्।
धमयेत् पूर्वयोगेन रसेन्द्रं खोटतां नयेत् ॥ १७३ ॥
भवेत् सङ्कलिकायोगात् वेधो दशगुणोत्तरः ॥ १७४ ॥

सहिजन तथा सर्ज (राल) का क्षार, पलास का बीज युग्गुलु एक-एक भाग तथा सेन्धा नमक दुगुना मिलाकर विद्वान् मनुष्य मर्दन करे और हे सुन्दरि उस कल्क से पिष्टिका को वेष्टित कर बेल के प्रमाण का सुदृढ़ सुन्दर मूषा बनाकर

---

१. अतिगोप्यत्वसूचनार्थमिदम्।
२. कोकिलोत्तरवारुणी-इति पाठान्तरम्।

ऊपर नीचे सेन्धा नमक मूषा के मध्य में पारद छोड़ दे। पहले शंख टंकण के चूर्ण से मूषा लेप कर दे। मूषा का मुख लोन मिट्टी से मजबूत बांध कर पुनः चूना का लेप कर दे और छाया में सुखा ले। इसको निगलबन्ध कहते हैं। इस निगलबन्ध को पुत्र से भी नहीं कहना चाहिए। अर्थात् अत्यन्त गोप्य रखना चाहिए। इस मूषा को भूमि में रखकर ऊपर से धान की भूसी तथा गोहरी की आग से मृदु स्वेदन करे। प्रयत्न पूर्वक एक दिन रात पुट देकर पारद को खोट बनाये। हे महेशानि! इस प्रकार खैर के अंगार से मूषाधमन करने से पारद खोट हो जाता है।

सौबीराञ्जन, टंकण, तथा विड नमक मिलाकर खोट का शोधन करे। क्षय रहित स्वर्ण के मिल जाने पर समावर्त हो जाता है। समभाग स्वर्ण समावर्त को शुद्ध पारद से भक्षण कराये और पूर्व क्रम योग से धमन करे। इससे पारद खोट हो जाता है। यह खोट संकलिका क्रमयोग से उत्तरोत्तर दशगुना वेध करता है॥ १७२-१७४॥

पलाशबीजनिर्य्यासं कोकिलोन्मत्तवारुणि।
शूलिनीरससंयुक्तं पेषयेत् सैन्धवान्वितम्॥ १७५॥
पिष्टिकावेष्टनं कृत्वा निगलेन तु बन्धयेत्॥ १७६॥
मूषायां [3]निगलो देवि! लेपितः शिवशासनात्।
रसस्य परिणामाय महदग्निस्थितो भवेत्॥ १७७॥

पलास बीज का निर्यास (गोंद) कोकिल (काकोली) धतूर तथा इन्द्र वारुणी इन सबों को शूलिनी (सोला) के रस के साथ पीसकर तथा सेन्धा नमक मिलाकर उससे पिष्टिकाबन्धन कर निगल से बांधे। हे देवि! मूषा में निगल लेप होने पर शिव की आज्ञा से रससिद्धि के लिये तीव्राग्नि में स्थित हो जाता है॥ १७५-१७७॥

अभ्रकस्य तु पत्रेण वज्रार्कक्षीरसिन्धुना।
ताप्येन लोहकिट्टेन सिकतामृन्मयेन च॥ १७८॥
एभिस्तु निगलैर्बद्धः [4]पारदीयो महारसः।
नातिक्रामति मर्य्यादां वेलामिव महोदधिः॥ १७९॥

अभ्रक का सूक्ष्म पत्र, सेंहुड़ तथा मदार का दूध, सेन्धा नमक ताप्य लोह (माक्षिक) लौह किट्ट (मण्डूर) बालुकामिश्रितमिट्टी इन सबों से निर्मित

३. अथ शृंखला, अन्दुको निगडोऽस्त्रीस्यात्, अमरः डलयोरेकत्वान्निगलः,
४. 'पारदोऽयं महारसः'-इति पाठान्तरम्।

निगलों से महारस पारद बद्ध हो जाता है। यह समुद्र की लहर की तरह मर्यादा (सीमा) का अति क्रमण नहीं करता है ॥ १७८–१७५ ॥

तैलार्कक्षीरवाराही-लाङ्गल्यो निगलोत्तमः।
काकविट् ब्रह्मबीजानि लाङ्गली निगलो वरः ॥ १८० ॥
वाकुची ब्रह्मबीजानि कर्कटास्थीनि सुन्दरि!:
सामुद्रं साम्बरं चैव लवणं निगलोत्तमः ॥ १८१ ॥!

तैल, अर्क का दूध वाराहीकन्द तथा लांगली ये उत्तम निगल हैं। काक की विष्ठा, पलास बीज तथा ककड़ी का बीज ये उत्तम निगल हैं। हे सुन्दरि! वाकुची, पलास बीज तथा ककड़ी का बीज, सामुद्र नमक तथा सांभर नमक यह उत्तम निगल है ॥ १८०–१८१ ॥

स्नुह्यर्कसम्भवं क्षीरं ब्रह्मबीजानि कोकिला।
करकस्य तु बीजानि लोहाष्टांशेन मर्दयेत् ॥ १८२ ॥

सेंहुड़ तथा मदार का दूध, पलास बीज, काकोली तथा करक (अनार) का बीज इन सबों को अष्टमांश लौह के साथ मर्दन करे ॥ १८२ ॥

निगलोऽन्यस्तु गोजिह्वा-मूलानि स्त्रीरजोऽपरः!।
वाकुची ब्रह्मबीजानि स्नुह्यर्कक्षीरसैन्धवम्।
ज्वालिनी काकविष्ठा च प्रशस्तो निगलोत्तमः ॥ १८३ ॥

एक गो जिहवा के मूल दूसरा स्त्री का रज, बाकुची, पलास बीज, सेंहुड़ तथा मदार का दूध, सेन्धा नमक, ज्वालिनी (मूर्वा) तथा काकविष्ठा ये सब उत्तम निगल है ॥ १८३ ॥

लवणं टङ्कणं क्षारं शिलातालकगन्धकम्।
तथाम्लवेतसं ताप्यं हिङ्गुलं समभागिकम्।
स्नुह्यकपयसा युक्तं पेषयेन्निगलोत्तमम् ॥ १८४ ॥

सेन्धानमक, टंकण, यवक्षार, शिलाजीत, हरताल, गन्धक, अम्लवेत, ताप्य, (स्वर्णा माक्षिक) तथा हिंगुल समभाग इन सबों को लेकर सेहुड़ तथा मदार के दूध के साथ पीसे यह उत्तम निगल है ॥ १८४ ॥

पिष्टिकां वेष्टयेदेषामेकेन निगलेन तु।
लोह-मूषागतं प्राग्वत् खोटं कृत्वा तु वेधयेत् ॥ १८५ ॥

इन सबों के किसी एक निगल से पिष्टिका को बेष्टित करे। और पूर्ववत् लौह मूषा में रखकर खोट बनाये और उससे बेध करे ॥ १८५ ॥

द्वितीयं गोलकं वक्ष्ये पिष्टिकास्तम्भमुत्तमम् ॥ १८६ ॥

अच्छी तरह पिष्टिका को स्तम्भ करने वाले द्वितीय गोलक को कहता हूँ ॥ १८६ ॥

द्विपदीरजमूत्राणि सैन्धवाभ्रं च गुग्गुलुः ।
पिष्टीं संवेष्ट्य कल्केन मृदा तु पुनरष्टका ॥ १८७ ॥
तुषकर्षाग्निना भूमौ मृदुस्वेदं तु कारयेत् ।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा पूर्ववत् खोटतां नयेत् ॥ १८८ ॥

द्विपदी (नागकेशर) का रज तथा मूल, सेन्धा नमक, अभ्रक तथा गग्गुलु इन सबों के कल्क से पिष्टिका को वेष्टित कर पुनः मिट्टी से आठ बार वेष्टित करे। इसके बाद उसको जमीन में रख कर धान की भूसी तथा गोहरी की आग से स्वेदन कराये। एक दिन रात या तीन दिन रात स्वेदन कर पूर्ववत् खोट बनाये ॥ १८७–१८८ ॥

वाकुची ब्रह्मबीजानि गगनं विमलं मणिम् ।
सौवर्चलं सैन्धवञ्च टङ्कणं गुग्गुलुं तथा ॥ १८९ ॥
द्विपदीरजसा मूत्रं सुश्लक्ष्णं तच्च मर्दयेत् ।
पिष्टीं संवेष्ट्य कल्केन पूर्ववत् खोटतां नयेत् ॥ १९० ॥

वाकुची, पलास बीज, अभ्रक, विमल, रत्न, सौवर्चल नमक, सेन्धा नमक सुहागा तथा गुग्गुलु इन सबों को द्विपदी (नाग केशर) के रज से तथा मूत्र से अच्छी तरह मर्दन करे। इस कल्क से पिष्टिका को वेष्टित कर पूर्ववत् खोट बनाये ॥ १८९–१९० ॥

विषबीजं ब्रह्मबीजं बीजानि कनकस्य च ।
मूलानि यवचिञ्चायाः लाङ्गली चेन्द्रवारुणी ॥ १९१ ॥
कोकिलार्कस्नुहीक्षीरं सैन्धवाभ्रकगुग्गुलु ।
पिष्टीं संवेष्ट्य कल्केन पूर्ववत् खोटतां नयेत् ॥ १९२ ॥

विषबीज (वत्सनाभ मूल या कुचिला), पलास बीज, धतूर के बीज, इमली का मूल, लाङ्गली, इन्द्र वारुणी, काकोली, मदार तथा सेंहुड़ का दूध सेन्धा नमक, अभ्रक तथा गुग्गुल इन सबों के कल्क से पिष्टिका को वेष्ठित कर पूर्ववत् खोट बनाये ।। १९१--१९२ ॥

लाङ्गलीं ब्रह्मबीजानि विष्ठा काकस्य गुग्गुलुः ।
श्वेताश्वमारमूलानि[1] मूलं कनकवारुणी ॥ १९३ ॥

---

१. श्वेताश्वमारः = श्वेतकरवीरः

तैलं सैन्धवसंयुक्तं मर्दयेत्तद्विचक्षणः ।
पिष्टीं संवेष्टय कल्केन पूर्णवत् खोटतां नयेत् ॥ १९४ ॥

कलिहारी, पलासबीज, काकविष्ठा, गुग्गुलु, सफेद कनेर का मूल, कनक वारुणी का मूल, तैल तथा सेन्धा नमक इन सबों को मिलाकर विद्वान् मनुष्य मर्दन करे, और इसके कल्क से पिष्टिका को वेष्ठित कर पूर्ववत् खोट बनाये ॥ १९३--१९४ ॥

वाकुची ब्रह्मबीजानि जीरकद्वयगुग्गुलु ।
सैन्धवाभ्रं कुलीरास्थि टङ्कणं ज्वालिनीरसः ॥ १९५ ॥
पिष्टीं संवेष्टय कल्केन मृदा तु पुनरष्टधा ।
तुषकर्षाग्निना भूमौ मृदुस्वेदं तु कारयेत् ॥ १९६ ॥
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रं खोटतां नयेत् ।
दशसङ्कलिकायोगात् शब्दवेधी महारसः ॥ १९७ ॥

बाकुची, पलासबीज, सफेदजीरा, स्याहजीरा, गुग्गुलु, सेन्धा नमक, अभ्रक, केकड़ा की हड्डी, टंकण तथा ज्वालिनी (मूर्वा) का रस इन सबों के कल्क से पिष्टिका को वेष्टित कर पुनः मिट्टी से आठ बार वेष्टित करे और जमीन में रखकर धान की भूसी तथा गोहरी की आग से मृदु स्वेदन एक दिन रात या तीन दिन रात कराकर पारद को खोट बनाये । यह खोट महारस दश संकलिका क्रमयोग से शब्द वेधी होता है ॥ १९५-१९७ ॥

शङ्करस्य द्विभागन्तु पारदस्य त्रयं तथा ।
पिष्टिका कारयेत्तेन तप्तखल्ले तु काञ्जिके ॥ १९८ ॥
पूर्णवन्निगलोपेतं खोटं कृत्वा तु वेधयेत् ।
दशसङ्कलिकायोगात् शब्दवेधी महारसः ॥ १९९ ॥

शंकर (मदार) को जड़ दो भाग, तथा पारद तीन भाग इन दोनों को काञ्जी में तप्त खरल में मर्दन कर पिष्टिका बनाये और पूर्ववत् निगल से वेष्ठित कर खोट बनाये और वेध करे । वह खोट महारस दश संकलिका क्रम योग से शब्द वेधी होता है ॥ १९८--१९९ ॥

बद्धसूतकराजेन्द्र-शिलागन्धकमाक्षिकैः ।
कान्तपाषाणचूर्णेन भूलताभिः समन्वितः ॥ २०० ॥
ध्मातो मूषागतश्चैव रसोऽयं सुरवन्दिते ! ।
रसांश्चोपरसान् लोहान् रत्नानि च मणीस्तथा ।
प्रकाशमूषागर्भे च ग्रसते वडवानलः ॥ २०१ ॥

हे सुरवन्दिते ! बद्ध पारद, राजेन्द्र (राजगिराशाक), मनःशिला, गन्धक, माक्षिक तथा कान्त पाषाण (कान्त लौह) के चूर्ण के साथ केचुआ मिलाकर पारद को मूषा में रखकर धमन करने से यह वडवानल रस उपरस, लौह, रत्न तथा मणि इन सबों को प्रकाश मूषा के गर्भ में ग्रास कर लेता है ।। २००--२०१ ।।

माक्षिकं दरदञ्चैव गन्धकं च मनःशिला ।
राजावर्त्तं प्रबालं च कङ्कुष्ठं तुत्थकं तथा ।। २०२ ।।
पीतरक्तगणैर्भाव्यं कंगुणीतैलमिश्रितम् ।
खोटं हण्डिकया पक्वं द्रुतं हि नलिके क्षिपेत् ।। २०३ ।।
हण्ड्यां तु सिकतां दत्त्वा त्रिरात्रमपि धामयेत् ।। २०४ ।।
आरणालेन तत् स्विन्नं दोलायां धृतमेव च ।
एवं संरञ्जितः सूतः शरीरधनकृद् भवेत् ।। २०५ ।।

माक्षिक, हिंगुल, गन्धक, मनःशिला, राजावर्त, प्रबाल, कंकुष्ठ, तथा तूतिया इन सबों को पित्त तथारक्त गण की औषधियों से भावित करे और कङ्कुणी (कांगुनी) के तैल मिलाकर खोट बनाये और हाड़ी में पका कर द्रुत करे और नलिका (कांच कूपी) में रक्खे हाड़ी में बालू रखकर तीन रात्रि तक धमन करे। इसके बाद दोला यन्त्र में रखकर आरनाल (काञ्जी) के साथ स्वेदन करे। इस प्रकार अच्छी तरह रञ्जित पारद शरीर को स्वस्थ करने वाला तथा धन को देने वाला है ।। २०२--२०५ ।।

उद्घाटः परमः प्रोक्तः सर्वकर्म्महितः परः ।
छत्री पतङ्गी दुर्द्रावी दुर्मेली नैव जायते ।
वर्णान्यत्वञ्च कुरुते स्फोटयेद्वरवर्णिनि ! ।। २०६ ।।

सभी कर्मो में उत्तम हित कारक उद्घाट (उतखोट) को कहा गया। छत्री, पतङ्गी, दुर्द्रावी तथा दुर्मेली नहीं होता है। हे वर वर्णिनि !दूसरे वर्ण को बना देता और स्फोट करता है ।। २०६ ।।

बन्धमेवं द्रुतं कृत्वा कुरुते वज्रजारणम् ।
तन्ममाचक्ष्वं देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।। २०७ ।।
इति श्रीपार्व्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां पिष्टिस्तम्भ
महारसोपरस-वज्रबन्धो नाम पञ्चदशः पटलः ।। १५ ।।

इस प्रकार बन्ध तथा द्रुत कर वज्र का जारण करे। हे देवेशि ! अब मुझसे कहो कि और क्या सुनना चाहती हो ।। २०७ ।।

पञ्चदश पटल समाप्त

———

षोडशः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

बद्धस्य रसराजस्य कथं द्रावणमीश्वर ! ।
वज्रादिजारणं चापि कथमाज्ञापय प्रभो ! ॥ १ ॥

बद्ध पारद का द्रावण तथा वस्त्र आदि का जारण सम्बन्धी प्रश्न—हे ईश्वर ! बद्ध पारद का द्रावण तथा वज्र आदि का जारण कैसे होता है । हे प्रभो इसको वतावें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

तं खोटं सूक्ष्मचूर्णन्तु स्त्रीरजोभिस्तु भावयेत् ॥ २ ॥
पुनर्नवा च मीनाक्षी रम्भाकन्दः स्त्रियोरजः ।
मणिमन्थं शिलाधातुं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ ३ ॥
कल्केनानेन संछन्नमारोटरससंयुतम् ।
तं रसं भूर्ज्जपत्रे तु बद्धवा पोटलिकां ततः ॥ ४ ॥
दोलायन्त्रे सुरेशानि ! स्वेदयेद्दिवसत्रयम् ।
अनेन क्रमयोगेण मृतः सूतो भवेद्द्रुतः ॥ ५ ॥

बद्ध पारद की द्रावण विधि:—बद्ध पारद के द्रावण विषयक प्रश्न को सुन कर श्री भैरव जी बोले । हे सुरेशानि ! पूर्वोक्त उस खोट का चूर्ण बनाकर स्त्री के रज के साथ भावित करें । पुनर्नवा, मीनाक्षी (मत्स्याक्षी), केलेका-कन्द, स्त्री का रज, सेन्धानमक तथा शिलाजीत इन सबों को एकत्र कर पीस कर कल्क बना ले । इस कल्क से पारद को लिप्त कर उस पारद को भोजपत्र में बांधकर पोटलिका को दोला यन्त्र में रखकर तीन दिन तक स्वेदन करे । इस क्रम योग से मृतपारद द्रुत हो जाता है ॥ २–५ ॥

आर्द्रकं मूलकं शुण्ठी लसुनं हिङ्गु माक्षिकम् ।
त्रिक्षारं पञ्चलवणं कांक्षी कासीसगन्धकम् ।
अम्लवर्गसमायुक्तं गोलकं कारयेत् प्रिये ! ॥ ६ ॥
तस्य मध्यगता पिष्टी दोलायां स्वेदनेन तु ।
द्रवते नात्र सन्देहो द्रुतं जारयते रसम् ॥ ७ ॥

बद्धं महारसं देवि ! द्रावयेत् पादयोगतः ।
द्रुतपादे ततोदेयं द्रावयित्वा पुनर्द्रवेत् ॥ ८ ॥
एवं बद्धं द्रुतं कृत्वा समद्वित्रिगुणादिकम् ।
तस्मिन् द्रुते जारणाच कर्त्तव्या कर्म्मवेदिभिः ॥ ९ ॥

अदरक, मूलक, सोठ, लहसुन, हिंगु, माक्षिक, त्रिक्षार, (यवक्षार, सज्जीक्षार, टंकण क्षार), पञ्च लवण (सेन्धा, सांभर, विड, सामुद्र सोचर), कांक्षी (सौराष्ट्री मृत्तिका), कासीस तथा गन्धक इस सबों को अम्ल वर्ग के साथ मिलाकर गोलक बनाये । हे प्रिये । उसके मध्यगत पिष्टी को दोला यन्त्र में स्वेदन करने से द्रवित होता है और द्रुत रस को जारण करता है । हे देवि । बद्ध महारस को उसके चौथाई भाग से द्रावण करे । चौथाई भाग द्रुत हो जाने पर फिर मिला दे और द्रावण कर पुनः द्रव बनाये । इस प्रकार समभाग दो गुना तथा तीन गुना बद्ध तथा द्रुत कर उसके द्रुत हो जाने पर रस कर्म को जानने वाला व्यक्ति जारण करे ॥ ६–९ ॥

कुक्कुटीकन्दमार्जारी उच्चटापीश्वरी तथा ।
क्षीरकञ्चुकया युक्तं स्वेदितं च द्रुतं रसम् ॥ १० ॥
द्रुतं दोलादिमभिन्नं कुक्कुट्याद्यौर्दिनत्रयम् ।
आद्रकाद्यैर्द्रुतञ्चैव तत्सूतं स्वेद्यतां व्रजेत् ॥ ११ ॥
वज्रं द्रुतं यथा सूतं जारयेत् सुरवन्दिते ! ।
ईश्वरस्तस्य विज्ञेयो देवदेवो जगद्गुरुः ॥ १२ ॥

कुक्कुटी कन्द (सेमर कन्द), मार्जारी (चित्रक) उच्चटा (गुञ्जा) ईश्वरी (वांझ खेकसा वन्ध्या कर्कोटकी) तथा क्षीर कञ्चुकी इन सबों को एकत्र कर स्वेदन करे । इससे पारद द्रुत हो जाता है । द्रुत पारद दोलादि के द्वारा अलग कर कुक्कुट्यादि के साथ तीन दिन तक आद्रक आदि के साथ स्वेदित हो जाता है । हे प्रिये ! द्रुत वज्र तथा द्रुत सूत का जारण करे । इसका स्वामी देवताओं के देव जगद गुरु शंकर जी को समझना चाहिए ॥ १०-१२ ॥

विधाय खोटं यत्किञ्चित् मृतकोत्थापिते रसे ।
षडगुणं हेम जार्य्यं तु सारयेत् सारणात्रयम् ॥ १३ ॥
कोठ्यंशेन तु तेनैव शुल्ववेधं प्रदापयेत् ।

---

१. उच्चत्रासा शुक चोटि पुटाकार दलान्विता । (र० का० घे०)

जायते कनकं दिव्यं [1]देवाभरणभूषणम् ॥ १४ ॥
पुनस्तत्तु रसेन्द्रस्य वज्ररत्नानि जारयेत् ।
प्रकाशमूषागर्भे च हठाग्नौ जरते क्षणात् ॥ १५ ॥

जिस किसी प्रकार खोट बनाकर मारण करने के बाद उत्थापित पारद में छः गुना स्वर्ण जारण करे और तीन बार सारण विधि के द्वारा सारण करे। इसके बाद इसी के करोड़वें भाग से ताम्र वेध कराये। इस प्रकार वेध करने से देवताओं को अलंकृत करने वाला आभूषण स्वर्ण हो जाता है ॥ प्रकाश मूषा के गर्भ में राव कर तीव्राग्नि में धमन करने से क्षण मात्र में भस्म हो जाता है ॥ १३-१५ ॥

उच्चटामीननयना-सर्पाक्षीरक्तचित्रकैः ।
एतैः रत्नं द्रवत्याशु नीलमाणिक्यमौक्तिकम् ॥ १६ ॥

वज्र आदि रत्नों का जारण तथा द्रावण—उच्चटा (गुञ्जा) मीन नयना (मत्स्याक्षि), सर्पाक्षी (गन्धवाकुली) तथा लाल चित्रक इन औषधों से रत्न, नील, माणिक्य तथा मुक्ता आदि शीघ्र ही पिघल जाते हैं ॥ १६ ॥

विष्णुक्रान्ता च चक्राङ्का कुमारी यवचिञ्चिका ।
वज्राणि पद्मरागाश्च राजावर्त्तादिसस्यकम् ।
ओषधीनां द्रवं दत्त्वा तप्ते सूते विनिक्षिपेत् ॥ १७ ॥
पश्चाद्रत्नानि देयानि द्रवन्ति सलिलं यथा ॥ १८ ॥
दोलायां स्वेदयेद्देवि ! विडयोगेन जारयेत् ।
प्रकाशमूषागर्भे च हठाग्नौ जारयेत् क्षणात् ॥ १९ ॥

विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), चक्राङ्का (चक्राङ्गी = सुदर्शन लता) घृत-कुमारी तथा इमली इन ओषधों का तथा वज्र (रत्न) पद्मराग, राजावर्त आदि, सस्यक (मयूर तुत्थ) इन रत्नों को एकत्र कर ले। इसके बाद संतप्त पारद में पूर्वोक्त ओषधियों का रस छोड़ कर रत्नों को मिला दे ! वे जल के समान पिघल जाते हैं ॥ हे देवि ! इसको पोटली में बाधकर दोलायन्त्र में स्वेदन करे और विड नमक के योग से जारण कराये। प्रकाश मूषा के मध्य में रख तीव्राग्नि से धमन कर क्षण भर में जारण करे ॥ १९ ॥

शङ्खेनैवार्कदुग्धेन पुटेन शतवापितम् ।
तद्बीजं क्षारसंयुक्तमम्लवर्गेण भावयत् ॥ २० ॥

---

१. देवाऽऽभरणानामपि भूषणम ।

विडहिङ्गुलसंयुक्त-राजावर्त्तप्रवालकैः ।
गन्धकः शिलया युक्तः खोटानां जारणे हितः ॥ २१ ॥

खोट को शंख तथा मदार के दूध के साथ सौ बार वापित करे अर्थात् इनके साथ सौ बार मर्दन करे। इसके बाद उस बीज को क्षार द्रव्य तथा अम्ल वर्ग के साथ भावित करे। विड तथा हिंगुल में युक्त राजावर्त, प्रवाल तथा मनः शिला के साथ गन्धक खोटों को जारण करने में हितकर है ॥२०-२१॥

मूषालेपादिसंयोगात् बद्धहेम्नो हि जारणम् ।
तत्क्षेपाज्जायते देवि! विडयोगेन जारणम् ॥ २२ ॥
पश्चाद्धेम प्रदातव्यं षट्त्रिंशांशद्रवेण च ॥ २३ ॥

मूषा लेप आदि के संयोग से बद्ध सोने का जारण करे। हे देवि उसके प्रक्षेप करने से विड के संयोग से जारण होता है। खोटको विड-आदि के संयोग से जारण करने के बाद छत्तीसवां भाग द्रव के साथ स्वर्ण को मिलाना चाहिए ॥ २२–२३ ॥

ततो वै सूतराजस्य जायते रश्मिमण्डलम् ।
तिर्य्यगूद्र्ध्वमधोव्यापितेजःपुञ्जेन पूरितम् ॥ २४ ॥
इत्थं शुद्धो भवेत् सूतः चिन्तामणिरिव स्वयम् ।
सदेवैः पूज्यते सिद्धैः द्वितीय इव शङ्करः ॥ २५ ॥
लोकानुग्रहकर्त्ता च भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ।
जारयेच्च महानीलं तत्त्वसंख्याक्रमेण तु ॥ २६ ॥
भ्रमते दक्षिणावर्त्तस्तदासौ खेचरो रसः ।
वेधयेत् सर्वलोहानि भारसंख्यानि पार्वति ॥ २७ ॥
एवं जीर्णस्य सूतस्य शृणु कापालिरञ्जनम् ॥ २८ ॥

उपरोक्त क्रिया के बाद पारद का रश्मि मण्डल होता है। वह पारद का रश्मि मण्डल तिरछा, ऊपर तथा नीचे व्याप्त तेज पुञ्ज से परिपूर्ण रहता है। इस प्रकार शुद्ध पारद स्वयं चिन्तामणि के समान हो जाता है, और वह देवता सहित सिद्धों के द्वारा द्वितीय शंकर के समान पूजित होता है। यह संसार को अनुगृहीत करने वाला तथा भुक्ति (सांसारिक भौतिक पदार्थ) तथा मुक्ति (जीवन मुक्ति) को देनेवाला है। उसके साथ तत्व संख्या क्रम (पूर्वोक्त विहित संख्या जारण क्रम) से महानील मणि का जारण करे। जब वह दक्षिणावर्त भ्रमण करने लगे सब वह खेचर रस होता है। हे पार्वति। इस खेचर रस से भार संख्यक (भारप्रमाण) लोहों को वेध करे। इस प्रकार जीर्णपारद का कापालि रंजन विधि सुनो ॥ २४–२८ ॥

शुल्वपत्रपलैकं तु पलार्द्धं गन्धकस्य च ।

टङ्कणं कर्षमेकं तु कर्षैकां रसकज्जलीम् ॥ २९ ॥
माक्षिकं कर्षमेकं तु सर्वमेकत्र कारयेत् ।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ ३० ॥

कापालि रंजन विधि—पूर्वोक्त प्रकार से जीर्ण पारद को कापालि रञ्जन विधि सुनो । ताम्रका सूक्ष्म पत्र एक पल (५० ग्रा०) गन्धक आधा पल (२५ ग्रा०) टंकण एक कर्ष (१० ग्रा०) रस कज्जली (पारद गन्धक की कज्जली) एक कर्ष तथा माक्षिक एक कर्ष इन सबों को एकत्र करे और अन्ध- मूषा में रख कर धमन करे, इससे तत्काल खोट हो जाता है । ॥ २८–३० ॥

तं खोटं सूक्ष्मचूर्णन्तु चणकाम्लेन मद्दर्येत् ।
आरण्यगोमयेनैव पुटान् दद्याच्चतुर्द्दश ॥ ३१ ॥
इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते नात्र संशयः ॥ ३२ ॥
तच्चूर्णं मधुना युक्तं शुद्धतारं तु रञ्जयेत् ।
रञ्जयेत् त्रीणि वाराणि शोभनं हेम जायते ॥ ३३ ॥
एष कापालिको योगः सर्वलोहानि रञ्जयेत् ।
रञ्जयेद्बद्धसूतं च वज्रबन्धश्च रञ्जयेत् ॥ ३४ ॥

पूर्वोक्त खोट का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर चणकाम्ल के साथ मर्दन करे । और जंगली उपलों (गोहरी) के साथ चौदह पुष्ट दे । इससे वह वीर बधूटी के सदृश वर्ण सदृश हो जाता है ! उस चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर उससे शुद्धरजत को रञ्जित करे । इस प्रकार तीन बार रञ्जन करने से सुन्दर स्वर्ण हो जाता है ॥ यह कापालिक योग है इससे सभी लोहों का रञ्जन करे। इससे बद्ध सूत तथा वज्र बन्ध का भी रञ्जन करे ॥ ३१–३४ ॥

आरचूर्णपलैकं वा मृतनागपलं तु वा ।
वङ्गाभ्रकपलैकं वा तीक्ष्णचूर्णपलं तु वा ॥ ३५ ॥
त्रिशुल्वं नागवङ्गौ वा एकैकांशसमन्वितम् ।
त्रिशुल्वं गैरिकैकैकमथवा तीक्ष्णमाक्षिकम् ॥ ३६ ॥
अथवा तीक्ष्णभागौ द्वौ त्रयो घोषा नवोरगाः ।
ताम्रस्य नव भागाः स्युरारभागचतुष्टयम् ॥ ३७ ॥
अथवा देवदेवेशि ! माक्षिकस्य पलद्वयम् ।
मयूरग्रीवतुत्थैकं मृतनागपलं तथा ॥ ३८ ॥
अथवा वङ्गनागांशमेकैकं सुरवन्दिते ! :
तीक्ष्णद्वयं त्रिशुल्वं च हेमताप्यचतुष्टयम् ॥ ३९ ॥

यद्वा विमलवैक्रान्तवङ्गनागानि रीतिका।
सशुल्वाप्यथवा हेम विमलं च भुजङ्गमः ॥ ४० ॥
एषामन्यतमं देवि ! पूर्वकल्पसमन्वितम्।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥
पुटयेत् पूर्वयोगेन रञ्जयेत् पूर्वयोगतः ॥ ४२ ॥

आर चूर्ण (हरिताल) एक पल (५० ग्रा०) या मृत नाग भस्म एक पल या वंगाभ्र एक पल अथवा तीक्ष्ण चूर्ण एक पल, अथवा तीन पल ताम्र चूर्ण तथा एक एक पल नाग वंग मिलाकर, अथवा तीन पल ताम्र चूर्ण तथा एक पल गैरिक चूर्ण, अथवा तीक्ष्ण माक्षिक एक पल, या तीक्ष्णलोह दो भाग, कांस्य तीन भाग, नाग नव भाग, ताम्र नव भाग, आर चूर्ण चार भाग, अथवा हे देवेशि ! माक्षिक दो पल मयूर ग्रीव तुत्थ (मयूर ग्रीव तूतिया) एक पल तथा मृतनाग एक पल, अथवा हे सुखन्दिते ! वंग तथा नाग एक २ पल, तीक्ष्ण लोह दो पल, ताम्र तीन पल, स्वर्ण माक्षिक चार पल, अथवा विमल, वैक्रान्त, वंग, नाग, पीतल तथा ताम्र, अथवा स्वर्ण, विमल तथा नाग हे देवि ! इन सबों में एक पूर्व कल्प से युक्त कर अन्ध मूषा में रख कर धमन करने से तत्काल खोट हो जाता है। इसको पूर्व योग से पुट दे तथा पूर्व योग से रंजन करे ॥ ३५–४२ ॥

नागशुल्वं तथा तीक्ष्णं कापालिक्रममुत्तमम्।
तेनैव रञ्जयेत्तारं सप्तवारं पुनः पुनः ॥ ४३ ॥
तेनैव रञ्जयेद्धेम सप्तवारं पुनः पुनः।
पक्वबीजमिदं श्रेष्ठं सर्वकर्म्मसु योजयेत् ॥ ४४ ॥

नाग, ताम्र तथा तीक्ष्ण लोह यह उत्तम कापालिक क्रम है। उसी से रजत को बार-बार सात बार रंजन करे और उसी से स्वर्ण को बार-बार सात बार-रञ्जन करे। यह उत्तम पक्व बीज है। इसको सभी कर्म में प्रयोग करे ॥ ४३–४४ ॥

वङ्गतीक्ष्णकपाली च शुल्वं तु रञ्जयेत्।
रञ्जयेत् सर्वलोहानि यावत् कुङ्कुमसन्निभम् ॥ ४५ ॥
वैक्रान्तनागकापाली शुद्धतारं तु रञ्जयेत्।
रञ्जयेत् सह हेम्ना तु भवेत् कुङ्कुमसन्निभम् ॥ ४६ ॥

पूर्वोक्तरञ्ज द्रव्य से—वंग तीक्ष्णकापालीताम्र तथा रजत को रञ्जित करे और सभी लोहों को तब तक रञ्जन करे जब तक कङ्कुम सदृश प्रभावाला न हो जाय।

वैक्रान्त नाग कापाली शु० रजत को रञ्जित करती है वह स्वर्ण के साथ रंजन करता है इससे कुङ्कुम सदृश प्रभा वाला हो जाता है ॥ ४५–४६ ॥

रक्ततैलनिषिक्तं तु लोहसङ्क्रान्तिनाशनम् ।
आरकापालिचूर्णन्तु शुद्धतारं तु रञ्जयेत् ॥ ४७ ॥
विमलेन च नागेन कापाली परमेश्वरी ।
रञ्जयेत् सर्वलोहानि तारं हेम विशेषतः ॥ ४८ ॥
रञ्जयेत् त्रीणि वाराणि जायते हेम शोभनम् ।
तेनैव रञ्जयेद्धेम सप्तवारं पुनः पुनः ॥ ४९ ॥

लाल तैल में निषिक्त करना लोह संक्रान्ति (लोहों का मेल) को नाश करती है। आरकापालि चूर्ण शुद्ध रजत को रञ्जित करता है। विमल तथा नाग निर्मित परमेश्वरी कापाली सभी लोहों को रञ्जन करती है और विशेषकर रजत तथा स्वर्ण को रञ्जन करती है। इस प्रकार तीन बार रञ्जन करे इससे सुन्दर स्वर्ण हो जाता है। इसी से बार बार सात बार स्वर्ण का रञ्जन करे ॥ ४७–४९ ॥

लवणोदनिषिक्तन्तु लोहसङ्क्रान्तिनाशनम् ।
वङ्गनागं तथा कान्तं शुल्वं तीक्ष्णं च माक्षिकम् ॥ ५० ॥
रविनागकपाली तु शुद्धतारन्तु रञ्जयेत् ।
रञ्जयेत् त्रीणि वाराणि तारारिष्टं तु जायते ।
तेनैव रञ्जयेद्धेम सप्तवाराणि पार्वति ! ॥ ५१ ॥

लवणमोदक में निषिक्त करना लोह सक्रान्ति (लोहों का मेल) को नाश करता है। वंग, नाग, कान्त-लोह, ताम्र, तीक्ष्ण लौह, माक्षिक तथा ताम्र-नाग कपाली शु० रजत को रञ्जित करती है। इस प्रकार तीन बार रञ्जित करने से तारारिष्ट हो जाता है। हे पार्वति उसीसे स्वर्ण को सात बार रञ्जित करे ॥ ५०–५१ ॥

रक्तवर्गनिषिक्तं च लोहसङ्क्रानिनाशनम् ।
वङ्गनागं तथा शुल्वं कापाली सुरवन्दिते ! ॥ ५२ ॥
गुडेन नीलकाचेन तुत्थाम्ललवणेन च ।
विषपित्ताम्लपिष्टेन हन्यात् सङ्क्रान्तिकालिकाम् ॥ ५३ ॥

रक्तवर्ण के द्रव में निषिक्त वह लोह संक्रान्ति को नाश करता है। हे सुरवन्दिते ! वंग, नाग तथा ताम्र कापाली, गुड़, नील विड नमक तुत्थाम्ल लवण तथा विष पित्ताम्ल पिष्ट के साथ संक्रान्ति कालिका (मेल का अंश) को नाश करती है ॥ ५२–५३ ॥

गैरिकं गन्धकं सूतं तिलतैलेन पेषयेत् ।
लेपयेत्तारपत्राणि दत्त्वा शुल्वकपालिकाम् ॥ ५४ ॥
ऊर्द्ध्वाधस्त्वन्धमूषायां शुभ्रं हेमदलं भवेत् ॥ ५५ ॥

गेरु, गन्धक तथा पारद तिल के तैल के साथ पीसे और उससे रजत पत्रों को लिप्त करे। इसके बाद ऊपर-नीचे शुल्व कापालिका देकर अन्धमूषा में धमन करने से सुन्दर स्वर्ण दल होता है ॥ ५४--५५ ॥

भागैकं हरितालस्य भागैकं गैरिकस्य च ।
माक्षिककल्कभागैकं चत्वारो गोलकस्य च ।
अन्धमूषागतं ध्मातं हेम रञ्जयति क्षणात् ॥ ५६ ॥
अनेन क्रमयोगेण चतुर्वारं तु रञ्जयेत् ।
पक्वबीजमिदं श्रेष्ठं बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ५७ ॥
तेन वर्णद्वयोत्कर्षः षोडशांशेन जायते ॥ ५८ ॥

हरिताल एक भाग, गेरु एक भाग तथा माक्षिक कल्क एक भाग गोलक का चार भाग इन सबों को अन्धमूषा में रखकर धमन करने से यह उसी समय स्वर्ण को रञ्जित करता है। इस क्रमयोग से चार बार रञ्जन करे। यह बाल सूर्य सदृश प्रभा वाला उत्तम पक्व बीज है। उसके सोलहवें भाग से रंजन करने पर दो वर्ण का उत्कर्ष (प्रादुर्भाव) होता है। अर्थात् दो वर्ण उत्पन्न होते है ॥ ५६--५८ ॥

रक्ततले निषिक्तं च लोहसङ्क्रान्तिनाशनम् ।
रसकस्य तु कापाली चन्द्रार्कं तु शतांशतः ।
अन्धमूषागतं ध्मातं शोभनं हेम जायते ॥ ५९ ॥

रक्त तैल में विषिक्त लौह, संक्रान्ति (लौह का मेल) का नाश है। खर्पर की कपाली (खयक कापाली) शतांश से रजत तथा ताम्र को अन्धमूषा में रखकर धमन करने से सुन्दर स्वर्ण हो जाता हैं ॥ ५९ ॥

शुद्धनागपलैकं तु कर्षैकं द्रुतसूतकम् ।
सारयेत् सारणायन्त्रे खोटो भवति सूतकः ॥ ६० ॥
खोटस्य पलमेकं तु माक्षिकस्य पलं तथा ।
एकीकृत्याथ सम्मर्द्य कनकस्य रसेन च ।
पाचयेन्मृन्मये पात्रे भवेत् कुङ्कुमसन्निभम् ॥ ६१ ॥
पूर्वकल्केन संयुक्तं खोटं कुर्वीत पूर्वतः ।
एतत् कापालिकायोगात् चूर्णमम्लेन मर्द्दयेत् ॥ ६२ ॥
पुटयेत् पूर्वयोगेन रञ्जयेत् पूर्वयागतः ॥ ६३ ॥

शु० नाग एक पल (५० ग्राम) द्रुत पारद एक कर्ष (१० ग्रा०) दोनों को सारणा यन्त्र में रखकर सारण करे। इससे पारद खोट हो जाता है। खोट का एक पल (५० ग्रा०) तथा माक्षिक एक पल इन दोनों को धतूर के रस के साथ मर्दन कर मृत्तिका के पात्र में पकाये। यह कंकुम के समान प्रभा वाला हो जाता है। पहले पूर्व कल्क से खोट को संयुक्त करे, और सम्पूर्ण को कपालिका संयोग से अम्ल के साथ मर्दन करे और पूर्व योग के साथ पुट दे तथा पूर्व योग से रञ्जन करे ॥ ६०–६३ ॥

येन केन रसं बद्ध्वा हेमगन्धशिलोरगैः।
क्रमेण वेष्टितं ध्मातं शतवाराणि वेधयेत् ॥ ६४ ॥
आदौ तु बद्धसूतं च वङ्गं तारं मनःशिला।
क्रमेण वेष्टयेत् ध्मातं शतवेधी न संशयः ॥ ६५ ॥
अनेन कुरुते तारं कनकेन तु काञ्चनम् ॥ ६६ ॥

जिस किसी के द्वारा पारद को बद्ध कर स्वर्ण, गन्धक, मनः शिला तथा नाग इन सबों से क्रमशः वेष्टित तथा धमन कर सौबार बेध करे। पहले बद्ध पारद, वंग, रजत तथा मनः शिला इन सबों से क्रम से वेष्टित करे। इसके बाद धमन करने से शत वेधी होता है। इसमें संदेह नहीं है। इस विधि से रजत को कनक के द्वारा कांचन बनाता है ॥ ६४–६६ ॥

सूतो मृतो हन्ति समेन वङ्गं, तेनैव हन्यात् द्विगुणं च तारम्।
तारं चतुःषष्टिरविं करोति, हेमापि तद्वत् फणिहेमयोगात् ॥६७॥

समभाग से बार-बार मृत पारद वंग को मारता है। दुगुना रजत का मारण करता है। चौसठ गुना ताम्र को रजत बनाता है। स्वर्ण भी नाग तथा स्वर्ण के योग से उसी प्रकार करता है। अर्थात् स्वर्ण बनाता है ॥ ६७ ॥

मृतरसपलमेकं पञ्चनागं च दद्यात्
कनकपलविमिश्रं ध्मातसूतावशेषम्।
पुनरपि शतवारानेवमेत्र क्रमेण
भवति च रसराजः कोटवेधी क्रमेण ॥ ६८ ॥

मृत पारद एक पल (५० ग्रा०) नाग पाँच पल। कनक (स्वर्ण) एक पल इन सबो को मिलाकर धमन करने के बाद अवशिष्ट पारद को पुनः इसी क्रम से सो बार धमन करे। इस क्रम से रस राज कोटि वेधि होता है ॥ ६८ ॥

मृतसूतपलैकं तु द्वे पले दरदस्य च।
चतुःपलं गन्धकस्य कङ्कुष्टस्य पलत्रयम्।
शिलायाः पञ्चकं चैव गोपित्तेन तु मर्दयेत् ॥ ६९ ॥

पलैकनागपत्राणि तेन कल्केन लेपयेत् ।
मारयेत् पुटयोगेन नागोऽयं म्रियते क्षणात् ॥ ७० ॥
वटिकां कारयेत्पश्चात् षष्टिं त्रीणि शतानि च ।
एकैकां वटिकां पश्चाद्गोपित्तेन तु मर्दयेत् ॥ ७१ ॥
अनेन क्रमयोगेण शतं दद्यात् पुटानि च ।
नागोऽयं जायते देवि ! सिंदूरारुणसन्निभः ॥ ७२ ॥
शतांशेन च तेनैव तारे वेधं प्रदापयेत् ।
तत्तारं जायते देवि ! देवाभरणमुत्तमम् ॥ ७३ ॥

मृत पारद एक पल, हिंगुल दो पल, गन्धक चार पल, कक्कुष्ठ, तीन पल तथा मनः शिला पांच पल इन सबों को गोपित्त के साथ मर्दन करे और उस कल्क से एक पल नाग पत्र को लिप्त करे। इसके बाद पुट योग से मारण करे। इस प्रकार नाग क्षण भर में मृत हो जाता है। तदनन्तर तीनसौसाठ वटिका बनाये। पुनः बाद में गोपित्त के साथ मर्दन करे। इस प्रकार सौ पुट दे। हे देवि ! यह नाग सिन्दूर सदृश अरुण कान्ति वाला हो जाता है। उसी के सौवें भाग से रजत में वेध कराये। हे देवि ! वह रजत उत्तम देवताओं का आभूषण स्वर्ण हो जाता है ॥ ६९-७३

मृतनागपलैकं तु हेमपत्रं तु तत्समम् ।
मारयेत् पुटयोगेन म्रियते हेम तत्क्षणात् ॥ ७४ ॥
तद्भस्मनागैकयुतं हेमपत्रं तु तत्समम् ।
मारयेत् पुटयोगेन म्रियते हेम तत्क्षणात् ॥ ७५ ॥
अनेन क्रमयोगेण त्रीणि वाराणि कारयेत् ।
सहस्रांशेन तेनैव तारं वेधं प्रदापयेत् ॥ ७६ ॥
सुखसाध्यप्रयोगेन तत्तारं कनकं भवेत् ।
कल्कवेधमतो वक्ष्ये सुखसाध्यं सुरेश्वरि ! ॥ ७७ ॥

मृत नाग एक पल (५० ग्राम) तथा स्वर्ण पल एक पल इन दोनों को पुट के द्वारा मारण करे। इससे तत्काल स्वर्ण भस्म हो जाता है। वह नाग भस्म एक पल तथा उसके समान स्वर्ण पत्र एक पल इन दोनों को पुट के द्वारा मारण करे। इससे स्वर्ण भस्म हो जाता है। इस क्रम से नाग भस्म तथा स्वर्ण पत्र संयुक्त कर तीन बार मारण करे और उसी के हजारवे भाग से रजत को वेध कराये। इसके बाद सुखसाध्य प्रयोग से वह रजत स्वर्ण हो जाता है। अतः सुखसाध्य कल्क वेध को कहता हूं ॥ ७४–७७

पलाशनिम्बबिल्वाक्ष - कार्पासकटुतुम्बिनी ।
कङ्गुणीकटुतैलं च एकैकं रसमारकम् ॥ ७८ ॥
समे हेम्नि समं सूतं तारं ताम्रमथापि वा ।
महारसाष्टमध्ये तु चत्वारोपरसास्तथा ॥ ७९ ॥
फलाम्लकाञ्जिकैर्मध्य-निरङ्गारे तु खल्लयेत् ।
तप्तायसेऽथवा लोह-मुष्टिना मृदुवह्निना ॥ ८० ॥
प्रागुक्तवालुकायन्त्रे तैलं दत्त्वा विचक्षणः ।
मर्दयेत् पक्षमेकं तु दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ ८१ ॥
तत्कल्कं जायते श्रेष्ठं धर्म्मकामार्थमोक्षदम्[1] ।
वेधयेदष्टलोहानि देवानामपि दुर्ल्लभम् ॥ ८२ ॥
नाशयेत् सकलान् रोगान् पलैकेन न संशयः ।
त्रिकटुत्रिफलायुक्तं मध्वाज्येन तु भक्षयेत् ॥ ८३ ॥
हेम्ना तु बद्धं गुञ्जैकं तारेण द्वे सुरेश्वरि ! ।
ताम्रेण गुञ्जात्रितयं वर्षात् स्यादजरामरः ॥ ८४ ॥
सेवन्ते चन्द्रवदनाः सर्वाभरणभूषिताः ।

सुख साध्य कल्क का निरूपण :—पलास, नीम, बेल, बहेड़ा, कपास, कड़वी लौकी, कांगुन तथा सरसों तैल इनमें से एक २ पारद को मारण करने वाले हैं । समभाग स्वर्ण में समभाग पारद, रजत या ताम्र, तथा आठ महारसों के मध्य में चार उप रस इन सबों को फलाम्ल तथा कांजी के साथ अङ्गार रहित खरल के मध्य में मर्दन करे । अथवा तप्त लौह के खरल में लोह की लोढ़िया से मन्दाग्नि के द्वारा मर्दन करे । या बुद्धिमान् साधक पहले बताये गये बालुका यन्त्र में खरल को रखकर तैल देकर आलस्य रहित दिन रात एक पक्ष तक मर्दन करे । यह उत्तम कल्क होता है और धर्म, काम, अर्थ, तथा मोक्ष को देने वाला है । इससे आठो लोहों को वेध करे । यह देवताओं को भी दुर्लभ है । यह एक पल सेवन करने से सभी रोगों को नाश करता है इसमें सन्देह नहीं है । इसको त्रिकटु (सोंठ, पीपर मरिच), तथा त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) मिलाकर मधु एवं घृत के साथ भक्षण करे । हे सुरेश्वरि ! स्वर्ण से बद्ध पारद एक गुञ्जा (१२० मि० ग्रा०) रजत से बद्ध दो गुञ्जा, तथा ताम्र से बद्ध तीन गुञ्जा सेवन करने से एक वर्ष बाद अजर-अमर हो जाता है सभी अलंकारों से युक्त चन्द्र सदृश मुख वाली स्त्रियां उसकी सेवा करती हैं ॥ ७८–८४½ ॥

---

१. पूर्वनिपातप्रकरणमनित्यम् । धर्मादिष्वनियमः, इत्यनुसन्धेयम् ।

त्रिफलाबीजमध्वाज्यं नस्यं कृत्वा निशासु च ॥ ८५ ॥
रसं तु भक्षयेत् प्रातरजीर्णं नैव जायते।
गन्धकं पानमालेपं कङ्कुष्ठं भक्षयेद्बुधः ॥ ८६ ॥

त्रिफला का बीज, मधु, घृत इन सबों का नस्य रात्रि में लेकर पारद भक्षण करे। इससे प्रातः काल अजीर्ण नहीं होता है। बुद्धिमान् व्यक्ति गन्धक का पान, आलेपन तथा कंकुष्ठ का भक्षण कराये ॥ ८५--८६ ॥

पलेन भक्षयेत् सूतं सुरासुरनमस्कृतम्।
सप्तहेमनिभाकारो बालार्कसदृशप्रभः ॥ ८७ ॥
वेधयेत् सर्वलोहानि छेदे दाहे न संशयः।
बद्धा तु सङ्कलाबन्धैर्वटिका खेचरी भवेत् ॥ ८८ ॥

देव एवं असुरों से नमस्कृत पारद को एक पल (५० ग्रा०) भक्षण कराये। वह संतप्त स्वर्ण सदृश आकार वाला तथा बाल सूर्य सदृश प्रभावाला हो जाता है। यह सभी लोहों को छेदने तथा दाह में बेधता है इसमें सन्देह नहीं है। यह संकला बन्ध से बद्ध वटिका खेचरी (आकाश में परिभ्रमण-शक्ति सम्पन्न) हो जाती हैं ॥ ८७-८८ ॥

काकजङ्घा च बृहती शरपुङ्खाजशृङ्गिके।
शिवा शक्रलता कन्या सप्तैतास्तु महालताः ॥ ८९ ॥

काकजङ्घा, बृहती (बडी कटेरी), सरफोका, अजश्रृंङ्गी, शिवा (हर्रे), शक्रलता (इन्दवारुणी) तथा घृत कुमारी ये सात महा लता हैं ॥ ८९ ॥

गुह्याद्गुह्यं समाख्यातं वातारिस्नेहसंयुतम्।
सने हेम्नि समं सूतं तारे ताम्रेऽथवा प्रिये ! ॥ ९० ॥
महारसाष्टमध्यैकं दद्यात्तूपरसांस्तथा।
मर्दयेत् खल्लपाषाणे यावन्निश्चेतनं भवेत् ॥ ९१ ॥
स्वेदयेदारणालेन मर्दयेत् पूर्वकल्कवत्।
तच्च लोहस्य देहस्य तत्तत्कर्म्मसु योजयेत् ॥ ९२ ॥

हे प्रिये। गोप्य से गोप्य वातारि तेल (एरण्ड तेल) से युक्त सप्तमहा लताओं को मैंने कहा। सम भाग स्वर्ण में समभाग पारद, समभाग रजत में समभाग पारद अथवा समभाग ताम्र में सम भाग पारद, आठ महारसों के मध्य में एक भाग पारद तथा उपरसों में एक भाग पारद पत्थर के खरल में मर्दन करे जब तक निश्चेतन (स्थिर) न हो जाय। कांजी के साथ स्वेदन करे और पूर्व कल्क के समान मर्दन करे। उसको लोह तथा देह के लोह सम्बन्धित तथा देह सम्बन्धित कर्मों में प्रयोग करें। तथा ॥ ९०-९२ ॥

हेमाभ्रकस्य चैकैकं सूतकस्य द्वयं तथा।
ताराभ्रकस्य चैकैकं सूतकस्य द्वयं तथा ॥ ९३ ॥
पिष्टिकां कारयेत्तेन निगलेन च बन्धयेत्।
पुटेषु पिष्टिकाबन्धो गोलेन निगलेन च ॥ ९४ ॥

पिष्टिका बन्ध :—हेमाभ्र (स्वर्णाभ्र) एक भाग, पारद दो भाग तथा रजताभ्र एक भाग, पारद दो भाग, इन सवों की पिष्टिका वनाये और उस निगल से वन्धन करे। पुटों में गोल से तथा निगल से वन्धन करे ॥९३-९४॥

पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि चूर्णबन्धं सुरेश्वरि ! ॥ ९५ ॥
पिष्टिकां टङ्कणं दत्वा द्विपदीरसमर्दितम्।
नष्टपिष्टं च शुष्कं तत् धामयित्वा पुटे पचेत् ॥ ९६ ॥
वेष्टयेद्देवदेवेशि ! गोलेन निगलेन च।
तुषकर्षाग्निना भूमौ मृदुस्वेदं तु कारयेत् ॥ ९७ ॥
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा चूर्णं भवति शोभनम्।
बद्धसंकलिकाभावात् भवेद्द्वेधा तु वेधकम् ॥ ९८ ॥

चूर्णबन्ध ।—हे सुरेश्वरि ! दूसरा चूर्ण बन्ध कहता हूँ। पिष्टिका में टंकण मिलाकर द्विपदी (नागकेशर) के रस के साथ मर्दन करे। नष्टपिष्ट हो जाने पर सुखा कर पुट में धमन कर पकाये। हे देवेशि ! उसे गोल से तथा निगल से वेष्टित करे। इसके बाद जमीन में धान की भूसी तथा गोहरी की आग से मृदु स्वेदन कराये। एक दिन रात या तीन दिन रात स्वेदन करने से सुन्दर चूर्ण हो जाता है। यह बद्धसंकलिका होने से दो प्रकार से वेध करता है ॥ ९५-९८ ॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि पट्टबन्धं सुदुर्लभम् ॥ ९९ ॥
कासीसं टङ्कणं क्षारं सैन्धवं गन्धमभ्रकम्।
सूतकं मातुलुङ्गेन मर्दितं याममात्रकम् ॥ १०० ॥
वङ्गताराभ्ररसक-स्नुकूक्षीरकृतगोलकम्।
वेष्टयेद्भूर्जपत्रेण वस्त्रसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ १०१ ॥
ऊर्द्धाधो गोमयं दत्त्वा भूमध्ये स्वेदयेत्ततः।
मर्दनं स्वेदनं कुर्य्यात्त्रिवारानेवमेव च ॥ १०२ ॥
लेपयेद्देशधर्म्माच मर्दयेद्गुडकाञ्जिकैः।
धत्तररसलिप्तायां मूषायां सन्निवेशयेत् ॥ १०३ ॥

बद्ध्वा मूषामुखं देवि ! सन्धिलेपं तु कारयेत् ।
लोणमध्ये क्षिपेन्मूषां बृहन्मूषां तु बाह्यतः ॥ १०४ ॥
मुखं तस्याश्च मूषाया बद्धा लोणमृदा ततः ।
तुषकर्षाग्निना भूमौ मृदुस्वेदं तु कारयेत् ॥ १०५ ॥
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा वीतधर्म्मा भवन्ति ते ।
अनेनैव प्रकारेण सप्तवारं तु कारयेत् ॥ १०६ ॥
अन्तर्बहिश्च बद्धास्ते घर्म्मशुद्धा भवन्ति ते ॥ १०७ ॥

पट्टबन्ध :—पुनः अत्यन्त दुर्लभ पट्ट बन्ध को कहता हूँ। कासीस, टंकण यवक्षार, सेन्धानमक, गन्धक, अभ्रक तथा पारद इन सबों को विजौरा निम्बु के रस के साथ एक पहर तक मर्दन करे और वंग, ताराभ्र खर्पर तथा, सेहुड़ के दूध के साथ गोलक बनाये। इस गोलक को सुखा कर भोज पत्र से लपेट कर वस्त्र सूत्र से अच्छी तरह बाँध दे। इसके बाद जमीन के अन्दर ऊपर नीचे गोहरी के मध्य में रखकर स्वेदन करे। इसके बाद इसी प्रकार तीन बार मर्दन एवं स्वेदन करे। देश एवं धर्म के अनुसार लेप करे तथा गुड़ एवं काञ्जी के साथ मर्दन करे। इसके बाद धतूर के रस से लिप्त मूषा में रक्खे और मूषा के मुख को बन्द कर सन्धिलेप कर दे। उसको नमक के मध्य में रक्खे और बाहर से बृहद् मूषा रक्खे। उस मूषा का भी मुख नमक से बन्द कर दे। इसके बाद जमीन में धान की भूसी तथा गोहरी की आग से मृदु स्वेदन कराये। एक दिन रात या तीन दिन रात स्वेदन कराने से वे वीत धर्मा या (चित्र धर्मा) होते हैं। इसी प्रकार सात बार करे। वे अन्दर तथा बाहर बद्ध होने से धर्म शुद्ध होते हैं ॥ ९९-१०७ ॥

गन्धकेन हतं सूतं कांक्षीकासीससैन्धवम् ।
स्नुह्यर्कं टङ्कणं गुञ्जा रविक्षीरेण मर्दिताः ।
पुराणका भवन्त्याशु धर्म्मकामार्थमोक्षदाः ॥ १०८ ॥

पुराणका निर्माण :—गन्धक के साथ मृत पारद (कज्जली), कांक्षी (सौराष्ट्र मृत्तिका) कासीस, सेन्धा नमक, सेहुड़, टंकण तथा गुञ्जा ये सब मदार के दूध के साथ मर्दन करने से शीघ्र ही पुराणका होते हैं। ये धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष को देने वाले हैं ॥ १०८ ॥

पञ्चभागं तु शुल्वस्य द्विभागं कुञ्जरस्य च ।
कारयेत्तद्दलं घर्मे लेपयेत् पूर्व्वयोगतः ॥ १०९ ॥
रसेन्द्रो रञ्जतिह्येवं कर्त्तव्यं सारणादिकम् ।

ताम्र पांच भाग, कुञ्जर (नाग) दो भाग इन दोनों के सूक्ष्म दलों को पूर्वोक्त पुराणका योग से लेप करे। इससे पारद रंजन करता है। इसी प्रकार सारणादि कर्म को करना चाहिए ॥ १०९½ ॥

तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ११० ॥

इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
रसरञ्जनो नाम षोडशः पटलः ॥ १६ ॥

हे देवेशि ! तुम बताओ कि और दूसरा क्या सुनना चाहती हो ॥ ११० ॥

—: सोलहवाँ पटल समाप्त :—

———

सप्तदशः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

द्रावणं रञ्जनं चैव पारदस्य श्रुतं मया ।
सारणं क्रामणं चैव क्रमादाख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

पारद के सारण तथा क्रामण सम्बन्धी प्रश्न :—पारद के सारणादि कर्म करने के लिए उपदेश सुन कर पार्वती ने प्रश्न किया कि हे प्रभो ! मैंने पारद का द्रावण तथा रञ्जन कर्म को सुना । अब क्रम से सारण तथा क्रामण कर्म को कहें ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

मूषां तु गोस्तनीं कृत्वा धत्तूरकुसुमाकृतिम ।
तदर्द्धं पूरयेत्तैलं रञ्जितं च रसं क्षिपेत् ॥ २ ॥
तुषकर्षाग्निना वाह्ये मूषायास्तुप्रदापयेत् ।
विंशांशनागसंयुक्तं समावर्त्तं च खोटकम् ।
दीर्घसंदंशनेनैव प्रक्षिपेत् सारितं भवेत् ॥ ३ ॥
द्विगुणेन ततो हेम्ना जायये प्रतिसारितम् ।
ततस्त्रिगुणहेम्ना तु जायते चानुसारितम् ॥ ४ ॥
जारयेद्विडयोगेन प्राग्वच्चाथ पुनः पुनः ।
अनेन विधिना देवि ! भवेद्द्वेधा तु वेधकः ॥ ५ ॥

सारणादि कर्म का निरूपण :—सारणादि कर्म सम्बन्धी पार्वती का प्रश्न सुन कर श्री भैरव जी बोले । धत्तूर पुष्प के सदृश आकार वाला गोस्तनी (गाय के स्तन के समान) मूषा को बना कर उसके आधे में तैल भर दे और उसके बाद रञ्चित पारद को उसमें छोड़ दे । इसके बाद मूषा के बाहर में धान की भूसी तथा गोहरी की आग दे । बीसवां भाग नाग से युक्त समावर्त खोटक को लम्बी सड़सी से पकड़ कर छोड़ दे । इससे वह सारित होता है । इसके बाद दुगुना स्वर्ण से प्रति सारित होता है तथा इसके बाद तीन गुना स्वर्ण से अनुसारित होता है । पहले की तरह विड के योग से बार-बार जारण करे । हे देवि ! इस विधि से दो प्रकार का वेधक होता है ॥ २–५ ॥

भूलताशोणितशिला-विषटङ्कणपारदम् ।
ताप्यं स्त्रीस्तन्यसंपिष्टं क्रामणं क्षेपलेपयोः ॥ ६ ॥

भूलता (केंचुआ), लाल मनः शिला विष (वत्सनाभ) टंकण तथा ताप्य (स्वर्णमाक्षिक) इन सबों को स्त्री के दूध के साथ पीस कर प्रक्षेप तथा लेप करने पर पारद का क्रामण होता है ॥ ६ ॥

इन्द्रगोपो विषं कान्तं दरदं रुधिरं तथा।
रसकं तिलतैलं च क्रामणं क्षेपलेपयोः ॥ ७ ॥

बीरबहूटी, वत्स नाभ, कान्त लोह, हिंगुल, रुधिर (रक्त), खर्पर तथा तिल तैल इन सबों का प्रक्षेप तथा लेप करने पर पारद का क्रामण होता है ॥ ७ ॥

भूलता माक्षिकशिला-टङ्कणं रुधिरं विषम्।
काकविष्ठा स्तनक्षीरं महिषीकर्णयोर्मलः।
रामठं च महेशानि ! क्रामणं क्षेपलेपयोः ॥ ८ ॥

हे महेश्वरि ! केंचुआ, माक्षिक, मनः शिला, टंकण, रक्त, वत्सनाभ, काक का विष्टा, स्त्री के स्तन का दूध भैंस के कान का मल तथा हिंगु इन सबों का प्रक्षेप तथा लेप करने पर क्रामण होता है ॥ ८ ॥

भूलता लाङ्गली शृङ्गी काकविष्ठा च शैलजम्।
विष्णुक्रान्ता मधूच्छिष्टं रुधिरं द्विपदीरजः ॥ ९ ॥
सुरसा ब्रह्मसोमा च गृध्रकर्णी च लक्ष्मणा।
कर्णगं महिषस्यापि क्रामणं क्षेपलेपयोः ॥ १० ॥

केचुआ, कलिहारी, काकड़ा सिंघी, काकविष्ठा, शिलाजीत, अपराजिता, मोम, रक्त, द्विपदीरज (नाग केशर का चूर्ण) तुलसी, ब्रह्म सोमा (ब्राह्मी), गृध्रकर्मी (गृध्रपर्णी-गृध्रपत्रा), लक्ष्मणा भैंस के कान का मल इन सबों का प्रक्षेप तथा लेप करने पर पारद क्रामण करता है ॥ ९-१० ॥

गण्डोलविषभेकास्य-महिषाक्षिमलं तथा।
रुधिरेण समायुक्तं रससंक्रामणं परम् ॥ ११ ॥

गण्डोल (गुड़ या चीनी), वत्स नाभ, मेढ़क का मुख, भैंस के आँख का मल ये सब रक्त के साथ युक्त प्रक्षेप तथा लेप करने पर उत्तम पारद संक्रामण हैं ॥ ११ ॥

विषं सुरेन्द्रगोपश्च रोचना गुग्गुलुस्तथा।
स्त्रीस्तन्यं चैव तैर्युक्तो लोहे तु क्रमते रसः ॥ १२ ॥

वत्सनाभ, वीरबहूटी, गोरोचन, गुग्गुलु तथा स्त्री का दूध इन सबों से युक्त पारद लोह में क्रमण करता है ॥ १२ ॥

श्रीखण्डनिस्वनिर्य्यास-स्त्रीस्तन्यविषटङ्कणैः ।
गोघृतेन समायुक्तो लोहे तु क्रमते रसः ॥ १३ ॥

श्री खण्ड चन्दन, नीमका गोंद, स्त्री का दूध, वत्सनाभ टंकण इन सबों के सहित गोघृत से युक्त पारद लोह में क्रमण करता है ॥ १३ ॥

अरिवर्गहतौ वङ्गनागौ द्वौ क्रामणं परम् ॥ १४ ॥

अरिवर्ग के औषधों से मारित नाग तथा वंग ये दोनों पारद के उत्तम क्रामण हैं ॥ १४ ॥

मातृवाहः कुलीरश्च शङ्खाभ्यन्तरजो मलः ।
तथा कपित्थनिर्य्यासो रससंक्रामणं परम् ॥ १५ ॥

मातृ वाह कीट, केकड़ा शंख नाभि के अन्दर का मल तथा कैथ का गोंद ये उत्तम रस संक्रामण हैं ॥ १५ ॥

क्रामणं रसराजस्य वेधकाले प्रदापयेत् ।
क्रामणं यो न जानाति श्रमस्तस्य निरर्थकः ॥ १६ ॥

पारद का क्रामण वेध के समय देना चाहिए। यों क्रामण नहीं जानता है उसका परिश्रम व्यर्थ है ॥ १६ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि हेमतारदलानि तु ॥ १७ ॥

स्वर्ण तथा रजक का दल निर्माण विधि :—इसके बाद स्वर्ण तथा रजत के दल निर्माण को कहता हूँ ॥ १७ ॥

नागं सूतं समं घृष्टं गन्धद्वादशसंयुतम् ।
धत्तूरकरसे घृष्टा गुटिका चणकाकृतिः ॥ १८ ॥
तारस्य भागाश्चत्वारः शुल्वभागास्त्रयस्तथा ।
सम्यगावर्त्त्यं देवेशि ! गुटिकैकां तु निक्षिपेत् ॥ १९ ॥
अनेन क्रमयोगेण तारे ताम्रं तु वाहयेत् ।
यावत्तु जायते रक्तं तारं चैव न संशयः ॥ २० ॥

पिसा हुआ नाग तथा पारद सम भाग तथा गन्धक बारह भाग मिलाकर धत्तूर के रस में घिस कर चने के आकार की गुटिका बनावे ॥ हे देवेशि ! रजत चार भाग तथा ताम्र तीन भाग इन दोनों को अच्छी तरह आवर्तित (पकाकर) कर पूर्वोक्त एक-एक गुटिका छोड़े। इस क्रम योग से रजत में ताम्र को वाहित करे जब तक वह रजत रक्त वर्ण का न हो जाय। ऐसा करने से वह रक्त वर्ण का हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८-२० ॥

अस्य भागद्वयं ग्राह्यं तारस्य भागपञ्चकम् ।
हेमभागैकसंयुक्तं द्रुतं हेमाष्टकं भवेत् ॥ २१ ॥

ताराष्टकः—पूर्वोक्त द्रव्य का दो भाग, रजत पांच भाग तथा स्वर्ण एक भाग इन सबों को संयुक्त कर द्रुत करने से "हेमाष्टक" होता है ॥ २१ ॥

गन्धकेन हतं शुल्वं दरदेन समन्वितम् ।
आर्द्रकं मूलकं शुण्ठी लसुनं हिङ्गु माक्षिकम् ॥ २२ ॥
मर्द्दयेन्मातुलुङ्गेन नागपत्राणि लेपयेत् ।
पुटेन म्रियते नागः सिन्दूरारुणसन्निभः ॥ २३ ॥
तत्तारे त्रिगुणे व्यूढं निर्वीजं कनकं भवेत् ॥ २४ ॥

गन्धक के साथ मृत ताम्र हिंगुल, अदरक, मूलक सोठ, लहसुन, हिंगु, माक्षिक इन सबों को विजौरा, निम्बु के साथ मर्दन करे और इस कल्क से नाग पत्रों को लिप्त करे। इसके वाद पुट देने से नाग सिन्दूर सदृश वर्ण युक्त भस्म हो जाता है। उसको तीन भाग रजत में व्यूढ़ मिलाने करने से निर्बीज स्वर्ण हो जाता है ॥ २२-२४ ॥

गन्धषाषाणदरद-तीक्ष्णखर्षरसूतकैः ।
भागवृद्धैः समध्वाज्यैः पञ्चमांशेन लेपयेत् ॥ २५ ॥
पुटनाच्छुष्कपुटनात् द्विधा तारस्य कृष्णता ॥ २६ ॥

गन्ध पाषाण (गन्धक), हिंगुल, तीक्ष्ण लौह, खर्पर तथा पारद भाग-वृद्ध मधु तथा घृत युक्त इन द्रव्यों के पांचवे भाग से लेप करे। इसके बाद पुट तथा शुष्क पुट दो प्रकार से रजत की कृष्णता होती है। अर्थात् गन्धक एक भाग, हिंगुल दो भाग, तीक्ष्ण लौह तीन भाग, खर्पर चार भाग तथा पारद पाच भाग मधु तथा घृत सहित इन द्रव्यों के पांचवे भाग से लेप करे और पुट एवं शुष्क पुट द्वारा रजत को कृष्ण वनाये ॥ २५-२६ ॥

पीतगन्धकपालाश-निर्य्यासेन प्रलेपितम् ।
पुटत्रयप्रदानेन रजतं काञ्चनं भवेत् ॥ २७ ॥

पीला गन्धक, तथा पलास का गोंद इन द्रव्यों से लिप्त रजत तीन पुट देने से स्वर्ण हो जाता है ॥ २७ ॥

पीतकृष्णारुणगणं यथालावं सुचूर्णितम् ।
गोसर्पिर्भावितं तारे वापेन श्वेतनाशनम् ॥ २८ ॥

पीतगण, कृष्णगण तथा अरुणगण इन सबों में से जो उपलब्ध हो जाय उसका सूक्ष्म चूर्ण बना ले तथा गाय के घृत से भावित करे। तदनन्तर इसका रजत में वाप देने से रजत की श्वेतता नष्ट हो जाती हैं ॥ २८ ॥

रक्तपीतासितगणं [1]छागक्षीरेण भूयसा।
सप्ताहं स्थापयेत्तारे निषेकाद्रक्तिवर्द्धनम् ॥ २९ ॥
यदा वापनिषेकाभ्यां मार्ज्जारनयनप्रभम्।
तत्तारं दलसंप्रोक्तं मेलनं परमं मतम् ॥ ३० ॥

रक्त, पीत तथा कृष्ण गण को अधिक गाय के दूध के साथ एक सप्ताह तक रक्खे। इससे रजत में निषेक करने से रक्तिमा की बृद्धि होती है। इसका बाप तथा निषेक किया जाता है तब मार्जार के नेत्र की प्रभा सदृश होता है। इस रजत को रजत दल कहा जाता है। यह उत्तम मेलन (मिलाने वाला) माना गया है ॥ २९-३० ॥

शुल्वस्य कांस्यकृष्णं तु रसकेन तु रञ्जयेत्।
द्वौ भागौ तस्य शुल्वस्य तारस्यैकं च मेलयेत् ॥ ३१ ॥
तदा तस्य रसेन्द्रस्य मेलनं परमं मतम्।
वेधयेत् शुद्धसूतेन शतांशेन सुरेश्वरि! ॥ ३२ ॥

ताम्र का काला कांस्य को खर्पर से रञ्जन करे। ताम्र का दो भाग तथा रजत का एक भाग का उत्तम मेलाप होता है। हे सुरेश्वरि! इसको शु० पारद सौवें भाग से वेध कराये ॥ ३१-३२ ॥

हेममाक्षिकलवणं पेषयेन्मधुसर्पिषा।
कुङ्कुमाभं भवेद्यावत् तेन नागपुटे पचेत् ॥ ३३ ॥
समं शुल्वं ततो देयं तच्छुल्वं तारपत्रके।
त्रिवारं शोधयेद्दत्त्वा शुद्धं हेमदलं भवेत् ॥ ३४ ॥

स्वर्ण, माक्षिक तथा सेन्धा नमक मधु तथा घृत के साथ पीसे उसको कल्क से लिप्त नाग को कुंकुम सदृशवर्णयुक्त होने तक नाग पुट में पाचन करे। इसके बाद इसमें से समभाग ताम्र मिला दे और वह रजत पत्र पर लिप्त करे। इस प्रकार तीन बार मिलाकर शोधन करे इससे शुद्ध हेम दल हो जाता है ॥ ३३-३४ ॥

वङ्गं नागं तथा तीक्ष्णं शुल्वं तारं च पञ्चकम्।
त्रिवारं शोधयेद्दत्त्वा शुद्धं हेमदलं भवेत् ॥ ३५ ॥

वंग, नाग, तीक्ष्ण लोह, ताम्र तथा रजत इन पांचों को पूर्वविधि के अनुसार मधु घृत पिष्ट विमल लवण को लिप्त कर तीन बार शोधन (पाचन) करने से शुद्ध स्वर्ण दल हो जाता है ॥ ३५ ॥

---

१. छागीक्षीरेणत्यर्थः, कक्कुटाण्डवत्समासः।

तालकं गन्धपाषाणं माक्षिकं खर्परं विषम्।
मातुलुङ्गयुतं लिप्त्वा वङ्गलोहं पुटे पचेत्॥ ३६॥

हरताल, गन्धक, माक्षिक, खर्पर तथा वत्सनाभ इन सबों को विजौरा निम्बु के रस के साथ पीस कर बनाये कल्क से लिप्त कर वंग लोह को पुट में पकाये॥ ३६॥

दरदं गन्धपाषाणं माक्षिकं सैन्धवं विषम्।
मातुलुङ्गयुतं लिप्त्वा तीक्ष्णलोहं पुटे पचेत्॥ ३७॥

हिंगुल, गन्धक, माक्षिक, सेन्धा नमक तथा वत्स नाम इन सबों को विजौरा निम्बु रस के साथ निर्मित कल्क से लिप्त कर तीक्ष्ण लोह को पुट में पकाये॥ ३७॥

कुनटी गन्धपाषाणं माक्षिकं सैन्धवं विषम्।
मातुलुङ्गयुतं लिप्त्वा नागलोहं पुटे पचेत्॥ ३८॥
सर्वं हेमदले वाह्यं हेम बद्धेन वेधयेत्॥ ३९॥

कुनटी (मनः शिला), गन्धक, माक्षिक, सेन्धा नमक तथा विष इन सबों को विजौरा निम्बु रस के साथ निर्मित कल्क से तीक्ष्ण लोह को लिप्त कर पुट में पकाये। इन सबों को स्वर्ण दल वाहित करे और उस हेम बद्ध से वेध कराये॥ ३८-३९॥

तुल्यांशौ हेमकरिणौ तीक्ष्णं द्विगुणमेव च।
व्यूढं रक्तगणैः सिक्तं तत्तारं कनकं भवेत्॥ ४०॥

स्वर्ण तथा नाग सम भाग तीक्ष्ण लोह तीन भाग इन द्रव्यों से व्यूढ़ (वाहित) तथा रक्त वर्ग के द्रव्यों से सिक्त वह रजत कनक हो जाता है॥ ४०॥

शुल्वं ताप्यहतं कृत्वा वरनागं तु रञ्जयेत्।
तं नागं वाहयेत्तारे यावद्धेमदलं भवेत्॥ ४१॥

ताम्र को स्वर्ण माक्षिक के साथ मारण कर उससे उतम नाग को रञ्जन करे। इस नाग को रजत में वाहित करे जब तक वह हेम दल न हो जाय॥ ४१॥

विषं सूतसमं गन्धं त्रिगुणाञ्जनसंयुक्तम्।
अम्लेन त्रिदिनं पिष्ट्वा ताराकौं मेलयेत् समौ॥ ४२॥
पक्वं पञ्चमृदा चैव पुटेत्तारावशेषितम्।
एवं वारत्रयेणैव रञ्जयेत्तारमुत्तमम्॥ ४३॥

---

१. साधी मिट्टी, वल्मीक मिट्टी, लाल मिट्टी, खडिया मिट्टी तथा खारिमिट्टी वल्मीक मृत्तिका, भूमि, गैरिकं खटिका पटुः। इत्येता मृत्तिका पञ्च संप्रोक्ता रसकर्माण।

विष तथा पारद गन्धक समभाग तथा स्रोतोऽञ्जन तीन भाग इन सबों को अम्ल वर्ग के साथ तीन दिन तक पीस कर समभाग रजत तथा ताम्र को मिला दे और पञ्च मृद् (पाँच मिट्टी) के साथ पकाये तथा रजत अवशिष्ट रहने तक पुट दे। तीन बार इस क्रिया विधि से उत्तम रजत को रञ्जित करे ॥ ४२-४३ ॥

भुजङ्गस्य च शुल्वस्य पृथगंशचतुष्टयम् ।
पृथग्द्वादशतैलस्य रीतिकातारयोर्द्वयोः ॥ ४४ ॥
कनकस्य तु भागैकं हेमतारावशेषितम् ।
मार्ज्जाराक्षिप्रभं देवि ! वरं हेमदलं भवेत् ॥ ४५ ॥

नाग चार भाग, ताम्र चार भाग, तैल बारह भाग, रीतिका (पीतल) रजत तथा कनक एक-एक भाग इन सबों को स्वर्ण तथा रजत अवशिष्ट रहने तक पूर्वोक्त प्रकार से पाचन करे। हे देवि ! मार्जार के आँख सदृश प्रभा वाला उत्तम स्वर्ण दल हो जाता है ॥ ४२-४५ ॥

ताराष्टकं ताम्रचतुष्कभागं, नागद्वयं काञ्चनमेकभागम् ।
सर्वं ततो रक्तगणेन सिक्तं, तारावशेषं कनकं करोति ॥ ४६ ॥

ताराष्टक, एक भाग, ताम्र चार भाग, नाग दो भाग, स्वर्ण एक भाग इन सबों को रक्त गण के द्रव्यों से सिक्त कर पाचन करने से रजता वशिष्ट कनक हो जाता है ॥ ४६ ॥

राजावर्त्तं चतुर्थं च दरदञ्च प्रवालकम् ।
हेममाक्षिकसंयुक्तं समभागानि कारयेत् ॥ ४७ ॥
रसकस्य त्रयो भागा मेषीक्षीरेण मर्द्दयेत् ।
वटिकां कारयेत् पश्चात् छायायां शोषयेत्ततः ॥ ४८ ॥
पञ्चद्रावकसंयुक्तां शिलापट्टेन पेषयेत् ।
अनेन सिद्धकल्केन तारारिष्टं तु योजयेत् ॥ ४९ ॥
प्रथमे समकल्केन द्वितीये तु तदर्धकम् ।
तृतीये पादभागेन तारारिष्टं तु जायते ॥ ५० ॥
पत्रे दाहे कषे च्छेदे हेम तच्चाक्षयं भवेत् ॥ ५१ ॥

राजावर्त, चतुर्थ भाग, हिंगुल, प्रवाल तथा स्वर्ण माक्षिक समभाग तथा खर्पर तीन भाग इन सबों को भेड़ के दूध के साथ मर्दन करे और वटिक बनाये तथा बाद में छायाशुष्क कर ले। इसके बाद पञ्च द्रावक गण (सूरण, जल पीपर, मकोय, सहिजन, बंदाल) के साथ शिला पट्ट पर पीस ले। इस सिद्ध कल्क से ताराष्टि को मिला दे। पहले बार समभाग कल्क दूसरे बार आधा-

बार चौथा भाग कल्क से तारारिष्ट होता है ॥ पत्र बनाना, दाह करना, कसना तथा छेदन करना इन सबों में वह स्वर्ण अक्षय रहता है अर्थात् निर्मित स्वर्ण में कोई विकृति नही होती है ॥ ४७-५१ ॥

सूतकं दरदं ताप्यं गन्धकं कुनटी तथा।
गृहीत्वा क्रमवृद्धया तु शुल्वपत्राणि लेपयेत् ॥ ५२ ॥
चाङ्गेरीस्वरसे पिष्ट्वा दापयेत् पुटपञ्चकम्।
तच्चूर्णं वाहयेत्तारे हेमाकृष्टिरियं भवेत् ॥ ५३ ॥
कनके योजयेद् देवि! कृष्णवर्णं भवेत्ततः ॥ ५४ ॥

पारद एक भाग, हिंगुल दो भाग, गन्धक तीन भाग तथा मनःशिला चार भाग इन सबों को चांगेरी पत्र के स्वरस में पीस कर उसके कल्क से ताम्र पत्र को लिप्त करे और पाँच पुट दे। इस चूर्ण को रजत में वाहित करे। यह हेमाकृष्टि है। इसको स्वर्ण में मिलाने से कृष्ण वर्ण का हो जाता है ॥ ५२-५४ ॥

गोमूत्रेण निशां पिष्ट्वा शुल्वमावर्त्त्य सेचयेत्।
शतधा शोधनेनैव भवेत् काञ्चनतारकम् ॥ ५५ ॥

इसके बाद गोमूत्र के साथ हल्दी को पीसकर ताम्र मिलाकर सेंचन करे तथा सौ बार शोधन (पाचन) करे। इससे काञ्चनतारक (स्वर्ण रजत) हो जाता है ॥ ५५ ॥

अथ कांस्योद्धृतं ताम्रमारोटमथवा प्रिये!।
षडगुणेन तु नागेन शोधयित्वा ततो बुधः ॥ ५६ ॥
शतार्द्धं सिन्धुवारस्य रसमध्ये तु ढालयेत्।
कूष्माण्डस्य रसे पश्चात् सप्तवारं तु दापयेत् ॥ ५७ ॥
तथा तक्रे निशायुक्ते तप्ततप्तं च दापयेत्।
शुकतुण्डकिंशुकाभं छेदे रक्तं मृदुं तथा ॥ ५८ ॥
ताप्येन वाप्यं कृत्स्नं तत् शुल्वं कालिकया गतम् ॥ ५९ ॥

हे प्रिये! इसके बाद कांसा से निकाला हुआ ताम्र अथवा आरोट (शुद्ध पारद-या एक वार मृत पारद), छः गुने नाग के साथ शोधित कर उसके बाद विद्वान् व्यक्ति पचास भाग सिन्दुवार (मेउड़ी) के रस में डाल दे। इसके पश्चात् कूष्माण्ड के रस में सात बार डाले। इसी प्रकार हल्दी युक्त तैल में तपा-तपा कर बुझाये। यह शुष्क तुण्डकिंशुक (पालासपुष्प) के वर्ण का छेदने में लाल तथा मुलायम होता है। ये सम्पूर्ण ताम्र माक्षिक के साथ वापित करने से कालिका (काले रंग से) युक्त हो जाता है ॥ ५६-५९ ॥

दरदं किंशुकरसं रक्तचित्रकमेव च।
हरिद्रे द्वे वरारोहे छागमूत्रेण पेषयेत् ॥ ६० ॥
दद्यान्निषेचनं शुल्वे सप्तवारं न संशयः।
शुल्वं सिन्दूरवर्णं च वरं हेमदलं भवेत् ॥ ६१ ॥

हे वरारोहे ! हिंगुल, पलास, लालचित्रक, निशाहल्दी तथा दारुहल्दी, इस सबों को बकरी के मूत्र के साथ पीसे तथा उसको ताम्र में सात बार निषिक्त करे अर्थात् इस कल्क में ताम्र को तपा-तपा कर बुझाये। इससे ताम्र सिन्दूर वर्ण का सुन्दर हेमदल हो जाता है ॥ ६०-६१ ॥

द्विगुणौ तीक्ष्णभुजगौ घोषकृष्णं तु वाहयेत्।
अथवा यन्त्रकारस्य चैकद्वित्रिपलक्रमात् ॥ ६२ ॥
त्रिपञ्चकं च नागस्य शुल्वस्य च पलं तथा।
ध्मातं यदवशिष्टं तत् तपनीयनिभं भवेत् ॥ ६३ ॥

तीक्ष्णलोह तथा नाग दो भाग, घोषकृष्ण (कांस्यलोह) एक भाग या यन्त्रकार (लोह) क्रम से एक पल दो पल तीन पल, नाग त्रिपञ्चक (पन्द्रह) पल तथा ताम्र एक पल इन सबों को धमन करने से जो अवशिष्ट रहता है वह तपनीय (स्वर्ण) वर्ण का हो जाता है ॥ ६२-६३ ॥

लाङ्गली चित्रकं शिग्रुर्निर्गुण्डी करवीरकम्।
स्नुह्यकक्षीरचिञ्चाम्ल-वज्रकन्दसमन्विताम् ।
माहिषीक्षारसंयुक्तां सुरां देवि ! प्रकल्पयेत् ॥ ६४ ॥
स्नुह्यर्कक्षीरलवणैः शुल्वपत्राणि लेपयेत्।
सुरायां प्रथमोक्तायां दिनमेकन्तु पाचयेत् ॥ ६५ ॥
प्राग्वल्लिप्ताग्निवर्णानि सुरायां सेचयेन्मुहुः।
आवर्त्तितानि बहुधा कुर्य्यात् कुण्डवराटकैः ॥ ६६ ॥
सर्जिकासिन्धुदत्तैश्च वपेत् कर्म्मसु योजयेत् ॥ ६७ ॥

हे देवि ! लांगली, चित्रक, सहिजन, निर्गुण्डी, कनेर, सेंड़ तथा मदार का दूध, इमली, सूरण, नया भैंस का दूध इन सबों को मिला कर सुरा निर्माण करे। सेहुड़ तथा मदार का दूध और नमक इन सबों के कल्क से ताम्र पत्र को लिप्त करे और पूर्वोक्त सुरा में एक दिन पाचन करे। पहले की तरह लिप्त अग्नि वर्ण वाले ताम्र को सुरा में बार-बार सेचन करे और कुण्ड वराटक (एक प्रकार की कौड़ी) के साथ अनेक बार आवर्तित करे। इसके बाद सज्जी-

१. ग्यारोटसंज्ञां लभते वारमेकं मृतं तु यः ॥ (रसदर्पण)

खार तथा सिन्धुदत्त (सेन्धा नमक) से वपन करे। और सभी कर्म में प्रयोग करे॥ ६४-६७॥

रसकस्य पलैकं तु हेममाक्षिकसंयुतम्।
सैन्धवस्य पलार्द्धं तु मातुलुङ्गाम्लसंयुतम्॥ ६८॥
पाचनं कारयेत् पश्चात् ध्मातं कुङ्कुमसन्निभम्।
इन्द्रगोपसमं कल्कं पुटयोगेन जारयेत्॥ ६९॥
तत् कल्कं मधुसंयुक्तं शर्कराटङ्कणान्वितम्।
एकीकृत्याथ सम्मर्द्य गव्यक्षीरेण पाचयेत्॥ ७०॥
प्रागेव शोधितं शुल्वं रसकल्केन रञ्जयेत्।
रञ्जयेत् त्रीणि वाराणि जायते हेम शोभनम्॥ ७१॥

खर्पर एक पल, स्वर्णमाक्षिक एक पल तथा सेन्धानमक आधा पल इन सबों को बिजौरा निम्बु के रस के साथ मिलाकर पाचन कराये। बाद में धमन करने से कुंकुम के सदृश, बीरबहूटी के साथ कल्क को पुट के द्वारा जारण करे। उस कल्क को मधु, शक्कर तथा टंकण मिलाकर एकत्र मर्दन कर गाय के दूध के साथ पकाये और पहले के शोधित ताम्र को रसकल्प से रञ्जन करे। इस प्रकार तीन बार रञ्जन करे इससे सुन्दर स्वर्ण हो जाता है॥ ६८-७१॥

भावयेन्मुनिपुष्पाणि करवीरं मनःशिलाम्।
तत्पूर्वं रञ्जितं शुल्वं शिलया च तथा युतम्।
अन्धमूषागतं ध्मातं जायते हेम शोभनम्॥ ७२॥

अगस्त्य का फूल, कनेर तथा मनः शिला और वह पूर्व रञ्जित ताम्र तथा शिलाजीत को मिला कर भावित करे। तदनन्तर अन्ध मूषा में रख कर धमन करने से सुन्दर स्वर्ण हो जाता है॥ ७२॥

तेनैव रसकल्केन तारपिष्टिं तु कारयेत्।
सेचयेत् कङ्गणीतैलं तद्दिव्यं कनकं भवेत्॥ ७३॥

पूर्वोक्त उसी रसकल्क से तारपिष्टि बनाये और कंगुनी का तेल से सेंचन करे। इससे दिव्य स्वर्ण हो जाता है॥ ७३॥

अर्ज्जुनी लाङ्गली पद्मचारिणी शक्रवारुणी।
सुवर्णा चौषधीभिश्च गैरिकेण तु पार्वति!।
विलिप्तं शुल्वपत्रं तु निषिक्तं कनकं भवेत्॥ ७४॥

हे पार्वति! अर्जुनी (ज्वालामुखी रक्तचित्रक) लांगली पद्म-चारिणी (स्थल कमलिनी) इन्द्र वारुणी तथा सुवर्णा (हरिद्रा) ये ओषधियाँ तथा

गेरू इन सवों का कल्क बना कर उससे ताम्र को लिप्त तथा निषिक्त करने पर कनक हो जाता है ।। ७४ ।।

मयूरग्रीवतुत्थञ्च कुङ्कुमं रसकं तथा।
बालवत्सपुरीषं च विषं हालाहलं तथा।
रक्तचित्रकचूर्णञ्च समभागानि कारयेत् ।। ७५ ।।
मर्द्दयेन्मध्यमाम्लेन छायाशुष्कं च कारयेत्।
मधुना सह संयोज्य नागपत्राणि लेपयेत् ।। ७६ ।।
मूकमूषागतं ध्मातं नागं रञ्जयति क्षणात् ।। ७७ ।।

मयूर ग्रीव तुत्थ (तूतिया), कुंकुम, खर्पर बाल बछड़े का गोवर, विष (वत्सनाभ), हालाहल विष: तथा रक्त चिलक का चूर्ण इन सवों को समभाग ग्रहण करे और मध्यम (मध्यम कोटिके) अम्ल के साथ मर्दन करे और छाया में सुखा ले। इसको मधु के साथ मिलाकर नागपत्रों को लिप्त करे। इसके बाद मूक-मूषा में रख कर धमन करने से तत्काल नाग को रञ्जित करता है ।।७४-७६।।

शाकपत्र - रसेनैव सप्तवारं निषेचयेत्।
अष्टाविंशतिकृत्वा वा तैले भूनागसम्भवे।
तन्नागं जायते दिव्यं देवाभरणभूषणम् ।। ७८ ।।

पूर्वोक्त रञ्जित नाग को शाक पत्र के रस से सात बार सिंचित करे। अथवा केंचुआ से निर्मित तैल में अठाइस बार सिञ्चित करे। इससे (इसके बाद धमन करने से) वह नाग देवताओं को अलंकृत करने वाला दिव्य आभूषण स्वर्ण हो जाता है ।। ७८ ।।

अथवा भूलताचूर्णं नागचूर्णं समांशकम्।
अन्धमूषागतं ध्मातं तैले तप्तं निषेचयेत् ।। ७९ ।।
एवं कृते सप्तवारं भवेत् षोडशवर्णकम् ।। ८० ।।

अथवा केंचुआ का चूर्ण तथा नाग चूर्ण समभाग लेकर अन्ध मूषा में रखकर धमन करे तथा इसको तप्त तैल से डुबो दे। इस प्रकार सात बार करने पर सोलह वर्ण वाला स्वर्ण हो जाता है !। ७९-८० ।।

बालवत्सपुरीषं च लाक्षागैरिकचन्दनम्।
हंसपादाख्यदरदं बिल्वमज्जा - गुडस्तथा ।। ८१ ।।
राजावर्त्तं च कुङ्कुष्ठं शाकपल्लववारिणा।
भुजङ्गं कनकं कुर्य्याच्छतवारं निषेचनात् ।। ८२ ।।

बाल बछड़े का गोबर, लाख, गेरु, रक्तचन्दन, हंसपादसंज्ञक हिंगुल,

बेल का गूदा, गुड़, राजावर्त तथा कंकुष्ठ इन सबों को मिला कर शाक के कोमल पत्तों के रस से सौ वार सिंचित (भाबित) करने से यह नाग को स्वर्ण बना देता है ॥ ८१-८२ ॥

मञ्जिष्ठा रजनीद्वन्द्वं कांक्षी कनकमाक्षिकम ।
कौसुम्भं विषसिन्धूत्थं दरदं रक्तचन्दनम् ॥ ८३ ॥
शाकपल्लवपालाश-कुसुमैः सह संयुतम् ।
सेचनाच्छतवारेण नागं रञ्जयति प्रिये ! ॥ ८४ ॥

हे प्रिये ! मंजीठ, निशाहल्दी, दारुहल्दी, काक्षी (सौराष्ट्र मृत्तिका) स्वर्णमाक्षिक, कुसुम्भ (वर्रे), बिष सिन्धूत्थ (हालाहल विष), हिंगुल, रक्त चन्दन शाक का पल्लव तथा पलाश के पुष्प से युक्त इन सबों के कल्क से सौवार सेचन करने से यह नाग को रञ्जित करता है ॥ ८३-८४ ॥

कङ्कुष्ठं गन्धपाषाणं रजनीद्वितयं तथा ।
भावयेत् सप्तवारांश्च [1]चामीकररसेन तु ॥ ८५ ॥
निषिक्तं शिंशपातैले सप्तधा प्रतिवापितम् ।
नागं रञ्जति च क्षिप्रं रञ्जितं चाक्षयं भवेत् ॥ ८६ ॥

कंकुष्ठ, गन्ध पाषाण, निशा हल्दी तथा दारुहल्दी इन सबों को स्वर्ण[2] के जल से सात बार भावित करे । इससे निषिक्त नाग को शीशम के तैल में सात बार प्रतिवापित करे । यह नाग को रञ्जित करता है और रञ्जित किया हुआ नाग शीघ्र ही अक्षय (चिर काल स्थायी) हो जाता है ॥ ८५-८६ ॥

विद्रुमं दरदं तीक्ष्णाम् अनेन प्रतिवापितम् ।
मञ्जिष्ठाकिंशुकरसे शाके चैव निषेचयेत् ॥ ८७ ॥
प्रतिवापनिषिक्तश्च क्रमेणानेन रञ्जितः ।
भुजगो हेमतां याति नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ८८ ॥

बिद्रुममणि, हिंगुल, तथा तीक्ष्ण लौह को पूर्वोक्त प्रतिवापद्रव्य से प्रतिवापित, एवं मंजीठ पलास तथा शाक के रस में निषेचन करे । प्रतिवाप तथा निषिक्त किया हुआ तथा इस क्रम से रञ्जित किया हुआ नाग स्वर्ण हो जाता है । यहां विचार नहीं करना चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

उक्तं हेमदलं देवि ! वरं तारदलं शृणु ॥ ८९ ॥

तारदल का निर्माण विधि :—हे प्रिये ! हेम दल का निर्माण मैंने बताया अब तार दल का निर्माण सुनो ॥ ८९ ॥

---

१. चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने-इति सुवर्णपर्य्यायेष्वमरः ।
२. धतूर अथवा नाग केशर के रस से ।

श्वेताभ्रं काञ्जिके स्विन्नं त्रिवारं पुटितं ततः ।
स्वल्पटङ्कणवङ्गं च शुद्धशुल्वे तु वापयेत् ॥ ९० ॥
पञ्चमांशेन मिश्रं तत् तारं तालं च वेधयेत् ।
तत्तालं मेलयेत्तारे द्रुतं सिक्तेन वेधयेत् ॥ ९१ ॥
रससैन्धवमेकैकं तिलसर्ज्जौद्वियं द्वयम् ।
टङ्कैकं कनकरसे मर्द्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ९२ ॥
तेन लिप्तं ताम्रपत्रं धमेदावर्त्तितं पुनः ।
इङ्गुदं सतालमूलं दध्यम्लेन तु पेषयेत् ॥ ९३ ॥
तन्मध्ये ढालयेच्छुल्वं सप्तवारं दलं भवेत् ।
तृतीयांशेन बीजस्य मेलयेत् परमेश्वरि ! ॥ ९४ ॥

रजत दल :—श्वेत अभ्रक को काञ्जी में स्वेदन करे और तीन वार पुट दे। इसके बाद थोड़ा टंकण तथा वंग (या टंकण वंग द्वन्द्व) शुद्ध ताम्र में वापित करे। इसके पांचवां अंश मिलाने से यह रजत तथा ताल को वेधता है ! उस ताल को ताम्र में मिलाये और द्रुत ताम्र को सिंचन के द्वारा वेध करे ! पारद तथा सेन्धा नमक एक-एक भाग, तिल सज्जीखार तथा यवाखार दो-दो भाग, टंकण एक भाग इन सबों को धतूर के रस में तीन दिन तक मर्दन करे। उस कल्क से विद्ध ताम्र पत्र को पुनः धमन करे और पुनः आवर्तित करे (अर्थात् पाचन करे)। इसके बाद इंगुदो तथा ताल मूल (शतावरि) इन दोनों को खट्टे दही के साथ पीसे और उसके मध्य में पूर्वोक्त ताम्र को सात बार डाले। इससे वह दल हो जाता है। हे परमेश्वरि ! बीज के तृतीयांश से मेलन करे ॥ ९०-९४ ॥

लाङ्गली चित्रको दन्ती हयघ्नोत्तरवारुणी ।
गोधावती वज्रवल्ली श्वेतार्कः [1]शक्रवारुणी ॥ ९५ ॥
विष्णुक्रान्ताश्वगन्धा च शिग्रुः पञ्चाङ्गुली तथा ।
पुनर्नवा अपामार्ग इङ्गुदी चक्रमर्द्दकः ॥ ९६ ॥
गुडूची चैव हिंस्रा च एकद्वित्रिचतुर्थकः ।
महिषीक्षीरसन्धानात् सप्ताहादुपरि प्रिये ! ।
निषेके क्रियमाणे तु जायते शुल्वशोधनम् ॥ ९७ ॥

ताम्र शोधन:—लांगली, चित्रक, दन्ती, हयघ्न (कनेर) द्वन्द्व वारुणी, गोधावती (गोधापदी), बजवल्ली (सेंहुड़) सफेद कनेर, शक्रवारुणी (द्वन्द्व

१. शक्रवारुणी-इन्द्रवारुणी ।

वारुणी) अपराजिता, अश्वगन्धा, सहिजन, पञ्चाङ्गुली (तक्रा—स्थल वनस्पति), पुनर्नवा, अपामार्ग, इंगुदी, चकवड़, गुडूची तथा हिंस्रा (हंसलता)। हे प्रिये! इनमें से एक, दो तीन या चार द्रव्यों को भैंस के दूध के साथ संधान करने तथा एक सप्ताह के बाद उसमें निषेक करने से ताम्र का शोधन हो जाता है ॥ ९५–९७ ॥

तालषोडशभागेन शुल्वपत्राणि लेपयेत्।
स्थापयित्वान्धमूषायां त्रिधा चावर्त्तयेत् पुनः ॥ ९८ ॥

हरताल के सोलहवें भाग से ताम्र पत्रों को लेप करे और अन्ध मूषा में स्थापित कर पुनः तीन बार आवर्तित करे ॥ ९८ ॥

शुक्लवर्गस्त्रिधा क्षारं शङ्खसैन्धवसर्जिजकाः।
दन्ताः कपर्दाः कम्बुश्च शुक्तयः शुल्ववापनाः ॥ ९९ ॥
पादमेतत्सुरासेकैर्जायते नखपाण्डुरम् ॥ १०० ॥

शुक्लवर्ग, तीन प्रकार का क्षार, (यवक्षार सज्जी क्षार, टंकण क्षार) शंख, सेन्धा नमक, सर्जिका, दन्त, कपर्दिका (कौड़ी), कम्बु (शंख), शुक्ति ये सब ताम्र को वापन करने वाले हैं। इन सबों के चौथाई भाग से युक्त ताम्र सुरा सेक करने पर नख के समान पाण्डुर वर्ण का हो जाता है ॥ ९९-१०० ॥

त्रयोऽयस्कान्तभागाः स्युरारतारद्वयं तथा।
वङ्गस्य दश भागाः स्युस्तारवेधेन वेधयेत् ॥ १०१ ॥

अयस्कान्त (चुम्बक) तीन भाग, आर (पितल) तथा तार २ भाग-वंग दश भाग इन सबों को तार वेध से वेध करे ॥ १०१ ॥

आरस्य द्विगुणं तारं तारात् कान्तं चतुर्गुणम्।
कान्तादष्टगुणं वङ्गं तारवेधेन वेधयेत् ॥ १०२ ॥

आर (पितल) एक भाग, रजत दो भाग, कान्त लोह आठ भाग, वंग चौसठ भाग इन सबों को तार वेध से वेध करे ॥ १०२

तालं सूतं समं कृत्वा वज्रीक्षीरेण मर्दितम्।
पुटं दत्त्वा तु यन्त्रेण सत्त्वं पतति शोभनम् ॥ १०३ ॥

हरताल तथा पारद समभाग लेकर सेंहुड़ के दूध के साथ मर्दन करे और पातन यन्त्र के द्वारा पुट देकर सुन्दर सत्व पातन करे ॥ १०३ ॥

वङ्गमावर्त्य देवेशि! वज्रीक्षीरेण पेषयेत्।
एकविंशतिवाराणि वङ्गशोधनमुत्तमम् ॥ १०४ ॥
तद्वङ्गं जारयेत् सूतं समं वा द्विगुणादिकम् ॥ १०५ ॥

हे देवेशि ! पूर्वोक्त सत्व में बंग को मिलाकर सेहुड़ के दूध के साथ एवकीस वार मर्दन करे। इससे उत्तम वंग शोधन होता है। उस वंग को समभाग अथवा दुगुना पारद मिला कर जारण करे ॥ १०४-१०५ ॥

भल्लातं राजिकातैलं शङ्खचूर्णविडेन च।
नागवङ्गौ भवेत्तेन समं वङ्गेन सारणात् ॥ १०६ ॥
क्षारोदकनिषेकाच्च तद्वद्बीजमनेकधा।
तमुपायं प्रवक्ष्यामि मार्द्दवं येन जायते ॥ १०७ ॥

सारण योग :—भल्लातक, राई का तैल, शंख चूर्ण, विड़ तथा उस वंग के साथ सारण करने से नाग वंग सारित होता है। उसी प्रकार अनेक प्रकार के बीज का क्षारोदक के निषेक से सारण होता है, उसके उपाय को बताता हूँ जिससे मार्दव हो जाता है ॥ १०६-१०७॥

घृतं दधि पयः क्षौद्रं विल्वजम्बीरकद्रवैः।
गुडस्तिलसमायुक्तो निषेकात् मृदुकारकः ॥ १०८ ॥

मृदु कारक योग :—घृत दही, दूध, मधु, बेल तथा जम्वीरी निम्बु के द्रव के साथ मिलित गुड़ तथा तिल निषेक करने से मृदु कारक होता है ॥ १०८ ॥

गजदन्ता हयनखा मेषशृङ्गं च सैरिभम्।
कम्बुनिर्यासंसंयुक्तं सप्तवारं निषेचयेत् ॥ १०९ ॥
सहस्रधा विस्फुटितं दलं भजति मार्द्दवम् ॥ ११० ॥

हाथी का दांत घोड़ा का नख, भेड़ का सींग, सैरिभ (भैंसका) सींग तथा कम्बु का निर्यास (शंख भस्म) मिलाकर सातबार निषेक करे। हजार भाग में फूटा हुआ दल मृदु होता है ॥ १०९-११० ॥

ज्योतिष्मतीकुसुम्भानां तैले कारञ्जकेऽपि वा।
निषेकः शस्यतेऽत्यर्थं कनकस्य विचक्षणैः ॥ १११ ॥

ज्योतिष्मती (मालकांगनी) तथा कुसम्भ (वरें) इनके तैल या करञ्ज के तेल में स्वर्ण का निषेक विद्वानों के द्वारा अत्यन्त प्रशस्त कहा गया है ॥ १११ ॥

आवर्त्त्यमानं तारे च यदि तन्नैव निर्म्मलम्।
काचटङ्कणवापेन क्षिप्रं निर्म्मलतां व्रजेत् ॥ ११२ ॥

रजत में पूर्वोक्त द्रव्यों का आवर्तन (मेलन) यदि किया जाय तो वह निर्मल नहीं होता है किन्तु विड़ तथा टंकण के मेल से रजत शीघ्र ही निर्मल हो जाता है ॥ ११२ ॥

मधुक - मधुमेषाज्य - सौराष्ट्रीगुडसैन्धवैः ।
शुक्तिकम्बुखुरावापं चन्द्रार्कं मृदु जायते ॥ ११३ ॥

मुलेठी, मधु, भेड़ का घी, सौराष्ट्री मिट्टी, गुड़ तथा सेन्धा नमक के साथ शुक्ति शंख तथा सुरा के मेलन से रजत तथा ताम्र मृदु हो जाता है ॥ ११३ ॥

मधुतैलघृतैश्चैव वत्समूत्रे निषेचनात् ।
जायते खरसत्त्वानां दलानामपि मार्द्दवम् ॥ ११४ ॥

मधु तैल तथा घृतके साथ बकरी के मूत्र में निषेक (डुबोने) से खर सत्व वाले दलों का भी मार्दव हो जाता है ॥ ११४ ॥

चिञ्चारसेन सामुद्रैः क्षीरे चार्कस्य वह्निना ।
विशुद्धं जायते तारं शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ ११५ ॥
यदि तन्निर्म्मलं नैव तदा तद्वत् पुनः पचेत् ।
विधिरेष समाख्यातस्तारकर्म्मणि पूजितः ॥ ११६ ॥

इमली का रस, तथा सामुद्र नमक के साथ से मदार के दूध में तथा अग्नि से पकाने पर रजत, शंख, कुन्द तथा चन्द्रमा के सदृश विशुद्ध हो जाता है। यदि वह निर्मल न हो तो पुनः उसी प्रकार पकाये। यह विधि रजत कर्म में प्रशस्त कहा गया है ॥ ११५-११६ ॥

कङ्गुणी तैलमञ्जिष्ठा-हरिद्राद्वयकुङ्कुमम् ।
निषेकात् कुरुते हेम बालार्कसदृशप्रभम् ॥ ११७ ॥

कांगुनी का तैल, मंजीठ, निशाहल्दी, दारुहल्दी तथा कुंकुम इन सबों के निषेक (मेलन) से स्वर्ण बाल सूर्य की प्रभा के समान लाल हो जाता है ॥ ११७ ॥

शुल्वार्द्धं गन्धकं दत्त्वा तदर्द्धं मृतसूतकम् ।
चाङ्गेरी स्वरसेनैव मर्द्दयेद्वासरत्रयम् ॥ ११८ ॥
प्लुतं चित्ररसेनैव लेपयेद्धेम पाण्डुरम् ।
पक्त्वा पञ्चमृदा देवि ! हेमोत्कर्षणमुत्तमम् ॥ ११९ ॥

ताम्र एक भाग, गन्धक आधा भाग तथा मृत पारद चौथाई भाग इन सबों को चांगेरी के स्वरस के साथ तीन दिन तक मर्दन करे और चित्रक के रस के साथ मिलाकर पाण्डुर वर्ण के हेम को लिप्त करे और पञ्च मृत्तिका के साथ पकाकर उत्तम वर्ण को प्राप्त करे ॥ ११८-११९ ॥

हेम शुल्वं तथा तीक्ष्णं समभागानि कारयेत् ।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ १२० ॥

खोटस्य भागमेकं तु रसहेमसमन्वितम् ।
पाचयेदनुजाम्लेन यावत् कुङ्कमसन्निभम् ॥ १२१ ॥
शतांशेन तु तेनैव वेधयेद्धेम पाण्डुरम् ।
जायते कनकं दिव्यं द्विवर्णोत्कर्षणं भवेत् ॥ १२२ ॥
यावच्छुद्धं भवेत्तावत् पुटेल्लवणभस्मना ।
रक्ततैले निषेक्तव्यं जायते हेम शोभनम् ॥ १२३ ॥

स्वर्ण, ताम्र तथा तीक्ष्णलौह सम भाग ग्रहण करे और अन्ध मूषा में रख कर धमन करने से उसी समय खोट हो जाता है ॥

खोट का एक भाग पारद तथा स्वर्ण के साथ मिलकाकर कनिष्ठ अम्ल के साथ पकाये जब तक वह कुंकुम के सदृश न हो जाय। उसी के सौवें भाग से पाण्डुर वर्ण के स्वर्ण का वेध करे। दो वर्ण का उत्कर्ष करने वाला दिव्य स्वर्ण हो जाता है। जब तक वह शुद्ध न हो तब तक नमक के जल के साथ पुट दे। इसके बाद रक्त तैल में निषेक करे (डुबाये) इससे सुन्दर स्वर्ण हो जाता है ॥ १२०-१२३ ॥

मर्दितं कटुतैलेन स्वर्णगैरिकगन्धकम् ।
अथवा मातुलुङ्गाम्ले राजावर्तकमाक्षिकम् ॥ १२४ ॥
अथवा विट् कपोतस्य राजावर्त्तकसैन्धवम् ।
पुटनाच्छ्वेतकनकं कुरुते कुङ्कुमप्रभम् ॥ १२५ ॥

सरसों के तैल के साथ मर्दित गेरु तथा गन्धक अथवा विजौरा निम्बु के रस में मर्दित राजावर्त तथा माक्षिक, अथवा कबूतर की विष्ठा राजावर्त तथा सैन्धा नमक ये सब पुट देने से श्वेत स्वर्ण को कुंकुम सदृश प्रभा वाला बना देते हैं ॥ १२४-१२५ ॥

राजावर्त्तस्य चूर्णं तु शिरीषकुसुमद्रवैः ।
भावितं बहुशः क्षिप्तमशीत्यंशेन वर्णदः ॥ १२६ ॥

राजावर्त के चूर्ण को शिरीष पुष्प के रस के साथ अनेक बार भावित कर इसका अस्सिवां भाग छोड़ने से स्वर्ण वर्ण को देने वाला होता है ॥ १२६ ॥

शतशः कङ्गुणीतैले ताम्रं हेम्ना समं द्रुतम् ।
माक्षिकेन कृताऽऽवापं शतांशेन तु वर्णकृत् ॥ १२७ ॥

काँगुनी के तेल में हेम के साथ सैकड़ों बार द्रुत माक्षिक का सौवां भाग मिलाने से वर्णन को देने वाला होता है ॥ १२७ ॥

कार्पासबीजदरद-तुत्थसैन्धवगैरिकैः ।
पत्रालक्तक मञ्जिष्ठा-रक्तचन्दनविद्रुमैः ॥ १२८ ॥

गुडभल्लातकस्नेह - वत्सविष्ठेष्टकायुतः ।
आवापाज्जायते श्वेतं कनकं रविसन्निभम् ॥ १२९ ॥

कपास का बीज हिंगुल, तूतिया, सेन्धा नमक, गेरु, आलता पत्र, मंजीठ, रक्त चन्दन, बिद्रुममणि, गुड़ भल्लातक का तैल बछड़े की विष्टा तथा ईंट का चूर्ण इन सबों को मिलाकर आवाप देने से श्वेत स्वर्ण सूर्य सदृश रक्त वर्णका हो जाता है ॥ १२८-१२९ ॥

रक्ताष्टकं त्रयो भागाः त्रयो भागाः समुद्रजम् ।
सितार्कपत्रतोयेन पुटो वणप्रदो भवेत् ॥ १३० ॥

रक्ताष्टक तीन भाग तथा सामुद्र नमक तीन भाग श्वेत मदार के पत्तों के रस के साथ पुट देना वर्ण को देने वाला है ॥ १३० ॥

रक्तपीतौ समौ कृत्वा ताभ्यां तुल्यं च माक्षिकम् ।
करञ्जतैलेनालोड्य मूकमूषागतं धमेत् ॥ १३१ ॥
सकृत् पीतदशांशेन दश पीतशतेन च ।
शतं पीतसहस्रेण कोटिमर्द्धेन विध्यति ॥ १३२ ॥
शतशः किंशुकरसे भावितं लक्षणं पुनः ।
सटङ्कणपुटेनैव वर्णोत्कर्षप्रदं भवेत् ॥ १३३ ॥

रक्तवर्ग तथा पीतवर्ग समभाग लेकर तथा माक्षिक दो भाग लेकर तथा करञ्ज के तैल के साथ मिलाकर मूषा यन्त्र में रख कर धमन करे। पीतदशांश से एक, पीतशतांश से दश, पीतसहस्रांश से शत, आधा से कोटि (करोड को) वेधता है। पलास के रस में सौवार भावित लवण तथा टंकण पुट देने से वर्ण को उत्कर्ष देने वाला होता है ॥ १३१-१३३ ॥

लोहचूर्णं त्रयो भागा गैरिकं द्विगुणं तथा ।
मधुककुमुदाम्भोभिः, मूत्रेणापि निषेचयेत् ॥ १३४ ॥
पेषयेत् कोद्रवेणैव गोष्ठमध्ये तु निक्षिपेत् ।
अशीत्यंशेन तदिदं वापाद्वर्णप्रदं भवेत् ॥ १३५ ॥

लोह चूर्ण तीन भाग तथा गेरु दो भाग मुलेठी तथा कुमुद पुष्प के रस एवं मूल के साथ मिलाये तथा कोदो के साथ पीसे और गाय के गोष्ठ (गोशाला) में गाड़ दे। उसके अस्सिवां भाग के आवाप (मिलाने) करने से वर्ण देने वाला होता है ॥ १३४-१३५ ॥

शुल्वातिरिक्तं कनकं पुटयेदन्धमूषया ।
सामुद्रधातुतोयेन निषेकः शस्यते तदा ॥ १३६ ॥

सामुद्रगैरिकालिप्तं द्रावितं मृदुतां व्रजेत् ।
गोशकृद्भस्मलिप्तं तत् समभागं प्रलेपयेत् ॥ १३७ ॥
शुल्वातिरिक्तं कनकं पुटं निर्म्मलतां व्रजेत् ॥ १३८ ॥

ताम्र के अतिरिक्त स्वर्ण को अन्ध मूषा से पुट दे इसके बाद सामुद्र धातु (सामुद्र नमक) के जल से निषेक उत्तम होता है। सामुद्र नमक तथा गैरिक से लिप्त तथा द्रावित मृदुता को प्राप्त करता है। गाय के गोबर के भस्म से लिप्त उस स्वर्णको पूर्वोक्त समभाग लेप से लिप्त करे। ताम्रके अतिरिक्त पुट दिया हुआ कनक निर्मल हो जाता है ॥ १३६-१३८ ॥

नागास्थिभस्मकल्केन मूषां लिप्त्वा विचक्षणः ।
निक्षिपेदन्धमूषायां नित्यं हेमदलं भवेत् ॥ १३९ ॥
ततस्तन्मृदुभिर्घोटैः[1] सम्प्रसार्य्य निचक्षणः ।
तप्ततप्तं निषेक्तव्यं यावत्तन्मृदुतां व्रजेत् ॥ १४० ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति हाथी के अस्थि के भस्म के कल्क से मूषा को लिप्त कर हेम दल को अन्ध मूषा में छोड़ दे। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष मुलायम मर्दन से फैलाकर तथा तपा तपा कर जल से बुझाये जबतक मृदु न हो जाय ॥ १३९-१४० ॥

सामुद्रधातुकल्केन[2] लेपयित्वा विचक्षणः ।
कृत्वा पलाशपत्रे तु तद्दहेन्मृदुवह्निना ॥ १४१ ॥
तावत् पचेत् [3]पचेद्धीमान् यावन्निर्म्मलतां व्रजेत् ।
ततस्तच्छीतले कृत्वा तोये निर्वापयेत्ततः ॥ १४२ ॥
[तावदेव विधिः कार्य्यो यावद्वर्णः समागतः] ॥ १४३ ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति सामुद्र नमक के कल्क से लेप कर पलास के पत्ते में बांध कर मृदु अग्नि से हेम दल को जलाये। बुद्धिमान् व्यक्ति तब तक पकाये जब तक वह निर्मल न हो जाय। (तब तक यह विधि करनी चाहिए जब तक वर्ण न निकल आये) ॥ १४१-१४३ ॥

ततस्तत्तापयेद्भूयो गोशकृच्चूर्णसंयुतम् ।
तप्तं तपनतस्तत्र लवणे प्रक्षिपेद्बुधः ॥ १४४ ॥
प्रकृष्टं तु ततो हेम पचेल्लवणगैरिकैः ।
कर्षकेण तु संशोध्य भूयो भूयो विचक्षणः ॥ १४५ ॥

---

१. घोटनानि घोटाः, घुंट परिवर्त्तने घञ् । २. सामुद्रम् इति पाठान्तरम् ।
३. पुनः पचेदित्यर्थः, नित्यवीप्सयोरिति द्वित्वम् ।

लेपयेत् पुटयेच्चैव वर्णसञ्जननाय च।

इसके बाद पुनः हेम दल को गोबर का चूर्ण मिलाकर तपाये और बुद्धिमान् व्यक्ति आग में तपा कर लवण जल में बुझाये। उत्तम वर्ण हो जाने पर नमक तथा गेरु के साथ पकाये और कर्षक से सुखा कर बार-बार बुद्धिमान् व्यक्ति वर्ण उत्पन्न करने के लिये लेप करे तथा पुट दे ॥१४४-१४५½॥

तारारिष्टं तु देवेशि! रक्ततैलेन पाचयेत् ॥ १४६ ॥
निषेचयेच्च शतशो दलं रञ्यतिरक्षितम् ॥ १४७ ॥

हे देवेशि ! रक्त तैल के साथ तारारिष्ट को पकाये और सैकड़ों बार सींचे। इस सौ बार निषेचन हेम दल सुरक्षित एवं रञ्जित हो जाता है ॥१४६-१४७॥

रसोपरसवर्गं तु निर्वहेन्नागवङ्गयोः।
नागवङ्गौ पुनः शुल्वं शुल्वे तारे तु निर्वहेत् ॥ १४८ ॥
तारं निषिक्तं देवेशि! रक्ततैले पुनः पुनः।
जायते हेमकल्याणं सर्वदोषविवर्ज्जितम् ॥ १४९ ॥
हेमार्द्धेन समायुक्तं रसोच्छिष्टं प्रशस्यते।
जायते कनकं दिव्यं मातृकासममुत्तमम् ॥ १५० ॥

हेमकल्याण :—रस तथा उपरस को नाग-वंग में वहन कराये। पुनः नाग वंग को ताम्र में वहन कराये और ताम्र को रजत में वहन कराये। हे देवेशि ! इस रजत को रक्त तैल में बार २ निषिक्त (डुबाना) करे। इस प्रकार सभी दोष से रहित हेम कल्याण हो जाता है। आधाभाग स्वर्ण मिलालर रसोच्छिष्ट कराना प्रशस्त होता है। इससे मातृका सदृश (मूल स्वर्ण सदृश) उत्तम, स्निग्ध स्वर्ण हो जाता है ॥ १४८-१५० ॥

वङ्गाभ्रं सितताप्यं वा शैलं वा वापयेत् सिते।
तद्धि तारे दशांशेन वर्णोत्कर्षप्रदं भवेत् ॥ १५१ ॥

वर्णोत्कर्षक :—वंगाभ्र या रजत माक्षिक अथवा मनःशिला इन को रजत माक्षिक में वपन (मिलाना) करे और उसका दशवाँ भाग रजत में वपन करे। यह वर्ण उत्कर्ष (रंग बढ़ाने वाला) देने वाला है ॥ १५१ ॥

अष्टानवतिरंशास्तु तारारिष्टस्य पार्वति!।
एकैको रसहेमांशः शतवेध इति स्मृतः ॥ १५२ ॥
अनेन क्रमयोगेन सहस्रांशेन वेधकः ॥ १५३ ॥

शत सहस्र वेधक :—हे पार्वति ! तारारिष्ट का अंठानबेवां भाग तथा रस तथा हेम का एक एक भाग शत वेध कहा गया है। इस क्रम योग से यह सहस्रांश वेधक होता है ॥ १५२-१५३ ॥

मूषां तु गोस्तनीं कृत्वा दलपूर्णां तथा दृढाम् ।
धमेद्दलं निर्म्मलं तत् धृतमुन्मीलितं यदा ॥ १५४ ॥
क्रामणेन समायुक्तं रसं दत्त्वा तु वेधयेत् ।
दलपत्रं रसालिप्तं ताम्रपात्रान्तरे स्थितम् ॥ १५५ ॥
उपरिष्टान्मृदा लिप्तं दत्त्वा मृद्वग्निमेव च ।
बीजसंयुक्तमावर्त्त्य स्थापयेन्मतिमान् सदा ॥ १५६ ॥
टङ्कणं तिलचूर्णं च शीतले तु निवापयेत् ।
रससिद्धं तु कनकं पक्षैकं स्थापयेद्भुवि ।
उद्धृत्य पुनरुद्धास्य विक्रेयं तत् सुरेश्वरि ! ॥ १५७ ॥

रससिद्ध कनक : –गाय के स्तनाकार दृढ़ हेमदल से पूर्ण मूषा बनाकर धमन करे और उस निर्मल दल को जब रक्खे तथा निकाले उस समय क्रामण से युक्त पारद को देकर वेंध करे। हेमदल पत्र को रस से लिप्त कर ताम्र के पात्र में रखकर ऊपर से मिट्टी से लिप्त कर तथा मन्द-अग्नि देकर, बीज के साथ पकाकर रक्खे। इसके बाद शीतल होने पर उसमें टंकण तथा तिल का चूर्ण वपन (मिलाना) करे। इस रस सिद्ध कनक को एक पक्ष तक जमीन में रक्खे। हे सुरेश्वरि ! पुनः इसको निकाल कर बेंचे ॥ १५४-१५७ ॥

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रसवेधो यथा भवेत् ॥ १५८ ॥

पुनः जिस प्रकार रसवेध होता है उसको कहता हूँ ॥ १५८ ॥

तिलसर्षपचूर्णस्य द्वे पले च प्रदापयेत् ।
द्वे पले च हरिद्राया एकत्रैव तु मर्दयेत् ॥ १५९ ॥
मर्दयेन्मृन्मये पात्रे पलपञ्चकपन्नगम् ।
वापयेत् सिद्धसूतेन शलाकां चैव चालयेत् ॥ १६० ॥
पुनश्च वापयेत्तावत् यावत् कठिनतां व्रजेत् ।
तन्नागं जायते दिव्यं जाम्बूनदसमप्रभम् ॥ १६१ ॥

द्वितीय रसवेध विधि :––तिल तथा सरसों का चूर्ण दो पात्र (१०० ग्रा०) हल्दी दो पल इन सबों को एकत्र मर्दन करे और मिट्टी के पात्र में पन्नग (नाग) पांच पल मर्दन करे। उसमें सिद्ध पारद वपन (पाक द्वारा मिलाना) करे और शलाका से चलाये। पुनः तब तक कल्क वपन करता रहे जब तक कठिन न हो जाय। इस प्रकार वह नाग स्वर्णप्रभा के सदृश दिव्य सुन्दर हो जाता है ॥ १५८-१६१ ॥

उद्घाटं कथयिष्यामि रसविद्धं च पन्नगम् ॥ १६२ ॥

घोषाकृष्टं तु यत् शुल्वं षोडशांशेन योजयेत्।
एकीकृत्य समावर्त्त्य छागमूत्रे निषेचयेत्।
सर्वदोषविनिर्म्मुक्तं जायते हेम शोभनम् ॥ १६३ ॥

उद्घाट :—रस विद्ध पन्नग का उद्घाट कहता हूँ। कांस्य से निकाला हुआ ताम्र सोलहवाँ भाग पूर्वोक्त नाग में मिला दे और दोनों को एक में मिलाकर बकरी के मूत्र में निषिक्त (मिलानकर) दे। इस प्रकार सभी दोषों से रहित सुन्दर स्वर्ण हो जाता है ॥ १६२-१६३ ॥

लोहवेध इति ख्यातो विस्तरेण सुरेश्वरि ! ॥ १६४ ॥
यथा लोहे तथा देहे कर्त्तव्यः सूतकः सदा।
समानं कुरुते देवि ! प्रविशन् देहलोहयोः ॥ १६५ ॥
पूर्वं लोहे परीक्षेत ततो देहे प्रयोजयेत्।
तन्ममाचक्ष्व देवेशि ! किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १६६ ॥

इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसम्वादे रसार्णवे रससंहितायां
लोहवेधो नाम सप्तदशः पटलः ॥ ५७ ॥

हे सुरेश्वरि ! मैंने विस्तार पूर्वक लोह वेध को कहा। जैसे लोह में वैसा ही देह में पारद का प्रयोग करना चाहिए। हे देवि ! पारद देह तथा लोह में प्रवेश करता हुआ समान कार्य करता है। पहले लोह में परीक्षा करे उसके बाद शरीर में प्रयोग करे। हे देवेशि ! अब और क्या सुनना चाहती हो वह बताओ ॥ १६४-१६६ ॥

—: सप्तदश पटल समाप्त :—

अष्टादशः पटलः ।

श्रीदेव्युवाच ।

लोहवेधास्त्वया देव यदर्थमुपवर्णिताः ।
तं देहवेधमाचक्ष्व येन स्यात् खेचरी गति ॥ १ ॥

देह वेध सम्बन्धी प्रश्न :—पारद को देह में प्रयोग करने के सम्बन्ध में पार्वती ने प्रश्न किया कि हे देव ! आप ने लोह वेध बताया किन्तु वह जिसके लिये कहा गया है उस देह वेध को बताये जिससे खेचरी गति सिद्ध हो जाय ॥ १ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

प्रथमं शोधयेद्देहं पश्चात् कल्कं समाचरेत् ।
अन्यथा न भवेत् सिद्धिः रसे चैव रसायने ॥ २ ॥

देह वेध विधि का निरूपण :—सबसे पहले शरीर को पञ्च कर्म (स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन) के द्वारा शोधन करे । उसके बाद कल्क का प्रयोग करे । अन्यथा रस तथा रसायन में सिद्धि नहीं होती है ॥ २ ॥

प्रातः प्रातः पिबेदादौ त्रिदिनं घृतसैन्धवम् ।
केतक्याः स्तनजं क्वाथं तदनु त्रिदिनं पिबेत् ॥ ३ ॥

पूर्वकृत्य कर्म :—सर्व प्रथम प्रातः काल तीन दिन तक घृत तथा सेन्धा नमक पान करे । उसके बाद केतकी (केवड़ा) के स्तवक सहित पुष्प का क्वाथ तीन दिन तक पान करे ॥ ३ ॥

विधिना स्वेदनं कृत्वा सयवक्षारशर्करम् ।
त्र्यहं पिबेद्वराक्वाथं सदेवासुरवन्दिते ! ॥ ४ ॥

स्वेदन कर्म :—हे देव तथा असुरों से पूजित पार्वती ! विधिपूर्वक यवक्षार तथा शक्कर के साथ स्वेदन करे त्रिफला का क्वाथ तीन दिन तक पान करे ॥ ४ ॥

क्वाथं कटुकरोहिण्याः सम्यक् जाते विरेचने ।
त्रिदिनं यावकान्नं च भुञ्जीत घृतसंयुतम् ॥ ५ ॥

विरेचन कर्म :—अच्छी तरह विरेचन हो जाने पर कुटकी का क्वाथ तीन दिन तक पान करे और घृत युक्त जवका भात (या जव का लपसी) भक्षण करे ॥ ५ ॥

पलाशबीजजन्तुघ्न-गुडमोदकभक्षणात् ।
कीटस्य पातनं कुर्यादथ काकेष्ठवारिणा ॥ ६ ॥
वचामरिचसिन्धूत्थ-रजनीकणनागरात् ।
धात्रीगुडविडङ्गाच्च परागं दिवसत्रयम् ॥ ७ ॥
एवं संशोध्य शाल्यन्नं क्षीरमुद्गाम्बुयावकैः ।
ततो जातबलो भूत्वा चरेद्रासायनं विधिम् ॥ ८ ॥

क्रिमि पातन :—पलास का बीज, तथा वायविडङ्ग इन सबों के चूर्ण को गुड़ के साथ मोदक बनाकर भक्षण कराये और उससे क्रिमिपातन कराये। इसके बाद काकेष्ठ (बिम्बफल) के क्वाथ के साथ बच, मरिच, सेन्धानमक, हल्दी, पीपर, सोंठ आंवला, गुडूची तथा विडंग इन सबों का चूर्ण तीन दिन तक पान कराये। इस प्रकार संशोधन कर दूध, मूंग की दाल तथा यव की काञ्जी के साथ जड़हन धान का भात खिलाये। इसके बाद बलवान् होकर रसायन विधि का आचरण करे ॥ ६--८ ॥

धात्रीरसघृतक्षौद्रैः क्षीरैः सुरतरूद्भवैः ।
तैलं निर्मथ्य देवेशि ! द्विचतुःषट्पलान्वितम् ॥ ९ ॥
लघुमध्योत्तमैर्मानैः त्रिमासं प्रत्यहं पिबेत् ।
[1]आरोटं भक्षयेत् पश्चात् जीर्णं च तदनन्तरम् ॥ १० ॥
क्षेत्रीकृत्य ततो देहं ततो भक्ष्यं तु वर्द्धयेत् ॥ ११ ॥

रसायन में पूर्व कर्म :—हे देवेशि ! आँवला का रस, घृत, मधु, दूध तथा देवदारु का रस इन सबों के साथ तैल का मिलाकर दो पल (१०० ग्रा०) चार पल तथा छः पल लघु, मध्यम तथा उत्तम मान के अनुसार तीन माह तक प्रति दिन पान करे। इसके बाद 'आरोट' शुद्ध पारद भक्षण करे, बाद में जीर्ण हो जाने पर शरीर का क्षेत्रीकरण कर भक्ष्य पदार्थ को बढ़ाये ॥९-११॥

शोधितं व्योमताप्याभ्यां पातितं तदनन्तरम् ।
तन्दुलीयकभृङ्गाह्व-पेषितं वापितं रसम् ।
'आरोटमिति' सेवेत प्रथमं देहसिद्धये ॥ १२ ॥

आरोट :—अभ्रक तथा स्वर्णमाक्षिक के द्वारा शोधित, तदनन्तर ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् पातन यन्त्र द्वारा पातित, तण्डुलीय (चौराई), तथा भृंगराज के साथ मर्दन कर वापित (पकाया हुआ) पारद को "आरोट" कहते हैं। इसको पहले दिन देह सिद्धि के लिये सेवन करे ॥ १२ ॥

---

१. "सुशोधितो रसः सम्यग्, आरोट-इति कथ्यते"

अथवा भस्मतां प्राप्तं षट्वारं कल्कयोगतः।
यावत् संवत्सरं पूर्णं तावदारोटकं भजेत् ॥ १३ ॥

अथवा छः बार कल्क के साथ मर्दन कर भस्म किया "आरोट" हुआ पारद पूरे वर्ष तक सेवन करे ॥ १३ ॥

शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पिर्लोहाभयापारदताप्यभक्षम्।
आपूर्य्यते दुर्बलदेहधातून् [1]त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥१४॥

देह-धातु-पूरक द्रव्य :—शिलाजीत, मधु, वायविडङ्ग, घृत, लौह, हरँ, पारद तथा माक्षिक का भक्षण दुर्बल व्यक्तियों के देह-धातुओं को पन्द्रह दिन में पूरा कर देता है। जैसे पन्द्रह दिन में चन्द्रमा पूर्ण हो जाता है ॥ १४ ॥

वककन्यारसक्षौद्र - द्विनिशात्रिफलागुडैः।
कल्कीकृतं रसं व्योम-कान्तमध्वाज्यसंयुतम्।
भुक्त्वा गच्छेदमरतां क्षेत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १५ ॥

क्षेत्रीकरण :—अगस्त्य, घृतकुमारी का रस, मधु, निशाहल्दी, दारु हल्दी, त्रिफला, (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), तथा गुड़ इन द्रव्यों के साथ कल्क किया गया अभ्रक, कान्तलोह, मधु तथा घृत से युक्त पारद भक्षण कर अमर हो जाता है। यह उत्तम क्षेत्रीकरण है ॥ १५ ॥

चूर्णमभ्रकसत्त्वस्य कान्तलोहस्य वा ततः।
तीक्ष्णस्य वा महादेवि ! त्रिफलाक्राथभावितम् ॥ १६ ॥
यावदञ्जनसङ्काशं वस्त्रच्छन्नं विशोध्य तत्।
भृङ्गामलकसारेण हरिद्राया रसेन च ॥ १७ ॥
पुटितं रससंयुक्तं मधुघृतसमन्वितम्।
लोहसम्पुटमध्यस्थं मासं धान्ये प्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥
घृतेन मधुना लिह्यात् क्षेत्रीकरणमुत्तमम्।
एवं वर्षप्रयोगेण सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ १९ ॥

हे देवि ! अभ्रक सत्व का चूर्ण या कान्त लोह का चूर्ण या तीक्ष्ण लोह का चूर्ण त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) रस से भावित वस्त्र को पोटली में ढका हुआ अञ्जन सदृश होने तक शोधन कर भृंगराज तथा आँवला का सार तथा हल्दी के रस के साथ पुट दिया हुआ पारद एवं मधु तथा घृत मिश्रित पूर्वोक्त चूर्ण को लोहे के दो सम्पुटों के मध्य में रखकर धान्य की राशि में एक माह तक रक्खे और मधु तथा घृत के साथ चाटे यह उत्तम क्षेत्रीकरण है इस प्रकार एक वर्ष तक प्रयोग कर मनुष्य सहस्रायु होता है ॥ १६-१९ ॥

---

१. त्रिगुणितेन पञ्चरात्रेण = पक्षेणेत्यर्थः।

रससिद्धेः पुरा हेम गुञ्जामात्रं दिने दिने।
भक्षयेद्देहसिद्ध्यर्थं रससिद्धिः प्रजायते ॥ २० ॥

रससिद्धि के पहले प्रति दिन एक २ रत्ती (१२० मि. ग्रा०) देह सिद्धि के लिये भक्षण करे इससे रससिद्धि होती है ॥ २० ॥

कान्ताभ्रसत्त्वं सरसमीषत्कनकजारितम्।
लिह्यादादौ समध्वाज्यं क्षेत्रीकरणमुत्तमम् ॥ २१ ॥
वर्षं वर्षार्द्धमथवा पूर्वमेवं तु भक्षयेत् ॥ २२ ॥

कान्ताभ्रसत्व थोड़ा स्वर्ण जारित पारद मधु तथा घृत के साथ पहले चाटे। यह उत्तम क्षेत्रीकरण होता हैं। एक वर्ष, आधा वर्ष अथवा इससे पहले तक ही भक्षण करे ॥ २१-२२ ॥

वज्रजीर्णो रसो देवि! ह्युत्तमः परिकीर्त्तितः।
मध्यमो हेमजीर्णस्तु तारजीर्णोऽधमः प्रिये! ॥ २३ ॥
हेमजीर्णे भस्मसूते रुद्रत्वं भक्षिते व्रजेत्।
विष्णुत्वं तारजीर्णे तु ब्रह्मत्वं भास्करेण तु ॥ २४ ॥
तीक्ष्णजीर्णे धनाध्यक्षः सूर्य्यत्वं चपलालये 'तु'।
वाजरे तु शशाङ्कत्वम् अनलत्वं तु रोहणे।
सामान्येन तु तीक्ष्णेन शक्रत्वं प्राप्नुयान्नरः ॥ २५ ॥

वज्र हेम तार जीर्ण रस भक्षण :—हे प्रिये ! वज्र के साथ जीर्ण रस उत्तम कहा गया है, स्वर्णजीर्ण पारद मध्य तथा रजतजीर्ण पारद अधम होता है। स्वर्णजीर्ण पारद भस्म के भक्षण करने पर रुद्रत्व प्राप्त होता है। रजतजीर्ण पारद भस्म भक्षण करने से विष्णुत्व प्राप्त होता है और ताम्रजीर्ण पारद भस्म भक्षण करने से मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। तीक्ष्णलोहजीर्ण पारद भस्म भक्षण करने से कुबेरत्व, चपलजीर्ण पारद भस्म भक्षण से सूर्यत्व प्राप्त होता है। वाजर नामक सामान्य लोहजीर्ण पारद भस्म भक्षण से शशाङ्कत्व, रोहण नामक लोहजीर्ण पारद भस्म भक्षण से अनलत्व तथा सामान्य लोहजीर्ण पारद भक्षण करने से मनुष्य इन्द्र पद को प्राप्त करता है ॥ २३-२५ ॥

एवं यो लोहजीर्णं तु भक्षयेद्भस्मसूतकम्।
जलेन जलरूपः स्यात् स्थलेन स्थलतां व्रजेत् ॥ २६ ॥
तेजोऽधिके तथा तेजः वायोरप्यधिको बली।
हर्त्ता कर्त्ता स्वयं साक्षात् शापानुग्रहकारकः ॥ २७ ॥

इस प्रकार लोहजीर्ण पारद भस्म को जो भक्षण करता है वह जल के

साथ जल रूप स्थल के साथ स्थल रूप, तेज के साथ अधिक तेजस्वी, वायु से भी अधिक बलवान्, हरण करनेवाला, स्वयं कर्ता तथा साक्षत् शाप को दूर करने वाला होता है ॥ २६-२७ ॥

यत्र मूत्रपुरीषं तु साधकस्तु परित्यजेत्।
पाषाणो मृन्मयं तत्र स्पष्टं भवति काञ्चनम् ॥ २८ ॥
प्रस्वेदस्तस्य गात्रस्य लोहान्यष्टौ च वेधयेत्।
तत् सर्व्वं कनकं नित्यं भक्षिते द्वादशे पले।
रुद्रतुल्यो महादेवि ! अजरामरकारिणि ॥ २९ ॥

जहाँ पर साधक मलमूत्र त्याग करता है वहाँ की मिट्टी तथा पाषाण स्वर्णमय हो जाता है। उसके शरीर का स्वेद बिन्दु आठों लोहों का बेध करता है। स्वर्ण हो जाता है और हे देवि ! नित्य बारह पल भक्षण करने पर वह सब रुद्र तुल्य होता है तथा अजर-अमर बनाने वाला होता है ॥ २८-२९ ॥

भस्म सूतं तथा तारं भक्षयेत् षोडशं पलम्।
अथवा तारजीर्णं तु भक्षयेद्भस्म सूतकम्।
शुल्वञ्च वङ्गघोषं च तत्स्वेदात् तारतां व्रजेत् ॥ ३० ॥

पारद भस्म तथा रजत भस्म सोलह पल भक्षण करे अथवा तारजीर्ण पारद भस्म भक्षण करे। ताम्र भस्म, वंग भस्म तथा पित्तल भस्म भक्षण करने वाले के स्वेद से रजत होता है ॥ ३० ॥

अथवा तीक्ष्णजीर्णं तु भक्षयेद्भस्मसूतकम्।
मूत्रेण तस्य स्पृष्टं तु वङ्गं व्रजति तारताम् ॥ ३१ ॥
एकैकेन निषेकेण स्तम्भनं नागवङ्गयोः ॥ ३२ ॥

अथवा जो तीक्ष्णलोहजीर्ण पारद भस्म भक्षण करता है। उसके मूत्र से स्पर्श हुआ वंग स्वर्ण हो जाता है और उसके मूत्र में नाग वंग को एक ही बार निषिक्त करने पर स्तम्भन हो जाता है ॥ ३१-३२ ॥

गुञ्जामात्रं रसं देवि ! हेमजीर्णं तु भक्षयेत्।
द्विगुञ्जां तारजीर्णस्य रविजीर्णस्य तल्लयम् ॥ ३३ ॥

जीर्ण पारद भस्म की मात्राः—हे देवि ! हेम जीर्ण पारद भस्म एक गुञ्जा (एक रत्ती १२० मि० ग्रा०) भक्षण करे। रजत जीर्ण पारद भस्म दो गुञ्जा (दो रत्ती २४० मि० ग्रा०) तथा ताम्र जीर्ण पारद भस्म तीन गुञ्जा (३६० मि० ग्रा०) भक्षण करे ॥ ३३ ॥

तीक्ष्णाभ्रकान्तमाषैकं गुञ्जैका द्राविका भवेत्।
वज्रवैक्रान्तजीर्णं तु भक्षयेत् सर्पिषान्वितम् ॥ ३४ ॥

नागं बङ्गं रसं भस्म विषोपविषसंयुतम् ।
मात्रायुक्तं ततश्चैव भक्षयेच्च रसायने ॥ ३५ ॥
हेम तारं तथा कान्तं जायतेऽग्निसहं क्रमात् ।
बद्धश्च रसराजोऽयं देहसिद्धिं प्रदापयेत् ॥ ३६ ॥

तीक्ष्णलौह, अभ्रक, कान्तलौह, एक मासा को एक गुञ्जा द्रावण करती है । वज्र वैक्रान्त जीर्ण पारद को घृत तथा शहद के साथ भक्षण करना चाहिए । नाग बंग, रस भस्म विष एवं उपविष के साथ मात्रा पूर्वक रसायन में भक्षण करना चाहिए । स्वर्ण, रजत तथा कान्त लौह क्रमशः अग्नि सह (आग में न पिघलने वाले) हो जाते हैं । यह बद्ध पारद देहसिद्धि को देता है ॥३४-३६॥

वज्रायस्कान्तमाक्षीक-वैक्रान्ताभ्रककाञ्चनैः ।
एतैर्जीर्णैर्यथालाभं रसः शस्तो रसायने ॥ ३७ ॥
षडेवोपरसांश्चैव भक्षणार्थं च वाहयेत् ।
भक्षणात्तीक्ष्णजीर्णस्य पलमेकं तु भक्षयेत् ॥ ३८ ॥
'दशवर्षसहस्राणि' वज्रकायः स जीवति ॥ ३९ ॥

जीर्ण पारद वज्र-आदि भक्षण से आयु का प्रमाणः—वज्र, अयस्कान्त, माक्षिक, वैक्रान्त, अभ्रक तथा स्वर्ण इन सबों के साथ जीर्ण पारद भस्म यथालाभ रसायन कार्य में प्रशस्त है ॥ भक्षण के लिये छः उपरसों को ही प्राप्त करना चाहिए । तीक्ष्ण जीर्ण पारद का एक पल (५० ग्रा०) भक्षण करे । इसके भक्षण से मनुष्य वज्र सदृश दृढ़ शरीर प्राप्तकर दश हजार वर्ष जीवित रहता है ॥ ३७-३९ ॥

एवञ्च द्वादशपलं तीक्ष्णजीर्णं तु भक्षयेत् ।
एवं जीवेन्महाकल्पं प्रलयान्ते शिवं व्रजेत् ॥ ४० ॥

इस प्रकार तीक्ष्ण जीर्ण पारद को बारह पल तक भक्षण करे । इस प्रकार महाकल्प तक जीवित रहता है और प्रलय के अन्त में शिव हो जाता है ॥ ४० ॥

भस्मनः शुल्वजीर्णस्य पलैके लक्षमायुषः ।
द्विपले कोटिरायुष्यं त्रिपले [1]ब्रह्मणायुषम् ॥ ४१ ॥
चतुःपले वैष्णवायुः रुद्रायुः पञ्चमे पले ।
षष्ठे पले च संप्राप्ते महाकल्पं स जीवति ॥ ४२ ॥

ताम्र जीर्ण पारद भक्षण का आयु प्रमाणः—ताम्रजीर्ण पारदभस्म एक

१. ब्रह्मण आयुर्जीवतीत्यर्थः, प्रतोगौ तु शिवोक्तत्वेन समर्थनीयौ

पल (५० ग्रा०) भक्षण करने से एक लाख वर्ष की आयु प्राप्त करता है। दो पल भक्षण करने से करोड़ वर्ष आयु, तीन पल भक्षण करने से ब्रह्मा की आयु, चार पल भक्षण करने से विष्णु की आयु, पांच पल भक्षण करने से शंकर की आयु तथा छः पल भक्षण करने से महाकल्प तक वह जीवित रहता है ॥ ४१-४२ ॥

भस्मनो हेमजीर्णस्य पलेन [1]ब्राह्ममायुषम् ।
द्विपले वैष्णवायुष्यं रुद्रायुस्त्रिपलेन तु ।
चतुःपलेन देवेशि ! शिवत्वं प्राप्नुयान्नरः ॥ ४३ ॥
हेमजीर्णे भस्मसूते त्रिपले भक्षिते क्रमात् ।
अष्टाशीति सहस्राणि योगिन्यो बलदर्पिताः ।
तस्य तिष्ठन्ति किं कार्य्यैः कामरूपी भवेन्नरः ॥ ४४ ॥
यद्यद्भावयते रूपं तत्तद्रूपधरो भवेत् ।
मितैः पलैकादशभिः हेमभस्मानि भक्षयेत् ॥ ४५ ॥
गुञ्जैकामात्रं देवेशि ! ज्ञात्वा चाग्निबलं निजम् ।
घृतेन मधुनाच्छाद्य ताम्बूलं कामिनीर्भजेत् ॥ ४६ ॥

स्वर्णजीर्ण पारद भक्षण का आयु प्रमाण एवं फलः—स्वर्ण जीर्ण पारद भस्म का एक पल भक्षण करने से ब्रह्मा की आयु, दो पल भक्षण करने से विष्णु को आयु, तीन पल भक्षण करनेसे रुद्रको आयु, और हे देवेशि ! चार पल भक्षण करने से मनुष्य शिवत्व को प्राप्त करता है। स्वर्ण जीर्ण पारद भस्म तीन पल क्रमशः भक्षण करनेपर अठ्ठासी हजार बल से युक्त योगिनियाँ उस मनुष्य के पास रहती हैं। इसके बाद कोई भी कार्य शेष नहीं रह जाता। वह मनुष्य काम रूपी हो जाता है—जो-जो रूप चाहता है उस-उस रूप को प्राप्त करता है। ग्यारह पल तक स्वर्ण भस्म भक्षण करे ! हे देवेशि ! अपने अग्निबल को जानकर एक गुञ्जा (१२० मि० ग्रा०) घृत तथा शहद के साथ मिला कर भक्षण करे और पान तथा कामिनी स्त्रियों का सेवन करे ॥ ४४-४६ ॥

एको हि दोषः सूक्ष्मोऽयं भक्षिते भस्मसूतके ।
त्रिसप्ताहं वरारोहे कामान्धो जायते नरः ॥ ४७ ॥
कामिनीनां सहस्रं तु क्षोभयेद्दिवसान्तरे ।
नारीसङ्गाद् वरारोहे ! देहे क्राम्यति सूतकः ॥ ४८ ॥
नारीसङ्गे वारारोहे अजीर्णं तस्य जायते ॥ ४९ ॥

1. ब्रह्मण आयुर्जीवतीत्यर्थः प्रयोगौ तु शिवोक्तत्वेन समर्थनीयौ

पारद भस्म भक्षण का दोष।—हे वरारोहे ! पारद भस्म भक्षण करने पर यह सूक्ष्म दोष है कि मनुष्य तीन सप्ताह में कामान्ध हो जाता है। एक दिन में हजारों कामिनियों को क्षुब्ध (मान मर्दन) कर देता है। हे वरारोहे ! स्त्री के संग से पारद शरीर में संक्रमण करने लगता है। नारी का संग न होने पर अजीर्ण हो जाता है। अर्थात् शरीर में परिपाक नहीं होता ॥ ४७-४९ ॥

मैथुनाच्चलिते शुक्रे त्रिसप्तावधि क्रमात्।
जायते प्राणसन्देहस्तस्मात्तन्मैथुनं त्यजेत् ॥ ५० ॥
युवत्या जल्पनं कार्य्यं युवत्या चाङ्गमर्दनम्।
यस्याः स्पर्शनमात्रेण रसः क्राम्यति विग्रहे ॥ ५१ ॥
यथा कामोऽप्युदयति सुस्त्रीरूपनिरीक्षणात्।
तथा क्राम्यति देवेशि ! सूतकोऽसौ ततः क्रमात् ॥ ५२ ॥

स्त्री संग न होने पर हानिः—तीन सप्ताह के अन्दर क्रम से मैथुन से शुक्र के चलाय मान होने पर प्राण का संदेह हो जाता है अतः मैथुन का त्याग कर दे ! युवती के साथ बातचीत तथा अंग मर्दन कराना चाहिए। जिसके स्पर्श मात्र से पारद शरीर में संक्रमण करता है। हे देवेशि ! जैसे अच्छी स्त्री के रूप देखने से काम उत्पन्न होता है, वैसे वह पारद शरीर में संक्रमण करता है ॥ ५०-५२ ॥

अश्वत्थपत्रसदृशो भगो यस्याः समः शुभः।
तादृश्याः सुरतं देवि ! भाजनं तु रसायने ॥ ५३ ॥

रसायन सेवन करने योग्य स्त्री—हे देवि ! उसके बाद क्रम से जिस स्त्री का भग पीपर के पत्ता के सदृश सुन्दर तथा समान हो वैसी स्त्री के साथ रसायन में सुरत सेवन करे ॥ ५३ ॥

निर्मांसश्चैव दीर्घश्च भगः शुष्कशिरास्तथा।
सदा दारिद्यकर्त्तारं वर्ज्जयेत्तं रसायने ॥ ५४ ॥

रसायन में सेवन के अयोग्य स्त्रीः—मांसरहित, दीर्घ, शुष्क शीर्षदण्ड वाला भग हमेशा दारिद्रय कारक है। अतः रसायन कार्य में ऐसी नारी का त्याग करना चाहिए ॥ ५४ ॥

अर्घ्येण तर्पयेन्नित्यं मत्स्यमांसं निवेदयेत्।
योगीन्द्रान् योगिनोर्मन्त्रैः पूजयित्वा क्षमापयेत्।
ककाराष्टकवर्गन्तु, कट्वम्ललवणं त्यजेत् ॥ ५५ ॥

योगीन्द्रों के पूजन का विधानः—योगीन्द्रों को अर्घ्य से तर्पण करे और मद्य एवं मांस निवेदन करे। इसके बाद योगिनी मन्त्रों से पूजा कर क्षमा की

याचना करे। ककाराष्ट[1] वर्ग, कटु, अम्ल तथा लवण रस प्रधान द्रव्यों को त्याग देना चाहिए ॥ ५५ ॥

अभ्रजीर्णपलैकेन व्याधिभिर्नाभिभूयते।
द्वितीये शुक्रवृद्धिः स्यात् तृतीये बलवान् भवेत् ॥ ५६ ॥
चतुर्थे पलितं हन्ति बलीं जयति पञ्चमे।
षष्ठे [2]श्रुतिधरो वाग्मी सप्तमे नेत्ररोगजित् ॥ ५७ ॥
अष्टमे तार्क्ष्यदृष्टिः स्यात् ब्रह्मायुर्ब्रह्मविक्रमः।
नवपलोपयोगेन सुरमेलापको भवेत् ॥ ५८ ॥
दशपलप्रयोगेण द्वितीयः शङ्करो भवेत् ॥ ५९ ॥
रसवीर्य्यस्य रक्षार्थं बलिं दद्याद्दिने दिने।
जपेन्मृत्युञ्जयं मन्त्रं रससिद्धिः प्रजायते ॥ ६० ॥

अभ्रकजीर्ण पारद भक्षण का फल :—अभ्रकजीर्ण पारद एक पल (५० ग्रा० भक्षण करने से मनुष्य रोग से आक्रान्त नहीं होता है। दो पल भक्षण करने पर शुक्र की वृद्धि होती है, तीन पल भक्षण करने पर बलवान् होता है चार पल भक्षण करने पर पलित (असमय में बाल पकना) रोग को नष्ट करता है, पाँच पल भक्षण करने पर बली (मुख में झूरी पड़ना) रोग को जीत लेता है, छः पल भक्षण करने से श्रावण मात्र से याद होने वाला तथा वक्ता होता है, सात पल भक्षण करने पर नेत्र रोग को जीत लेता है। आठ पल भक्षण करने पर गीध की तरह दृष्टि होती है और ब्रह्मा की आयु तथा ब्रह्मा का बल प्राप्त करता है, नव पल भक्षण करने पर देवताओं के समान हो जाता है, तथा दश पल प्रयोग करने से दूसरा शंकर हो जाता है। पारद के बल की रक्षा के लिए प्रतिदिन बलि-प्रदान करे और मृत्युजंय[3] मन्त्र का जप करे तो रस-सिद्धि हो जाती है ॥ ५६-६० ॥

समे तु विमले जीर्णे यो रसं भक्षयेन्नरः।
'दशवर्षसहस्राणि' स जीवेत् परमेश्वरि ! ॥ ६१ ॥
द्विगुणे विमले जीर्णे 'दशलक्षं' स जीवति।
त्रिगुणे विमले जीर्णे 'दशकोटिं' च जीवति ॥ ६२ ॥
जीर्णे चतुर्गुणे देवि ! रसः 'खेचरतां' नयेत्।
ततः पञ्चगुणे जीर्णे 'स्पर्शवेधी' महारसः ॥ ६३ ॥

---

१. ककाराष्टक—देखिए आगे इसी पटल का १२०वाँ श्लोक।

२. श्रुतमात्रस्य पद्यादेर्धारणकर्त्ता, श्रुतिधरः = श्रुतधरः, भावे प्रत्ययः।

३. मृत्युंजय मन्त्र—ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्भूभुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ।

'याद‍ृशं विमले जीर्णे ताद‍ृशं हेममाक्षिके ।
तत् फलं लभते देवि ! तस्य वीर्य्ये स जीवति ॥ ६४ ॥

विमलजीर्णपारद भक्षण का फल :—हे परमेश्वरि ! सम विमलजीर्ण पारद को जो मनुष्य भक्षण करता है वह दश हजार वर्ष तक जीवित रहता है द्विगुणविमलजीर्ण पारद भक्षण करने से दश लाख वर्ष जीवित रहता है । त्रिगुणविमलजीर्ण पारद भक्षण करने से दश करोड़ वर्ष जीवित रहता है । चतुर्गुण जीर्ण पारद भक्षण करने से 'स्पर्शवेधि'' होता है । जैसा विमल जीर्ण पारद भक्षण का फल होता है वही फल स्वर्णमाक्षिक जीर्ण पारद भक्षग करने से प्राप्त होता है, और उसी के बल के अनुसार जीवित रहता है ॥ ६१-६४ ॥

पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि वज्रभस्मरसायनम् ॥ ६५ ॥
प्रथमं जारयेत् सूते गन्धकं सुरवन्दिते ! ।
दापयेत्त्रिगुणं तीक्ष्णं समं हेम च सूतके ॥ ६६ ॥
तेनैव हेमजीर्णेन वज्ररत्नं तु लेपयेत् ।
बालवत्सपुरीषेण तद्वज्रं वेष्टयेत्ततः ॥ ६७ ॥
बद्ध्वा पोटलिकां तेन पुटपाकं तु दापयेत् ।
तत्क्षणाज्जायते भस्म शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ ६८ ॥

वज्रभस्मरसायन का निरूपण :—हे सुर वन्दिते ! पुनः दूसरे वज्र भस्म रसायन को कहता हूँ । पहले पारद में गन्धक का जारण करे । और पारद में तीन गुना तीक्ष्ण लोह तथा स्वर्ण समभाग मिलाना चाहिए । उसी हेमजीर्ण पारद से वज्ररत्न को लिप्त करे । इसके बाद बाल बछड़े के गोबर से उस वज्र को लपेटे और पोटली में बांधकर पुटपाक करे । इससे उसी समय शंख, कुन्द एवं चन्द्रमा सद‍ृश स्वच्छ भस्म हो जाता है ॥ ६६-६८ ॥

तद्वज्रभस्म सुभगे कारयेत् पिष्टिकासमम् ।
तत्सूतगोलकरजो गतदेहं विमर्दयेत् ॥ ६९ ॥
पुनस्तद्गोलकरजो बालवत्सपुरीषकैः ।
मूषालेपं तु तेनैव अर्द्धार्द्धेन तु कारयेत् ॥ ७० ॥
तद्वमेदन्धमूषायां मूर्च्छितं वज्रजारितम् ।
फूत्काराणां सहस्त्रेण भस्म तज्जायते क्षणात् ॥ ७१ ॥

---

१. विमलजीर्णस्य – सुवर्णमाक्षिकजीर्णेऽतिदेशः ।

अर्द्धार्द्धं प्राप्यते भस्म गोक्षीरसदृशं प्रिये ! ॥ ७२ ॥

हे सुभगे ! उस वज्र भस्म को पिष्ठिका के समान बनावें और उस सूत गोलक भस्म को मर्दन के द्वारा एक रस करे। पुनः उस गोलक रज को बाल बछड़े के गोबर से वेष्ठित करे और उसी के आधा भाग से मूषा लेप करे। इसके बाद मूषा में रखकर धमन करे। इस प्रकार मूर्च्छित एवं बज्र जारित पारद एक हजार फूंक से उसी समय भस्म हो जाता है। हे प्रिये ! गाय के दूध सदृश चौथाई भाग भस्म प्राप्त होता है ॥ ६९-७२ ॥

स्नेहे धृतं च यत्कल्कं कङ्गुणीतैलसंयुतम् ।
त्रिसप्ताहाद्वरारोहे कायशुद्धिस्तु जायते ॥ ७३ ॥

वज्र जीर्ण पारद के योग :—हे वरारोहे ! जो कल्क कंगुनी के तैल युक्त स्नेह में रक्खा गया है उससे तीन सप्ताह में काय शुद्धि हो जाती है ॥७३॥

तिलमात्रं वज्रभस्म हेमभस्म च तत्समम् ।
धमेद्धत्तूरसंलिप्तं बलीपलितनाशनम् ॥ ७४ ॥

तिलमाल वज्रभस्म, समभाग स्वर्ण भस्म धतूर के रस के साथ मर्दन कर धमन करे। यह वली-पलित को नष्ट करता है ॥ ७४ ॥

शुद्धहेम पलान्यष्टौ मृतसूतसमायुतम् ।
मर्दयेन्मध्यमाम्लेन गोलको भवति क्षणात् ॥ ७५ ॥
अर्द्धं च प्राप्यते भस्म गोक्षीरसदृशं प्रिये ! ॥ ७६ ॥

शुद्ध स्वर्ण भस्म आठ पल तथा पारद आठ पल मिलाकर मध्यम-अम्लवर्ग के साथ मर्दन करे, उसी समय गोलक हो जाता है। उसको धमन करने से हे प्रिये ! गाय के दूध के समान आधा भस्म प्राप्त हो जाता है ॥ ७५-७६ ॥

मृतवज्रस्य भागैकं गोलभागचतुष्टयम् ।
मर्दयेत् तप्तखल्लेन भस्मीभवति सूतकः ॥ ७७ ॥
मारयेद्भूधरे यन्त्रे सप्तसङ्कलिकाक्रमात् ।
तद्भस्म तु पुनः पश्चात् मध्यमाम्लेन मर्दयेत् ॥ ७८ ॥
पुटं दद्यात् प्रयत्नेन षष्ट्यधिकशतत्रयम् ।
तद्भस्म जायते देवि ! सिन्दूरारुणसन्निभम् ॥ ७९ ॥

वज्र भस्म एक भाग गोल चारभाग इन दोनों को तप्त खरल में मर्दन करे। इससे पारद भस्म हो जाता है। पुनः सप्त संकलिका क्रम से भूधर यन्त्र में मारण करे। पुनः उस भस्म को मध्यमाम्ल से मर्दन करे और तीन सौ साठ पुट दे। हे देवि ! वह भस्म सिन्दूर सदृश अरुण वर्ण का हो जाता है ॥ ७७-७९ ॥

तद्भस्म पलमात्रन्तु लिह्यान्मध्वाज्यसंयुतम् ।
लिह्यादेवं सप्तवारं क्षीराहारो जितेन्द्रियः ॥ ८० ॥
द्वितीये सप्तमे चैव भक्षयेच्च पलद्वयम् ।
अनया क्रमवृद्धया तु भक्षयेत् सप्तसप्तकम् ॥ ८१ ॥
तद्वृद्धया जायते सिद्धो दिव्यतेजा भवेन्नरः ।
'रुद्रायुषं' भवेत्तस्य खेचरत्वं न संशयः ॥ ८२ ॥
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां लोहान्यष्टौ च काञ्चनम् ॥ ८३ ॥

वज्र भस्म की मात्रा :—पूर्वोक्त वज्र भस्म को एक पल (५० ग्रा०) तक (प्रति दिन चौथाई रत्ती से आधा रत्ती तक) प्रति दिन मधु तथा घृत के साथ चाटे । इस प्रकार सात दिन तक चाटे और दूध का पान करे तथा जितेन्द्रिय होकर रहे । द्वितीय सप्तम में दो पल भक्षण करे । इस क्रम वृद्धि के अनुसार सात सप्तक भक्षण करे । अर्थात् तृतीय सप्तक में तीन पल, चतुर्थ सप्तक में चार पल, पञ्चसप्तक में पांच पल, षष्ट सप्तक में छःपल तथा सप्त सप्तक में सात पल भक्षण करे । इस वृद्धि क्रम से सेवन करने पर मनुष्य दिव्य तेज वाला सिद्ध हो जाता है तथा रुद्र की आयु प्राप्त करता है । खेचरत्व की सिद्धि होती है । इसमें सन्देह नहीं है । उसके मूत्र-पुरीष से आठों लोह स्वर्ण हो जाते हैं ॥ ८०-८३ ॥

तद्भस्मपलमेकं तु क्रामणेन समन्वितम् ।
द्रव्याद्द्वादशसाहस्र-पलमाने भुजङ्गमे ।
जायते कनकं दिव्यं देवाभरणभूषणम् ॥ ८४ ॥

वज्रनाग योग से स्वर्ण निर्माण :—पूर्वोक्त वज्र भस्म एक पल, क्रामण से युक्त द्रव्य बारह हजार पल नाग में मिलाकर धमन करने से देवताओं का सुन्दर आभूषण दिव्य स्वर्ण हो जाता है ॥ ७४ ॥

कान्तचूर्णपलान्यष्टौ पलान्यष्टौ रसस्य च ।
एकीकृत्याथ संमर्द्य बीजपूराम्लमर्दितम् ।
मर्दयेत्तप्तखल्लेन गोलको भवति क्षणात् ॥ ८५ ॥

कान्त लौह तथा पारद का योग निर्माण विधि :—कान्त लौह चूर्ण आठ पल तथा पारद आठ पल इन दोनों को एकत्र मर्दन कर विजोरा निम्बु के रस के साथ मर्दन करे । पुनः तप्त खरल में रखकर मर्दन करे । इससे तत्काल गोलक हो जाता है ॥ ८५ ॥

मृतवज्रस्य भागैकं गोलभागचतुष्टयम् ।
एकीकृत्याथ संमर्द्य भस्मीभवति सूतकः ॥ ८६ ॥

मारयेद्भूधरे यन्त्रे सप्तसङ्कलिकाक्रमात् ।
तद्भस्मभागमेकन्तु भागैकं गन्धकस्य च ।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ॥ ८७ ॥

मृत वज्र एक भाग तथा कान्तरसगोलक चार भाग इन दोनों का मर्दन करने (मर्दन कर धमन करने से) से पारद भस्म हो जाता है । मर्दित मृत वज्र गोलक को भूधर यन्त्र में सप्तसकलिका क्रम से मारण करे । वह भस्म एक भाग तथा गन्धक एक भाग इन दोनों को अन्धमूषा में रखकर धमन करने से तत्काल "खोट" हो जाता है ॥ ८६-८७ ॥

द्वात्रिंशन्मृतखोटस्य शुद्धहेम्नश्च विंशतिः ।
तारं ताम्रं व्योमसत्त्वं कान्तसत्त्वं चतुर्थकम् ।
एकैकं द्वादशांशाः स्युः सर्व्वमेकत्र कारयेत् ॥ ८८ ॥
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणात् ।
द्वात्रिंशन्मिलतः खोटान् सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत ॥ ८९ ॥
तत् खोटसूक्ष्मचूर्णं तु आरोटरससंयुतम् ।
मर्द्दयेन्मध्यमाम्लेन गोलको भवति क्षणात् ॥ ९० ॥

वज्रपारद गोलक निर्माण :—मृत खोटक बत्तीस भाग, शुद्ध स्वर्ण बीस भाग, रजत, ताम्र, अभ्रकसत्व तथा कान्तलौहसत्व प्रत्येक बारह २ भाग इन सबों को एकत्र मर्दन करे और अन्धमूषा में रखकर धमन करे । इससे तत्काल खोट हो जाता है । सम्मिलित खोट बारह भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे । उस सूक्ष्म खोट चूर्ण को "आरोट" (शुद्ध पारद) एक भाग में मिलाकर मध्यमाम्ल के साथ मर्दन करने से तत्काल गोलक हो जाता है ॥ ८८-९० ॥

गोलकस्य पले द्वे च मृतकान्तस्य तत्समम् ।
एकीकृत्याथ सम्मर्द्य मेघनादरसेन च ।
मुनिपुष्परसेनैव दिनमेकं च मर्द्दयेत् ॥ ९१ ॥
गुटिकाः कारयेद्देवि ! षष्ट्यधिकशतत्रयम् ॥ ९२ ॥
तत्रैकां गुटिकां सर्पिस्त्रिफलामधुसंयुताम् ।
भक्षयेद्वर्षमेकं तु ब्रह्मायुर्जायते नरः ॥ ९३ ॥
सर्वास्ता भक्षयेत् पश्चात् रुद्रायुः स भवेन्नरः ॥ ९४ ॥
अथैका धारिता वक्त्रे गुटिकामरसुन्दरि ! ।
हठाद्रोगाणि कृत्स्नानि पलितानि च नाशयेत् ॥ ९५ ॥

वज्र पारद गुटिका निर्माण विधि :—वज्र पारदादिगोलक दो पल तथा

मृत कान्त भस्म दो पल एकत्र मेघनाद (चौलाई) के रसके साथ मर्दन कर अगस्य के रस के साथ एक दिन तक मर्दन करे। इसके बाद तीनसौ साठ गुटिका बनावे। उसमें से एक २ गुटिका घृत, त्रिफला चूर्ण तथा शहद के साथ एक वर्ष भक्षण करे। इससे मनुष्य ब्रह्मा की आयु प्राप्त करता है। बाद में सभी गुटिका को भक्षण करे। इससे वह मनुष्य रुद्र की आयु प्राप्त करता है। हे अमर सुन्दरि ! उसमें से एक गुटिका मुख में धारण करने से हठ पूर्वक सभी रोगों तथा पलित रोग को नाश करती है ॥ ९१-९५ ॥

उपचारं प्रवक्ष्यामि वज्रसत्त्वरसायने ॥ ९६ ॥
वज्रबद्धस्तु यो देवि ! रसोऽयं वज्रतां नयेत्।
तेन बद्धास्तु ये देहास्ते देहा वज्ररूपिणः ॥ ९७ ॥

वज्रसत्वरसायन का उपचार :—हे देवि ! वज्र सत्वरसायन में उपचार कहता हूँ। बज्र बद्ध पारद वज्र सदृश दृढ़ बनाता है। उससे जो देह बद्ध होते हैं वे वज्र के समान मजबूत एवं चमकीले होते हैं ॥ ९६-९७ ॥

तिलमात्रं रसं देवि ! ब्रह्मायुर्दश जीवति।
यवमात्रं रसं देवि ! विष्णुकोटिं स जीवति ॥ ९८ ॥
गुञ्जामात्रं तु देवेशि ! महाकल्पायुषो भवेत्।
माषमात्रं वरारोहे ! मम तुल्यगुणो भवेत् ॥ ९९ ॥

हे देवि इस वज्रसत्वरसायन का तिल मात्र सेवन करने से दश ब्रह्मा की आयु पर्यन्त जीवित रहता है। हे देवि ! यवमात्र सेवन करने से करोड़ विष्णु की आयु पर्यन्त जीवित रहता है। हे देवेशि ! गुञ्जा मात्र सेवन करने से महाकल्प पर्यन्त जीवित रहता है और हे बरारोहे ! एक माशा सेवन करने से मेरे समान गुण वाला होता है ॥ ९८-९९ ॥

मन्त्रहीनेन सुभगे ! न स गम्यो भविष्यति।
न सिद्धिसाधनं तस्य जन्मकोटिशतैरपि ॥ १०० ॥
मूढचित्तो भ्रमत्येष कुलशासनवर्जितः ॥ १०१ ॥

मन्त्रहीनसाधक के द्वारा रस सिद्धि की अगम्यता :—हे सुभगे। मन्त्र हीन व्यक्ति के द्वारा वह रस गम्य (प्राप्य) नहीं होता है और करोड़ों जन्म में भी उसका सिद्धिसाधन नहीं होता। यह मूढ़ चित्त वाला कुलशासन (रस सिद्ध परम्परा) से रहित व्यर्थ भ्रमण करता है ॥ १००-१०१ ॥

तस्य विघ्नसहस्राणि कुर्वते देवदानवाः।
दैव्यश्चाकाशगामिन्यो भूचर्य्यश्च सुरेश्वरि ! ॥ १०२ ॥

स्वप्ने तं भजयित्वा[1] तु रेतोरक्ते हरन्ति ताः।
तेनैव रेतोमार्गेण हरन्ते भक्षितं रसम् ॥ १०३ ॥

सुरेश्वरि ! मन्त्रहीन साधक की सिद्धि में देव तथा दानव हजारों विघ्न करते हैं। आकाश में विचरण करने वाली तथा पृथ्वी पर परिभ्रमण करने वाली देवियाँ स्वप्न में उसके पास पहुँच कर वीर्य तथा रक्त को हरण कर लेती हैं और उसी वीर्य के द्वारा भक्षण किए हुए पारद को भी हरण कर लेती हैं ॥ १०२-१०३ ॥

भास्कराद्या ग्रहा देवि ! गर्ज्जन्ति निजरूपतः।
क्षत्रियस्य तु रूपेण देवा वै गर्ज्जयन्ति च ॥ १०४ ॥
पिशाचा वैश्यरूपेण शूद्ररूपेण राक्षसाः।
अन्ये मानुषरूपेण भजन्ते स्वपनान्तरे ॥ १०५ ॥
अस्थिमांसानि खादन्ति स्वप्नेषु सुरसुन्दरि !।
स्वप्नान्ते प्राप्यते भ्रान्तिः प्रायः पश्यति मानवः।
वज्रभस्म हरन्त्येव स्वप्नान्ते क्षोभयन्ति च ॥ १०६ ॥

रससिद्धि में विघ्नकारक ग्रह आदि :—हे देवि ! सूर्य आदि ग्रह अपने रूप को धारण कर गर्जन करते हैं। क्षत्रिय का रूप धारण कर देवगण गर्जन करते हैं। वैश्य का रूप धारण कर पिशाच तथा शूद्र रूप धारण कर राक्षस गरजते हैं। अन्य यक्ष गन्धर्वादि स्वप्न में मनुष्य का रूप धारण कर पास में पहुँच जाते हैं। हे सुन्दरि ! स्वप्न में अस्थि तथा मांस खाते हैं। मनुष्य स्वप्न के अन्त में भ्रान्ति प्राप्त करता है और प्रायः भ्रान्ति देखता है। ये सब स्वप्न में वज्र भस्म हरण कर लेते हैं और स्वप्न के अन्त में क्षुब्ध करते हैं ॥ १०४-१०६ ॥

भक्षिते हेमविमले पलायन्ते दिशो दश।
भूतप्रेतपिशाचश्च शाकिन्यो गुह्यकादयः ॥ १०७ ॥
वज्राणां मारणे ये तु लोहानां वा रसस्य तु।
वर्ज्जनीयाः प्रयत्नेन प्रयुक्तांस्तान् शृणु प्रिये ! ॥ १०८ ॥

भूत-प्रेत आदि का भागना :—स्वर्ण तथा विमल के भक्षण करने पर भूत पिशाच, शाकिनी तथा गुह्यक आदि दशो दिशा में भाग जाते हैं। वज्रों के मारण करने में तथा लोह एवं पारद के मारण करने में जो प्रयुक्त होते हैं

---

१. भजयित्वा=भक्त्वा—इत्यर्थः, प्रयोगः समाधेयः।

उनका त्याग देना चाहिए। उनके मारण में जो प्रयुक्त होते हैं उनको बताता हू सुनो ॥ १०७-१०८ ॥

तेषां युक्तिप्रकारास्तु प्रयुक्ता युक्तिदायकैः।
एवं वदन्ति भूताद्या भीषयन्ति स्म तं नरम् ॥ १०९ ॥
रञ्जको रागकारी स्यात् क्रामणः क्रामणे हितः।
बन्धका दृढ़काराश्च तथा पुष्टिकराः स्मृताः ॥ ११० ॥
शुक्रशोणितविण्मूत्रे विविधेन तु भक्षयेत्।
कुष्टव्याधिकरं तच्च नागवङ्गकलङ्कितम् ॥ १११ ॥

वज्र-आदि के मारण में युक्ति विशेष :—वज्र आदि के मारण में उपायविशेषज्ञों ने प्रयुक्त विशेष उपायों को इस प्रकार कहते हैं ऐसा भूतादिक उस मन्त्रहीन साधक को डराते हैं। रञ्जक उपाय राग करने वाला होता है, क्रामण उपाय क्रामण में हितकर है, बन्धक उपाय दृढ करने वाले तथा पुष्टिकारक होते हैं। शुक्र शोणित, मल तथा मूत्र विविध प्रकार से भक्षण कराये। वह नाग वंग से दूषित कुष्ट रोग को उत्पन्न करने वाला है ॥ १०९-१११ ॥

त्रिफलाजातिकङ्कोलं कर्पूररसमिश्रितम्।
खदिरं समतोयेन मर्दितं भक्षयेद्रसम् ॥ ११२ ॥

पारद भक्षण के विविध उपाय :—त्रिफला, जायफल तथा कंकोल एवं कर्पूर से मिश्रित खैर के समभाग जल के साथ मर्दित पारद का भक्षण कराये ॥ ११२ ॥

पयसा कटुकं घृष्ट्वा पथ्यं क्रामणमुत्तमम्।
स्तन्येन हेमघृष्टेन न खाद्योऽयं सुरेश्वरि! ॥ ११३ ॥

कुटकी को दूध के साथ घिस कर भक्षण कराना क्रामण में उत्तम पथ्य है। हे सुरेश्वरि! दूध के साथ घिसा हुए स्वर्णपारद नहीं खाना चाहिए ॥ ११३ ॥

अलम्बुषायस्कान्तस्य तालकस्य च भक्षणात्।
देहे क्रामति सूतेन्द्रो नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ११४ ॥

अलम्बुषा (रक्त लज्जालु) के साथ अयस्कान्त लौह तथा हरताल को भक्षण करने से पारद शरीर में क्रामण करता है। यहां पर विचार नहीं करना चाहिए ॥ ११४ ॥

अवश्यं क्रमते सूतः स्त्रीयोगे क्रामणं परम्।
ब्रह्मचर्य्येण वा योगी सदा सेवेत सूतकम् ॥ ११५ ॥
समाधिः कारणं तच्च क्रामणं परमं मतम् ॥ ११६ ॥

यह पारद अवश्य क्रमण करता है। स्त्री के संयोग में यह उत्तम क्रामण

है, अथवा योगी (योग साधना सम्पन्न) पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ पारद का सेवन करे। वह समाधि का कारण है और उत्तम क्रामण है ॥ ११५-११६ ॥

प्रभाते भक्षयेत् सूतं पथ्यं यामद्वयाधिके।
नो लङ्घयेत् त्रियामं तु मध्याह्ने न तु भोजयेत् ॥ ११७॥

पारद भक्षण का समय :--प्रातः काल पारद भक्षण करे। दोपहर बाद पथ्य सेवन करना उत्तम है। तीन पहर पथ्य में नहीं बिताना चाहिए और मध्याह्ने (दोपहर) में भोजन नहीं कराना चाहिए। अर्थात् दोपहर बाद ही भोजन करना उत्तम होता है ॥ ११७ ॥

अतिपानं चात्यशनमतिनिद्रातिजागरम्।
स्त्रीणामतिप्रसङ्गं चात्यध्वानं च विवर्ज्जयेत् ॥ ११८ ॥
अतिकोपं चातिहर्ष-मतिलौल्य-मतिस्पृहाम्।
शुष्कवादं जलक्रीडामतिचिन्तां च वर्ज्जयेत् ॥ ११९ ॥

पारद भक्षण में अपथ्य :--पारद सेवन काल में अत्यधिक मद्यपान, अत्यधिक भोजन, अत्यधिकशयनं तथा अत्यधिक जागरण, स्त्रियोंका अत्यधिक सेवन (स्त्री के साथ अत्यधिक मैथुन) तथा अत्यधिक पैदल चलना त्याग देना चाहिए ! अत्यन्त क्रोध, अत्यन्त प्रसन्नता, अत्यधिक लोलुपता, अधिक इच्छा निरर्थक वाद-बिवाद, जलक्रीड़ा, नौका विहार आदि तथा अत्यधिक चिन्ता को छोड़ देना चाहिए ॥ ११८-११९ ॥

"कूष्माण्डं कर्कटीं चैव कालिङ्गं कारवेल्लकम्।
कुसुम्भकञ्च कर्कोटं कदलीं काकमाचिकाम्।
ककाराष्टकमेतद्धि वर्ज्जयेद्रसभक्षकः ॥ १२० ॥"
पातकं च न कर्त्तव्यं पशुसङ्गं विवर्ज्जयेत्।
लिङ्गच्छायां न लङ्घेत नारीच्छायां तथैव च ॥ १२१ ॥
चतुःपथे न गन्तव्यं विण्मूत्रं न च लङ्घयेत्।
सुराणां निन्दनं देवि ! स्त्रीणां निन्दा च वर्ज्जयेत् ॥ १२२ ॥
सत्यं च वचनं ब्रूयादप्रियं न वदेद्वचः ॥ १२३ ॥

पारद भक्षणके समय ककाराष्टक आदि का निषध :--कुष्माण्ड (कोहड़ा), ककड़ी, कालिंग (तरबूजा), करैला, कुसुम्भ (बरें), ककोंट (खेखसा), केला तथा मकोय ये काकाराष्टक हैं। इनको पारद सेवन करने वाला त्याग दे। अर्थात् रस भक्षण काल में सेवन न करे। पातक न करे तथा पशु का संग भी (पशु योनि मैथुन) न करे। लिङ्गछाया का लंघन न करे तथा स्त्री की छाया भी न लांघे। चौराहे पर न जाय तथा मल-मूत्र को न लांघे। हे देवि !

देवताओं की निन्दा तथा स्त्रियों की निन्दा न करे। सर्वदा सत्य बोले। अप्रिय वचन न बोले ॥ १२०-१२३ ॥

कुलत्थमतसीतैलं तिलान् माषान् मसूरकान्।
कपोतकं काञ्जिकान्नं तक्रभक्तं च वर्ज्जयेत् ॥ १२४ ॥
कट्वम्लतीक्ष्णलवणं पिच्छिलं पित्तलं च यत्।
तिलतैलं दधि क्षीरं द्राक्षाकोलपरूषकम् ॥ १२५ ॥
वदरं चिरबिल्वञ्च सहकारं सुवर्चलम्।
नारङ्गं काञ्चनारञ्च शोभाञ्जनमपि त्यजेत् ॥ १२६ ॥

पारद सेवन काल में निषिद्ध भोजन :—कुलथी, अतसी का तैल, तिल, उड़द, मसूर, कबूतर, काञ्जीभात, तथा मट्ठाभात न भक्षण करे। कड़ुआ, खट्टा, तीखा, नमकीन, पिच्छिल तथा पित्तकारक पदार्थ, तिल तैल, दही, घी दूध, मुनक्का, अंकोलफल, फालसा, बैर, चिरविल्व (पूति करञ्ज), आम, सुवर्चल (सौवर्चल नमक), नारंगी, कांचनार तथा सहिजन त्याग दे ।१२४-१२६।

क्षुधार्त्तो नैव तिष्ठेत अजीर्णं नैव कारयेत्।
न वादजल्पनं कुर्य्यात् दिवास्वापं न कारयेत् ॥ १२७ ॥
नैवेद्यं नैव भुञ्जीत कर्पूरं वर्ज्जयेत् सदा।
कुङ्कुमालेपणं वर्ज्यं वर्ज्जयेदटनं क्षितौ ॥ १२८ ॥
नाग्निं स्पृशेत्तु पादेन न गा वा ब्राह्मणान्न च।
न हन्यात्तु कुमारीं च वातुलानपि वर्ज्जयेत् ॥ १२९ ॥
दिवारात्रं जपेन्मन्त्रं स्नातव्यं च दिने दिने ॥ १३० ॥

पारद सेवन काल में निषिद्धकर्म :—भूखा न रहे, अजीर्ण होने पर भोजन न करे, वाद-विवाद न करे तथा दिन में शयन न करे। नैवेद्य (देवार्पित प्रसाद) भक्षण न करे, कर्पूर को सर्वथा त्याग दे। कुंकुम (केशर) का लेप न करे तथा पृथ्वी पर अधिक न घूमें। पैर से अग्नि का स्पर्श न करे, गाय तथा ब्राह्मण को भी कभी पैर से स्पर्श न करे। कुमारी को न मारे वातकारक पदार्थों का त्याग कर दे। दिनरात रसांकुश मन्त्र का जप करे और प्रतिदिन स्नान है ॥ १२७-१३० ॥

हितञ्च मुद्गं दुग्धान्नं शाल्यन्नं च समाहितम्।
शाकं पौनर्नवं देवि! मेघनादं च वास्तुकम्।
सैन्धवं नागरं मुस्ता पद्ममूलानि भक्षयेत् ॥ १३१ ॥

पारद सेवन काल में पथ्य :—हे देवि! हितकारक मूंग, दुग्धान्न (खीर), सावधानी पूर्वक जड़हन धान का भात पुनर्नवा का शाक, मेघनाद

(चौंलाई), बथुआ, सेन्धानमक, सोंठ, नागरमोथा तथा कमलकन्द (भिसौड़ा) का शाक भक्षण करे ॥ १३१ ॥

ऊद्भिन्नचूचुका श्यामा सुरूपा सुभगा शुभा।
दिव्यतेजः समायुक्ता कामशक्तिविवर्द्धिता।
सन्निधाने च कर्त्तव्या वृद्धैश्च पारिरक्षिता ॥ १३२ ॥

पारद सेवन काल में ग्राह्य स्त्रियाँ :—उन्नतस्तन वाली, श्यामा, सुन्दर, सुभग, कल्याण करने वाली, दिव्य तेज से युक्त तथा कामशक्ति को बढ़ाने वाली तथा वृद्धों से सुरक्षित ललनाओं को समीप में रखना चाहिए।

कृष्णागौरातिवृद्धाङ्गीं कुशीलां न भजेत् क्वचित् ॥ १३३ ॥

पारद सेवन काल में अग्राह्य स्त्रियां :—काली, अधिक गौरांगी, अत्यन्त वृद्ध तथा कुशील स्त्रियों का सेवन कभी भी न करे ॥ १३३ ॥

तिलकं कुङ्कुमं गन्धं कस्तूर्य्यां च मनोहरम्।
सुरभीणि च पुष्पाणि सुखशय्येष्टभोजनम् ॥ १३४ ॥
सुखवासित्वमेवोक्तं क्रामणं सूतकस्य तु।
आत्मज्ञानकथां पूजां शिवस्य तु विशेषतः ॥ १३५ ॥
एतांस्तु समयान् भद्रे न लङ्घेद्रसभक्षणे।
लङ्घनाद्विविधं लक्ष्यं लक्षणं तस्य कथ्यते ॥ १३६ ॥

पारद सेवन काल में सेवन करने योग्य पदार्थ :—तिलक लगाना, केशर का चन्दन लगाना, गंध, कस्तूरी का मनोहर लेप, सुगन्धित पुष्पों का गन्ध सेवन, सुन्दर शय्या पर शयन, अभीष्ट भोजन, सुखपूर्वक रहना ये सब पारद को क्रामण करने वाले कहे गये हैं। आत्म-ज्ञान की कथा तथा विशेष कर शिव का पूजन रस क्रामण कारक होते हैं। हे भद्रे ! रस भक्षण काल में इन समयों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। लंघन करने से अनेक प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं उनको कहता हूँ ॥ १३४-१३६ ॥

रसराजे त्वजीर्णे तु प्रत्ययोऽयं भवेत् प्रिये।
मूर्च्छा शोको भ्रमः कम्पः छर्दिर्मोहो ज्वरस्तथा ॥ १३७ ॥
हिक्कावेपथुशूलानि निद्रालास्यमरोचकम्।
लिङ्गस्तम्भो ह्यतीसारः कासश्वासावजृम्भिकाः ॥ १३८ ॥
कर्णास्यचक्षुःकुक्षौ च वृषणोदरमूर्द्धनि।
मेढ्रे दाहोऽग्निमान्द्यञ्च जातः सर्वाङ्गसंशयः ॥ १३९ ॥
अन्यांश्चैव महाव्याधीन् रसाजीर्णे तु लक्षयेत् ॥ १४० ॥

रसाजीर्ण होने पर अनेक उपद्रव:—हे प्रिये ! पारद अजीर्ण होवे पर निम्न-लिखित लक्षण होते हैं। मूर्च्छा, शोक, भ्रम, कम्प, वमन, मोह, ज्वर, हिचकी, कम्पन, शूल, निद्रा, आलस्य, अरोचक, लिङ्गस्तम्भ, अतिसार, कास, श्वास, जमुहाई, कान, आँख, पेट, अण्डकोष, उदर, शिर तथा लिंग में दाह, अग्निमान्द्य तथा सर्वाङ्ग में रोग होता है। इनके अतिरिक्त अन्य महारोग हो जाते हैं॥ १३७-१४०॥

काञ्जिकं सर्जिकाक्षारं कारवल्लीरसप्लुतम्।
गोमूत्रसैन्धवयुतं तस्य संक्रामणं पिबेत्॥ १४१॥
मोक्षकस्य रसं देवि! राजकोषातकीरसम्।
सिन्धुकं कृष्णगोमूत्रं कारवल्लीरसप्लुतम्।
सौवर्च्चलसमोपेतं रसाजीर्णे पिबेन्नरः॥ १४२॥
रसाजीर्णे न जीवेत्तु म्रियते नाऽत्र संशयः।
रसायने सुजीर्णे तु तेन सर्वं विधीयते॥ १४३॥

रसाजीर्ण होने पर सामान्य उपक्रम :—कांजी, सज्जीखार, करेला का रस, गोमूत्र तथा सेन्धानमक के साथ रसाजीर्ण उपद्रवों का क्रामण पान करे। हे देवि ! मोक्षक (पारला या मोखा) का रस, राजकोषातकी (पीली तरोई) का रस, सेन्धानमक काली, गाय का मूत्र, करेला का रस तथा सौवर्चल नमक मिलाकर मनुष्य रसाजीर्ण में पान करे। रसाजीर्ण होने पर मनुष्य जीवित नहीं रहता मर जाता है इसमें सन्देह नहीं है॥ रसायन के अच्छी तरह परिपक्व हो जाने पर वह सब कुछ कर सकता है॥ १४१-१४३॥

यदा सुप्तस्तदङ्गं च स्त्रीस्तनेनैव घर्षयेत्।
वामेन मर्द्दयेद्देवं सूतः क्रामति निर्व्यथः॥ १४४॥

रस सिद्ध होने पर कर्तव्य :—रस सिद्ध हो जाने पर यदि अंग सुप्त हो गया हो तो स्त्री के स्तन से घर्षण करे तथा सुन्दर स्त्री से मर्दन कराये। इस प्रकार पारद व्यथा रहित क्रामण करता है॥ १४४॥

निवाते निर्जने स्थाने भूगृहे निरुपद्रवे।
शीतातपविनिर्मुक्तः पथ्याशी लघुभोजकः।
यथोक्तदिवसैः सिद्धिं प्राप्नुयान्नात्र संशयः॥ १४५॥
सर्वाहारेण दिवसैर्द्विगुणैः सिद्धिमाप्नुयात्।
सेवनाच्छीतवाताभ्यां त्रिगुणैर्दिवसैः क्रमात्।
अतिमार्गस्य धर्म्मैश्च दिवसैस्तु चतुर्गुणैः॥ १४६॥

रस सिद्धि का समय निरूपण :—वात रहित निर्जन स्थान में निरुपद्रव मिट्टी के घर में शीत तथा धूप को सहन करने वाला, पथ्य सेवन करने वाला, लघु भोजी, बताये गये दिनों में सिद्धि प्राप्त करता है। साधक सभी प्रकार के आहार नियम आदि सेवन करने से दुगुने दिनों में सिद्धि प्राप्त करता है।

शीत तथा धूप को सेवन करने वाला क्रमशः तीन गुने समयों में सिद्धि प्राप्त करता है। पूर्वोक्त नियमों को अतिक्रमण करने वाले साधक को चौगुने समय में सिद्धि प्राप्त होती है।। १४५-१४६ ।।

तत्र वेधं प्रवक्ष्यामि देहसिद्धिकपूर्वकम्।
तव स्नेहेन देवेशि! प्रोक्तमेव रसायनम् ।। १४७ ।।
त्वग्वेधः प्रथमं देवि! मांसवेधो द्वितीयकः।
तृतीयो रक्तवेधस्तु चतुर्थश्चास्थिवेधकः ।। १४८ ।।
पञ्चमो मज्जवेधः स्यात्, नाडीवेधस्तु षष्ठकः।
सप्तमो धातुवेधश्च, अष्टमः कवचस्य तु ।। १४९ ।।
त्वचावेधेन देवेशि! पन्नगः कुटिलो भवेत्।
मांसवेधेन सुभगे कुटिलः काञ्चनं भवेत् ।। १५० ।।
अस्थिवेधेन देवेशि! तीक्ष्णं कनकतां व्रजेत्।
मज्जवेधो वरारोहे! लोहान्यष्टौ च वेधयेत् ।। १५१ ।।
कवचस्य तु वेधेन मृन्मये काञ्चनं भवेत्।
वेधे तु हेमविमले मज्ञो हेम प्रजायते ।। १५२ ।।
तारे मांसं सुरेशानि! जीर्णसूतश्च वेधयेत्।

देह सिद्ध द्वारा वेध का निरूपण :—रस सिद्धि में देहसिद्धपूर्वक रस सिद्धि को कहता हूँ। हे देविशि! तुम्हारे स्नेह से ही रसायन को कहा हूँ। हे देवि! पहला त्वग् वेध, दूसरा मांस बेध, तीसरा रक्त वेध, चौथा अस्थि वेध, पांचवा मज्ज वेध, छठा नाड़ी वेध, सातवाँ धातु वेध, आठवाँ कवच वेधक है। हे देविशि! त्वचा वेध से नागवंग होता है। हे सुभगे! मांस वेध से वंग स्वर्ण होता है। हे देवेशि! अस्थि वेध से तीक्ष्ण लौह कनक होता है। हे वरारोहे! मज्जबेध आठों लोहों का वेध करता है। कवच के वेध से मिट्टी में कांचन हो जाता है। मज्जा से हेमविमल में वेध करने से स्वर्ण हो जाता है। हे सुरेशानि! रजत में मांस तथा जीर्ण पारद बेध करता है ।।१४७-१५२½ ।।

अलके विमले ताप्ये तीक्ष्णे तारे च भास्करे ।। १५३ ।।
क्रामणे तु भवेत्तक्रं शर्करा माक्षिकं तथा।
कपिलाकृष्णगोतक्रं तत्तु देवि! रसायने ।। १५४ ।।

अलक (हरताल), विमल, माक्षिक, तीक्ष्णलोह, रजत, ताम्र इन सबों के क्रामण में तक्र शर्करा तथा माक्षिक समर्थ होता है। हे देवि ! कपिला कृष्णा गाय का तक्र रसायन में प्रयोग होता है ॥ १५३-१५४ ॥

सात्त्विकं गव्यतक्रं तु राजसं सारसोद्भवम्।
तामसं माहिषं तक्रं देयं नैव रसायने ॥ १५५ ॥

तक्र का सात्विक-आदि वर्णन :—गाय का तक्र (मट्ठा) सात्त्विक, सारस का तक्र राजस तथा भैंस का तक्र तामस होता है। भैंस के तक्र को रसायन कार्य में नहीं देना चाहिए ॥ १५५ ॥

आर्द्रकस्य रसो देवि ! तथा पूगफलानि च।
मर्द्दनं नवनीतेन रसस्य क्रामणं परम् ॥ १५६ ॥

हे देवि ! अदरक का रस तथा सुपारी का फल मक्खन के साथ मर्दन किया हुआ उत्तम क्रामण होता है ॥ १५६ ॥

अधमं शाकमूलोत्थं मध्यमं फलमूलजम्।
उत्तमं देवदेवेशि ! रसकं तु रसायने ॥ १५७ ॥

हे देव देवेशि ! रसावन कर्म में शाक मूल के कल्क से क्रामण अधम, फल मूल के कल्क से क्रामण मध्यम तथा रसक (खर्पर) से क्रामण उत्तम होता है ॥ १५७ ॥

तीक्ष्णवेधेन नीलाभः ताम्रेणारुणसंप्रभः।
रजतेनेन्दुसंकाशो हेम्ना काञ्चनसन्निभः ॥ १५८ ॥
धूमावलोकी वक्त्रस्थो मासात् खेचरतां नयेत्।
स्पर्शवेधी तु वक्त्रस्थो द्विमासात् सिद्धिदायकः ॥ १५९ ॥
शतकोटिस्त्रिभिर्मासैः चतुर्भिर्दशकोटिकः।
पञ्चभिः पञ्चकोटिश्च षड्भिः स्यात् कोटिवेधकः ॥ १६० ॥

वेध के अनुसार पारद का वर्णन :—पारद तीक्ष्ण लौह वेध से नील वर्ण का, ताम्र वेध से अरुण वर्ण का, रजत वेध से चन्द्र वर्ण का तथा स्वर्ण से वेध होने पर स्वर्ण वर्ण का होता है। धूमावलोकी पारद एक मास तक मुख में रखने पर खेचरता को प्राप्त कराता है। स्पर्श वेधी पारद दो माह में सिद्धि दायक है। तीन माह में शत कोटि वेधक, चार माह में दशकोटि वेधक, पांच माह में पञ्चकोटिवेधक तथा छः माह में कोटिवेधक पारद सिद्धि देने वाला होता है ॥ १५८-१६० ॥

एवं क्रमेण कुरुते शरीरमजरामरम्।
अणिमादिगुणैश्वर्य्यमाज्ञासिद्धिः प्रजायते ॥ १६१ ॥

सप्तभिर्लक्षवेधी स्यादष्टाभिश्चायुतं पुनः ।
सहस्रं नवभिर्मासैर्दशमासैः शतं पुनः ॥ १६२ ॥

इसी क्रम से शरीर को अजर-अमर बनाता है। अग्नि आदि गुणैश्वर्य प्राप्त होने पर आज्ञा सिद्धि हो जाती है। सात माह में लक्षवेधी, आठ माह में अयुत वेधी, नव माह में सहस्र वेधी तथा दशमाह में शत वेधी पारद सिद्धि दायक होता है ॥ १५१-१६२ ॥

तस्य मूत्रपुरीषैस्तु श्लेष्मणाऽङ्गमलैस्तथा ।
लेपाद्धेमत्वमायान्ति पाषाणादानि भूतले ॥ १६३ ॥
चतुःषष्ठ्यंशतो वेधो मासैकादशवेधकः ।
द्वात्रिंशांशकवेधी तु वर्षाद्देहं तु वेधयेत् ॥ १६४ ॥

उस पुरुष के मूत्र, पुरीष, कफ तथा शरीरावयवों के मल से लेप करने पर पृथ्वी पर पाषाण-आदि धातु स्वर्ण हो जाते हैं। चौसठ अंश से वेध तथा दश वेधक पारद ग्यारह मास में सिद्धिदायक होता है। बत्तीसवाँ अंश वेधी पारद एक वर्ष में देह को वेध करता है ॥ १६३-१६४ ॥

कुञ्चिताग्रास्तु यत्केशा या श्यामा पद्मलोचना ।
विस्तीर्णं जघनं यस्याः सङ्कीर्णं हृदयं भवेत् ॥ १६५ ॥
कृष्णपक्षे भवेद्यस्या युवत्याः पुष्पदर्शनम् ।
कामिनी सा समाख्याता उत्तमा च रसायने ॥ १६५ ॥
आलिङ्गने स्पर्शने च मैथुनालापयोरपि ।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो बलीपलितवर्जितः ॥ १६७ ॥
नासौ छिद्येत शस्त्रैश्च पावकेन न दह्यते ।
वायुवेगो महातेजाः कामदेव इवापरः ॥ १६८ ॥
इच्छया जायते दृश्यो ह्यदृश्यश्चैव जायते ।
तस्य संस्पर्शमात्रेण सर्वलोहानि काञ्चनम् ॥ १६९ ॥
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टस्थावरजङ्गमे ।
देवा यत्र विलीयन्ते सिद्धस्तत्रैव लीयते ॥ १७० ॥
इदं रहस्यं परमं मया प्रोक्तं सुरेश्वरि ! ॥ १७१ ॥
साधुसज्जनसारज्ञा रसजीर्णक्रियापराः ।
रसवादीति सम्प्रोक्ता इतरे द्वेषवादिनः ॥ १७२ ॥

रसायन के योग्य स्त्रियां तथा उनके साथ संगम का फल :—जिसके बाल घुघुराले हों, जो श्याम वर्ण की तथा कमल के समान नेत्र वाली हो, जिसके जघन

विस्तृत तथा हृदय संकोर्ण हो। जिस युवती का पुष्प दर्शन कृष्ण पक्ष में होता हो वह रसायन कार्य में उत्तम कामिनी कही गई है। उसके साथ आलिंगन, स्पर्शन, मैथुन तथा वार्तालाप करने पर साधक सभी रोग से मुक्त तथा वलि-पलित से रहित हो जाता है। वह शस्त्र के द्वारा छेदा नहीं जाता तथा अग्नि के द्वारा जलाया नहीं जाता। वह वायु सदृश वेग वाला, महान् तेजस्वी, दूसरे कामदेव के समान होता है। वह अपनी इच्छाशक्ति से दृश्य तथा अदृश्य होता है। उसके स्पर्श मात्र से सभी लोह स्वर्ण हो जाते हैं। उस भयंकर समुद्र जिसमें सभी स्थावर-जंगम नष्ट हो जाते हैं तथा जिसमें सभी देवता विलीन होते हैं वहीं पर सिद्ध भी विलीन होता है। हे सुरेश्वरी! इस उत्तम रहस्य को मैंने तुमसे कहा है। साधु एवं सज्जन के तत्त्व को जानने वाले पारद जारण क्रिया में प्रवीण रसवादी कहे जाते हैं। अन्य दूसरे द्वेषवादी हैं ॥ १६५-१७३ ॥

"पुनरन्यां प्रवक्ष्यामि गुटिकां रसदुर्ल्लभाम् ॥ १७३ ॥

वज्राङ्गसुन्दरी रस गुटिका को निर्माणविधि :—पुनः दूसरी दुर्लभ पारद की गुटिका का कहता हूँ ॥ १७३ ॥

वङ्गसीसकशुल्वाभ्रहेमतारसमन्वितः ।
वज्रायसादिभिर्युक्तः क्रियते वादिकैः रसः ॥ १७४ ॥
सर्वांस्तानेकतः कृत्वा मूषामध्ये स्थितान् धमेत् ।
गुटिका जायते दिव्या नाम्ना वज्राङ्गसुन्दरी ॥ १७५ ॥

रस साधक पुरुष वंग, सीसा, ताम्र, अभ्रक, स्वर्ण, रजत, वज्र तथा लोह आदि से युक्त पारद को ग्रहण करे। उन सबों को एकत्र लेकर मूषा यन्त्र में रख कर धमन करे। धमन करने से दिव्य वज्राङ्ग सुन्दरी नामक गुटिका तैयार हो जाती है ॥ १७३-१७५ ॥

मुखस्था सिद्धिदा प्रोक्ता जरामृत्युविनाशिनी ॥ १७६ ॥
सङ्ग्रामे विजयी वीरो वज्रदेहो महाबलः ।
सर्वलोकप्रियो नित्यं नारीणां सुभगस्तथा ॥ १७७ ॥

वज्राङ्गसुन्दरी गुटिका को मुख में धारण करने का फल :—यह गुटिका मुख में धारण करने से सिद्धि को देने वाली तथा जरा-मृत्यु को नाश करने वाली है। वह पुरुष संग्राम में विजयी, वीर, वज्र सदृश दृढ़ शरीर वाला, महान् बलवान्, सभी लोगों का प्रिय तथा नित्य ही नारियों के लिये सुन्दर होता है ॥ १७६-१७७ ॥

वज्रव्योमजसत्त्वकं सकनकं चन्द्रं रविं कान्तकं,
नागं वङ्गमथायसं दृढतरं सूतं कृतं तत्समम् ।
वक्त्रस्थं रसगोलकं रतिकरं सर्वार्थतः तापहं,
वर्षैकेन निहन्ति दोषनिचयं कल्पायुषो[1] जायते ॥ १७८ ॥

अनेक प्रकार की रसगुटिका की निर्माणविधि :—वज्र, अभ्रकसत्व, स्वर्ण, रजत, ताम्र, कान्तलोह, नाग, वंग, लौह तथा पारद समभाग इन सबों को एकत्र मर्दन कर दृढ़ गोलक बना ले। वह गोलक मुख में रखने से स्त्री-संगम में रति प्रदान करने वाला, सभी प्रकार के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला ताप को दूर करने वाला तथा एक वर्ष में सभी दोषों को नष्ट करता है और कल्प पर्यन्त आयु युक्त हो जाता है ॥ १७८ ॥

पूर्वसिद्धरसे देवि ! पादांशं हेम योजयेत् ।
मृतवज्रपलांशेन व्योमसत्त्वं प्रयोजयेत् ॥ १७९ ॥
क्षीरकञ्चुकितोयेन सुरदालीरसेन[2] च ।
विधिना मर्दयित्वा तु नष्टपिष्टं तु कारयेत् ॥ १८० ॥
कान्तचूर्णत्रुटिं दत्त्वा मूकमूषागतं धमेत् ।
गुटिका जायते दिव्या वक्त्रस्था सर्वसिद्धिदा ॥ १८१ ॥

सर्व सिद्धिदा गुटिका :—हे देवि ! पूर्वोक्त सिद्ध रस में चौथाई भाग स्वर्ण मिला दे, वज्र भस्म एक पल के साथ अभ्रक सत्व मिला दे। इसके बाद क्षीर कञ्चुकी तथा देवदाली (बन्दाल) के रस के साथ विधिपूर्वक मर्दन कर नष्ट पिष्ट (सूक्ष्म) बनाये और कान्त चूर्ण एक त्रुटि मिलाकर मूकमूषा यन्त्र में रखकर धमन करे। यह दिव्य गुटिका हो जाती है। यह मुख में रखने पर सभी सिद्धियों को देने वाली है ॥ १७९-१८१ ॥

सुभगं माक्षिकं चैव वज्रमभ्रकमेव च ।
हेम शुल्वं तथा तारं समभागानि कारयेत् ।
वज्रबद्धा तु गुटिका वक्त्रस्था सर्वसिद्धिदा ॥ १८२ ॥

सुभग (टङ्कण), माक्षिक, वज्र, अभ्रक, स्वर्ण, ताम्र तथा रजत इन सबों को एकत्र कर वज्र सदृश बद्ध गुटिका बनावे। यह मुख में रखने पर सभी सिद्धियों को देने वाली है ॥ १८२ ॥

भ्रामकं माक्षिकं चैव लोहत्रयसमन्वितम् ।

१. कल्पमायुर्यस्य बहुव्रीहो, समासान्तः शिवोक्तत्वात् ।
२. सुरदाली = देवदाली ।

शक्तिबीजसमायुक्तं बीजत्रयसमन्वितम् ॥ १८३ ॥
त्रिदण्डीमर्दितं सूतमेकीकृत्य च गोलकम् ।
अन्धमूषागतं ध्मातं समावर्त्तां तु कारयेत् ॥ १८४ ॥
पूजां कृत्वा क्षिपेद् वक्त्रे षण्मासात् स भवेत् प्रिये ! ।
अभयः सर्वशत्रूणां वज्रकायो महाबलः ॥ १८५ ॥

भ्रामक (कान्त पाषाण लौह), माक्षिक, तीनों लौह (कान्त, तीक्ष्ण, अयस), शक्ति बीज तथा तीनों बीज (स्वर्णबीज ताम्रबीज रजत बीज) से युक्त पारद को त्रिदण्डी (त्रिदण्डी नामक लता) के रस के साथ मर्दन कर एकत्र गोलक बनाये। इसके बाद अन्ध मूषा में रखकर धमन एवं समवर्त कराये। तदनन्तर इसकी पूजा कर मुख में रक्खे। हे प्रिये ! वह छः मास में शत्रुओं से अभय, वज्र सदृश शरीर वाला महान् बलवान् हो जाता है ॥ १८३-१८५ ॥

नन्दिकेशकुमाराद्या भक्ष्यमाणं हरन्ति ये।
नष्टच्छाया न दृश्यन्ते हस्ते ददति भस्म च ॥ १८६ ॥
ह्रियमाणं रसं तैस्तु मूढबुद्धिर्न पश्यति।
कथयेत् सर्वजन्तूनां न मे सिद्धी रसायने ॥ १८७ ॥
मनसा रससिद्धिस्तु तथा क्लेशो मया कृतः।
मया कृता द्रव्यहानि दुर्धिया मूढचेतसा ॥ १८८ ॥

रस शास्त्र विहीन साधक की निन्दा :—नन्दिकेश कुमार आदिक गण भक्षण किये हुए रस को हरण कर लेते हैं, नष्ट छाया होने के कारण दिखाई नहीं देते तथा हाथ में भस्म देते हैं, उनको रसशास्त्रज्ञान से रहित मूर्ख बुद्धि वाला साधक नहीं देखता है। वह सभी लोगों से कहता फिरता है कि रसायन में मेरी सिद्धि नहीं हुई। मैंने मन से रस सिद्धि किया और बहुत कष्ट उठाया। मैं मूर्ख बुद्धिवाला एवं दुष्ट चित्त वाला बहुत धन को नष्ट कर दिया ॥ १८६-१८८ ॥

ईदृशं नैव जानाति विधिहीनं मया कृतम्।
पापिष्ठो दूषयेच्छास्त्रमात्मकर्म्म न विदन्ति ॥ १८९ ॥
विधिहीनो रसो देवि ! नैवे सिध्येत् कदाचन।
शास्त्रहीनस्य देवेशि ! नैव सिद्धिर्वरानने ॥ १९० ॥
अशुभैः कर्म्मभिः सर्वैः सम्प्रदायो न सिध्यति।
न सिध्येद्रसशास्त्रे तु न सिध्येत्तादृशो गुरुः ॥ १९१ ॥

न प्रापेत्तादृशीमाज्ञां नैव ज्ञानं च तादृशम् ।
न प्रापेत्तादृशीं नारीमेकचित्तां वरानने ! ॥ १९२ ॥
न प्रापेद्रसवन्तं च तां च देवीं रसाङ्कुशीम् ।
यस्य तुष्टः शिवः साक्षात्तस्य सिद्धी रसायने ॥ १९३ ॥

वह रसानभिज्ञ यह नहीं समझता है कि मैंने विधि हीन रस कर्म किया है। वह पापी शास्त्र को दूषित करता है अपने कर्म का खोज नहीं करता है। हे देवि ! विधि रहित रस कर्म कभी भी सिद्ध नहीं होता। हे देवेशि ! हे वरानने ! शास्त्र ज्ञानहीन साधक को रस सिद्धि नहीं ही होती है। सभी अशुभ कर्मों से सम्प्रदाय (रस परम्परा) को सिद्धि नहीं होती। रस शास्त्र में उसकी सिद्धि नहीं होती है और न उस प्रकार का गुरु ही सिद्ध होता है। वह उस प्रकार की आज्ञा को नहीं प्राप्त करता और उस प्रकार का उसको ज्ञान नहीं होता। हे वरानने ! एक चित्त वाली इस प्रकार की नारी नहीं प्राप्त होती है। उस प्रकार का रस वाला तथा रसाङ्कुशी देवी नहीं प्राप्त होती जैसा कि रस शास्त्र में विधान किया गया है। जिसके ऊपर साक्षात् शंकर प्रसन्न होते हैं उसको रसायन में सिद्धि होती है ॥ १८९-१९३ ॥

"पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि गोलबन्धनमुत्तमम् ।
येन भक्षितमात्रेण जायते ह्यजरामरः ॥ १९४ ॥

दूसरे गोल बन्ध का निर्माण विधि :—दूसरे उत्तम गोल बन्ध को कहता हूँ। जिसके भक्षण करने मात्र से ही मनुष्य अजर-अमर हो जाता है ॥ १९४ ॥

गन्धाभ्रकान्तसहितं भानुखर्परकाञ्चनम् ।
समं तीक्ष्णं रसेन्द्रस्य बद्धं कृत्वा तु गोलकम् ॥ १९५ ॥
रसेन्द्रं पञ्चपलिकं समभागेन मेलयेत् ।
सप्तजम्बीरतोयेन मर्दयेद् गोलकस्य च ॥ १९६ ॥
छायाविशुष्कं गोलं तु शशिभावं करोति तत् ।
एतत् सर्वं विमर्द्यं तु सूतकं गोलकस्य च ॥ १९७ ॥
तत् करीषाग्निना भूमौ मृदुस्वेदं तु कारयेत् ।
वक्त्रे स्थितमिदं गोलं चामरताप्रदायकम् ॥ १९८ ॥
सूतगोलकजातस्य फलं वक्तुं न शक्यते ।
रसायने वर्णकरो रससिद्धिप्रदायकः ॥ १९९ ॥

गन्धक, कान्त लोह, ताम्र, खर्पर, स्वर्ण, तथा तीक्ष्ण लोह इन सबों को पारद के साथ बद्ध गोलक बनावे। पारद पांच पल समभाग पूर्वोक्त द्रव्यों के

साथ मिला दे। गोलक को जम्बीरी निम्बु के साथ सात बार मर्दन करे और छाया में सुखाकर गोलक को चन्द्रमा की तरह बना लें। गोलक का यह सब तथा पारद को मर्दन करे और उसको उपलों के आग से जमोन में मृदु स्वेदन कराये। यह गोलक मुख में रखने से अमरता को प्रदान करता है। पारद गोलक का फल कहा नहीं जा सकता। यह रसायन में वर्ण करने वाला तथा रस सिद्धि देने वाला है ॥ १९५-१९९ ॥

सुगन्धलेपताम्बूल-कस्तूरीकुङ्कुमागुरु।
श्रीखण्डं मृगनाभिश्च कङ्कोलं जातिकाफलम्।
अन्यानि च सुगन्धीनि स्नाने पाने प्रदापयेत् ॥ २०० ॥

रसायन में स्नान-पानादि के लिये द्रव्य :—सुगन्धलेप, ताम्बूल, कस्तूरी, कुङ्कुम (केशर), अगरु, श्रीखण्ड चन्दन, मृगनाभि, कङ्कोल, जायफल तथा अन्य सुगन्धी द्रव्यों को स्नान के लिये तथा पीने के लिये प्रयोग करना चाहिए ॥ २०० ॥

[कुञ्चिताग्रास्तु यत्केशा या श्यामा पद्मलोचना।
विस्तीर्णं जघनं यस्याः सङ्कीर्णं हृदयं भवेत् ॥ २०१ ॥
कृष्णपक्षे भवेद्यस्या युवत्याः पुष्पदर्शनम्।
कामिनी सा समाख्याता उत्तमा च रसायने ॥ २०२ ॥
आलिङ्गने स्पर्शने च मैथुनालापयोरपि।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो वलीपलितवर्जितः ॥ २०३ ॥]

[जिसके केश घुघुराले हों, जो श्यामा पद्म को तरह लोचन वाली हो, जिसके जघन विस्तीर्ण तथा हृदय संकुचित हो, जिस युवती का पुष्प दर्शन कृष्ण पक्ष में होता हो वह रसायन कार्य में उत्तम कामिनी कही गई है। उसके साथ अलिङ्गन, स्पर्शन, मैथुन तथा वार्तालाप करने पर मनुष्य सभी रोगों से मुक्त एवं वलि-पलित से रहित हो जाता है ॥ २०१-२०३ ॥]

शतरोगं विनश्येत मुखमध्ये धृतेषु च।
यवतुल्यप्रमाणेषु जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ २०४ ॥

मुख में रक्खे हुए बद्ध गोलक का फल :—बद्ध गोलक को मुख में रखने से सैंकड़ों रोग नष्ट हो जाते हैं। यव के बराबर मात्रा में सेवन करने से तीन सौ वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है ॥ २०४ ॥

अथ षोडशवर्षाणि षोडशानि सुरेश्वरि ! ।
धृतानि मुखमध्ये तु तेषु वक्ष्यामि ये गुणाः ॥ २०५ ॥

सोलह वर्ष तक गोलक मुखमें रखने का फल :—हे सुरेश्वरि ! इस सोलह गोलकों को सोलह वर्ष तक मुख में रखने के गुणों को कहता हूँ ॥ २०५ ॥

[नासौ छिद्येत शस्त्रैश्च पावकेन न दह्यते ।
वायुवेगो महातेजाः कामदेव इवापरः ॥ २०६ ॥
इच्छया जायते दृश्यो ह्यदृश्यश्चैव जायते ।
तस्य संस्पर्शमात्रेण सर्वलोहानि काञ्चनम् ॥ २०७ ॥]

[जो पूर्वोक्त गोलक को सोलह वर्ष तक अपने मुख में रखता है वह शास्त्र के द्वारा छेदन नहीं किया जा सकता तथा अग्नि के द्वारा जालाया नहीं जा सकता है, वायु सदृश वेगवाला, महान् तेजस्वी दूसरे कामदेव के समान होता है । अपनी इच्छा शक्ति के अनुसार दृश्य तथा अदृश्य हो जाता है । उसके स्पर्श मात्र से सभी लोह काञ्चन हो जाते हैं ॥ २०६-२०७ ॥]

"पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि वज्रबन्धं सुरार्चिते ॥ २०८ ॥
हीनाङ्गोऽभ्यधिकाङ्गश्च सव्याधिः कुब्ज आनतः ।
नताङ्घ्रिः पाणिनिःसूतो जरया स्तोभितेन्द्रियः ॥ २०९ ॥
जडवद्गदमूकोऽपि गतिहीनस्तथैव च ।
शङ्खत्वचविनिर्मुक्तो जीवितैरेव तिष्ठति ॥ २१० ॥
बद्धस्यास्य प्रभावेन समावर्त्तो यदा भवेत् ।
कोटिबेधि रसं ग्राह्यं पिण्डषट्केन संयुतम् ॥ २११ ॥
एकैकस्य तु मध्यस्थां गुटिकां कारयेद् बुधः ॥ २१२ ॥

अन्य वज्र बन्ध का लक्षण :—हे सुरेश्वरि ! दूसरे वज्र बन्ध को कहता हूँ । हीनांग, तथा अधिकांग हो, व्याधियुक्त, कुब्ज, आनत (जो नय-झुक गया हो) नताङ्घ्रि, (झुका हुआ पैर वाला) (पाणिनि सूत से जकड़ा हुआ हाथ वाला) जरा (वृद्धावस्था) से स्तम्भितइन्द्रिय वाला जड़, गदगद मूक, चलने में असमर्थ तथा शंख की तरह त्वचा निर्मुक्त होकर जीवित ही रहता है । इस वज्र प्रबन्ध के भाव से जब वह समावर्त हो जाय तब कोटि वेधी रस को लेकर छः पिण्ड के साथ ग्रहण कर उसके मध्य में कोटि बेधी रस की छः गुटिका बनाकर रक्खें ॥ २०८-२१२ ॥

गुटिकाः पञ्चसंख्याताः षष्ठी चैव तु पञ्चमी ।
षट्सङ्गुणितपिण्डं स्यात् ताम्रपात्रं सुशोभनम् ।
ऊर्द्ध्वं पुरुषमात्रं तु पुरुषार्द्धं च मण्डलम् ।
चतुर्मुखकृतं कोष्ठं तस्योपरि निवेदयेत् ॥ २१३ ॥

सघृतं च महातैलं समभागेन लेपयेत्।
पूजयित्वा कटाहं तु दिक्पालांश्चैव पूजयेत्॥ २१४॥
कुमारीं पूजयेत् पश्चाद्, दद्याद्दिक्षु बलिं तथा।
धमनं तत्र कुर्वीत चतुर्दिदक्षु शनैः शनैः॥ २१५॥
सुतप्तं च विधातव्यं निर्धूमं च यदा भवेत्।
तदा नत्वा गुरुं देवं चन्द्रार्कादिग्रहानपि।
नक्षत्राणि च सम्पूज्य आत्मानं तत्र निक्षिपेत्॥ २१६॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
सुदुर्लभं विजानीयात् सिद्धिरूपं नियोजयेत्॥ २१७॥
कललं च भवेत् सर्वं पुरश्चापो विनिक्षिपेत्।
रक्तवर्णं विजानीयात्तेजस्तेजसि योजयेत्॥ २१८॥
मांसपिण्डं भवेत्तत्र वायुं तत्रैव निक्षिपेत्।
कान्तवर्णं तदा कार्यं निक्षिपेत् खं कपालके॥ २१९॥
धमन्तं हेमसङ्काशं क्षारत्वं तन्तु पादयेत्॥ २२०॥
कृत्वा तत्र महारावं हुङ्कारं सुरपूजितम्।
उत्तिष्ठति न सन्देहः पुष्टाङ्गो भास्करो यथा।
दिव्यतेजा महाकायो दिव्यदृष्टिर्महाबलः॥ २२१॥
शतयोजनविस्तीर्ण-घण्टारावं सुपूजितम्।
दीप्तहेममयं दिव्यं रत्नमाणिक्यशोभितम्॥ २२२॥
पुष्पमालापताकाढ्यं किङ्किणीजालमण्डितम्।
विमानोत्तममारूढं शङ्खकाहलनिःस्वनैः॥ २२३॥
अप्सरोगीतवादित्रैर्नृत्यैरपि मनोहरैः।
दिव्याभरणसम्पूर्णा दिव्यमाल्योपशोभिता॥ २२४॥
अपाङ्गरागसम्पन्ना सुरूपा मदविह्वला।
आगच्छति न सन्देहो देवकन्योदितं[1] प्रति॥ २२५॥
गृहीत्वा साधकेन्द्रं च सिद्धलोके वसेत्ततः॥ २२६॥
दिव्यानि स्नानपानानि दिव्याभरणानि सः।
रमते[2] शतसाहस्रं सिद्धकन्याः स्मरातुराः॥ २२७॥

बद्ध रस कथन पूर्वक कड़ाही-आदि के निर्माण का विवरण :—पूर्वोक्त वज्र बन्ध पिण्ड को लेकर पांच गुटिका बनावे। छठवीं को पांच भाग बनाकर उसको

---

१. देवकन्या–उदितं–प्रति इतिच्छेदः। उदितः = सिद्धः।
२. रमते = रमयतीत्यर्थः अन्तर्भावितण्यर्थः।

षड़ गुणित करे। इसके बाद सुन्दर ताम्रपात्र (ताम्र की कड़ाही) बनावे जिसकी ऊँचाई पुरुष के बराबर हो तथा उसका मण्डल (व्यास) पुरुष के आधा हो। उसके ऊपर चतुर्मुख काष्ठ (चौकोर चौकी) रक्खे। उस ताम्र पात्र को घृत मिश्रित महातैल (पहले बताया हुआ) से लिप्त कर दे। इसके बाद उस कड़ाही की पूजा कर दिक् पालों की पूजा करे, तदनन्तर कुमारी की पूजा करे और दिशाओं में बलि दे। इसके बाद वहां पर चारो तरफ से अग्नि देकर धीरे२ धमन करे (तपावे) और उसको अच्छी तरह संतप्त कर दे। जब वह निर्धूम हो जाय तब गुरु, देवता, चन्द्र-सूर्य-आदि नव ग्रहों को नमस्कार कर तथा नक्षत्रों की पूजाकर उस कड़ाह में अपने को प्रक्षिप्त कर दे। पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश को अत्यन्त दुर्लभ समझ कर सिद्धि के लिये नियुक्त कर दे। पहले सब कलल होता है पुनः जल को छोड़े। रक्त वर्ण समझ कर तेज में तेज का विनियोग करे। वहां पर मांस पिण्ड बन जायगा। उसमें वायु को विनियोग कर दे। जब कान्त वर्ण होने लगे तथा कपालक में अभ्रक या आकाश तत्व को छोड़ दे। धमन करने पर जब स्वर्ण वर्ण का हो जाय तब क्षार छोड़ दे। इसके बाद वह महान् हुंकार शब्दकरता हुआ देवताओं से पूजित सम्पूर्ण अंगों से पुष्ट भास्कर के सदृश उठकर खड़ा हो जाता है।

दिव्य तेज, महान् शरीर, दिव्य दृष्टि तथा महान् बल से युक्त शत योजन विस्तीर्ण घण्टा शब्द से पूजित, प्रदीप्तस्वर्ण के समान दिव्य, रत्न माणिक्यादि से सुशोभित पुष्प—माला पताका आदि से युक्त किंकिणी जाल से सुशोभित, उत्तम विमान पर आसीन उदीयमान सिद्धिसाधक के पास शंख, आहलक के शब्द, अप्सराओं की गीत-वाद्य तथा मनोहर नृत्यों से सुशोभित, दिव्य आभूषणों से परिपूर्ण, दिव्य मालाओं से सुशोभित, नेत्र राग से सम्पन्न, सुन्दर रूप वाली, मद से व्याकुल, देव कन्या निःसन्देह आती है और साधकेन्द्र को लेकर सिद्ध लोक में बस जाती है। इसके बाद वह साधक दिव्य स्नान पान एवं दिव्य आभूषणों से सम्पन्न होकर सैकड़ों हजार वर्ष कामदेव पीड़ित सिद्ध कन्याओं के साथ रमण करता है॥ २१३-२२७॥

विमर्श—यहाँ भैरव ने वज्रबन्ध विधि का वर्णन करते हुए साधक के लिये कठोर क्रिया कलाप का निरूपण किया है। इनका कहना यह है कि अधिक अंग वाला तथा हीन अंग वाला, रोगी, कुबड़ा, झुका हुआ, टेढ़े पैर वाला, टेढ़ा हाथ वाला, वृद्धा वस्था से शिथिल इन्द्रिय वाला, जड़, हकलाकर बोलने वाला, गूँगा, चलने फिरने में असमर्थ तथा शंख के समान त्वचा से रहित होकर जीवित मात्र रहते हैं। जब ये वज्रबन्ध के प्रभाव से स्वस्थ एवं सुन्दर हो जाय तब उस वज्र बन्धा को प्रभावशाली समझे। इसके बाद कोटि वेधी रस

को लेकर छः गुण्टिकी बनाये और छः पिण्डों के मध्य में एक-एक को रक्खे। गुटिका पाँच ही बनावे और छठीं गुटिका को पांचवीं में ही अन्तर्भूत दे। इस प्रकार छत्तीस गुटिका बनावे। इन गुटिकाओं को मिलाकर ताम्र का पात्र (सुन्दर कड़ाही) बनावे जो ऊँचाई में पुरुष के बराबर तथा गोलाई में पुरुष के आधा हो। उसके ऊपर चतुर्मुख काष्ठ (चारो तरफ मुख वाली चोकी) रक्खे। इसके बाद घृत तथा पूर्वोक्त महा तैल समान भाग लेकर लेप कर दे। तदनन्तर कड़ाह की पूजा कर दिक्पालों की पूजा करे। बाद में कुमारी की पूजा करे और दिशाओं में बलि प्रदान करे। पूजन आदि विधि पूरा करने के बाद उस कड़ाही को चारो तरफ से आग देकर धमन के द्वारा अच्छी तरह संतप्त करे। जब वह निर्धूम हो जाय तब गुरु, देवता, चन्द्र-सूर्य आदि ग्रहों को नमस्कार तथा नक्षत्रों की पूजा कर उसमें कूद जाय। पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश को दुर्लभ समझे और सिद्धि के रूप में लगा दे। कूदने के बाद सबसे पहले सब कलल के रूप में हो जाता है उसमें रस साधक का सहायक जल छोड़ दे। जब रक्त वर्ण का हो जाय तब उस में तेज छोड़ दे। इससे मांस पिण्ड बन जायगा। इसके बाद उसी में वायु छोड़ दे। जब वह कान्त वर्ण का हो जाय तब कपाल में आकाश तत्त्व या अभ्रक छोड़ दे। धमन करने पर जब स्वर्ण वर्ण सदृश हो जाय तब क्षार तत्त्व छोड़ दे। इन विधियों के पूर्ण होने पर वहाँ महान् हुंकार शब्द को करता हुआ देवताओं से पूजित सूर्य के सदृश तेजस्वी, परिपुष्ठ शरीर वाला उठ कर खड़ा हो जाता है। इसमें संदेह नहीं हैं। इस प्रकार वह दिव्य तेज, महान्, शरीर, दिव्य दृष्टि तथा महान् बल को प्राप्त कर शतयोजन विस्तीर्ण, घण्टा शब्द से पूजित, प्रदीप्त स्वर्ण एवं दिव्यरत्न माणिक्य आदि से सुशोभित, पुष्प माला-पताका आदि से युक्त, किंकिणी जाल से मण्डित विमान पर आसीन हो जाता है। इसी समय शंख आहलक आदि वाद्य ध्वनि तथा अप्सराओं के गीत-वाद्य-नृत्य आदि मनोहर शब्दों के साथ दिव्य आभरण से सुशोभित, दिव्य मालाओं को धारण की हुई अपाङ्ग राग से युक्त, सुन्दर रूप वाली मद से मतवाली देव कन्या साधकेन्द्र के पास पहुँच जाती है और वह साधकेन्द्र को लेकर सिद्धलोक में चली जाती है। 'इस के बाद दिव्य खान-पान एवं आभरण से युक्त वह साधकेन्द्र चिरकाल तक हजारों कामातुरों सिद्ध कन्याओं के साथ रमण करता है। यह विधि कठोर एवं अलौकिक प्रतीत होती है किन्तु अलबे रूमी आदि विदेशी यात्रियों के भारतीय प्रवृद्ध वैज्ञानिक वर्णनों लो देखते हुए उस समय के लिये कोई असम्भव बात नहीं है।

तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टस्थावरजङ्गमे ।
देवा यत्र विलीयन्ते सिद्धस्तत्रैव लीयते ॥ २२८ ॥

अन्त में उसी एक गम्भीर समुद्र जिसमें स्थावर-जंगम नष्ट हो जाते हैं तथा जिसमें देवगण विलीन होते हैं उसी में सिद्ध भी विलीन होता है ॥ २२८ ॥

भूतकालान्तको नाम चण्डोऽयमुपवर्जितः ॥ २२९ ॥
तत्त्वतोऽयं महादेवि ! यदा कर्त्तुं न शक्यते ।
अनेनैव शरीरेण तदा [1]सिद्धिर्भविष्यति ॥ २३० ॥

इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां
देहवेधो नाम अष्टादशः पटलः ।

भूत कालान्तक नामक चण्ड का वर्णन किया गया । हे महादेवि यह तत्त्व पूर्वक करने में जब समर्थ न हो तब भी इसी शरीर से सिद्धि हो जाती है ॥ २२९-२३० ॥

डा० इन्द्रदेव त्रिपाठी द्वारा विरचित 'रसचन्द्रिका' हिन्दी
व्याख्या सहित रसार्णवतन्त्र समाप्त ।
॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

all Bikaner MSS read:
बंधश्चायं° for
तत्त्वतोऽयं°

1. सिद्धिभविष्यतीति–ग्रन्थान्ते मङ्गलम् ।

|| श्रीः ||

पारिभाषिक शब्दानुक्रमणिका

(क्लिष्टानामेव पारिभाषिक-शब्दानां विलोकन-सौकर्यार्थं प्रथमोऽङ्कः पटलस्य सूचकोऽपरश्च श्लोकस्य निदर्शकः)।

The number given first shows the Patala number of the word and the next quotetion is to denote the verse or श्लोक ।)

अ

अक्ष ८-३६४, १६-७८, बहेड़ा Terminalia belerica.

अगस्त्यपुष्प १-१०, ६-२२ हथिया या अगस्त का फूल Sesbania grandiflora, Pers.

अगुरु १-३९, अगर Aquilaria Agailocha, Roxb.

अग्निक ११-८६, चिता Plumbago Zeylanica.

अग्निजार ६-१९, समुद्रमें उत्पन्न होनेवाली अग्निजार नामक वनस्पति. A sort of sea-grown-Plant.

अग्निदमनी ५-८, जवासाका एक भेद A small species of Kantkari.

अंकोल ७-१२९, १०-४२, ५-१६, ढेरा, अङ्कोट. Alangium Lamarkii Thwaites.

अञ्जनायिका ५-१२, (D. R. अञ्जनाभिधा = कृष्णकार्पासी = काली कपास.)

अङ्गार, अङ्गारक ४-५, कोयले की आग. Burning Charcoal.

अङ्घ्रितालक ७-११६ देवदाली (रसकामधेनु) see देवदाली.

अजदुग्धक ८-६८, बकरीका दूध. Goat milk.

अजनायिका १२-२८, see अञ्जनायिका.

अजमारी ५-१२, Cawach, Carpopogon Pruriens.

अजवारि ९-७७, बकरी का मूत्र Goat urin.

अजशृङ्गिका १६-८९, मेढाशींगी A milky and thorny plant with fruits of a crooked figure like rams horn.

अजाक्षीर १७–१४८, बकरी का दूध Goat milk.

अञ्जन ८–५८, see स्रोतोञ्जन.

अतसी तैल १८–१२४, तीसी का तैल. Oil of Linum usitatissimum, Linn.

अतिबला ६–१०४, ७–१३८, गंगेरन. Sida rhombifolia, Linn.

अद्रिज ७–२०, see शिलाजतु.

अनन्ता ५–३, अनन्तमूल Hemidesmus, Indicus R. Br.

अनुसारित १७–४, पारदका विशेष जारण प्रकार.

अन्धनाल ७–१३३, अन्धमूषाकी नली Pipe of अन्धमूषा.

अन्धमूषा ६–८८, ६–९५, ७–४२, १४–६७, १५–१४, १५–२४, १५–१०८, १५–५२, १५–६४, १५–११४, १५–१२४, १५–१४४, १८–७१, १८–८७, १८–१८४, गोस्तन के आकारवाली मूषा. A sort of crucible

अपामार्ग ६–२५, ५–३०, ७–१३३, ११–३१, ११–८७, १०–९६ चिचड़ा Achyranthes Aspera. Linn.

अपामार्गक्षार ६–६७, ११–११४, चिचड़ाक्षार Alkali of अपामार्ग.

अभया १२–३६४, १९–१४, हरीतकी, हर्रा, हरड. Terminalia Chebula Retz.

अभिषव ११–२०, ११–२७, सिञ्चन See अभिषेक या अन्धान.

अभिषेक ४–५३, टिघली हुवी धातु में जल डालना. Throwing water to a molten metal when it is on the fire.

अभ्र ८–१५२, see अभ्रक.

अभ्रक, अभ्रक के प्रकार varietes of Mica ६–२, ६–८.

अभ्रक सत्त्व ११–८०, १६–१६, अभ्रक का सत् Essenee of mica.

अभ्र तीक्ष्णक १५–१५९, see तीक्ष्णाभ्रक.

अभ्रपत्र ६–३७, १३–३७८, अभ्रक पत्र देखिए see अभ्रक पत्र.

अमल ८–३६, see अभ्रक.

अमल माक्षीक ९–८५, रूपामाखी Silvery crystals of Iron pyrites, Radiated crystals.

अमृता ६–९८, गुडूची, गिलोय Tinospora cordifolia, Miers

अम्ल ५–५, ७–७, ७–२२, ७–३५, ७–९०, ७–१०६, ११–६१, खट्टा = Acid.

अम्लगण ५–३१ अम्लवर्ग. A class of acids.

अम्लवर्ग ७–५२, ८–२१, १०–१६, १६–२०, अम्लगण देखिए. see अम्लगण.

अम्लवेतस ५–३१, ६–१२, ६–७९, ६–११८, ७–१४१, ११–१८, १५–१८४, अमलवेत Rumex vesicarius, Linn. sour reed, country sorrel.

अयः ७–१०८ लोहा Iron.

अयः कटोरकम् ४–४ लोहे की कटोरी. Cup of Iron.

अयस् ११–१२७, ११–२१५, १४–९२, लोहा Iron.

अयस्कांत ६–५०, ७-१४१, १०–१८७, (Red) १५–४८, yellow १५–५०, १७–१०१, १८–३४, इत्यादि। चुम्बक Loodstone.

अरुणोत्पल ६–११, लालकमल. Red lotus.

अर्क ७–३४, ६–१३३, मदार Calotropis gigantea.

अर्कक्षार ७–३४, मदार का क्षार Alkally of अर्क.

अर्कक्षीर ७–८, ७–१०६, ७–११६ मदार का दूध milky juice of mandar.

अर्कदुग्ध ६–१०३, ११–८९, १६–२० see अर्कक्षीर.

अर्कपत्री ५–२०, अर्कपत्रिका.

अर्कपयः १५–१८४ see अर्कक्षीर.

अर्जुन ८–७६, अर्जुन, रामनामीवृक्ष. Terminalia arjuna, Bedd.

अर्जुनक्षार ६–३४, अर्जुन से बनाया हुआ क्षार Alkali of अर्जुन.

अर्जुनी ५–२५, १७–७४ ज्वालामुखी; रक्तचित्रक इति रसकामधेनु.

अलक १८–१५३, (D. r. आलक = हरताल see ताल.)

अलम्बुषा ११–२६, १८–११४, लज्जालु. A sensitive plant.

अलर्क ११–१७८, सफेद मदार. Calotropis gigantea alba or procero.

अश्मदलन ८–३२, पत्थरफोड़.

अश्वगन्धा ७–१३९, १७–९६, असगन्ध Withania Somnifera Dunal.

अश्वत्थ ६–९९, पीपल, Ficus religiosa Linn.

अश्वमार १५–१९३, सफेद कनेर. (कनैल)

अष्टमूलिका ५-२७, अष्टमूल. Eight plants used for the purification of mercury.

असन ५-३९, विजयसार. Terminalia tomentosa, W. and A.

अस्थिशृङ्खल ६-११७, हडजोड़ Vitis quadrangularis, Wall.

अहि ११-१९६, १३-१९ सीसा see नाग.

अहिमार ८-३६५ see अहिमार.

अहिमार ८-७७, १४-१४१, विट्खदिर. Aeacia Farnesiana, Willd.

अहिराज १३-३७०, see नाग.

अहिवल्ली १५-१३८, see नागवल्ली.

आ

आखुकर्णी ६-७९, मूसाकर्णी Salvinia cucullata, Roxb.

आखुपर्णी ५-६, see आखुकर्णी.

आज्य ५-४१, १८-१५, घी Clarified butter.

आटरुषक १४-१४१, १५-१०० अडूसा Justicia adhatoda.

आमलक १३-३७०, १३-३७७ see आमलकी.

आमलकसार १८-१७ आँवलासार. Exudation of आमलक.

आमलकी ५-५, आंबला Phyllanthus Emblica, Linn.

आमलक्यादि १२-३५९, आमलकी आदि द्रव्य.

आम्ल ६-३३, ६-३८, ८-७९ इमली का रस Sour fluid of Tamarind.

आर १३-२२, १७-१०२, पित्तल, पीतल Brass.

आरक्तराका मूल ६-९२, D. R. आरक्तं चार्कमूलं = लालमदारकी जड़ Root of red mandar.

आरक्तवल्ली ८-४३, १५-२ Probably आरक्तवल्ली means आरक्तवल्ली = मञ्जिष्ठा.

आरग्वध १०-४२, अमलतास Cassia Fistula, Linn.

आरचूर्ण १६-३५, पित्तलचूर्ण, पीतल का बुरादा Powdered brass.

आरण्यगोमय ११-३०, १४-१३५, १६-३१ जङ्गलीगोबर Wild cowdung.

आरण्योपल १४-१३१, १५-१००, वनकण्डा Wild cowdung cakes.

आरनाल ७–६, १०–५९, ११–६१, कांजी. see काञ्जिक.

आरनालाम्ल ६–११, कांजीकाम्ल, खट्टी कांजी sour gruel.

आरोट ११–२१९, १६–४, १७–५६, १८–१०, सुपरिशुद्ध पारद किंवा "थारोट संज्ञां लभते वारमेकं मृतस्तु यः"। रसदर्पण ॥ Well purified, once killed. mercury.

आर्द्रक ५–३०, ११–१७, आदी, अदरख, Zingiber officinale Rosc.

आवर्त्तक ७–१४, रौप्यमाक्षिक, रूपामाखी see माक्षिक.

आवाप ७–१२०, ७–१३४, प्रक्षेप. द्रव्यान्तराक्षेपो लौहादौ क्रियते हि यः स आवापः "रस०स०" Throwing other things to the molten metals. see वाप and परिवाप.

आशुगपुङ्ख ११–१७८, शरपुंखा see शरपुंखा.

आसुरी ११–८८, १९–१८९, राई देखिए see राई.

आसुरी लवण १०–४१, बिडनोन-विड्लवण. Kalanimak.

आस्फोट ११–२६ It means also akhrot = Juglans ragia. see अर्क.

इ

इङ्गुद १७–९३, see इङ्गुदी.

इङ्गुदी ७–११७, १७–९६, इंगुदी Balanites Roxburghii, Planchon.

इङ्गुदीफल १२–३१३, १२–३२८, १२–३६९, Fruit of इङ्गुदी.

इन्दुरी ५–२०, = इन्दुरा, सोमराजी. see बाकुचीं. Vernonia anthelmintica, Willd.

इन्दुरेखा ६–१०१, = सोमराजी. see बाकुची.

इन्द्रगोपः ८–४८, ११–१३८, १७–७ वीरबहूटी Various kinds, of coccinella.

इन्द्रगोपक ७–४२, १६–३२, see इन्द्रगोप.

इन्द्रवारुणी ५–१४, ६–१०७, १४–५१, १५–१४१, १५–१९१, इन्द्रारुण परवरलता–Citrullus colocynthis, Schiad.

इष्टका ११–१८८, १०–४६, ११–६७, ईंट या ईंट की बुकनी A brick or brick dust.

ई

ईश्वरी ५-२०, १६-१०, वांझ खेकसा A sort of creeper called वन्ध्या कर्कोटकी "भूरि क्षीर परिस्रावी" "रसकामधेनु"

उ

उच्चटा ५-१०, १६-१०, १६--१६, एक प्रकार की लता या श्वेत गुञ्जा "उच्चटा सा शुकत्रोटि पुटाकार दलान्विता" रसकामधेनु. A sort of creeper white kunch.

उच्चटी १२--११२ एक किस्म की दिव्यौषधी A sort of दिव्यौषधी.

उच्चटी रस १२--११५, उच्चटीका स्वरस juice of उच्चटी

उच्चाट १३--११६, see उच्चटा

उत्कटा ५--१९, = सिंहली पिप्पली. सफेद घूंघची D. R. उर्वरा 'रसकामधेनु'.

उत्तरवारुणी ६-९४, ६--१०४, ७--१३६, see इन्द्रवारुणी.

उदककणा ७-८९, ११--२३, = जलपिप्पली Commelyne selicifolia Roxb.

उदुम्बर ६--१०३, गूलर. Ficus glomerata, Roxb.

उद्घाट ८--७९, १५-२०६, १७--१६२, पारद के सब दोष हरण करने वाली क्रिया. A sort of preparation of mercury cleared off all its defects or impurities.

उत्थापित १६-१३, उत्थापन किया हुआ । स्वेदनेत्यादि योगेन स्वरूपापादनं हि यत् । तदुत्थापनमित्युक्तं मूर्छाव्यापत्तिनाशनम् ॥ opposite of निरुत्थ. see निरुत्थ.

उन्मत्तः ७-७८, ६-१४०, १५-१०७, see धत्तूर, धत्तूरा,

उन्मत्तक ७-५८, see उन्मत्त.

उन्मत्तनिर्यास ७-६८, धत्तुरेका स्वरस juice of उन्मत्त.

उपरस ७-५६, Enumerated ७-९६, १८-३८, ४-२, हलके रस Inferial or secondary minerals or metallic ores and earths. These are eight in number.

उपरसशुद्धिः ७-९० हलके रसों का शोधन. Purification of उपरस.

उपविष ४-५, गणना (enumerated) ५-३४, ७-२२, १८-३५, हलके विष minor or facticious poisons.

Eight objects with the lettr क as their initial, Kushmanda etc. These are enumerated on page 166 and 180.

ककुभ १२–३२८, अर्जुन देखिए, see अर्जुन

कङ्कालखेचरी ५–१८, १२–५३, एक प्रकार की औषधी, A sort of औषधी.

कङ्कालखेचरी तैल १२–५५, Oil of कङ्कालखेचरी

कङ्कुष्ठ ७–८, ७–५६, ७–८८, ८–६, ८–५९, १५–२०२, १७–८२, उशारेवन—One of the eight उपरस s. A medicinal earth, coral coloured as described in the text.

कंकोल १८–११२, १८–२००, कबाबचिनी. A fragrant spice known as sitalchini.

कङ्गुणी ५–३४, कङ्गुधान्य Penicum Italicum, Linn.

कङ्गुणीज ५–३४, कङ्गुतैल oil of कङ्गुणी.

कङ्गुणीतैल १२–१३९, १५–२०३, १७–११७, १८–७३, see कङ्गुणी oil of कङ्गुण.

कच्छप ११–१९१, कच्छपयन्त्र देखिए see कच्छपयन्त्र.

कच्छप यन्त्र ११–६९, कच्छपयन्त्र An apparatus called kachchhapa; It is of twoisorts. जलकूर्मयन्त and स्थलकूर्मयन्त्र. see रसकामधेनु

कञ्चुक १०–७, पारद का दोष Impurities of mercury such as क्षितिदोष गिरिदोष, जलदोष, नागदोष, वङ्गदोष, विष, वह्नि, मल cte.

कञ्चुकी तोय ७–१२४, कञ्चुकी जल Watery juice or fluid of कञ्चुकी.

कञ्चुकी = ५–११, ५–२, ५–१५, ६–२०, कञ्चुकी चूर्ण, कंचुकी रस ७–११६, = क्षीरकञ्चुकी, क्षीरीशवृक्ष.

कञ्चुकी क्षीर ६–३७, milky juice of कञ्चुकी.

कटु १८–५५, १८–१२५, तीता Punjent.

कटुक १२–२३, ५–११९, त्रिकटुक.

कटुक रोहिणी १८–५, कुटकी Picrorrhiza kurroa Benth.

कटुकालाबु ७–३०, निर्यास रस १२–२४४, कडवी तुंबी.

कटुकालाबुक १२–२१६, see कटुकालाबु.

कटुकोशातकी १५–९४, कडवी तुरई A sort bitter ghoshalata; see कोशातकी.

कटुतुम्ब ११-९९, ११-१२७, see कटुतुम्बी.

कुटुतुम्बी ५-१४, ८-८३, १२-१५६ A wild variety of Lagenaria vulgaris Sering.

कटुतैल ८-३०, १७-१२४, कड़वा तैल Mustard oil.

कटुत्रय ७-९१, ९-१३, १२-३१२, त्रिकटुक = सोंठ, मिरच, पीपल The aggregate of three spices, gingar,long pepper and black pepper.

कण १८-७ = कणा = पीपल Piper longum, Linn.

कण्टकारी रस १४-१४९, भटकटैया का रस. juice of कण्टकारी Solanum Xanthocarpum, Schard.

कण्डूलसूरण ६-१०५, खुजलानेवाला सुरण Itchy सूरण. Amorphophallus campanulatus, Blume.

कतक ११-१०१, निर्मली Strychnos potatorum, Linn.

कदम्बक १४-९२ कदम्ब का पेड़

कदली ५--२२, ५-३०, ७-१३३, ९--१०, ११-२५, १८--१२० केला Musa sapientun, Linn.

कदलीकन्द ७--९, ८--२५, १४-१४९, केलाका कन्द Root-stock of plantain tree.

कदलीकन्दक ६--३२, Root-stock of plantain tree.

कदलीकन्द तोय ८--२७ see कदली कन्द निर्यास.

कदलीकन्द निर्यास ११--३१, केलाके कन्द का रस Watey juice of the root- stook of plantain tree.

कदलीकन्द सार ७--१०, ७--८९, see कदलीकन्द-निर्यास.

कदली रस ७--६, ७--१२, ७--१६ केला का स्वरस juice of plantain.

कनक ७--१४७. ८--२२, ११-८९, ११-१०१, १२-२४८, १२--३३०, १४--६८, १८--८४, सुवर्ण, सोना gold.

कनक १५--९०, १५-१४१, १५--१९१, १६-६१, धत्तूर A sort of dhutura called Kanak dhutura.

कनकमाक्षिक १७--८३, सुवर्णमाक्षिक, सोनामाखी see माक्षिक.

कनकरस १७--९२, धत्तुरे का रस milky juice of dhutura.

कन्द ६--९८, ७--११६ = सूरण = see सूरणकन्द.

कन्द पद्मिनी १४--१६८, एक प्रकार की महौषधी. A sort of महौषधि.

कन्या १६--८९, घृत कुमारी = घी कुंवार Aloe Vera, Linn.

कन्यारस १८--१५, घी कुंवार का रस juicc of Aloe Vera, Linn.

कपर्द १७--९९, = वराटक, कौडी chwrie.

कपाली ६--२६, वायविडङ्ग, विडङ्ग (बं.) Embelia Ribes, Burm.

कपाली १६--४५, पारद का एक दोष One of the impurities of mercury. see कापाली.

कपि ६--११, ६--२३, कपिकच्छु = शूकशिम्बी = केंवाच Mucuna pruriens, D.C.

कपित्थतोय ८--२९, कैथका रस Watery juice of कपित्थ = Feronia elephantum, Corr.

कपित्थ = कैथ Feronia elephantum Corr.

कपिला-कृष्ण-गोतक्र १८--१५४, कपिला गाय का मट्ठा Burtermilk produced from the milk of a black-coloured kapila cow.

कपोतक १८--१२४, कबूतर The pigon.

कपोताख्य पुट ४--१२, ११--३०, आठ गोहरी से दिया जाने वाला पुट. An apparatus for roasting, digesting or subliming metals, minerals or drugs called kapota. "यत्पुटं दीयते भूमौ अष्टसंख्यवनोपलैः" see पुट and पुटपाक.

कपोतिका = चाणक्यमूलक = नरममूली. एक प्रकार का मूलक A sort of मूलक.

कम्बु १७--९९, १७--१०९, १७--११३, शंख, Conch.

करक १५--१८२, पलाशका वृक्ष, ढाक का पेड़ Butea frondosa, Roxb.

करञ्ज ७--११६, करञ्ज या कञ्जा Pongamia glabra, Vent.

करञ्जतैल ७--६८, १७--१३१, कञ्जाका तैल. oil of करञ्ज.

करञ्जफल १२--३७४, कपित्थ = कैथ Feronia elephantum Corr.

करञ्जाख्य ८--८३, see करञ्ज.

करवीर ५--३४, ६--११, ६--१०३, कनेर या उसी प्रकार की एक लता, "हरमारसमाकारा लता-पुष्प-समन्विता करवीरलतेत्युक्ता" Nerium odorum, Soland.

करवीरक १७--६४, see करवीर.

करिन् १७--४० see नाग
करीषाग्नि १५--१५५, गोहरीकी आग, A fire of dry cow dung.
करीषाग्नि ४--१२, १८--१९८, see करिषाग्नि.
कर्कट ८--३६, कर्कटक एक प्रकार का कन्दविष A sort of कन्दविष.
कर्कटास्थि ६--१०२, ६--१०४, १४--१५२, केंकडा की हड्डी Crab shell.
कर्कटी १८--१२०, खीरा A sort of cucumber. Cucumis Melo, Linn.
कर्कोट १८--१२०, see कर्कोटी
कर्कोटी ५--१५, १०--५५ खेकसा
कर्कोटीकन्द १२--१०३, खेकसा की जड़ Bulbous under ground stem of कर्कोटी
कर्णाख्य ८--३६, श्वेतझिण्टी, सफेद सहचर. White Barleria Cristata.
कर्त्तरी १२--२०१, १२--२०३, Verities of कर्त्तरी १२--२०५, १२-२०६ Asort of महौषधि.
कर्दम १२--३८०, पङ्क = द्रवोंसे रगड़ी हुवी कज्जली. "सद्रवा महिता सैव (कज्जली) पङ्क इत्यभिधीयते" "रस कामधेनु"
कर्पूर ४--२९, ६--६०, ११--८८, ५--९३, १८--११२, कपूर. Camphor.
कर्षक ६--४०, १७--१४५, चुम्बक A sort of kanta or kanta pashana.
कर्षाग्नि ४--१२, १५--१७०, see करीषाग्नि ।
कर्ष्वनल ११--१८२, see करीषाग्नि
कलल १८--२१८ कललम् = एकरात्रोषितं शुक्रशोणितम् = मांसपिण्ड. The uterus or the embryo. Here it means मांसपिण्ड.
कल्क ६--३६, ८--२०, ११--१०० चटनी A paste, prepared by grinding dry or fresh vegitable substances on a stone with a muller, and then making a thin paste with the addition of water when necessary. "यः पिण्ड आर्द्रद्रव्याणां स कल्क इति कीर्तितः" ॥ योग--तरंगिणी. ॥
कवच १८--१४९, १८--१५२, ढक्कन An armonr. Here probably it means the cover which preserves the brain. It is a

technical तान्त्रिक term, denoting certain mantras, which preserve life.

कषोपल ४--४, कसोटी का पत्थर A touch-stone.

कस्तूरी १८--१३४, १८--२००, कस्तूरी = मृगनाभि. Musk.

कांक्षी ६--१३७, १६--६, फिटकरी Alum.

कांस्यकृष्ण १७--३१ कांसीधातु Bell-metal and cast iron, see घोषकृष्ण.

काकजङ्घा ५--३, ५--१६, काकजङ्घा Leea hirta, Roxb.

काकतुण्डी ८--८३, Asclepias curassavica, Linn.

काकमाचिका १५--१३६, १८--१२०, मकोय see काकमाची.

काकमाची ५--३, ५--१२१ मकोय Solanum nigrum, Linn.

काकमाची रस १७--९०, ८--२९, मकोय का स्वरस. Juice of काकमाची,

काकमुण्डी ५--१३, see काकतुण्डी.

काकविट् १५--१८०, कौवे की वीट Feces of a crow.

काकविष्ठा ११--१९, १२--६३, १५--१८३, १७--८, see काकविट्

काकाण्डीफल १५--१४८, ६--३८ मालकांगनी, कोलशिम्बी fruit of कोलशिम्बी

काकिनीबीज ६--२४ D. R. कामाची बीज = काकमाचीबीज -- मकोय का बीज (Seed or Kernel ot काकिनी or गुञ्जा or a sort of creeper "स्थूल--कण्टक--पत्राढ्या प्रोक्ता सा काकिनी लता" "रसकामधेनु"

काकेष्ट-वारि १८--६, see निम्ब Water in which leaves of निम्ब are macerated.

काङ्क्षी ७--१६, ९--२, सौराष्ट्र मृत्तिका see सौराष्ट्री

काच ५--३२, ५--४२, बिडनोन A sort of salt called विड्लवण

काचकिट्ट ६--९, काचमल Excretion of mica mixed with saline earth.

काचकूपी ११--१७१, बोतल (glass bottle)

काञ्चन ४--१००, सोना gold. see सुवर्ण.

काञ्चन ९--१०, कचनारका भेद Bauhinia acuminata, Linn,

काञ्चनार १४--१४४, १८--१२६, लाल कचनार, Bauhinia variegata, Liun.

काञ्चनी ५--१२, हलदी Turmeric Curcuma longa, Roxb.
काञ्जिक ४--२, ७--१२९, १०--४६, see धान्याम्ल A sour gruel prepared from the acetous fermentation of powdered paddy and other substances.
काञ्जिकान्न १८--१२४, काञ्जीमें भिगोया हुवा भात. see काञ्जिक Boiled rice steeped in काञ्जिक.
काञ्जी ११--५६, see काञ्जिक.
कान्त--Varietes of कान्त ६--४५, ६--९६, ८--५, (कान्तक) १८--१७८, see कान्तपाषाण.
कान्तचूर्ण १८--८५, कान्तलोहका बुरादा. Powdered कान्त see कान्त.
कान्तचूर्णत्रुटि १८--१८१, कान्तचूर्णका छोटासा भाग. (एक प्रकार की माला) A smallest Portion of कान्तचूर्ण see कान्तचूर्ण.
कान्त तीक्ष्ण १४--५७, कान्तलोह A sort of cast iron called कान्तलोहं.
कान्तनाग see page कान्त ६--४९, ६--६४, उत्तमकान्त The best कान्त.
कान्तपाषाण ६--३, ६--८१, १४--१५२, १५--२००, चुम्बक लोह A sort of stone called कान्त as lead stone.
कान्तबन्ध १५--५१, कान्तका बन्धन Binding of कान्त or load stone.
कान्त मुख्य ८--५८ (अयः कान्त) ६--५०, श्रेष्ठ कान्त The best कान्त.
कान्त लोह ७--१००, ११--१६२, १८--१६, कान्त लोह. Cast iron D. r. काञ्चिलोह, काल लोह इति रसकामधेनु.
कान्ता १०--३९, प्रियङ्गु D. R. क्रान्ता A plant called प्रियङ्गु or krishnakali.
कान्ताकान्त १४--९२, D. R. काञ्चिकान्त = कान्तिलोह see कान्तलोह.
कान्तसत्त्व ११--८०, १८--८८, Essence of कान्तपाषाण.
कापालिक योग ६--८४, १६--३४, एक प्रकार का प्रयोग.

"मूषायां भस्मीकरणं तद्रक्तवर्णं कपालीयोगः ॥"
"वज्रबन्धादिरञ्जनार्थं कपाली योगः "रसकामधेनुः"

Probably a practice of kapalikas, or worshippers of Shiva who carries in his left hand, a half of the skull as a cup for drinking spiritious liquors.

कापालिक्रम --१४--८५ ६-४३, "नागं शुल्वं तथा तीक्ष्णं कपालीक्रममुत्तमम् । तेनैव रञ्जयेत्तारं सप्तवारं पुनः पुनः । वङ्गतीक्ष्ण कपाल्या च शुद्धतारं वरं जयेत् । रञ्जयेत्सह हेम्ना तु भवेत्कुंकुमसन्निभम्" ॥ रसकामधेनुः ॥

कापालीरञ्जन १६--२८, कपाली योगेन रञ्जनम् ॥

कापाली १६--४५, १६--४६, पारदका एक दोष One of the impurities of mercury अथवा कपाली,

"कपाली कालिका वङ्गे नागे श्यामा कपालिका ॥
कपाली वै वीर्यं हानिं कुरुते नात्र संशयः" रसकामधेनुः

काम ८-८३, मदनवृक्ष = दमनकवृक्ष Artemisia Vulgaris, Linn.

कारञ्जकतैल १५८--१११ कञ्जाका तेल. oil of करञ्जक.

कारवल्लिका ५--१५, लहान करला.

कारवल्लीरस १८--१४१, करेलाका रस. juice of कारवल्लिका see कारवल्लिका.

कारवेल्ल २९--२५, = बड़ा करेला momordica charantia, Linn.

कारवेल्लक १८--१२०, see कारवेल्ल.

कार्पास ५--१४, ६--११०, कपास का पेड़ Gossypium herbaceum, Linn.

कार्पासपत्र ६--११०, १०--५१, कपास का पत्ता. A leaf of cotton plant.

कार्पास मूल ६--९२, कपास की जड़ Root of कार्पास.

कार्पासास्थि ८--३२, १५--१२६, कपास का बीज. Seed of कार्पास.

कालकूट ५--३३, ७--३९, एक प्रकार का विष A sort of poison.

कालिका ५--१३, = काकोली A root said to be brought from नेपाल or Morung.

कालिका ७--४३, १२--८०, १७--५९, पारद का दोष विशेष. A sort of impurity of mercury or metals or minerals. see पारद दोष.

कालिङ्ग १८--१२०, तरबूज Water melon.

काशीस ७--१२६, ९--२, हीराकसीस Ferrus sulphate, Sulphate of iron, of two varieties--धातुकाशीस green vitriol and पुष्पकाशीस. yellowvitriol.

काशीसशुद्धि ७--८२, हीराकसीस की शुद्धि purification of काशीस.

कुम्भ ७--१४३ शूर्पमान = ६४ सेर. 64 Seers.

कुरबक ५--२५, रक्तसहचर Barleria cristata, Linn.

कुरुङ्गिणी ५--४ = (कुरङ्गिणी = मुद्गपर्णी = मूङ्गपर्णी.) Phaseolus trilobus, Ait.

कुलत्थ ६--७६, ६--८३, १८--१२४, कुलथी. Dolichos uniforus, Lamk.

कुलत्थक ८--३२, कुलत्थ देखिए. See कुलत्थ.

कुलत्थक्काथ ६--१३२, ७--६, कुलथीका काढ़ा. Decoction of कुलत्थ.

कुलिश ११--१३१, वज्र = वज्र देखिये = सेहुड़ का दूध. See वज्र.

कुलिशक्षीर ६--३० = वज्रक्षीर. Milky juice of स्नुही. See स्नुही and स्नुहीक्षीर.

कुलीर १७--१५, कर्कट = खेकडा, केङ्कड़ा = A crab.

कुलीरास्थि १५--१९५, केङ्कड़ेकी हड्डी. Crab--shell. see कर्कटास्थि.

कुलौषधि १२--७२, दिव्यौषधी देखिये, See दिव्यौषधी.

कुष्ठ ११--१३६, सुगन्ध कूठ. Saussurea Lappa. C. B. Clarke.

कुष्ठच्छल्लीरस १४--९८, D. R. कुष्ठचोलीरस. Juice of Kud and छल्ली =A tree called 'Bhavarasali' in Marhatta.

कुष्माण्ड ७--७४, १२--२११, १८--१२० कोहड़ा. Benincasa cerifera, Savi.

कुसुम्भ ५--३९, १७--१११, कसूंभा. Carthamus tinctoius, Linn.

कुसुम्भक १८--१२०, कुसुम्भ देखीये. See कुसुम्भ.

कुसुम्भज ५--३४, कुसुम्भका तेल. Oil of कुसुम्भ.

कुहुकम्बिका ५--१३, कुरण्ड. D. R. कुरूण्टिका or कुरुण्डिका = साकुरुण्ड-वृक्ष. A sart of Creeper very difficult to be identified.

कूपीपाषाण ४--३७, = D. R. कुर्मपाषाण, or कूपिकापाषाण. A heap of pebbles in the bed of a river is called कूप or कूपी or कूपिका.

कूर्म्म ५--४०, कछुआ. Tortoise.

कूर्म्मपृष्ठ ६--८१, कछुवा की पीट. Tortois--shell.

कूर्म्मास्थि ७--१३२, कूर्म्मपृष्ठ देखिये. See कूर्म्मपृष्ठ.

कृताञ्जलि ५--२४, लज्जावतीलता=छुईमुई. Mimosa pudica, Linn.

कृष्ण ७--१०८, सबसे अच्छा लोहा, माने फोलाद, The best iron i. e, steel.

कृष्णकनक ५--१५, काला धत्तूरा. Black धत्तूरा.

कृष्णजीरक ५--१४, कालाजीरा Nigella sativa, Linn.

कृष्णतैलक ६--१३२ काले तिल का तेल. Oil of कृष्णतेल or black sesamum Indicum, Dc.

कृष्णपर्णी ५--७, कालीतुलसी=Black ocimum sanctum, Linn.

कृष्णमार्जारी ५--१८, D. R. कृष्णमञ्जीरी. A sort of creaper difficult to be identified.

कृष्णराजी १२--१५३, कालासरसों. Black mustard.

कृष्णविष ५--३३, एक प्रकार का भयङ्कर विष. A sort of virulant poison. See महाविष.

कृष्णा ५--४, पीपल. D. R. मूर्वा. A sort of creaper. "भिन्नकज्ज-लसङ्काशा लता कृष्णलतेत्यसौ" रसकामधेनु.

कृष्णागुरु १३--१७, काला अगर. see अगुरु Black अगुरु.

कृष्णाभ्र ६--२, ६--९, काला अभ्रक. Black mica.

कृष्णाभ्रक १४--५७, ८--४६, कृष्णाभ्र देखिए. See कृष्णाभ्र.

कृष्णाभ्रपत्र ६--३३, काले अभ्रक का पत्ता. A plate of black mica.

कृष्णाभ्रसत्त्व ११--११०, काले अभ्रक का सत्त्व. Essence of black mica.

कृष्णोन्मत्त १२--२२३, काला धत्तूरा. Black dhutura. See धुत्तूर.

केतकी ६--१३७, ७--१२३, केवडा Pandamus odoratissimus, Roxb.

केशिनी ५--१२, जटामांसी, Nardostachys jatamansi.

कोकिला १५--१७५, १५--१८२=काकोली. A berry of Calculus Indicus, brought from नेपाल and मोरङ्ग.

कोकिलाक्ष ५--५ = तालमखाना. Hygrophila, spenosa, T. Ander.- It's seed is called talmakhana.

कोकिलाबीज १५--१४८, तालमखाने का बीज. Seed of कोकिलाक्षक, see कोकिलाक्ष.

कोकिलाक्षीर १५--१९२, कोकिला या काकोलीका रस. Milky juice of काकोली or कोकिला.

कोटराक्षी ५-१२ विधारा = वृद्धदारक.

कोद्रव ६--७९, ६-८३, १७--१३५, कोदु, कोदो Paspalum scrobiculatum, Linn.

कोद्रवक्काथ ६--११३, ६-१३२, ७-६, कोदों का काढा. Decoction of कोद्रव.

कोल १८-२५ बेर, बदर, Zizyphus jujuba, Lamk.

कोशातकी ५--२२, ७--८९, कड़ु तरोई. Luffa acutangula. Roxb.

कोशातकी दलरस ९-१६, कडुतोरई के पत्ते का रस. juice of the leaves of कोशातकी.

कोष्ठ ७-९५, कोष्ठिका देखिये. See कोष्ठिका.

कोष्ठक ४-५६, ४-५८, see कोष्ठिका.

कोष्ठिका ४--३, ४-३१, अग्नि रखने का यंत्र. Koshthi apparatus, see Hindu chemistry by P. C. Roy. Vol. I. P. 89.

कौमारी ५--२७, कुमारी = घृत कुमारी Aloe vera, Linn.

कौरण्डक ८--७६, कुरण्डक सम्बन्धी, कुरण्डक = मदनवृक्ष. Belonging to कुरण्डक Randia dumetorum, Lamk.

कौवेरीमूल ११--२५, उत्तरवारुणी की जड. उत्तार वारुणी देखिये. Root of उत्तरवारुणी, see उत्तार वारुणी.

कौसुम्भ १७--८३, कुसुम्भका रस, कुसुम्भ देखिये. Juice of कुसुम्भ, see कुसुम्भ.

कान्ता १२--२११, बृहती = बडी कटेरी. Solanum Indicum, Linn.

क्रामण २--५, ५--१, ८--७९, १०--१०, १०-२८, ११--२१७ लांघने की क्रिया. Penetration or Transmission.

क्रामिकौषधि ५--२५, पारद को लांघने वाली वनस्पतियाँ Transmiting plants.

क्रोष्टुजिह्वा १३--१९, शृगालजिह्वा = सियार की जीभ.

क्वथितजल १२--३६४, उबाला हुआ पानी. Decocted water.

क्वाथ ६--११३, काढा, कषाय. "पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णाद् द्रव्याद्विनिक्षिपेत्। मृत्पात्रे क्वथितं ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्। शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते" Decoction generally prepared by boiling one part of vegetable substances with sixteen parts of water, till the water is reduced to one fourth.

क्षत्रिय मारण ६–१०३. क्षत्रिय वर्ग का हीरा मारना. Killing of वज्र of क्षत्रिय class.

क्षमापाली ९–२८, D. R. क्षेमपाली. एक प्रकार की ओषधी. A sort of ओषधी.

क्षार ४--५, ७--७, ७--३१, ७--३५, खार. An Alkali.

क्षारत्रय ६–११८, ९--१३, ११--१९, सज्जीखार, जवाखार आर सोहागा, i. e. Natron, Salt petre and Borax.

क्षारराज ७–१०४, टंकणक्षार = सोहागा Borax.

क्षारवर्ग ६--३५, क्षारत्रय देखिये. see क्षारत्रय.

क्षाराम्ल ११--२२, खार और अम्ल. Alkali and acid.

क्षाराष्टक ६--३४, आठ प्रकार के क्षार. Eeight sorts of क्षार.

क्षितिकिट्ट ७--३७, रसक का पर्याय. रसक देखिये. A synonym for रसक.

क्षीर १८--८, दूध. Milk.

क्षीर १८--९, दूध के समान रस. Milky juice.

क्षीर कञ्चुक १०--५४, क्षीरीश वृक्ष. कञ्चुकी देखिये. See कञ्चुकी.

क्षीर कञ्चुका १६--१०, क्षीरकञ्चुक देखिये. See क्षीर कञ्चुक.

क्षीर कञ्चुकतोय १८–१८०, क्षीर कञ्चुकी का रस. juice of क्षीर कञ्चुकी.

क्षीरकन्द ६–१३, १२--१६६, भूई कोहडा. Bhumikushmanda.

क्षीरकन्दरस ६--३५, क्षीरकन्द का रस, क्षीरकन्द देखिए. juice of क्षीरकन्द see क्षीरकन्द.

क्षीरकुक्कटी ५--१८, Probably a sort of कुक्कटी or शाल्मली. A silk cotton tree or उत्कटा = white okda, = सफेद मान्दार.

क्षीरनाली ५--२५, D. R. कीरनाली. एक प्रकार की रसयुक्त लता. A sort of creaper having juicy stem, very difficult to be identified.

क्षीरिणी ५--६, गांभारी.

क्षीरिणीरस १२–३५९, क्षीरिणी का रस. Milky juice of क्षीरिणी, see क्षीरिणी.

क्षुद्राम्ल १०--५९, चाङ्गेरी = चौपतियाँ. Oxalis corniculata, Linn.

क्षुरक ७–११३ = इक्षुर = तालमखाना या गोखरू .see कोकिलाक्ष.

क्षेत्रज ७--९९, सुवर्ण का प्रकार. A variety of gold.

क्षेत्रदोष १०--५०, जमीन से या खाई से पारद में आया हुआ दोष. The impurity of mercury or other minerals obtained from the field or mine.

क्षेपलेप १७--६ लेपक्षेप देखिये. See लेपक्षेप.

क्षौद्र ७--१०, ७--५४, १८--९, मधु, शहद. Honey.

क्ष्मापाल १२--८५, १२--९०, एक प्रकार की ओषधी. A sort of ओषधी.

ख

खग ४--४८, ७--५६. काशीस = हीराकसीस. Sutphate of iron. see का काशीस.

खड्गारि ५--८, खड्गमार. Scirpus maximus.

खण्डसौराष्ट्री ७--१२६. सौराष्ट्र मट्टीका एकप्रकार. A variaty of सौराष्ट्री earth. See सौराष्ट्री.

खदिर ५--३९, ८--८०, खैर, Acacia catechu.

खदिराग्नि १५--१३२, १५-१४४, खैर की आग. Fire of खदिर wood, see खदिर.

खदिराङ्गार १५--१२३, १५--१७१, ७--८७, खैर की लकड़ी का कोयला, charcoal of खदिर wood.

खरमञ्जरी ११--२६, अपामार्ग = चिचडा, see अपामार्ग.

खराग्नि ७--९५, तीव्रानल = तीक्ष्ण अग्नि. Intense fire.

खर्पर ७--३७, १७--३६, १८--१९५, रसक, खर्परी तुत्थक, A sort of calamine or Zine ore.

खर्पर ८--७५, १२--११०, १५--९०,. मट्टी के पात्र का तुकडा, खप्पर. A part of earthen pot.

खल्ल ४--२, made up of different materials ७२--११६ Varieties of खल्ल as तप्त खल्ल १५--६५. (खल्ल के जगह खल्व लिखा जाता है, Generally spelt खल्व in all Mss.) खरल. A vessel or mortor for grinding drugs.

खल्ल पाषाण १६--९१, खल्ल देखिए. See खल्ल.

खसत्व ८--३९, ८--५५, अभ्रसत्त्व. Essence of mica.

खुर १७,-११३, चौपाये का नाखून. Hoof.

खेचर ६--१३७. काशीस = हीरा कसीस--Sutphate of iron.

खेचरता ११-१५१ पारदकी आकाश में उडने की शक्ति. A certain state of mercury. The sky going efficacy of mercury.

खेचरी ११--९८, १ -,३३६, १२--३७३, १२--३७१. एक प्रकार की जारणा. जारणा देखीए. एक प्रकार की गुटिका. A sort of जारणा, see जारणा. A sort of गुटिका or pill.

खोट ११--१९८, ११--२०६, पारद की सात दशाओं में से एक दशा. One of the seven stages of mercury.

खोटक ६--६३, व्याख्या ११--२०६, खोट देखीए. See खोट.

खोट-बन्धन १२--१, पिष्टी में बांधना या पक्का करना. पिष्टी देखिए. Binding or fixation into पिष्टी See पिष्टी. "पिष्टी बन्धस्तु खोटकः" रस कामधेनु.

ग

गगन ६--१८, अभ्रक. Mica.

गगन द्रुति ७--१३७, अभ्रक का द्रव. Liquefaction of mica.

गङ्गायमुनामध्य १२--३, पौर्णीमा. गङ्गाकी शुक्ल पक्ष को उपमा और यमुना की उपमा कृष्ण पक्ष को. By गङ्गा is meant, the white fort-night on account of the whiteness of her water and by यमुना is meant the black fort--night on acccunt of the blackness of her water. The मध्य or the middle point of these two fort--nights is पूर्णिमा or the full moon.

गजकर्णिका ५--८, इन्द्रारुण या खीरा की बेल. Cucumis melo, Linn.

गजदन्त १७--१०९, हाथीदन्त. Ivory. The elephant tooth.

गजपुट ७--७७ एक पुट विशेष. गजाकारं पुटं. "गजप्रमाणूर्ध्वाधः पुटं गजपुटं स्मृतम् ।" An apparatus for roasting metals or minerals in a pit in a ground, see पुट.

गजारि १२--९०, = गजमादन = शल्लाकीवृक्ष. सालई का पेड़ Boswellia serrata, Roxb.

गजारी ५--१३, गजारि देखिए See गजारि.

गण्डोल १७--११, गुड या चीनी Treacle, molasses.

गदा ११--२४, पाढल = पाटलवृक्ष. पाटली देखिए. See पाटली.

गन्ध ९--८, गन्धक देखिए. See गन्धक.

गन्धकः—उत्पत्ति. ७–५६, प्रकार ७--६४, शोधन. Purification ७–७२, गन्धक. Sulphur.

गन्धकचूर्ण ११–१६८. गन्धकचूर्ण. Powder of sulphur.

गन्धकजारण ४–१४, गन्धकजारण. Calcination of sulphur.

गन्धकत्रय: ६.-१०१, तीन प्रकार का गन्धक. Three fold sulpher. Viz. red, yellow, & white. Black sulpher is not available.

गन्धक बन्ध. १५--१०६, गन्धक का बन्धन या दृढीकरण. Binding or fixation of sulpher.

गन्धक शुद्धिः ७--७३. गन्धक का शोधन Purification of Sulpher.

गन्धचूर्ण १२.-१२०, गन्धकचूर्ण देखिए. See गन्धकचूर्ण.

गन्ध तैल ६–९६, १५--१४३. गन्धक तैल, "आवर्तमाने पयसि दत्वा गन्धकजं रजः। तज्जात दधिजं सर्पिर्गन्धतैलं वदन्ति हि" Sulphurated butter prepared from milk boiled with addition of Sulphur.

गन्धनाग ११–९२, ११--१६३. गन्धकसे जारण किया हुआ नाग. Sulphurated lead.

गन्धपाषाण ७–१२६, ८–४३, ८--५८. गन्धक Sulphur.

गन्धपिष्टी १५–१०४, गन्धक की पिष्टी. Sulphur Paste.

गन्धर्वतैल ७--१०, रेडी का तेल, Castor oil.

गन्धाभ्र १८--१९५, गन्धक और अभ्रक का मिश्रण. Amalgam of sulphur and mica.

गंधाश्म १२--२७१, गत्धपाषाण देखिए, See गन्ध पाषाण.

गर्भद्रुति ८--८६, ११--६०, १२--१७७, "द्रुति चरति सूतेन्द्रो यथाज्यं च हुताशनः"। पारद में धातुओं का तथा खनिज द्रव्यों का द्रव करना Liquefaction of metals or minerals within merecury.

गर्भयन्त्र ४--१६, १५–१६१. उत्तम पिष्टि निर्माण करने वाला यन्त्र. An apparatus for calclnction of paste.

गाङ्गेरी १०--५२, नागबला. Sida Spinosa, Linn.

गार, गारा ४--३२, जल में बहुत घण्टे भिगाह हुवी मट्टी "जले चिरं शीर्णा मृत्तिका गारम्" रसकामधेनु. Earth steeped in water for several hours, as is preparod or Kancha masonry, which is cailed tagar by the masons.

गिरि ७--२० शिलाजतु Bitumen.

गिरिकर्णिका, ५--७, १५--५१ = अपराजिता.

गिरिकर्णी. १०--३९, गिरिकर्णिका देखिए. See गिरिकर्णिका.

गिरिजतु ८--३६, १२--३६५ शिलाजतु. Bitumen.

गिरिदोष. ७--१०९, ८--२, १०--८९. पर्वत से आया हुआ पारद का दोष. Impurities obtained by mercury in the stony mines of mountains.

गिरिमस्तक ७--२६. सोरक = सोरा, according to रसकामधेनु. Nitre or nitrate of Potash.

गिरिसानुज ७--२०. = शिलाजतु, Bitumen.

गुग्गुलु.७--९१, ८--३७. गूगुल. Balsamodendron Mukul, Hooker.

गुञ्जा. ४--४७, ५--४१, १०--३४. घुंघुची. Seed of Abrus precatorius, Linn.

गुड ५--४१, ७--७५. गुड. Treacle, molasses.

गुडमोदक १८--६. गुड की मिठाई Sweemeats made of treacle.

गुडूची ७--१०८, १७--९७, गिलोय, गुडूची. Tinospora cordifolia, Miers.

गुणत्रयः—यहाँ तमः, रजः और सत्व के अनुसार रस, हेम और वज्र से सम्बन्ध है (रसकामधेनुः) Hera रस, हेम and वज्र are referred to by three qualities तमः रजः and सत्व respectively.

गृध्रकर्णी १८--१०, गृध्रपर्णी = गृध्रपत्रा.

गृध्रविट् १५--५७, गीधड़ की विष्टा, Faeces of a valture.

गृध्रविष्टा १०--६१, गृध्रविट् देखिये, See गृध्रविट्

गृहकन्या १०--४५, १४--१४४, घृतकुमारी. Aloe Vera, Linn.

गृहधूम १२--१२३ मकानका धूआं Soot.

गैरिक ७--५६, ७--८३. काव-गैरू Red ochre,

गैरिकशुद्धिः ७--८४. गैरूकी शुद्धि. Pnrification of गैरिक.

गोकर्ण १०--५० = अश्वगन्धा, (मदनपाल,); पलाश (रसकामधेनु.)

गोक्षुर, ७--१४१ गोखरू, Tribulus terestris Lnn.

गोघृत. ७--२१, ७--८६, १७--१३. गायका घी. Gow ghee or clarified butter odtained from cower's milk.

गोजल ७--२१. गोमूत्र. Urin of cow.

गोजिह्वा. ५-५, ५-१६ गोभी, गाजवाँ. Elephantopus scabns, Linn.

गोधूम. ४१-९३, गेहूँ. Wheat.

गोधावती. १७-९५ गोधापदी, Vites pedeta, Vahl.

गोधोद्धृता = नाकुली. A kind of रास्ना Vanda Roxburghii.

गोपालकी ७-१०९, गोरक्ष चाकुलिया. नागबला देखिये. see नागबला.

गोपित्त ७-८०, १४-८७, १२-१६० गोरोचना, गोरोचना देखिये. See गोरोचना.

गोपेन्द्र मण्डली. ७-१३९. इन्द्रगोपकीटपुञ्ज, वीरबहुटी कीडोंका समूह. An assemblage of coceniella of various kinds.

गोभद्द ७-३७ D. R. गोभद्द. A synonym of रसक, see रसक.

गोमय, ४-३. गोबर. Cowdung.

गोमयाग्नि ६-३२, गोबर की आग. Fire of cowdung.

गोमांस. ६-३२, ७-४, ७-७८, गाय का मांस, Beef.

गोमूत्र ७-१३, ७-५४. गाय का मूत्र. Gow' s urine.

गोरम्भा. १५-१३६. A plant probably गोरक्षा or गोरक्षी.

गोरस. ७-५४, गायका दूध. Cow' s milk,

गोरसना. ७-१०९, गोजिह्वा. गोजिह्वा देखिए. See गोजिह्वा.

गोरोचना. ८—६१. गोरोचन Coneretions rarely found in the gall bladder of the ox, or according to some in the brain of a cow.

गोल. १४-१५१, D. R. गोला = वज्रमुषा (रसकामधेनुः). A sort of preparation of मूषा in order to bind or fix रस.

गोलकः-(व्याख्या) (Defination of) १५-१८६, १६-९४, १५-१५१.

गोशकृत् ७-५४. गोमय. Cowdung.

गोशकृद्भस्म १७-१३७. गोहरीकी राख. Ashes of cowdung.

गोशृङ्ग १२-६८. गायका सींग. Cow horn.

गोसन्धी. ५-१४, एक प्रकारकी वनस्पती. A sort of plant difficult to be identified.

गोसर्पिः १७-२८, गोघृत देखिए. See गोघृत.

गोस्तनमूषा ११-१७२. एक प्रकारकी मूषा. A crucible resembling the shape of the udder of the cow.

गोस्तनी. १७–२. गोस्तनी मूषा देखिए. See गोस्तनीमूषा.

गोरम्भा. ६–१०७. हरिद्रा हरिद्रा देखिए. See हरिद्रा.

गौरीफल. ७–११३. 'अखा' इति उत्तर देशे प्रसिद्धो मृदुकण्टकिट धृक्ष (रसकामधेन) A plant known as akh'a.

ग्रीष्मसुन्दर १७–५३. पत्रशाकविशेष. Mollugo cerviana, Serige.

घ

घन ८–४२, लोहका पर्याय. A synonym of लोह.

घनध्वनि ५–५ नागरमोथा. Cyperus rotundus Linn.

घनत्व ५–२४, ७९. घनध्वनि देखिए. See घनध्वनि.

घृत, ७–५४, १२–३६४ घी. Chee or clarified butter.

घोष. ११–१९२, १३–१०, १५–७१, १६–३७. कांसी = कांस्य. Bell metal. An alloy of copper and tin.

घोष कृष्ण. (कांस्य-लौह) १७–६२, कांसा और लोहा. Bell-metal and cast-Iron.

घोषाकृष्ट. १७–१६३, कांस्य से निकाला हुआ. Extracted from घोष or Bell-metal.

च

चक्रमर्द. ५–४, १२–१५९, चकवड. Cassia Tora Linn.

चक्रमर्दकः १७–९६, चक्रमर्द देखिये. See चक्रमर्द.

चक्रयन्त्रः १५–१०७. चक्राकार यन्त्र. An apparatus of the shpe of wheel.

चक्राङ्का १५–१३८, १६–१७, चक्राङ्की देखिए, See चक्राङ्की.

चक्राङ्की ५–१९, = चक्राङ्की = सुदर्शन लता.

चक्रिका ५–१८, चक्रमर्द देखिये See चक्रमर्द.

चक्री ५–९, चक्रमर्द देखिये, See चक्रमर्द.

चटुलपर्णी १२–१७, D. R. वर्त्तुलपर्णी A plant defined in text.

चणकाम्ल ६–११८, ११–३६, चणेकी खटाई. चणकाम्लक देखिये, See चणकाम्ल.

चणकाम्लक. ५–३१, चणक लोणी. Acid of cicer arictinum, Linn,

चण्ड १८–२२८, भयङ्कर देवता–A fierce god, who is called भूतकालान्तक or destroyer of elements or existing beings.

चण्डाली ५–८, लिङ्गिनी लता, according to राजनिघण्टु, but भूम्यामलकी accoding to रसकामधेनु.

चण्डालीकन्द, १५–९४, चण्डालकन्द known as Chanda'lsak.

चन्दन. १–३९, चन्दन. Santalum Album, Linn.

चन्द्र. १३–३६९, १८–१७८ = तार. चांदी. Silver.

चन्द्रतोय. १२–१९० चन्द्रोदक देखिए, see चन्द्रोदक.

चन्द्रवल्ली = प्रसारणी, सोमलता. According to राजनिघण्टु but बाकुची and सोमा according to रसकामधेनु १८०–१४८.

चन्द्रहेम. १२–५७, चांदी और सोना का मिश्रण. The amalgam of silver and gold.

चन्द्रार्क १४–४७, १४–१४५ चांदी और ताम्रका मिश्रण. The amalgam of silver and copper "भागाः षोडश तारस्य ताम्रस्य द्वादशैकया। आवर्तितास्तु चन्द्रार्कं वर्णोत्कर्षकरद्वयम्" इति "रसकामधेनुः"

चन्द्रार्कपत्र. ९– ६३, १२–१४१, चांदी और ताम्रका मिलाया हुआ पत्ता. Plates of silver and copper alloyed to-gether.

चन्द्रार्कादि. १८–२१६. चन्द्र, सूर्य वगैर. The moon, the sun and the rest.

चन्द्रोदक. १२–१८९, ९६–१२ चन्द्रजल १९४–९७–१२ १९७ moon-water or rather fullmoon water.

चपल. ७–२, ७–२३ एक प्रकारका महारस, या चपल नामक धातु One sort of महारस "(ईश्वरस्य) माक्षिकं कर्णजमलं सौवीराद्यं च नेत्रजम्। नासामलं तु चपलं मलं देहस्य टङ्कणम्॥ नानाविधं विजानीयात् चपलाख्यं महारसम्। नाग–तार–विष–स्वर्ण–वंग–तीक्ष्णादि पूर्वकम्॥ त्रिंशत्पलमितं नागं भानुदुग्धेन मर्दितम्। विमर्द्य पूटयेत्तावत् यावत् कर्षावशेषितम्। न तत् पुटसहस्रेण क्षयमायाति सर्वथा। चपलोऽयं समाख्यातो वार्तिकै र्नागसम्भवः॥ इत्थं हि चपलः कार्यो वंगस्यापि न संशयः॥

चपलबन्धः १५–६२ चपल से पारद को बांधना या स्थिर करना. Binding or fixation of mercury by चपल, See चपल.

चपलालय. ७–१०७, १६२ कान्त लोहका एक प्रकार. कान्तलोह देखिए. A sort of कान्तलोह, see कान्तलोह. "चपलालयं काललोहम्" इति रसकामधेनु.॥

चपलशुद्धि ७–२७ चपल का शोधन. Purification of चपल.

चरमुण्डान्त ४३ शिलाजतु.Bitumen, See रसकामधेनुः ॥ (संदिग्ध)

चर्म्मार ७–४६ एक एकारका हिंगुल, दरद देखिये. One kind of दरद, See दरद.

चर्म्मार गन्धिक. ७–५० दरदका पर्याय. A synonym of दरद See दरद.

चवी ५ २५, ७–१३९ चाब = चविका. Piper chaba, Hunter.

चांगेरी ५–३१, १७–५३, १७–११८ चौपतीया. Oxalis corniculata, Linn,

चाण्डाली. १५–१३३. लिङ्गिनी लता-राजनिघण्टु के मतसे, मगर रसकामधेनु में निम्नलिखित वर्णन है "चाण्डालीति विनिदिष्टा त्रिचतुःपत्र धारिणी। सरक्ता क्षीरकन्दा च तया सूतो निबध्यते. Accoding to राजनिघण्टु, चाण्डाली is called लिङ्गिनी लता while रसकामधेनु deseribes differently as given above.

चामोकरकर ११–८२ सुवर्ण पैदा करनेवाला. Producing चामीकर or gold.

चामीकर रस. १७–८५ D. R. शाकवृक्षरस. कनक धुत्तुरका रस, see कनकरस.

चारण ११–१, १०–१० यह एक जारणका भाग है, जैसा की 'चारणेन बलं कुर्यात्' This process adds sterngth or efficacy to mercury. It is a sort of जारण, see जारण.

चिक्कस ७–९३. यवचूर्ण Barley powder.

चिञ्चा. ५–३०, ११–१८८, १५–१४८. इमली. Tamerindus Indica, Linn.

चिञ्चाक्षार. ८–६०, इमलीका क्षार. Alkaline ash of tamarind furit.

चिञ्चाफलाम्ल ८–२०, इमलीके फलकी खटाई. Acid of tamerind fruit.

चिञ्चाम्ल. १७–६४. इमली की खटाई. Acid of Tamarind or it means Rumex Vesicarius.

चिञ्चारस. १७–११५. चिञ्चाकारस या मगज Juice or pulp ot Tamerind fruit.

चिञ्चास्थि ६–९० चिञ्चा बीज. The seed of tamarind friut.

चित्र ९-१७, १२-३६४, चित्रक देखिए. See चित्रक.

चित्रक ७-११६, ७-१३३, १२-१३८, चीता. Plumbago zeylanica, Linn.

चित्रकक्षार. ६-३४, चीताका खार. Alkaline ash of चित्रक. चित्रक देखिये, See चित्रक.

चित्ररस. १७-११९, चित्रकका रस. Milky juice of चित्रक. चित्रक देखिए, See चित्रक.

चिरबिल्व. १८-१२६, कञ्जा, करञ्ज. करञ्ज देखिए, See करञ्ज.

चीर ४-३५, वस्त्र. A rag.

चुम्बक ६-४०, एक प्रकारका कान्त या कान्त पाषाण, कान्तपाषाण. देखिये. A sort of कान्त or कान्त पाषाण, see कान्तपाषाण.

चूर्ण ६-३७, चूर्ण या बुरादा. A powder prepared by pounding dry substances in a mortar with pestle and passing it through cloth.

चूर्ण पारद. ७-५०, दरदका पर्याय. A synonym of दरद. दरद देखिये, See दरद.

चूलिका ९-७ नोसादर, नवसार इति रसकानधेनुः। चूलिक लवण देखिए, See चूलिका लवण.

चूलिका लवण ९-८, ९-१५, ५-३२. एक प्रकारका लवण. कुछ लोग इसे नवसार या नवसादर कहते है. A sort of salt, called by some writers as नवसार or नवसादर. (Vide Hindu chemistry Vol. I. Page 96.)

छ

छत्री. १५-२०६, पारदका दोष, इसमें पारदका आकार छत्री के माफक होता है. Disfigured mercury having the shape of umbrella.

छागक्षीर ७-९३, १७-२९, बकरीका दूध. Goat-milk.

छागमूत्र १७-६०, १७-१६३, बकरीका मूत्र. Goat-urine.

छुछुन्दरी ८-३४, A musk-rat or shrew mole.

छेदन. ४-४, छेनी. A graver.

ज

जतु. ७-२१, शिलाजतु. Bitamen.

जंतुघ्न १८–६, हिंगु Assafoetida.

जम्बीर. ५–३१, ६–११, ११–१८, १२–३७५ जम्बीरी निंबु. Citrus medica, Linn.

जम्बीरक द्रव. १७–१०८, जम्बीरका रस Fluid of जम्बीर fruit.

जम्बीर तोय. १८–१९६. जम्बीर रस देखिये. See जम्बीर रस.

जम्बीर फल. ६–११३, जम्बीरी निम्बूका फल. Friut of जम्बीर,

जम्बीर रस. १२–१६२. जम्बीरका रस. Juiee of जम्बीर fruit.

जम्बीराम्ल. ९–१५, १५–१२१. जम्बीरकी खटाई. Acid of जम्बीर fruit. जम्बीर देखिये. See जम्बीर,

जया. १०-५२. विजया = भङ्गा = भांग या जपापुष्प or पीतक्षीराढ़की-पत्रच्छदनातीव लम्बिता। विख्याता। विख्याता विजयेत्येषा रस बन्धविधीहिता'' ''रसकामधेनुः'.

जलबिन्दुजा. ५–२, D. R. जलबिन्दुका and जलचिञ्चिका.

जलूकाबन्ध. ११–१९८. D R. जलौका बन्ध. ''जलौका पङ्कबन्धः स्यात्'' इति रसकामधेनुः। One of the seven steges of mercury.

जाति १८–११२. जातिफल. myristica fragrans, Houtt.

जातिकाफल. १८–२०० जाति देखिये. See जाति.

जाम्बुनद. १२–११८, सुवर्ण. Gold supposed to be obtained in the sond of जम्बूनदी, a river issuing from mount सुमेरु and passing through जम्बुद्विप.

जारण १०–१० १०–२५, ११–१, ७१–६०, ६३–१०, ११ धातुओं या खनिजों की भस्म बनाना. Calcining or oxvdizing metals or minerals,

जारण २–६, ८–५३, १०–२६, ११–२, ११–९८ भस्मीकरण, Calcination ''जारणा नाम गालन-पातन-व्यतिरेकेण घन हेमादिग्रासपूर्वक पूर्वावस्था प्रतिपन्नत्वम् 'रसेन्द्र चिन्तामणि' खेचरी जारणाः २–६, ११–९८, भूचरी जारणाः ७–६, ५८–५३, ६४–२६, ७४–९८.

जारणाविड़ ९–३, धातु या खनिजों को बारीक या भस्म करने के लिये बिड़. बिड़ देखिये. A vida used for calcining metals or minerals. See बिड़, Vide also Hindu Chemisiry Vol. 1. pp. 72 and 73.

जीरकद्वय १५–१९५, सफेद और काला दो प्रकार का जीरा. Two sorts of जीरक or cuminum cyminum, Linn., such as white and yellow जीरक

जीव १४–१९, जीवक देखिए, See जीवक.

जीवक १४–५१, अष्टवर्ग की एक चीज Pentaptera tomentosa.

ज्योतिष्मती ८–८३, १२–१४४, १७–१११, मालकाङ्गणी, cardiospermum Halicacobum, Linn.

ज्योतिष्मती तैलः १२–१४३, मालकाङ्गणीका तैल. Oil of ज्योतिष्मती creeper. See ज्योतिष्मती.

ज्वालामुखीक्षीर. ६-११८, लालचित्रक का दूध. Milky juice of Red चित्रक. See चित्रक.

ज्वालिनी. ५–५, ७–१२२, १५–१८३, १५–१९५, = मूर्वा. Sansevieria Zeylancia, Willd.

ज्वालिनी बीज. ७–६९, मूर्वा बीज. Seed or root of ज्वालिनी. See ज्वालिनी.

ट

टङ्क ७–८, ७–१२१, १५–५१, सोहागा. See टङ्कण.

टङ्कण ४–४७, ५–४१, ६-३४, सोहागा. Borax.

टङ्कणक्षार. ५–३०, ११–२७, सोहागाक्षार. Alkali of टङ्कण (Borax).

त

तक्र. १८–१५४, छाछ. मट्ठा. "तक्रं पादजलं प्रोक्तम्" Buttermilk with a fourth part of water.

तक्रभक्त. १८–१२४, छाछ में पकाया हुआ भात. Boiled rice with buttermilk.

तगर. १५–१५८, तगर Taberaemontana coronaria Br.

तन्दुलीयक. १८--१२, = विडङ्ग = भाभीरङ्ग. वायविडङ्ग Embelia Ribes, Burm.

तपनीय, १७--६१, सोना = gold

तप्तखल्व ११–११७, १८--७७, १८--८५, गरम किया हुआ खरल. खल्व देखिए A sort of खल्व. see खल्व. "द्वादशाङ्गुलविस्तारः खल्लो भवति वर्तुलः । लौहै निर्वर्त्तितो यस्तु तप्तखल्वः स उच्यते ॥ "रसकामधेनु"

तमा. १५–१५३, D. R. उत्तमा. इरफा रेवडी. भुई आंवला. भूम्या-मलकी.

ताप्य ६–९०, ७–१४, ८–२२, ८–३९, ८–४७, ८–६७, ११–१९४, १२–१७४. १८–१२, १८–१५३, सुवर्ण माक्षिक. तापी नदीमें तयार होने से ताप्य कहलाता है। A sort of iron pyrites, sulphide of Iron, generally implying suvarnamakshika, so called for its being produced in the bed of river Tapi. See P. C. Ray's Hindu chemisstry Vol. I. P. 84

ताप्यसत्व. ८–४२, ८–७२, ११–४७. सुवर्णमाक्षिकका सत्. Essence of ताप्य. See ताप्य.

ताम्बुल १८–२००, ताम्बूलपत्र देखिए. See ताम्बूलपत्र.

ताम्बुलपत्र. ६–१११, पान. Leaf of Piper betel, Linn.

ताम्बूली. ५–१३, ११–२५, ११–२५, पान. Piper betel, Linn.

ताम्र. ७–९७, ७–१०५. तांम्बा. Copper.

ताम्रपर्णी. ५–२०, मंजीठ-ताम्रपत्र. २०–७,१०६.

ताम्ररञ्जक ७–३७, रसक का पर्याय A synonym of रसक, see रसक.

ताम्रशोधन. ७–१०६ तांबे का शोधन. Purification of copper.

तार. ७–१०४, १८–१५३, चांदी. Silver, See रजत.

तारजीर्ण १८–२३, चांदी के साथ मर्दित पारद. Mercury calcined with silver.

तारदल. १७–७९, तारपत्र देखिए. see तारपत्र,

तारपत्र. १२–९४, चांदी का पत्ता. A plate of silver.

तारपत्रक. १७–३४, चांदी का पत्ता. A plate of silver.

तारपिष्टि. १७–७३, चांदी की पिष्टी. पिष्टी देखिए. पिष्टी of silver, see पिष्टी.

तारबीज. ६–६९. A short of preparation of silver, purified by white वर्ग or aggregate of dying plants or white materials.

तारशोधन ७–१०४, चांदी का शोधन Purfication of silver.

ताराभ्र. ६–२६, ८–३१, ११–४८, चांदी और अभ्रक का मिश्रण. An amalgam of silver and mica.

ताराभ्रक. १६–९३, ताराभ्रक देखिए, see ताराभ्र

तारारिष्ट. ११–१८०, ११–१९६, १४–९०, चांदी का प्रयोग विशेष. Arista or decoction of silver.

तारार्कं. १७--४२, चांदी और तांबा. Silver and copper.

ताल. ६--९५, ८--६७, ७--१४८, हरिताल. Orpiment.

तालक. ६--८५, ६--९०, ७--५६, १८--१४४, ४७, ७, ७४, ताल देखिए, see ताल.

तालक बन्ध १५--१११, हरताल का बांधना या रोधन, Binding or fixation of orpiment.

तालकशुद्धि ७--७७, हरताल का शोधन, Purfication of orpiment.

तालमूल. १७--९३ तालमूली. Curculigo orchioides, Gaertu,

तिक्त शाक ११--२६, वरुणवृक्ष. Crataeva religaiosa, Forst.

तित्तिड़ी ५--६ इमली. Tamarindus Indica, Linn.

तिनिश. ७--१४२ Ougenia dalbergioides, Benth.

तिन्तिणी. १२--१७०, इमली. Tamerind.

तिन्तिणीक. ५--३१, तिन्तिणी देखिए. see तिन्तिणी.

तिन्दुक. ६--११, ६--२३, १२--३७२, तेंद. Diospyros Embryopteris, Pers.

तिमिर. १४--१५० तमाल. Garcinia Xanthochymus, Aook. f.

तिल. ५--३०, ७-७५, ७-९३, ९--१०, १८--१२४, तिल्ली, तिल. Seasamum Indicum, DC.

तिलज. ५--३४, तिल्ली का तेल. Oil of tila, see तिल.

तिलतैल. ७--४८, १८--१२५, तिल्ली का तेल. Oil of tila, see tila.

तिलपर्णी. ११--४१, १५--८६ तिलोनी नामक शाक विशेष.

तिलपिष्ट. १२--२७०, तिलकुट. Sweet cake made of tila, see tile.

तीक्ष्ण. ७--९८, ७--१०७, १८--१६, १८--१.१, लोहा. Iron, see तीक्ष्णलोह.

तीक्ष्ण. १८--१२५. D. R. तिक्त. Spices with hot end pungent qualities.

तीक्ष्णचूर्ण. ७--१२५, १६--३५ लोहचूर्ण. Iron filings or iron powder.

तीक्ष्णजीर्णं. १८--२५, लोह के साथ जारण किया हुआ पारद. Mercury calcined with iron.

तीक्ष्णलोह. ७--१०७, ८--५१, लोहका भेद. A metal called तीक्ष्ण,

or iron, also called kantaloha or kantiloha or kanchiloha.

तीक्ष्णशुल्व कपालिन् १४–७७, १४–१३७, कपालियों की पद्धति से लोह और तांबे के योग से धातु या खनिज वस्तुओं का मारना, A process of dying metals or minerals with the aid of iron and copper according to the method adoptd by the कपालिका s.

तीक्ष्णाभ्र ८–३१, ८–७०, ११–४८, लोह और अभ्रक का मिश्रण An amalgam of iron and mica.

तीक्ष्णाभ्रक ८–६२, See तीक्ष्णाभ्र.

तुत्थ ७–३७, ७–१२६, ११–१८७, तूतिया, नीलाथोथा; Sulphate of copper.

तुत्थक १५--२०२, See तुत्थ.

तुम्बी. १५--१२२. कद्दु या कडवी तुम्बी. A long gourd.

तुम्बीक्षार. ६--३४. कद्दुका खार. Alkali of तुम्बी. See तुम्बी.

तुम्बुरु. ७--११३. ११--२६ चीरफल, नेपाली धनिया. Xanthoxylum alatum, Roxb.

तुम्बुरुद्रव ११--२३. तुम्बुरु का रस, juice of तुम्बुरु, see तुम्बुरु.

तुरसिंहनी १२–६६. द्रव्यविशेष. D. R. कुररीदरी. A sort of ओषधि or plant, difficult to be identified.

तुलसी ५--७, ७--९, १५--१३८ स्वनाम प्रसिद्धा, तुलसी, Ocimum sanctum, Linn.

तुला ४--४ तराजु. A fine balance of gold--smiths, the scales.

तुवरी. ११--२७ कांक्षी = सौराष्ट्री. फिटकरी. Alum-earth, see. सौराष्ट्री.

तुष, तुषा ४--३१, ४--३७ धानका छिलका. The husk or chaff of rice.

तुषाग्नि. १५--१६१. १५--१७०, धानके छिलके की अग्नि, Fire of chaff

तृणज्योति ५--१९. एक प्रकार की दिव्यौषधि. A sort of दिव्यौषधि, difficult to be identified.

तृणोदक १२--२८६. एक प्रकार का खनिज जल. A sort of mineral water.

तृणौषधि. १२--७५, एलवा. Vegetable ओषधि or plant.

तैल २--५, ५--३४, ८--८२, तेल, oil.

तोयवल्ली. ५--१३, अमृतवल्ली called रुदन्ती in चित्रकूट.

तोल, तोलक १०--३४=१ एक तोला=१२ mashas, weight of one rupee.

त्रपु. ७--११०. रांगा. Tin देखिए, see बंग.

त्रिकटु १३--२५, १६--८३, कटुत्रय देखिए, see कटुत्रय.

त्रिकटुक. ७--१३८, १०--५१, त्रिकटु देखिए, see त्रिकटु.

त्रिकर्षमूल. ६--९२, सोंठ, अतीस और नागरमोथा. The root of त्रिकर्ष. Viz. नागर, अतिविषा and मुस्ता.

त्रिक्षार, ५--३०, ७--१३८, सोहागा, यवक्षार और सज्जिक्षार. Three kinds of alkalies i. e. टंकणक्षार, यवक्षार and सज्जिक्षार.

त्रिदण्डी. ५--१९, १८--१८४. एक प्रकार की लता. A sort of creaper "सपुष्पालिलतोपेता रक्तव्यस्तफलान्विता। रसबन्धविधौ प्रोक्ता त्रिदण्डीति कृताभिधा" ॥ रसकामधेनु ॥

त्रिपर्णी. ५--६, शालिपर्णी. Desmodium gangeticum, DC.

त्रिपुष्प ७--७८ तीन रंग के पुष्प. सफेद, लाल और पीले. Flowers of three colours. i. e, white, red and yellow.

त्रिफल, ७--२१, त्रिफला देखिए see त्रिफला.

त्रिफला. ६--५९, ७--१३८, १०--३९, १०--५६, १२--२७६, १८--१६, हर्रा, बहेड़ा और आंवला. Aggregate of three myrobalans आमलकी, हरीतकी and बिभीतक; see आमलकी and बिभीतक in their respective places. हरीतकी chebulic myrobalan.

त्रिफला क्वाथ. १८--१६ त्रिफला का कषाय. Decoction of three myrobalans.

त्रिमधु. १५--३६; मधु, घी और चीनी. Aggregate of 3 sweats.

त्रिलोह १२--२४३, सोना, चांदी और तांबा. Aggregate of 3 metals i. e. gold, silver and copper.

त्रिशूली. ५--१८, एक प्रकार की लता. A sort of creeper. "त्रिफलाकार पत्रा या शम्याकफलवत् फला। त्रिशूलिनीति विख्याता" रसकामधेनुः.

त्रुटि, १०--३२, १५--८८, इलायची या एक प्रकार का छोटा सा वजन. The smallest weight and measure used by physicians.

त्रैलोक्य जननी १२--२८; अजनायका या अञ्जनाभिधा नामकी एक प्रकार की महौषधी. A sort of महौषधी called अजनायिका or अञ्जनाभिधा,

त्र्यूषण १२--६. त्रिकटु देखिये, see पिप्पली "पिप्पली शृङ्गवेरञ्च मरिचं त्र्यूषणं विदुः."

त्वक् क्षीर. ६--९८, वंशलोचना, वंचलोचन, Bamboo mana.

द

दग्धरुहा ५--१७, दग्धरोहा देखिए, see दुग्धारोहा.

दग्धारोहा. १२--१४९, जलाने के बाद उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की महौषधी, A sort of महौषधी which grows a new after being burnt.

दग्धोर्णा. ११--६७ जलाया हुआ ऊन. Burnt wool.

दध्यम्ल. ७--४८, १७--९३, दही की खटाई. Acid of दधि or curdled milk.

दधिं. १८--१२५, दही. Curdled milk,

अनुजाम्ल, १७--१२१, अम्लवेतस "रस कामधेनु", अम्लवेतस देखिए, see अम्लवेतस.

दन्त १७--१९, दांत. Tooth.

दन्तिनी. ५--१५, दन्ती देखिये, see दन्ती.

दन्ती. १७--९५, जमालगोटा (Baliospermum montanum Mull.)

दन्तीदन्त. ७--१३५, जमाल गोटे का दण्डा. दन्ती देखिये. A stem of दन्ती, see दन्ती.

दरद. ७--२, ८--५, ८--३९. हिङ्गुल Cinnabar.

दरदशुद्धि ७--५२, हिंगुल की शुद्धि. Purification of cinnabar.

दरदायसः. ११--९४. हिंगुल और लोह का योग. Combination of cinnabar and iron.

दर्दुराभ्रक. ६--४, ६--५, अभ्रक का भेद. एक प्रकार का अभ्रक. A sort of mica.

दल. २--५, १२--१६३, दलं 'लोहादिकरणं शुभम् । जारणाविधिहीनस्य द्रव्यसाधनकारणम् 'रससार.' A preparation of several metals or minerals by purifying or refining them by other metals and minerals before they have undergone the process of calcination.

दार्वी ६-२८, दारु हरिद्रा. Berberis asiatica Roxb.

दाली ७-१३३, देवदाली देखिये, see देवदाली.

दिव्यौषधि (धी). १२-७३, १२-८०, १५-१३९, अपूर्व औषधी. Plants of diving character, 64 in number, also called कुलौषधि.

दीपयन्त्र. १४-१२९, दीपिका यन्त्र "तिर्य्यक पातन स्थानमेतत्" An apparatus called Dipika which occupies the place of तिर्यक् पातन यन्त्र.

दुर्द्रावी १५-२०६, दुर्बद्ध पारद. Mercury not properly fixed.

दुर्मेली १५-२०६ न मिलनेवाला पारद. Mercury not properly mixed.

देवदारु. ८-८० देवदार, Cedrus Deodaro, Loud.

देवदाली. ५-१४, ५-१८, ५-२३, ७-९० बंदाल Andropogon serratus, Retz.

देवदालीदलद्रव ९-९, देवदालीके पानका रस. Liquid extract of the leaf of देवदाली. See देवदाली.

देवदालीफलरज. ७-११८ देवदाली चूर्ण. The dust or pollen of देवदाली fruit.

देवदालीरस. ७-११, ७-१२८, देवदालीका रस. The miky juice of देवदाली. See देवदाली.

दोला. १५-२०५, १६-७, दोलायन्त्र देखिए, see दोलायन्त्र.

दोलायन्त्र. ४-७, ११-३३, ११-११५, एक प्रकार का यन्त्र. A suspension apparatus, see P. C. Roy's Hindu chemistry Vol. 1 Page. 121.

दोलास्वेद. ५-७, ६-१०८, दोलायन्त्र से स्वेद करना. Persperation or fumigation by Dola opparatus.

द्रव्यसंस्कार, १४-७६, सोना, चाँदी वगैर वस्तुओं का शोधन करना. Purification of objects-such as gold, silver, lead & c.

द्राक्षा. १८-१२५, अंगूर. A grape.

द्रावक. ६-४० एक प्रकार का कान्तपाषाण. कान्तपाषाण देखिए. A sort of कान्तपाषाण. See कान्तपाषाण.

द्रावक पञ्चक ६-३९, ७-९२, द्रावणपंचक देखिए. See द्रावणपञ्चक.

द्रावण १०-१०, पारदका एक प्रकार का संस्कार. Liquefaction, a sort of संस्कार of mercury.

द्रावण पञ्चक ५-४१. गुञ्जा, सोहागा, मधु, घी और गुड़ यह पांच द्रावक पदार्थ. Five liquefiers or Liquefacients viz. गुञ्जा or Abrus precatorius, टङ्कण or borax, मधु or honey, घृत or ghee and गुड or molasses.

द्राविक ५-२३ टिघालने वाला. Liquefier or Liqufacient.

द्रुतबन्ध. १५-१६६ तारल्यको बांधना. Binding or fixation of liquids.

द्विनिशा. १९-१५. हलदी और दारुहलदी. दो प्रकार की हलदी. Two sorts of निशा or Turmeric, viz हरिद्रा and दारुहरिद्रा.

द्विपदी. १२-८. द्विपदिका or द्विपादिका = नागकेशर वृक्ष. Mesua ferrea, Linn.

द्विपदारजः १२-३७, १४-३. द्विपदी या नागकेसर के पुष्प का चूर्ण. Dust or pollen of द्विपदी or नागकेशर flower.

द्विपदीरस. १४-३८, १५-२. द्विपदी या नागकेशर का रस. Juice of द्विपदी or नागकेशर.

द्विपर्णी ५-६. शालपर्णी और पृश्निपर्णी. It mean both the शालपर्णी and पृश्निपर्णी; शालपर्णी-Desmodium gangeticum, DC, पृश्निपर्णी = Uraria lagopoides, DC.

द्विमुखा. ७-१३९ = जोंख = जलौका यह बारा प्रकारकी होती है. ६ सविष और ६ निर्विष. Leeches; They are of twelve varieties, of which first six are venomous and second six are anti-venomous.

द्वन्द्वन. १५-१७३, १५-४२ दो खनिजों का या दो धातुओं का मिश्रण. Compound of two metals or minerals. D. R. बन्धन.

द्वन्द्वमेलामन, (द्वन्द्वमेलापका) २-५ दोनधातु या खनिजों का मिश्रण An amalgam, or a compound of metals or minerals.

द्वन्द्वमेलापनौषध. ८-८५. धातुओं या खनिजों को एकत्र करने वाली दवाई या वनस्पती. जो की ८, पृष्ठपर दी गयी है. Plants or drugs which have capacities or properties to com-

bine metals or minerals together such as are described on pp. 56, 57.

द्वयार्द्रक. ७–२१, सूखी और गीली, दो प्रकार की आदी, Ginger and dry ginger.

ध

धत्तूर १७--२, १८--७४, धत्तूर देखिये. See धुत्तूर.

धम ७--१२९, फूङ्कने की क्रिया. The act of blowing.

धमनी ४--२, धोंकनी. A bellows.

धवाग्नि १२--१६९, धवकी अग्नि. The fire of धव Anogeissus latifolia, Wall.

धातकी ८--३७, धायका फल. Woodfordia floribunda, Salisb.

धातु ७--९१. गिरिमृत्तिका = गेरू, Red ochre.

धातुमाक्षिक ७--१४ रौप्यमाक्षिक according to रसकामधेनु, but स्वर्णमाक्षिक according to राजनिघण्टु. माक्षिक देखिये, See माक्षिक.

धात्री १२--१६, १२--३६४, १८--७, आंवला. आमलकी देखिए. See आमलकी.

धात्रीफल ७--१२४ आंवला का फल. The friut of आमलक, आमलकी देखिए, see आमलकी.

धात्रीरस १८--९, १२--१५८, आंवले का रस. धात्री देखिए. Juice of धात्री, see धात्री.

धान्याभ्रक ६--१४, धान के साथ अभ्रक को रगड़ देना. A preparation of mica with sati rice.

धान्याम्ल ७--२२, १०--४०, ११--२९, ११--६७, D. R, सुधाम्ल, काञ्जिक देखिए. sour gruel made of the fermentation of rice--water, see काञ्जिक.

धान्याम्लक ६--२१ धान्याम्ल देखिए. See धान्याम्ल.

धुत्तूर १५--६३, धत्तरा. Datura Metal, Linn.

धुत्तूरक-रस १५--११३. धत्तूर का रस. Milky juice of datura Metal. धुत्तूर देखिए, see धुत्तूर.

धुत्तूरद्वय ७--११६, सफेद और काला धुत्तूरा. White and black Datura Metal.

धूमज ११--६७ धूमोत्थ देखिए. See धूमोत्थ.

धूमसार ७--९१, १०--४६, ११--१८८ गृहधूम = मकान का धुवाँ, The soot.

धूमावलोकिन् १४--३२ पारद की बिलकुल सूक्ष्मावस्था. Mercury in a certain stage or the best refined stage of mercury, which engender खेचरता or the sky-going effacacy.

धूमोत्थ. ११--१८७, वज्रक्षार. Most probably carbonate of Potash.

धूलि १५--१६४, पारद की एक अवस्था. A stage of mercury.

न

नक्तमाल. ७--१०८, ७--११७, करञ्ज देखिए. See करञ्ज.

नक्ताज. ६--३४. नक्त का या नक्तमाल का तेल. नक्तमाल देखिये. Oil of नक्ता or नक्तमाल, see नक्तमाल.D.R. तिक्तज = इङ्गुदीफलज.

नभः ११--५९, अभ्र. अभ्र देखिये. See अभ्र.

नरकपाल. ८--२८. १४--१५८, आदमी की खोपड़ी. Human skull.

नरकसा. ५--१०, Probably नीलवृक्ष. Indigo plant.

नरजीव. १२--८६, नरजीवा देखिए. See नरजीवा.

नरजीवा. ५--१३, D. R. नरजीह्वा. A plant difficult to be identified.

नरपित्त. १५--९१. मनुष्य का पित्त. Human bile.

नरलोम. ११--१६९. आदमी के बाल.

नवसार: १०--३८, ११--३४, ११--८८ इ. नवसागर = नोसादर. Sal ammoniac. Vide Ray's Hindu chemistry Vol. 1 P. 96, 97.

नष्टपिष्ट. १४--६, १८--१८०, स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वापादनं हि यत् विद्वद्भिर्जितसूतोऽसौ नष्टपिष्टः स उच्यते ॥ इति रसकामधेनुः ॥ पारद से पिष्टी बनाना; पारद की एक क्रिया विशेष. When Mercury being subdued. loosing its own character takes the form of a paste, it is called नष्टपिष्ट.

नाग. ७--१०४, ७-७८, नागन ११-१६६, हाथी का मूत्र इत्यादि. सीसा. Lead.

नागकन्या. ८--७७. नागकुमारिका, गुडूची, गुडूची देखिये. See गुडूची.

नागकर्णी ५-२०, आखुकर्णी, मुसापर्णी, गुडूची. Salvinia cucullata, Roxb.

नागजिह्वा. ५-२० अनन्ता. अनन्ता देखिये, see अनन्ता.

नागताप्य ८-३१, रौप्यमाक्षिक और सीसाका मिश्रण. An amal gam of lead and sulphide of iron.

नागदल. ११-१६८, शीसाका पत्ता. A plate or leaf of lead.

नागदोष. १०-४८, शीसाके संयोग से पारद में होने वाला दोष. The impurity of mercury caused by the amalgum or alloy of lead.

नागपत्र. ११-१८२, १७-२३, नागदल देखिये. See नागदल.

नागबला. १५-४, १०-३८, १५-१६८, बला चतुष्टय में का एक भेद. Sida Spinosa, Linn.

नागर १८-७, १८-१३१. नागरमुस्तक, नागरमोथा. एक प्रकारका घास. A sort of grass called nagar, cyperus pertenulis.

नागवल्ली. ५-२७, ६-११४, ताम्बूलपान. Piper Betle.

नागबीज. ८-६६ शीशे का एक योग. A preparation of lead.

नागशुण्डी. ११-४४, हाथी शुण्डी. Heleotropium indecum, Linn.

नागशोधनः ७-११२, शीसेका शोधन. purification of lead.

नागाभ्र. ८-३०. ८-३१, ११-४८ ११-१८७, इत्यादि. शीसा और अभ्रक का मिश्रण. An amalgam of lead and mica.

नागाभ्र. ६-४, ६-५. एक प्रकारका अभ्रक. A sort of mica.

नागाभ्रकपालिन् १४-१३७, कापाली लोकों की पद्धति से शीसा और अभ्रक से धातुओं का या खनिजों का मारण. A process of dying metals or minerals with the aid of lead and mica according the method adopted by Kapalikas.

नागास्थिभस्म. १७-१३९ हाथी का हड्डीका भस्म. Bone-ash of an eelphant.

नागिनी. ५-२५, (१) नागदन्ती, नागिनीत्युच्यते वल्ली नागभोगसमाङ्गिका। सर्पादिकविषघ्नी च सा स्वच्छरसबन्धिनी ॥ रसकामधेनु ॥ सर्प के शरीर के मापकी एक लता ॥

नागिनीकन्द १२–१४१ नागिनी नामक वल्ली का कन्द. नागिनी देखिए. Under ground stem or bulbous root of नागिनी, see नागिनी.

नारङ्ग. ५–३१, १२–३७५. १८–१२६ = नागरङ्ग, संत्रा, नारङ्गी. Citrus Aurantium, Linn.

नारङ्गाम्ल ७–९ नारंग का अम्ल. नारंग देखिये. Acid of नारंग, see नारंग.

नारिकेल १२–३७७, नारियल. Cocouut palm.

नारी. ७–१३९, अश्वबला इति प्रसिद्धा ओषधि. अश्वबला नाम से एक प्रसिद्ध ओषधी. A plant known as aswabala.

नारीक्षीर १२–१०० स्त्रीस्तन्य देखिये. See स्त्रीस्तन्य.

निगल. १५–१६४, १५–१६७, निगड. पारद के बंधन के लिये और मुषा के ऊपर लेप करने के लिये एक प्रकार का योग. A sort of preparation, which acts as a fetter to bind mercury, and with which the cruceble is smeared or plastered.

निचुल ६–३७, ६–२१, ७–१२३. इत्यादि Berringtonia acutangula Gaertn.

निचुलक्षार. ९ ९, ९–१६, निचुल का क्षार. निचुल देखिये. Alkally of निचुल, see निचुल.

निम्ब ११–३४, १७–१३ नीम. Melia Azadirachta, Linn.

निम्बपत्र ६–११०, निम्ब का पत्ता. निंब देखिए. Leaf of निम्ब see निम्ब.

निम्बुक ७–७३ निबू. Citrus medica Linn.

नियामक १०–५८, पारद को रोकनेवाली. That which restrains mercury.

नियामकौषधी ५–७ पारा को रोकनेवाली औषधी. Plants which restrain mercury.

नियामन. ५-१ पारदको रोकना. Restraining of mercury. रोधनाल्लब्धवर्गस्य चपलत्व निवृत्तये क्रियते पारदे स्वेदः प्रोक्तं नियामनं हि तत्. "रसकामधेनु." वीर्यानयनसंस्कारो नियामकम् 'रसमार्तण्डः'

निरुत्थ ७–१४९, ८–६१, मृत = भस्मीभूत. Killed.

निरुद्गार. १०–४५, कण न छोडनेवाला. Which does not eject any slab or particle.

निरुद्गारि ११–७६, उद्गार या बबूले रहित. Which has no उद्गार or bubble.

निर्गुण्डी १०–५३, मेवडी, सम्भालु. Vitex Negundo, Linn.

निर्गुण्डी पत्र ८–२०, मेवडी का पत्ता, निर्गुण्डी देखिए, see निर्गुण्डी.

निर्गुण्डी रस ७–१०६, मेवडी का रस. निर्गुण्डी देखिए, juice of निगुण्डी. See निर्गुण्डी.

निशा ७–३५, १२–१२०, ७–५५, हरिद्रा देखिये. See हरिद्रा.

निशाचर ११–४, १२–१६, सोम. सोम या सोमलता देखिए. Soma, see सोम or सोमलता.

निशाचररस १२–८, १२–१३ इत्यादि सोमलता का रस. सोमलता देखिए, juice of सोमलता, see सोमलता.

निषेक ४-५४, ७–११७, १२–४३, इत्यादि. किसी धातु को गरम कर पानी में डुबोना. Immersing any hot metal into water. तप्तस्याप्सु विनिक्षेपः। निवापः स्नपनञ्च तत् ॥ रस. स. ॥

षे

निष्पाव ७–९३ बोडा. Vigna catiang, Endl,,

नीलकाच १६–५३, काचनोन, Black salt.

नील चित्रक. ५–९ काला चिता, Black Plumbago zeylanica Linn.

नीलज्योति. ५–१९, एक प्रकार की दिव्यौषधी. पैछान के लिये कठीण. A sort of दिव्यौषधि, difficult to be identified.

नीलपुष्प. ६–१२० शायद नीला पोखराज. Probably means blue topaz.

नीलसिन्दुरी. १५–१६८, नीलसिन्धुवार. नीले रंग की मेवड़ी, संभालु. Blue Negundo.

नीली. ५–५ नील. Indigofera tinctoria, Linn, Indigo plant.

नीलीनिर्य्यास. ११–१३३ नीली का गोंद. Expressed juice of नीली or Indigo plant.

नीलोत्पल. ११–१३४, यहां नीलक से तालुक है, Here means saphhire.

नृकेश, १४–१५९, आदमी के बाल. Human hair.

नेत्ररोगारि. ७–३७, रसकर्पूर का पर्याय. A synonym of रसक.

प

पक्क बीज. ७–५०, पका हुआ बीज, यानें सोना, चांदी या दूसरे धातु अथवा

खनिजों को, भिन्न धातु या खनिजों से पकाना, Refined बीज, i. e. gold, silver and other metals or minerals, ripened with the help of other metals or minerals.

पञ्चगव्य ७--८७, ७--९४, गाय का घी, मूत्र, गोबर, दही और दूध यह पांच पदार्थ. Five objects obtained from a cow viz, ghee, urine, dung, curd and milk.

पञ्चद्रावक. ७--९, १७--४६, द्रावकपञ्चक या द्रावणपञ्चक देखिये, see द्रावकपञ्चक या द्रावणपञ्चक.

पञ्चपटु. ११--१९, पञ्चलवण देखिये see पञ्चलक्षण.

पञ्चमाहिष. ७--९४, भैंस का दूध, मूत्र, दही, गोबर, और घी, Five objects obtaincd from a buffelo. viz, curd, milk urine, dung and ghee.

पञ्चमृद् १७--११९ साधी मट्टी, वल्मीककी मट्टी, लालमट्टी, खडियामट्टी और खारी मट्टी यह पांच प्रकार की मट्टी "वल्मीक मृत्तिका भूमिः गैरिकं खटिका पटु। इत्येता मृत्तिकाः पञ्च संप्रोक्ता रसकर्मणि". Five sorts of earth viz, earth, ant-hill, red ochre, chalk and salt or saline earth.

पञ्चरत्न ११-२१५, मन्त्रसिद्धासना, कङ्काल खेचरी, इन्दिरा, क्षमापाली और निशाचरी यह पांच दिव्यौषधी. ५-२८, "कनकं हीरकं नीलं पद्मरागञ्च मौक्तिकम्" यह परञ्चरत्न है. These are five sorts of metals or minerals.

पञ्चलवण. १६-६, कांच, सैंधव, सामुद्र, बिड़ और सौवर्च्चल यह पांच प्रकारके नोन. Five sorts of salts--viz. कांच, सैन्धव, सामुद्र, बिड and सौवर्च्चल.

पञ्चाङ्ग ६-१५, ६-९१, १२-१२५, इत्यादि. पेडकी जड़, फल, पत्ता, फूल और छाल यह पेड़ के पांच अंग हैं. Five parts of a tree viz, root fruit, leaf, flower and bark.

पञ्चाङ्गुली. १७-९६, तक्रा. एक छोटी सी वनस्पती जो तक्राकें नाम से प्रसिद्ध है. A small plant known by name of Takra.

पञ्चाम्ल ८-५६, कोल, दाडिम्ब, तिन्तिडी (इमली) चुल्लक और अम्लवेतस (२) जम्बीर. नारंग, अम्लवेतस, तिन्तिडी बीजपूरक यह पांच

खट्टे पदार्थ. An aggregate of five acids such as shown above.

पञ्चावस्था ११-७५, धूम, चिटिचिटि, मण्डूकप्लुति, सकम्प और विकम्प यह पारद की पांच अवस्था. Five stages of mercury viz, धूम, चिटिचिटि, मण्डूक प्लुति, सकम्प और विकम्प.

पटु १०-६६, नमक, salt.

पटुपञ्चकम् ७-१३८, पांच प्रकार के नोन. लवण देखिए. Five sorts of salts. See पञ्चलवण.

पटोली. ५-१६. ५-२७, स्वादू पटोल, मीठा परवर, sweet Trichosanthes disica, Roxb.

पटबद्ध १२-२२ पट्टबन्ध क्रिया से बांधा हुआ पारद. mercury bound or fixed by the process called पट्टबन्ध.

पट्टबन्ध ११-१९८, ११-२०४, इत्यादि, पारद की सात अवस्थाओं में से एक अवस्था. जिसमें कि कपड़ा से बांधने के माफक पारा बांधा जाता है. One of the seven stages of mercury, bound of fixed, as if by cloth.

पट्टसन्दंश ४-४ कैंची, scissors.

पतङ्ग ५-३९, पत्तङ्ग Caesalpinia Lappan, Linn.

पतङ्गी १५-२०६, पारद की एक अवस्था. A state of mercury or mercury in a certain state. "आरोटो लोहजीर्ण; स्यात्पतङ्गी पारदेश्वरः" रसदर्पणम्

पत्राभ्र ६-३६, ११-१४, अभ्रक पत्र देखिये. See अभ्रक पत्र.

पथ्या ७-३५, ७-६१, १२-३०८ हर्रा. Terminalia chebula Retz.

पथ्याचूर्ण १२-३५५, हर्रा का चूर्ण या पिसा हुआ हर्रा. पथ्या देखिए. Powdrr of पथ्या or powdered पथ्या. See पथ्या.

पद्म १२-३७७, कमल. Lotus Nelumbium speciosum, Linn.

पद्मचारिणी ५-५, १७-७४, स्थल पद्म. Hibiscus mutabilis, Linn.

पद्मयन्त्र ११-१९४, कमल के आकार का यन्त्र. An apparatus resembling the shape of lotus.

पद्मराग ८--११, ११--१०२, माणिक. A ruby.
पनस १२--३७६, कटहर. Artocarpus intergrifolia, Linn.
पन्नग ८--५६, ८--६१, १८--४२, इत्यादि. शीसा. Lead.
पराग १८--७, चूर्ण. Powder.
परिच्छिन्नारस, ७--१३०, परिच्छिन्ना = (छिन्ना = गुडूची), गुडूची का स्वरस, गुडूची देखिये. Expressed juice of गुडूची. See गुडूची.
परिवाल, ७--१५३, एक प्रकार का लोहा, किसी के मत में यह 'हुन्नाल' है. A sort of iron, accoridng to some it is हुन्नाल. or Hunnala.
परिवाप. ७--१४४, आवाप देखिए. See आवाप.
परूषक. १८--१२५, फालसा. Grewia Asiatica, Linn.
पर्पटिका. ८--५९, सौराष्ट्री. सौराष्ट्री देखिये. See सौराष्ट्री.
पल. १०--३४, आठ तोले का वजन. A weight of erght tolas.
पलाश. ५--३०, ९--१० इत्यादि = किंशुक. ढ़ाक. Butea frondosa Roxb.
पलाशक. ७--१४८ पलाश की लाख, पलाश देखिए. The lac, being produced form the पलाश tree. See पलाश.
पलाशक क्षार. ७--१४४, पलाश का क्षार. पलाश देखिए. Alkali of palasa, see पलाश.
पलाश तैल. १५--१२४ पलाश का तेल, पलाश देखिये. Oil of पलाश, see पलाश.
पलाशपुष्पतोय. ११--११० जल में पलाश के पुष्प भिंगोकर निकाला हुआ पानी. Water in which palasa flowers are steeped or macerated.
पलाश भस्म, ११--८७, पलाश के पेड़ की राख. Ash of palasa tree.
पलाशमूल १५--३६, पलाश की जड़. पलाश देखिए. Palasa root, see पलाश.
पलाशमूलतोय, १५--१४१, जिसमें पलाश का मूल भिगाया हो ऐसा जल. Water in which palasa roots ars steeped or macerated.
पलाश बीज. १२--३७२, १८--६, पलाश के बीज. पलाश देखिये. Seeds of पलाश, see पलाश.

पिच्छिल १८--१२५, भात के कांजी के साथ मिलाया हुआ खाद्य पदार्थ. Sauce mixed with rice gruel.

पिण्डीबन्ध ६–५८, गोला बनाना. Forming into a lump.

पिण्याक ६–९२ खडी, खली = तिलकल्क. Expressed sediments of linseed or other seeds.

पित्त ५–३६, पित्त. यह पाँच प्रकार का होता है. Bile which is of five varieties.

पित्तल १८–१२५ वित्त पैदा करने वाला, Bilious, producing bile.

पित्तल १२–४९, पीतल, तांबा और जस्ता का मिश्रण. Brass, an alloy of copper and zinc.

पिनाकाभ्र. ६–७ पिनाकाभ्रक देखिए, See पिनाकाभ्रक,

पिनाकाभ्रक. ६–४, एक प्रकार का अभ्रक. A sort of mica.

पिप्पली. ८–८३, पिप्पली. Piper longum, Linn.

पिशाची तैल ७–१०४, छोटी जटामांसी जिसे आकाशमांसी कहते है उसका तेल. Oil of small variety of जटामांसी which is called आकाशमांसी.

पिष्टिका. ६–११० पिष्टी देखिये. See पिष्टी,

पिष्टका स्तम्भ. १५–१८६. पिष्ठी स्तम्भ देखिये. See पिष्टी स्तम्भ,

पिष्टी ६–११०, १०–२५, ११–६६, इ. पारद और दूसरे खनिजों की लुगदी "रसालिङ्गित व्याहारः पिष्टी" मर्द्दनाज्जायते पिष्टी A paste of mercury or other minerals,

पिष्टीस्तम्भ ८–७९, पिष्टी की रुकावट. Stoppage of flow of पिष्टी. See पिष्टी.

पीत. ६–१५० पीलारत्न. पुष्पराग देखिए. Yellow gem. See पुष्पराग.

पीतरक्तगण. ८–८२, १५–२०३, पीतवर्ग देखिए. See पीतवर्ग.

पीतगन्धक. १७–२७, पीला गन्धक. Yellow sulphur. See page 7-67.

पीतपुष्प. ७–७८. पीले रंग के पुष्प. जैसे की पीला सहचर, चम्पक वगैर. Flowers of yellow colour, such as पीत झिण्टी, चम्पक etc.

पीतवर्ग, ५–३९ पीले रंग पैदा करने वाले पांच वस्तुओं का समूह. An aggregate of five yellow odjects, producing yellow dye.

पीताभ्रक ६-२, ६-९, इ० पीला अभ्रक. Yellew mica.

पीतारूण ८-१७ पीतवर्ग और रक्तवर्ग का समूह. पीतवर्ग और रक्त वर्ग देखिए. Aggregatcs of yellow and red dyers, see पीतवर्ग and रक्तवर्ग.

पीलुक ११-२५, दिठोरी. दतवन का पेड़. Salvadora persica. Linn. Tooth-brush tree.

पीलुतैल ६-३३, पीलुक का तेल. पीलुक देखिए. Oil of पीलुक. See पीलुक.

पुट, ६-९८, इत्यादि. धातुको कण्डा और लकड़ी से जलाने को पुट कहते हैं। वह लावकपुट, कपोतपुट, गोबरपुट, महापुट, गजपुट, वाराहपुट, कुम्भपुट, भूधरपुट और भाण्डपुट इत्यादि प्रकार का होता है। "रसादिद्रवपाकानां प्रमाणज्ञापकं पुटम्" "धातुषु उपलेन्धनदाहः पुटम्" It is of several varieties such as shown लावकपुट etc,

पुटपाक ६-१०१, ६-१२२, भूजना Roasting. "द्रव्यमापोथितं बद्ध्वा दृढं रज्वादिना तथा मृल्लेपं द्व गुलं कुर्यादथवाङ्गुलिमात्रकम्। दहेत् पुटान्तरादग्नौ यावल्लेपस्य रक्तता "परिभाषा प्रदीप" पहिले द्रव्य को कूटकर उसको जाम्बुन, बड आदि के पत्तों से लपेट कर ऊपर से रस्सी से बाँधकर बाद दो अङ्गुल लेप देकर पुट में रख कर जब तक मिट्टी लाल नहीं होती तब तक आग में रखना यह पुटपाक है. Vegetable drugs first reduced to a paste and then wrapped up in jamboo or vatapatra, firmly tied with fibres of some sort, covered with a layer of clay from half to one inch in thickness, are roasted in cowdung fire. When the layer of clay assumes a brick-red colour on the surface, the roasting is known to be completed.

पुनर्नवा. ५-२, ६-११ इ. गदहपूर्णा. Boerhaavia diffusa, Linn.

पुष्पराग. ८-१३. ११-१३६. पोखराज. A topaz.

पुष्पाम्बु. ६-१०१. वासन्ती, सेवन्ती आदि फूलों का रस. Extract of flowers, such as वासन्ती, सेवन्ती etc.

पूगफल. १८-१५६. सुपारी का फल. The fruit of the betlenut tree. Areca catechu.

पूतिका. ७--९८. सीसा और राँगा इन दो धातुओं को पूतिक कहते हैं. क्योंकि उसमें एक प्रकार की दुर्गन्ध होती है. Tin and lead. These two metals are called Putikas on account of their foetid odour.

पेटारी. ६--९९. कुबेराक्षी = कङ्घा. Abutilon Inbicum.

पेटारी बीज. ६--९१. पेटारी का बीज. पेटारी देखिए. The seed of पेटारी. See पेटारी.

पोट. १५--१६४. D. R. पाट. "पाटः पर्पटिका बन्धः" रसकामधेनुः यह पारा के बन्धन के पाँच परिणामों में से है. वह परिणाम खोट, पोट, भस्म, घूलि और कल्क यह है. One of the five effects of fixation of mercury viz, खोट, पोट, भस्म, धूलि and कल्क.

पोतकी. ७--१३३. पोईशाक = उपोदिका.

पौनर्नव. १८--१३१. गदहपूर्णा सम्बन्धी. पुनर्नवा देखिए See पुनर्नवा.

प्रकटमूषिका. ७--११. प्रकटमूषा देखिए See प्रकटमूषा.

प्रकाशमूषा. ४--३९, १३--१२, एक प्रकार की मूषा. मूषा देखिए.A sort of crucible. See मूषा.

प्रतिमान. ४--४, वजन. Weights.

प्रतिवाप. ७--१३२, ७--१३६, १२--१४७. प्रतीवाप देखिए. See प्रतीवाप.

प्रतीवाप ४--५३. पिघले हुए धातुको ढाकने की क्रिया. "छादनं तु प्रतीवापः" The act of covering a melted metal.

प्रतिसारित. १७--४. सारितस्य मारणानन्तरं पुनः सारितम्. सारण देखिए. See सारण.

प्रवाल. १२--६७, मूंगा. Coral.

प्रवालक. ६--१२०. प्रवाल देखिए. See प्रवाल.

"फ"

फणिजिह्वा. ५--५. महाशतावरी. किंवा श्वेतशतावरी. शतमूली या शतावरी देखिये. See शतमूली or शतावरी.

फलत्रय. ६--६१, ७--१०८. त्रिफला देखिए. See त्रिफला.

"ब"

बकुल. ८--७६, बकूल या मौलसरी. Mimusops Elengi, Linn.

बदर—१८-१२६. बैर, the ruit of the jujube.

बदराङ्गार ७--७०, बैर का जलता हुआ कोयला. Burning charcoal of jujube wood.

बदरास्थि १४--१९, १४--४८, बैर की गुठली. The kernel of jujube.

बदरी. ६--१०२, बैर. Zyzyphus jujube, Lamk.

बदरीपत्र. ६--११०, बैरका पत्ता. jujube--leaf.

बद्ध. १०--२९, बांधा हुवा (पारा). Mercury bound or fixed.

बद्धजारणा. २--६, ११--७, १३--२, बांधे हुवे पारद का जारण करना. Calcination of mercury when fixed.

बन्ध्या. ५--२२, ७--८९, १५--१२६, बन्ध्या कर्कोटी देखिये. See बन्ध्याकर्कोटी.

बन्ध्या कर्कोटी. १५--१६८, तिक्तकर्कोटकी = बांज खेकसा.

बला, ५--४, ७--१३८, ११--२६, १५--१३८ इ० खरेंटी, Sida cordifolia Linn.

बालजारणा २--६, ११--७, १३--२, प्रारम्भावस्था में पारद का चूर्ण बनाना. Calcination of mercury when in the early stage.

बाकुची, ५--१४, १२--३५९ इ. बावची. Vernonia anthelmintica, Willd.

बालमोचका ५--८, छोटी सेमर, Young शाल्मली or Bombax Melabaricum DC.

बालवत्स पुरीष १७--७५, १७--८१, १८--६७, बछड़े का गोबर. Faeces of a calf.

बाला. ६--१०४, खश, या बला-बरियार Pavonia odorata, Willd.

बालुका यन्त्र, १२--९१, १५--८१, १६--८१, एक प्रकारका यन्त्र, An apparatus called Baluka "निर्बन्धिनी निपीडित मृदम्बरादिपरिलिप्ताम् अतिकठिणघटीम् अधस्तर्जन्यङ्गुलि प्रमाणितच्छिद्रायाम् अनुरूप स्थालिकायामारोप्य परितस्तां द्वित्र्यङ्गुलद्वयसेन लवणेन निरन्तरान्तीकरणपुरस्सरं सिकताभिरागलं परिपूर्य्य वर्द्धमानकमारोपणीयम् क्रमतश्च त्रिचतुराणि पञ्चषाणि वा वासराणि ज्वलन-ज्वालया पचनीयम्" रसेन्द्र चिन्तामणिः।

बिभीत. ८--७६, १०--४८ बहेड़ा, Terimnalia bellerica Roxb.

बिभीतक १५--१२६ बिभीत देखिए. See बिभीत.

बिभीतकफल. १२--३७६ बहेडे का फल The fruit of बिभीत tree.

ब्रह्मचारिणी, ५–१० ब्राह्मी देखिए, See ब्राह्मी,

ब्रह्मदण्ड. ५–२६. ब्रह्मयष्टि. Clerodendron Siphonanthus R. Br.

ब्रह्मदण्डी ५–३, ५–१९, Lamprachoenium microcephalum.

ब्रह्मनिर्यास. ११–१३६ पलाशका निकाला हुवा रस. Expressed juice of ब्रह्मवृक्ष or palasa tree.

ब्रह्मरीति १२–१८८, राजरीति = उत्तम पीत्तल. The best brass.

ब्रह्मबीज. ५–१४, ८-७५, १५–१६५ इ. पलाश बीज. The seed of palasa. See पलाश.

ब्रह्मवृक्ष. १५–१२६ पलाशवृक्ष, पलाश देखिये. Palasa tree, see पलाश.

ब्रह्मसोमा. १७–१०, ब्राह्मी देखिए. See ब्राह्मी.

ब्रह्मी १०–५२, ब्राह्मीशाक, Herpestes Monnieria H. B. K.

ब्राह्मी. १०--१२, ५--२५ ब्रह्मी. See ब्राह्मी.

भ

भद्रा. १०–५८ काकोदुम्बरिका, कठूम्भर. Ficus oppositifolia.

भल्लात, १२–१४०, १२–२७०, १७–१०६ भल्लातक देखिए, See भल्लातक.

भल्लातक. १७–१२९ भिलावा. Semecarpus Anacardium, Linn. The marking nut--tree.

भल्लातकस्नेह. १७-१२९, भिलावे का तेल, भल्लातक देखिये. Oil of the marking nut tree (भल्लातक).

भस्त्रा. ४–५७, १२–६३, धोकनी. A bellows.

भस्म. १५–१६४. पारदबन्ध का एक परिणाम. पोट देखिये. One of the five effects of fixation of mercury, see पोट.

भस्म. १२–३४० इ० राख Ashes.

भस्ममूषा ४–४२ एक प्रकारकी मूषा. इसमें तिल की राख दो भग और ईंट का चूरा १ भाग रहता है. A sort crucible in which ashes of तिल or sesamum Indicum two parts and brick--dust one part are the ingredients.

भस्मसूत. ११–१९८, ११--२०५, १२–१, १८--३१, इ० पारद की सात अवस्थाओं में से एक अवस्था. One of the seven stages of mercury.

भाण्डिका. ८-४७. D. R. हुण्डिका = हाण्डी. A cup, a cupel.

भानु. १२--१४८, १८--१९५. ताम्र. Copper.

भार. १०-३५. एक प्रकार का वजन या २००० शुभ. १ शुभ = ३२ पल, १ पल = ८ तोला, १ तोला = १२ मासा, १ मासा = ६ गुञ्जा, Bhar means 2000 subhas, 1 subha = 32 Palas, 1 Pala = 8 tolas. 1 Tola = 12 Mashas, 1 masha = 6 gunjas or Abrus precatorious.

भावना. ६--३० बनस्पतिओं के रस या काढा से चूर्णों को भींगोकर सुखाना इसे भावना कहते हैं. Maceration of powders in fluids, such as expressed juice of herbs etc. This mixture is allowed to dry in the sun in day--times.

भास्कर--८-६१, १२-२४, १८-१५३ = ताम्र, copper,

भास्करनिर्मित. १२-५३. ताम्रनिर्मित, तांबा से बनाया हुआ. made of copper.

भास्करप्रिय. १२-४३ लाल. A ruby.

भास्कराभ्रक. ११-४९ तांबा और अभ्रक का मिश्रण. An amalgam of copper and mica.

भिण्डमूल. ६-१२. रामतरोई की जड़. भिण्डी देखिये. The root of भिण्डी, see भिण्डी.

भिण्डी. ६-१०२. भिण्डी = रामतरोई.

भुजग. ११-१६६, १७-६२, See भुजंग.

भुजंग. १७-८२, १७-४४, शीसा. नाग देखिये. Lead. see नाग.

भुजंगम ७-९७. १६-४०, १८-८४, शीसा. नाग देखिये. Lead, see नाग.

भुजंगमशोधन. ७-११४. नाग का शोधन. Purification of lead.

भुजंगास्थि. ६-८१. साँप की हड्डी. Snake-bone.

भू, ४-४८, स्फटिका = काङ्क्षी, सौराष्ट्रमृत्तिका. "क्षितिनाम्नी सुजाता च सौराष्ट्री" रसकामधेनु. सौराष्ट्री देखिये. See सौराष्ट्री.

भूचर. ११-१४२ पीसे हुवे पारद का नाम. A name of mercury properly calcined.

भूचरी ११-९८. पीसकर चूर्ण बनाने की क्रिया. A name of calcination.

भूधर. ७–७५, १४–७९, १४–१२८, भूधर यंत्र देखिये. See भूधरयन्त्र.

भूधरयंत्र. ४,–२१ १५–९५, १८–७८, जमीन में बनाया जानेवाला यंत्र An apparatus called Bhudhara "बालुकागूढसर्वाङ्गां गर्ते मूषां रसन्विताम् । दीप्तोत्पलैः संवृणुयात् यन्त्रं तद्भूधराह्वयम्"

भूधात्री. ६–१२, भूम्यामलक देखिए. See भूम्यामलक.

भूनाग. १७–७८, छोटा केंचवा. A small Species of earthworm in contrast. with भूलता a large species.

भूपाटली, ५-२७, D. R. भूपालटी. = भोय पाडल.

भूम्यामलक. १५-९ भूंई आंवला. Phyllanthus Niruri, Linn.

भूर्ज. ११–११५. भूर्जपत्र देखिए, see भूर्जपत्र.

भूर्जपत्र· १५–१६४. भोजपत्ता. Betula Bhojpatra. Walld.

भूलता. ७–३५. ७–१३९, इ० केंचवा, The earth-worm.

भृङ्ग. ७–७१, १२–३६५. १८–१७. भृङ्गराज देखिये. See भृङ्गराज.

भृङ्गपक्ष. १२५–१५९. भृङ्ग नामक पक्षी के पंख. Feathers of the bird called Bhimraj, probably of the variety of Shrike.

भृङ्गराट् ५–२७. भृंगराज देखिये. See भृङ्गराज.

भृङ्गराज. ५–२, ७–७३ ई० भांगरा. wedelia calendulacea, Less,

भृङ्गाम्भस ७–६९. भांगरेका भीगाया हुआ जल. Water of भृङ्गराज i. e. water in which भीमराज is steeped.

भृङ्गाह्व १८–१२ भृङ्गराज देखिए. See भृङ्गराज.

भेकास्य. १७–११ शायद मेंढक का मुँह Probably the mouth of a frog.

भ्रमरायन्त्र. १५–४६ D. R. भ्रामरीयन्त्र. An apparatus which is mentioned in रसकामधेनु but no explanation is given.

भ्रामक. ६–८७. शियार. A jackal.

भ्रामक. ६–४०, ८–४; १८–१८३. एक प्रकारका कान्त पाषाण. कान्तपाषाण देखिये. A sort of कान्त पाषाण.

म

मज्जन ४–५३. गरम धातु को पाणी में डुबाना "तप्तस्याप्सु विनिक्षेपः" Emmersing of red hot metals into water.

मञ्जिष्ठा. ५-३९, ८-८०, १२-४४, इ. मञ्जिष्ठा, मजीठ, Rubia cordifolia, Linn.

मणि. १५-१८९. रत्न. A gem, a precious stone.

मणिमन्थ. ६-१३७, १६-३ = सैन्धवलवण = सैंधानिमक. Rock salt.

मणिरागज. ७-५०-हिङ्गुल का पर्याय वाचक नाम. A synonym of हिङ्गुल (Cinnabar.)

मण्डूकपर्णी. ५-३ मण्डूकपर्णी. Hydrocotyle Asiatica, Linn.

मण्डूकवसा. ७-१२१ मेंढक की चर्बी. Marrow of a frog.

मण्डूकास्थि. ७-१२१. मेंढक की हड्डी. Bone of a frog.

मण्डूकी १०-५२. मण्डूकपर्णी देखिए. See मण्डूकपर्णी.

मत्स्यपित्त. ७-६९, ७-१३०, मछली का पित्त. Bile of a fish.

मत्स्याक्षी. ५-३ = हिलमोचिका, मछेछी. Enhydra fluctuans, Lonr.

मदयन्तिका. ५-३९ = नवमल्लिका = मोगरा, A sort of jasmine.

मधु. ५-४१, १२-३६४, इ० मधु, शहद, honey.

मधुक. १२-३२८, १७-११३, यष्टिमधु = मुलेठी. Honey. Glycyrrahiza glabra, Boiss, or according to रसमञ्जरी, मधूक = महुआ Bassia latifolia, Roxb.

मधुकुष्माण्डक. ७-७६ मीठा कोहड़ा A sort of sweet pumpkin gourd or Benincasalcerifera, Savi.

मधुधातुक ७-१४ रस कामधेनु के मत में स्वर्णमाक्षिक मगर राज निघण्टु के मतसे स्वर्णमाक्षिक और रौप्यमाक्षिक यह दोनों भी. स्वर्णमाक्षिक according to रसकामधेनु but both स्वर्णमाक्षिक and रौप्यमाक्षिक according to राजनिघण्टु.

मधुरत्रय. १२-३४७. घी, शहद और चीनी समभाग में ghee, honey and sugar in equal parts.

मधुच्छिष्ट. ७-९१, १७-९ मोम Bee-wax.

मध्यमाम्ल. १४-७९, १८-७५ इ० मध्य प्रकारकी खटाई. जो कि ज्यादा न तो तेज हो, न मन्द हो. Acid of middle quality i. e. neither pungent nor very mild.

मनः शिला ८-३०, ८-५८. इ० मैनशिल. Realgar.

मन्त्रसिंहासनी. १२-५९. मन्त्रसिद्धासना के समान. मन्त्रसिद्धासना देखिये. The same as मन्त्रसिद्धासना, see मन्त्रसिद्धासना.

मन्त्रसिद्धासना. ५-२८, यह एक दिव्यौषधि या एक प्रकारकी लता है, जो पारद को शुद्ध करने के लिये या चूर्ण बनाने के लिये काम में आनेवाली "पञ्चरत्न" या दिव्यौषधि है, उनमें से एक है. A दिव्यौषधि or divine plant, a गुल्मलता or creeper having bulbous roots. This is one of the five gems i. e. पञ्चरत्न or an aggregate of five best divine plants called by the names of Jems applied to calcine and purify mercury.

मयूरग्रीवतुत्थ. १६-३८, १७-७५ मोरके गले के माफक रंगवाला तूतिया. मयूरतुत्थ देखिए. This is not the real तुत्थ (Calamine), but सस्यक having the play of colours of the throat of a peacock. See मयूरतुत्थ.

मयूरतुत्थ. ७-४४. तुतिया का पर्याय. A synonym of सस्यक, blue vitriol, having the play of colours of the throat of a peacock. It is different from तुत्थ which is synonymous with रसक or calamine.

मरकत. ६-१२०. ८-१३, पन्ना. An emerald.

मरिच, ६-१३. ६-२६, ११-१८९, १८-७. गोलमरिच. Piper nigrum Linn.

मर्कटीरस. १५-८४, चिचिडा या केवांच का रस. अपामार्ग और कपि देखिये. See अपामार्ग and कपि. Expressed juice of either अपामार्ग or कपिकच्छु.

मर्दक, ४-६०, लोढा या बट्टा. A grinder, a pestle.

मर्दन. १०-१०, रगड़ देना, पीसना, कूटना. Rubbing, grinding or pounding "उद्दिष्टैरौषधैः सार्धं-सर्वाम्लैः काञ्जिकैरपि। पेषणं मर्दनाख्यं स्यादहेर्मल विनाशनम् ॥ रसकामधेनु. ॥

मल. १०-३१ एक प्रकार का पारद दोष जो कि तीन प्रकार के होते हैं. A sort of पारद दोष or impurities of mercury, which are three in number.

मलयोद्भव, ७-१५३. मलय नामक पर्वत से लाया हुआ लोह-दूसरों के मत में यह कालिङ्ग या कलिङ्गोद्भव है जो कि कारो-मण्डल किनारा से लाया गया है. A sort of iron brought from the Malaya

mountain; According to some authorities it is कालिङ्ग or कलिङ्गोद्भव, brought form the country called Kalinga on the Coromandel coast.

मल्लिका. ७–११३. मोगरा Jasminum Sambac, Ait.

मसूरक. १८–१२४. मसूर. Lens esculenta Moench.

महाकाली ५–१६. वृश्चिकाली, बिच्छी. Tragia involucrata, Linn.

महाजारण. ११-१००; ११–१२६. एक प्रकार का कल्क. A sort o कल्क.

महातैल. १८–२१४. वसा, चर्बी. Marrow.

महानील. ८–९. नीलम. The emerald, see मरकत.

महाबला:—बला का भेद Sida rhomboidea. Roxb.

महारत्न. ११–१३५. नवरत्न. यह नव प्रकार के होते हैं, जैसे कि मोती. हीरा, वैदुर्य्य, माणिक, गोमेद, पोखराज, पन्ना, मूँगा और नीलरत्न, Nine precious gems such as मौक्तिक a pearl; हीरक a diamond वैदूर्य a lapis lazuli, पद्मराग a ruby, गोमेद a gomeda or a variety of agate पुष्पराग a topaz, मरकत an emerald, प्रवाल a coral and नीलरत्न a sapphire.

महालता. १६–८९, प्रमुखलता जो की सात है. principal creepers.

महारस. ७–१, ८–२, ८–५१, १५-१. ई० ऊँचे खनिज जो कि आठ होते है. Superior minerals eight in number.

महारस शुद्धि. ७–९०. महारस की शुद्धि. महारस देखिये. purification of महारस. See महारस.

महाविष ५–३३ भयंकर विष. जो कि पांच प्रकार का और किसी के मत से ९ तथा १३ प्रकार का होता है. Virulent poison of five sorts but nine or therteen according to other authorities.

महासोमा. १५–१३८. सोमलता का प्रकार. सोमलता देखिए. A sort of सोमलता. See सोमलता.

महिषीक्षीर. ७–८६. १७–६४, १७–९७. भैंस का दूध. Milk of the-- buffalo.

महौषधि (घी) १२–१७९. उत्कृष्ट औषधि. ओषधि देखिए. A large or superior deciduous Plant. See ओषधि.

माक्षिक. १८–१५४ शहद. Honey.

माक्षिकः–उत्पत्ति ७-२, प्रकार ७-५, शुद्धिः ४२–१२, पर्य्याय ७–१४. रूपामाखी. Iron pyrites. See P. C. Ray's Hindu chemistry P. 138. कान्यकुब्ज देशजं स्वर्णमाक्षिकं, तापी तीरसम्भवं तारमाक्षिकम्। रसकामधेनुः।

माक्षिकगुण. ७–१४, ७--१५. माक्षिक के गुण. Medicinal effects of माक्षिक.

माक्षिकचूर्ण. ८–४२, चूर्ण किया हुआ माक्षिक. माक्षिक देखिये. Makshika powder i. e. Powdered makshika see माक्षिक.

माक्षिक शुद्धि. ७–१३ माक्षिक की शुद्धि. purification of माक्षिक see माक्षिक.

माक्षीक. ६–१०१. माक्षिक देखिये, See माक्षिक.

माघ खेचरी. १२--५३. एक प्रकार की दुर्ज्ञेय ओषधि. A sort of ओषधि. Very difficult to be identified.

माणिक्य, ८--१०, माणिक. A Ruby.

मातुलाम्भस. ११--१९३, धत्तुर का स्वरस. Liquid juice of धुत्तुर. धुत्तुर देखिए. See धुत्तुर.

मातुलुङ्ग ११–१८३. बिजोरानिम्बु. Citrus medica Linn.

मातुलुङ्गफल. ६--२७ मातुलुङ्गका फल, मातुलुङ्ग देखिए. The fruit of मातुलुङ्ग. See मातुलुङ्ग.

मातुलुङ्ग रस ११–१३२, १२--१११, १२--३१९. मातुलुङ्ग का रस. मातुलुङ्ग देखिये. Juice of मातुलुङ्ग see मातुलुङ्ग.

मातुलुङ्गाम्ल, ७--१०२, १२–११० मातुलुङ्ग की खटाई. मातुलुङ्ग देखिये. Acid of मातुलुङ्ग, See मातुलुङ्ग.

मातृवाह १७--१५. मातृवाहक देखिये. See मातृवाहक.

मातृवाहक. ७--१३९, एक प्रकारका कीटक. An insect which has in its body a smell of farting.

मातृवाहक जीव. ६–१०८ मातृवाहक देखिये, See मातृवाहक.

मातृका. १२--११, १५--७६, १७--१५०, D. R. पात्रिका. यहाँ इस शब्द का अर्थ शायद गौरी है, जो कि १६ मातृकाओं में पहिली है. यह धातु सफेद वर्णका होता है, फीका लाल किंवा सफेद पीला सा होता

है. Probably here means गौरी, the first of 16 goddesses called MATRIKAS. The meta!takes the colour of गौरी i. e. becames गौरवर्ण or of pale red or whitish yellow colour.

मानिनीकन्दा ५--१० लक्षण कन्दा = मानिनी या लक्षण की जड़--"पुत्रकारकरक्ताल्पबिन्दुभिर्लाञ्छिता सदा लक्षणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत्". The root of मानिनी or लक्षणा.

मारक. १२--२२३ हिङ्गुल. Cinnabar.

मार्जारपादी. ६--२७, रक्तचित्रक, चित्रक देखिए. Red chitraka, see चित्रक.

मार्जारीबीज. १४--१५०. D. R. पेटारी बीज. and पोटारी बीज. पेटारी बीज देखिये. See पेटारी बीज.

मालती (नीर) क्षीरसम्भव. ९--२ टंकण देखिए. See टंकण, produced in the bed or bank of the river Malati.

माष, माषक, १०--३४, छः गुञ्जाका वजन. A weight of six gunjas or Abrus precatorious.

माष. ७--९३, १७०--१२४. उडदी. Phaseolus munog Linn.

माहिषतक्र. ७--११७. भैंस के दूध से निकाला हुआ छांछ. Buttermilk produced from the buffalo's milk.

मिश्रक. १०--८, ६३--८. पारद का पर्यायवाचक नाम. A synonym of mercury.

मीननयना. १६--१६, मीनाक्षी देखिए. See मीनाक्षी.

मीनाक्षी. १०--३९, ११--३१, १५--१३६, १६--३ मत्स्याक्षी देखिए. See मत्स्याक्षी. D. R. देवाक्षी and हेमाक्षी.

मुक्ताफल. ८--१०, ११--१३२. फल के आकार का मोती होने से मुक्ताफल नाम दिया है. The pearl, so called for its resemblance with a fruit.

मुण्डीनिर्यासक. ११--४२ मुण्डी का स्वरस. Exudation of मुण्डी or मुण्डीतका. Sphoerenthus Indicus Linn.

मुद्ग १८--१३१. मूंग. Phaseouls Mungo Linn.

मुद्गपर्णी. १०--५२. मूंगपर्णी. Phaseolus trilobus Ait.

मुद्गाम्बु. १८--८. पकाया हुआ मूंग का जूस. Soup of boiled मुद्ग or kidney bean, Phaseoulus Mungo Linn.

मुनि. ११--३१. अगस्त्य. Sesbania, grandiflora Pers.

मुनितरु. ६--७९ अगस्त्य वृक्ष. A tree of red Vaka flower.

मुनितोय. ६--३२. अगस्त्य पुष्प का स्वरस. Juicc of Vaka flower. See Vaka. D. R. "मुनिते तु" मुनिते = कुट्टिते qualifying गोमांसे.

मुनिपुष्प. १७--७२. अगस्त्य का फूल. Vaka flower.

मुनिपुष्परस. १८--९१. अगस्त्य के फूल का स्वरस, मुनिपुष्प देखिये. Juice of मुनिपुष्प. See. मुनिपुष्प.

मुनिरस. ६--२८. अगस्त्य पुष्पका स्वरस. Juice of Vaka flower.

मुषल. ४--३. मूषल. A pestle.

मुषली. ७--१३३, ११--२५, १५--१६८. तालमूली. Curculigo orchioides Gaertn.

मूकमूषा. ६-१३५, ७-१७, ७-३६, १८-१८१. अन्धमूषा देखिये, See अन्धमूषा.

मूत्र. ५-३५, ९-८, मूत्र. Urine.

मूत्रवर्ग, ९-१२. पांच प्रकार के मूत्र का समूह. An aggregate of five sorts of urine.

मूर्छित, ११-१९८. पारद की सात अवस्थाओं में से एक One of the seven stages of mercury.

मूर्तिबन्ध. ११-१९८, ११-२०३. पारद की सात अवस्थाओं में से एक. One of the seven stages of mercury.

मूलक, ५-३०, ९-१७, १०-४१, १६-६, १७-२२. मूली. Raphanus Sativus Linn.

मूलकन्दरस, ११-३१. मूलकन्द = कन्दमूल = मूलक का पतला सार. मूलक देखिए. Liquid extract of मूलकन्द. See. मूलकन्द.

मूलिका. ५-२७. अष्टमूलिक देखिये, See अष्टमूलिक.

मूषका. ६-६२. मूषा देखिये. See. मूषा.

मूषा. ४-३८, ११-१२९. इ० यह दो प्रकार की होती है. प्रकाशमूषा और अन्धमूषा. A crucible, of two varieties as प्रकाशमूषा और अन्धमूषा.

मूषायन्त्र. ४–१५ मूषा देखिये. Crucible apparatus.
मूषिका. १२–१२८. मूषा देखिए. See. मूषा.
मृगदूर्वा. १५–१४८, १५–१५३. सफेद दूब. White durva grass. Cynodon Dactylon Pers, मृगदूर्वा. is so called for its being favourable to the deer. 'रसकामधेनु'.
मृगनाभि. १८–२००. कस्तूरी. कस्तूरी देखिये. Musk. See कस्तूरी.
मृतकान्त, १२–३५४, १८–९१ मारा हुआ कान्तपाषाण. कान्तपाषाण देखिए Killed kantapashana See कान्तपाषाण.
मृततार, १४–१२१. मारी हुई चांदी. Killed silver.
मृततीक्ष्ण. ८–६०. मारा हुआ लोहा. Killed iorn.
मृतनाग. ८–६०. मारा हुआ शीसा, Killed lead.
मृतवङ्ग. ८–६०. मारा हुआ वंग. Killed tin.
मृतवज्र. १४–३८, १४–५९. मारा हुआ हीरा. Killed gem.
मृतशुल्व. ८–६०, मारा हुआ तांबा. Killed copper.
मृतसूत. ११–१९८. पारद की सात अवस्थाओं में से एक. One of the seven stages of Mercury.
मृत्तिका. ४–३० मट्टी. Earth.
मृदुदुर्वा. ७–१४१. नीलदूर्वा. Blue durva grass as मृदूत्पल = नीलोत्पल, blue lotus but रसकामधेनु reads here मृगदुर्वा. See मृगदुर्वा.
मृद्वग्नि, ७–७०. मन्दी आंच. Gentle fire i. e, gentle heat of fire.
मेघ. ६–२९, अभ्र देखिए. See. अभ्र.
मेघनाद. ६–११, १८–१३१. चौराई. Amaranthus polygamus.
मेघनादरस. १२–३५९, १८–९१ चौराई का रस. मेघनाद देखिए. Juice of मेघनाद. See मेघनाद.
मेघनादा. १०–२८. ११–२४. १५–१२२. इ. मेघनाद देखिए. See मेघनाद.
मेदिनीयन्त्र. १२–६०. पाताल यन्त्र के समान एक यन्त्र, पाताल यन्त्र देखिये. An apparatus probably resembling पाताल यन्त्र, See पाताल यन्त्र.
मेषवल्ली, १५–८३. मेषश्रृङ्गी देखिए. See मेषश्रृङ्गी.
मेषश्रृङ्ग, ६–८५, ६–९०, ६–९८, ६–१०३, ७–१३२, १२–१६१, १७–१०९, मेढ का श्रृंग. Sheep-horn.
मेषश्रृङ्गिका, ५–११ मेषश्रृङ्गी देखिए, See मेषश्रृङ्गी.

मेषशृंगी. ५--६, ६--१२, ६--१५, ६--१३५, १०--३८, ११--१२७, ११--१८९ १२--२२३, मेढाशिंगी, Cymnema Sylvstre, R. Br.

मेषाज्य, ७-११३, मेड़ी का घी, Ghee produced from the milk of ewe.

मेषीक्षीर. १७--४८. भेड़ी का दूध. Milk of an ewe.

मोक्षक. १८--१४२. पाटला, D. R. मोचक, रसकामधेनु = मोखा, Stereospermum Suaveolens, DC.

मोक्षकक्षार, ७--१७. मोखा का खार मोक्षक देखिए, Alkali of मोक्षक. see मोक्षक.

मोक्षक्षार. ६--१३४. माखा का क्षार, मोक्षक देखिए, Alkali of मोक्ष or मोक्षक See मोक्षक.

मोचिका. ५--३० शाल्मली, सेमर, Bombax Malabaricum DC.

मोदक. १८--६. एक प्रकार की मिठाई, A sort of Sweetmeat.

मोदा. ५--११, अजमोदा, Carum Roxburghianum Benth.

मोदिनी. ५--१७. D. R. रोहिणी, मोदा देखिये. See मोदा.

मोरटक्षार, ८--१३४, ढाक का क्षार. Alkali of मोरट or a tree known as latakarad.

मौक्तिक. ६--१२०. मोती. A pearl.

मौर्व्वी, ६--२८. भोजपत्ता देखिये. See भूर्जपत्र.

म्लेच्छ. ७--१० हिंगुल. Cinnabar.

"य"

यव. १०--३३. छः सिद्धार्थ या सर्षपका वजन, A weight of six सिद्धार्थs or सर्षप or mustards.

यवक्षार. ५--३०, ६--३४, ६--५८, ११--८७. जवाखार. Factious carbonate of potash. See P. C. Ray's Hindu chemistry, page 45.

यवचिञ्चा. ५--१५. ६--११. इ. तिन्तिडी. इमली. Tamarind. रसकामधेनुः.

यवचिञ्चारस. ११--२३, ११--१८२. इमली का रस, यवचिञ्चा देखिए. Juice of यवचिञ्चा See. यवचिञ्चा.

यवचिञ्चिका. १५--१३६, १६--१७. यवचिञ्चा देखिये, See यवचिञ्चा.

यवागू. १२--२२७. छः भाग पाणी, ४ माग चावल एक जगह पकाने से

यवागू होता है, "द्रवसिक्थसमन्वितत्वं यवागूत्वम्" षड्गुणवारिपक्का चतुर्गुण-तण्डुल-चूर्णकृता बहुसिक्था उष्णिका. Agruel prepared by six parts of water and four parts of rice boiled to gether. यवागू is used in three different forms मण्ड, पेया and विलेषी" सिक्थैः रहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता । यवागू र्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ॥

यावक ८-३७. १८-८. बार्ली चूर्ण से बनाया हुआ यवागू. यवागू prepared by barly powder.

यावकान्न १८-५ पकाया हुवा जव = सिद्ध यव, Barley grains boiled in water.

यूक. ११-३२ छः लिक्षाका वजन, त्रुटि देखिये. A weight of 6 लिक्षs = 6 त्रुटि, see त्रुटि.

योगवाहिन् ७-१४. धातु या औषधी मिलाने के लिये मध्यस्त, A menstruum or medium for mixing metals or medicines.

र

रक्तकञ्चुकि कन्द. १२-९९. रक्तकञ्चुकी यह एक प्रकारकी औषधी है. The bulbous root-stock of red कञ्चुकी or कञ्चुक शाक or a sort of औषधि.

रक्तक्षार. १२-३२४. रक्तवर्गका क्षार. रक्तवर्ग देखिये. Alkali of रक्तवर्ग, See रक्तवर्ग.

रक्तगण. ८-४४ ८-५४ इ० रक्तवर्ग देखिये, See रक्तवर्ग.

रक्तचन्दन. ८-८०. ८-४४, १२-१७२. इ० लालचन्दन, Red sandle wood, Pterocarpus Santalinus Linn.

रक्तचित्रक, ५-१०, ५-१७, १०-५२. ई० लाल चिता, Plumbago rosea. Linn. but एरण्ड or Ricinus communis Linn., according to रसकामधेनु.

रक्ततैल, १७-१२३, १७-१४६. रक्तवर्ग से निकला हुआ तेल, रक्तवर्ग देखिए, Oil prepared from रक्तवर्ग. see रक्तवर्ग.

रक्तपुष्प, ७-७८, १८-८१ लाल रंग के फूल. Flowers of red colour, such as red Vake, red Karavira and Kanchana etc.

रक्तपीत १७-१३१. रक्तवर्ग और पीतवर्ग. दोनों देखिये. रक्तवर्ग. and पीतवर्ग. See both of them.

रक्तवर्ग. ४–४४, ५–३९, ७–४५, ७–८३. मञ्जिष्ठा, केशर, लाख, खैर और असन. यह वर्ग लाल रंग पैदा करने वाला है. An aggregate of five objects producing, red such as मञ्जिष्ठा, कुंकुम. लाक्षा, खदिर और असन.

रक्तशृङ्गी. ५–९. रक्त कर्कटशृङ्गी. लाल काकड़ा शिंगी. Red कर्कट शृङ्गी, or Rhus saccedanca, Linn, and a sort of creeper according to रसकामधेनु.

रक्तसिन्धु सम्भवद्भव. ११–१७८. लालसेन्धव. सैन्धव, देखिए. Red सैन्धव, see सैन्धव.

रक्तस्नुही. ५–९, ५–१७. लाल सेहुण्ड. Red Euphorbia neriifolia Linn. and a sort of creeper according to रसकामधेनु.

रक्तस्नेह ८–५७. रक्ततैल देखिये. See. रक्ततैल.

रक्ताभ्र, रक्ताभ्रक. ६–२, ६–९. लाल अभ्रक. Red mica.

रक्ताष्टक. १७–१३०. लाल रंग पैदा करने वाली आठ वस्तु. Eight red-dye producing objects or plants such as. दाडिमं किंशुकं लाक्षा बन्धूकश्च निशाद्वयम्। कुसुम्भपुष्पं मञ्जिष्ठा इत्यष्टौ रक्तवर्गकः। but five only are mentioned in the text.

रक्तिका. ५–९, १३–१४. लालगुञ्जा वनस्पति. Red गुञ्जा plant. लाल गुञ्जा बीज Red गुञ्जा seed.

रजः १०–३२. छः यूक का वजन. A weight of 6 yukas.

रजकः १४–१५४. महिन धूलि, छोटे कण. Powdered dust or small particles.

रजत. ७–९७. चाँदी. Silver. Two varieties of it, on page 50–103.

रजनी. ७-११३, १०–४६. हरिद्रा देखिये. See. हरिद्रा.

रजनीचूर्ण. ११–१६४. हलदी की बुकनी. हरिद्रा देखिये. हरिद्रा Powder. See हरिद्रा.

रजनी द्वय. ८-८०, १२–२२३. दो प्रकार की हल्दी. हरिद्रा और दारुहरिद्रा Curcuma longa. Roxb. Roxb. and Berberis Asiatica Roxb.

रञ्जन. २–५, ८–४२, ८–५३. रंग देना. Colouring and dyeing,

रत्न. ८--१ रत्न, जवाहरात. Gems.

रत्नजारण. ११--१२५. रत्नकी भस्म बनाना. Calcination of gems.

रत्नद्रावण. ७--१३७. रत्नका द्रव बनाना. Lequefaction of gems.

रत्नद्रावविधि. ७--१४५, रत्न के द्रव बनाने की क्रिया. A process of lequefaction of gems.

रम्भा. ११--२४, १५--१३६. कदली देखिए. See कदली.

रम्भाकन्द. १६--३. कदली कन्द देखिए. See कदलीकन्द.

रम्भाफल. १२--३७६. कदली का फल, कदली देखिए. See कदली.

रवि ८--५, ८--६२. इ० तांबा Copper.

रविक्षीर. ९--३, १७--१०८. अर्कक्षीर. मंदार का दूध. अर्कक्षीर देखिए. see अर्कक्षीर.

रविजीर्ण. १८--३३. ताम्र से मिलाया हुआ पारद. Mercury calcincd with copper.

रविनागकपाली. १६--५१. कापालिकों के क्रियानुसार शुद्ध चाँदी को तांबा और शीसा की सहायतासे मारना ॥ A process dying pure silver by the aid of copper and lead, according to the practice of Kapalikas.

रस. व्याख्या १--३६, प्रकार. १०--४. १०--९, शुद्धि के प्रकार १०--१० भूचर होना ११--१४२. खेचरता. ११--५१. पारद Mercury.

रसक: ७--२, ७--२८, ७--३०, रसक पर्याय. ७--३७, ७--३८. इ० महारसोंमें का एक प्रकार, रसकपूर. One sort of महारस. Calamine.

रसकज्जली. १६--२९. पारद गन्धक का समयोग कज्जल. 'गन्धाद्यैः समभागस्तु कज्जली मर्दितोरसः" रसकामधेनुः। A compound of mercury and sulphur in equal quantities, thoroughly rubbed.

रसकशुद्धि. ७--३०, ४४--३५. रसकपूर की शुद्धि। Purification of calamine

रसकाभ्र ८--६५. रसकपूर और अभ्रक. Calamine and mica.

रसगन्धकसम्भव. ४५--५१. एक प्रकार का हिङ्गुल. हिङ्गुल देखिए. A sort of cinnabar or हिङ्गुल. See हिंगुल.

रसज ७--९९. सुवर्ण का एक प्रकार. A variety of gold.

रसपिष्टि. ८--२०, रसपिष्टी. पारद बारह भाग और एक गुञ्जा

गन्धक, इन दोनों को पीसकर पिष्टी बनाना "रसो द्वादश भागस्तु गुञ्जामात्रं तु गन्धकम्। मर्दितं घृतवद् घर्मे रसपिष्टीति कीर्त्यते"। रसकामधेनु। A compound of mercury with twelve parts of it and two grains of sulphur, thoroughly rubbed in the heat of the Sun.

रसफल. १२--३६४. आमलक देखिये. See आमलक.

रसभस्म रसायन, १२--३५८. पारद भस्म रसायन. Medicinal effect of the calx of mercury.

रसराज. ८--४२, ८--५२, रस देखिये. See रस, or mercury.

रसवादिन. १७४--१७२. रसायन विशेषज्ञ. Expert in chemistry and alchemy.

रस संस्कार. १२--१०. पारद के शोधन प्रकार, जो की आठ प्रकार के होते हैं. Methods of purification of mercury eight in number.

रसाकृष्टि. ८--५७ हिङ्गुलसे पारा निकालना. A sort preparation of mercuy, or to take mercury, out of cinnabar.

रसाङ्कुशः--रसांकुशी नामक देवता को पूजने का एक प्रकार का मन्त्र. २-१०९, एक प्रकार की औषधी १०--५२, A sort of मंत्र. (Mantra) by which the goddess रसाङ्कुशी is worshipped A sort of औषधि too.

रसांकुशी. २-७१. पारद शोधन करने के पूर्वं किमिया करने वाले विशेषज्ञ जिस देवता को पूजते हैं वह देवता. The goddess, which is worshipped by the experts in alchemy before under-taking the purification of mercury.

रसायन, ७-१४. वृद्धावस्था को रोक्रने वाला और दीर्घ आयुष्य देने वाला, दहेन्द्रिय-दन्तनां दृढी-करणमेव च वली पलित-खालित्यवर्जनेऽपि च या क्रिया। पूर्ववैद्यप्रणीतं हि तद्रसायनमुच्यते। Elixir Vitae. A medi-cine preventing old-age and prolonging life P.C. Ray's Hindu chemistry.

रसोद्भव. ७-३७. लसून. Allium Sativum.

राक्षस. १२-३. सोमका एक प्रकार. निशाचर देखिये. A sort of सोम, see निशाचर.

राक्षसी. ५–८, १५–१३१. एक प्रकार का सुगन्धी द्रव्य. A sort of perfume called chora.

राग. ७–१५४. रंग. Dye, hue, colour.

राग संख्या. २–५, ८–१. रंग की संख्या. Number of hues.

रागिणी. ११–८६. अशोक. Saraka Indica, Jonesia Asoka.

राजकोशातकी ७–८२, १८–१४२. पीली तरोई. Luffa acutangula, Roxb.

राजावर्त्त. ७–५६, ७–८५. उपरसों में का एक भेद या निम्न श्रेणी का हीरा One of the उपरस or a gem considered to be an inferior kind of diamond, also called Lapis lazuli. See उपरस.

राजावर्त्तक. १७–१२४. राजावर्त देखिये. See राजावर्त.

राजावर्त शुद्धि, ७–८७ राजावर्तका शोधन Purification of राजावर्त.

राजिका. ५–९, १०–५६. राई Brassica juncea, Hf.

राजी. ११–६७. राजिका देखिये. See राजिका.

रात्रि. ५–३९. हरिद्रा देखिए. See हरिद्रा.

रामठ. ६–११८. १४–१५२. इ० हिंगु Asafoetida.

रास्ना ५–६. रास्ना. Vanda Roxburghii R. Br.

रीति ११–१८०, पित्तल. Brass.

रीतिका. १६–४०, १७–४४. रीतिका देखिए. See रीति.

रीतिकृत्. ७–३७. रसक का पर्याय. A Synonym of रसक.

रुदन्ती. ५–१०, ५–१७, १२–१७४. D. R. रुन्धनी or रुदन्तिका.रुदन्ती. "चणपत्रसमं पत्रं क्षुपश्चैव तथाविधिः। शैशिरे जलबिन्दुना स्रवन्तीति रुदन्तिका. A plant known in Orissa.

रुधिर. १७–७, १७–११. कुङ्कुम. केशर. Saffron.

रूप्य. १५–११. चाँदी. Silver.

रोचना. १७–१२. गोरोचना देखिए. See गोरोचना.

रोम. ११–१६८. बाल. Hair.

रोमकान्त. ६–४६. एक प्रकार का कान्त. कान्त देखिये. A Sort of कान्त. See कान्त.

रोहण. ७–१०७, ११–१६२, १८–२५. एक प्रकार का कान्त लोह. कान्त लोह देखिये. A sort of कान्त लोह. See कान्तलोह. योगराख रसकामधेनुः।

ल

लक्ष्मणा. ५--२५, १७--१०. श्वेत कण्टकारी. White कण्टकारी. or Solanum Xanthocarpum Schrad.

लक्ष्मी = श्वेत तुलसी. White तुलसी or Ocimum Sanctum Linn.

लघुकन्दरस ७-५०. हिङ्गुल का पर्याय. हिङ्गुल देखिये. A synonym of हिङ्गुल see हिङ्गुल.

लघुपर्णी १०-३९ = मूर्वा Sansevieria zeylanica, Willd.

लता. ८-३४ यहाँ लता शब्द से भूलता लेना है. भूलता देखिए. रससाररत्न मेलापक प्रकरण देखिए. Here लता means probably भूलता see भूलता see also रससार-रत्नमेलापक प्रकरण.

लवण. १०-१४. नमक. पाँच प्रकारका लवण. पान ५-३२. Salts, chloride of Sodium Five varieties of Nacl, an page 5-32. six varieties of it are as following. "लवणानि षडुच्यन्ते सामुद्रं सैन्धवं बिडम्। सौवर्चलं रोमकञ्च चूलिका लवणं तथा."

लवणोद. १६-५० खारा पानी, नेमकीन पानी. Salt water.

लशुन. ६-१०५, १३-२०. रसोना देखिये. See रसोन.

लसुन. १६-६, १७-२२, रसोन देखिये. See रसोन.

लाक्षा. ६-३९, ६-१३४ इ० लाख. Coccus Sacca, Lac.

लाक्षा पटल. ११-१६८, चपकाने ली लाख. Sheel lac or Stick lac.

लाङ्गली. ५-३४. इ० कलिहारी. Gloriosa Superba, Linn.

लाङ्गुली कन्द, ७-१३१, १२-१०३ इ० कलिहारी का कन्द. लाङ्गली देखिए. Bulbous root of लाङ्गली. लाङ्गली देखिए.

लिक्षा. १०-३२ छः त्रुटिका वजन. त्रुटि देखिए. A weight of 6 त्रुटि see त्रुटि.

लुङ्गाम्ल. ५-३१, ७-७८. मातुलुङ्ग की खटाई. मातुलुङ्ग देखिए. Acid of मातुलुङ्ग. See मातुलुङ्ग.

लेपक्षेप १७-६. See P. C. Ray's Hindu chemistry Vol. P. 120.

लोण. लोहा ४-१७, १७-१०४, इ० नीमक. Salt.

लोणमृत्तिका. १५-१६८. खारीमट्टी. Saline earth.

लोणमृद् १७-१०५. खारीमट्टी. Saline earth.

लोह. ७–९७, ८–१. लोहनामक धातु. ७–१०७. लोह यह साधारणतः सब धातुओं की संज्ञा है मगर खासकर लोह का नाम है. Loha means generally all the metals but specially iron.

लोहकिट्ट. १५–१७८. लोह का किट्ट या मण्डूर. Rust of iron or mandura.

लोहजात, ६–१२१. सब प्रकार के धातु. All the metals, Iron and the rest.

लोहजीर्ण, १८–२६ लोह के सब प्रकारों से चूर्ण किया हुआ पारद. Mercury calcined with iron of all varieties.

लोहत्रय. १८–१८३. रोहण बाजार और चपलालय इन तीन प्रकार के लोह को कहते हैं. Three sorts of cast iron. रोहण, बाजर and चपलालय.

लोहदण्ड. ५–२६. सम्भवतः लोहयष्टि या मञ्जिष्ठा. Probably लोहयष्टि or मञ्जिष्ठा.

लोहद्रावविधि. ७–१३७. लोह के द्राव बनाने की क्रिया. Process of laquefaction of iron.

लोहनाली. ४–५. लोहा को फूंकने के लिये बनाई हुई नलिका. Iron blow--pipe. एक हस्तदीर्घा कार्या ॥ रसकामधेनु. ॥

लोहनिघ्नक, ७–१०९. लोहमारक. Killer of iron, See रसेन्द्र सारसंग्रह.

लोहपत्र. ७–१२८. लोहका पत्ता. Iron plate.

लोहमारण. ७–१४७. धातुओं का और खनिजों का मारण. Killing of metals and minerals.

लोहमुष्टि. १४–८७. १६–८०. लोहा का बट्टा. Iron pastle, It is so called probably for its being handled with the fist.

लोहमूषा. १५–१८१. लोह की बनायी हुई मूषा. Iron crucible.

लोहयन्त्र. ४–२. लोहका यन्त्र. Iron apparatus.

लोहवेध. १७–१६४. Infusion of metals.

लोहसंकरज ७–९९. सोने का एक प्रकार, A variety of gold.

लोहावर्त ४–५५. टिघले हुए धातु की अवस्था. इसको शुद्धावर्त यह संज्ञा रस. स. में है. A state of melted metals. It is called शुद्धावर्त्त in रस. स.।

व

वंशनाली. ४–५. बांसकी फूंकनी. A bamboo blow-pipe.

वंशपत्री. ५--२० D, R. वृहत्पर्णी. एक प्रकार का घांस. जिसके की पत्ते बांस के पत्ते की तरह होते हैं. A grass whose blades resemble the leaf of Bamboo.

वक्रनाल. ४–३१. भट्टी की झुकी हुई नलिका. Bent tube of Koshtika.

वङ्कनाल. ४–५८. वक्रनाल देखिए. See वक्रनाल.

वङ्ग ७–९७. प्रकार. ७–११०. रांगा. Tin. त्रपु देखिये. See त्रपु.

वङ्गतालक. ८–३१. रांगा और हरताल का मिश्रण. An amalgam of tin and orpiment.

वङ्गतीक्ष्णकपाली. १६–४६. कापालिकों के क्रिया के अनुसार तांबा और चांदी को रांगा तथा तीक्ष्ण लोहा के द्वारा मारना. कापालिकयोग देखिए. A process of dying copper and silver by the aid of वङ्ग and तीक्ष्ण according to the practice to Kapalikas, see कापालिक योग.

वङ्गदोष. १०--४८. रांगा की अशुद्धता मिलने से पैदा होने वाला दोष. Impurity or fault effected from being mixed with tin.

वङ्गपत्र. ८--२९. रांगा का पत्ता. Tin foil.

वङ्गभस्म. १४--९०. रांग का भस्म, Calx of tin.

वङ्गबीज व्याख्या ८--७१. Defination on 59--**71**

वङ्गशोधन. ७--११२. रांगा का शोधन. Purificaton of tin.

वङ्गाभ्र. ८–२७. ८--२८. इ० रांगा और अभ्रक का मिश्रण. An amalgam of tin and mica.

वङ्गाभ्रक. ८--२९, १४--६४, १६--३५. वङ्गाभ्र देखिए. See वंगाभ्र.

वङ्गाभ्रक कपालिन्. १४--६४. कापालिकों की प्रणाली से रांगा और अभ्रक के द्वारा धातु या खनिजों को मारने की प्रक्रिया. A process of dyeing metals or minerals with the aid of tin and mica according to the method adopted by Kapalkas.

वचा. ११--३४, १८–७. बच. Acorus calamus, Linn.

वज्र. ६--६६, ६–६९,७०, ६--७१, ६–७२, ६--७७, ६--८०, ६–३४, ६–१३४. वज्रक देखिये. see वज्रक,

वज्रक, ६–८२, हीरा. A precious stone.
वज्रकन्द. ५–२२, ६–९३, ६–१३४, ७–१६. इ० शर्कराकन्द. or वनसूरण.
वज्रकन्दक. १२–२११, वज्रकन्द देखिए, See वज्रकन्द.
वज्रकन्दरस. ६–३५, ७–९०, वज्रकन्द का रस, वज्रकन्द देखिये. Milky juice of वज्रकन्द. See वज्रकन्द.
वज्रक्षार. ६–३४, सेहुण्ड का क्षार, Alkali of वज्र.
वज्रजीर्ण. १८–२३. रत्नों के साथ पारद का चूर्ण. Mercury calcined with jewels.
वज्रपिण्डी ७–९३. Defination of. वज्रपिण्डी. ४९–९३.
वज्रवन्ध १४–१. हीरा के साहाय्यता से पारा का बन्धन. Binding or fixation of mercury by the aid of gems.
वज्रभस्म १८–६९, १८–१०६. रत्नोंका भस्म Calx of gems.
वज्रभस्म रसायन. १८–६५. हीरा के भस्म का रसायन. Medicinal effects of वज्रभस्म. वज्रभस्म देखिए. See वज्रभस्म.
वज्रमारण. ६–८४. रत्नों का मारना. वज्र देथिये. Killing of gems, see वज्र.
वज्रमूषा. ४–३६, १४–१५४, १५–४३. एक प्रकार की दृढमूषा. A hard crucible.
वज्ररत्न. १२–३७०, सर्वोत्कृष्ट रत्न. इस जगह वज्ररत्न माने हीरा. Here probably means diamond, the best of jems.
वज्रलता ६–११५, ११–१२७. वज्रवल्ली देखिये. See वज्रवल्ली.
वज्रवल्ली. ६–१३, ६–२९, ६–३१, ६–९५. अस्थि संहारलता = हडतोड. अस्थि शृङ्खल देखिये See अस्थि शृङ्खल.
वज्रवारि. १६–१३६. सेहुण्ड का दूध. Milky juice of वज्र.
वज्रसत्व रसायन, १८–९६. रत्नोंके सत्व से बनाया हुआ रसायन. Medicinal ecffects of वज्रसत्व or essence of gems.
वज्राङ्ग सुन्दरी. १८–१७५. वटी या वटिका. A pill or bolus so called.
वज्राभ्रक. ६–४, ६–६. अभ्रक का एक प्रकार. A variety of mica.
वज्री. ५–९. D. R. वक्री = सेहुण्ड. Emphorbia antiquorum Linn.

वह्नि. १०–३१. एक प्रकार का पारददोष. Defect of mercury.

वह्नि कर्काटी. ५–२. एक प्रकार का खेकसा. A sort of कर्कोटी.

वह्नितोय ४–३३. चित्रकका रस. चित्रक देखिये, Milky juice of वह्नि or चित्रक. See चित्रक.

वह्निशिखा. ११–१९७. आग्निशिखा. विषलाङ्गुली = कलहारी. Gloriosa Superba, Linn.

वाकुची. ५–१४, १२–३५९, इ० see बाकुची.

बाजर.७–१०७, ११–१६२, १८–२५. लोहके भेद का एक भेद. A variety of cast iron.

बाण. ११–२५. शरतृण. D. R. बालपीलुक.

वातारितैल. ७–१२. रेएडीका तेल. एरएडतैल देखिए. Caster oil. See caster oil.

वाप. ४–५४, ७–११२, ७–१२२, आवाप देखिए. See आवाप.

वाराही. १४०–१८०, मुसलीकन्दवत्कन्दः तद्दलाकारवद्दला, सक्षीरा लोमशा ॥ Dioscorea, An esculent root, a yam.

वारुणी. १५–१७५, १५–१९३. A plant known as karaviruni in Concan,

वासक. ८–७६, १०–४८, १५–१०२. अडूसा. Adhatoda Vasaca, Nees.

वासा. ७–१०, १५–१६८. वासक देखिए. See वासक.

वास्तुक. ९–१०, १८–१३१. बथुवा. Chenopodium album, Linn.

विट्. ५–३८. विष्ठा, मैला. Feces of five varieties.

विड़ २–१, ४–२. पारदजारणोपयोगीद्रव्य. ९–१, जारणा ९–३, वह्निमुख ७–६. ज्वालामुख. ९–८, प्रवर, ९–१४ हेमजारण. ६२–१६. उद्ध्वाधश्च विडं दद्यात् ॥ रसेन्द्र चूडामणि. A collection of certain objects required in the calcination of mercury.

विडङ्ग १२–३५५, १२–३६५, १८–७. Embelia Ribes, Burm.

विद्याधर यन्त्र. १०–४४, १२–६, १२–४१. पारद निकालने के लिये, एक प्रकार का यन्त्र. "स्थालिकोपरि विन्यस्य स्थालीं सम्यङ् निरुध्य च। उध्वं स्थाल्यां जलं दत्त्वा वह्निं प्रज्वलयेदधः। एतद् विद्याधरं यन्त्रम् हिङ्गुला कृष्टि हेतवे'. रस कामधेनुः। See P. C. Ray's Hindu chemistry Vol. I. PP 124, and 125.

विद्रुम. १७–८७, १७–१२८ मूंगा. Coral.

विप्र. ६–१०२. ब्राह्मण जात का हीरा. वज्र of the ब्राह्मण class.

विभीत. बिभीत देखिए. बेहेडा. Terminalia bellerica Roxb.

विभीतक. बिभीत देखिए. See बिभीत.

विभीतक फल. See बिभीतक फल. बहेडे का फल. The fruit of बिभीत tree.

विमल. ७–२, ७–५, इ० आठ महारसोंमें का एक रस. महारस देखिए. One of the eight महारस. See महारस. See P. C. Ray's Hindu chemistry Vol. I P. P. 84 and 85.

विमलशुद्धि. ७–१८. विमल का शोधन. विमल देखिए. Purification of विमल. See विमल.

बिम्बी. १०–५७. कुंदूरु. Cephalandra Indica, Naud.

बिल्व. ५–१६, १६–७८. बिल्व. Aegle Marmelos, Corr. or according to रसकामधेनु a crcreeper called. बिल्वनी. "ज्योतिष्मतीलताकार पर्णपूर्णा पयस्विनी"

विशल्या १५–४५ = गुडूची according to रसकामधेनु. गुडूची देखिए. See गुडूची.

विश्वभेषज. १२–१५८. शुण्ठी. शुण्ठी देखिए. See शुण्ठी.

विश्वामित्रकपाल. १४–११८. नारिकेल नारिकेल or the coconut palm is ascribed to be created by the sage Viswamitra.

विष. ४–५, ४–४७, ७–२२, ७–१४१, ८–३४. इ० पारददोष, १०–३१; विष. Aconitum ferox, Wall. It is of two kinds. महाविष and उपविष.

विषतोय. १२–२२३. एक प्रकार का पारद दोष. विषोदक देखिए. A sort of. पारद दोष. See विषोदक.

विषतृण. १२–२२९. विषैला घांस. A poisonous grass.

विषपानीय. १२–२२७. विषोदक देखिए. See विषोदक.

विषमुष्टिका. १५–१४१. कुचला. Strychnos Nuxvomica, Linn.

विषवीज. १५–१९१. वचनाग की विषैली जड़. A Poisonous root of aconite.

विषोद. १२–२१२. विषोदक देखिए. See विषोदक.

विषोदक. १२–२१३, १२–२२९. विषैला जल. pisonous water.

विष्णुकान्ता. १५–१३८. १६–१७. १७–९, १७–९६. नील अपराजिता. Clitoria Ternatea, Linn.

विष्णुकान्तारस. ११–१०९. नील अपराजिता का रस. Juice of clitoria Ternatea Linn.

वीज. see बीज. ८–१६, ८–१९, ८–४१. यह दो प्रकार का है. शुद्ध बीज, सोना और चांदी. मिश्र बीज. हेमाभ्र और ताराभ्र इत्यादि—रसकामधेनु. बीज. is of two sorts. शुद्ध, gold and silver. मिश्र, हेमाभ्र और ताराभ्र etc. इति रसकामधेनु"

वीजकला. २–५. वीज संख्या. वीज देखिए. See वीज.

वीजत्रय. १८–१८३. हरताल, मनःशिला और गन्धक. These three sorts of बीज are reffered to here.

वीजपूराम्ल. ११–१८, १८–८५. बीजपूर निंबू की खटाई. Acid of citrus medice, Linn.

वीजरञ्जन. ८–७३. वीज का मारण. Dying of वीज s. वीज देखिये. See वीज.

बीजसाधन. ८–१. ८–१६. वीज का साधन. वीज देखिए. Preparation of वीज see वीज.

वीजा. ६–९८. जयपाल = जमालगोटा. Croton Tiaglium, Linn.

वीरा. ५–२०, ७–१५०, १५–१३६ = वीरवल्ली, "रक्तक्षीरवती बिल्वदलौपमदलान्विता" According to रसकामधेनु it is विदारी or bhumi--kumda.

वृक्षक्षार. ५–३०. पेडों का क्षार. Vegetable alkali.

वृद्धदारक ५–१७. विधारा. Argyreia speciosa. Swt.

बृहती. ५–९. १६–८९. भटकटैया. Solanum Indicum, Linn.

वृहतीत्रय. ८–३५. तीन प्रकार की वृहती. वार्ताकी, क्षुद्र वार्ताकी और कण्टकारी. Three sorts of बृहती.

वृश्चिका पत्रिका बीज. १२–१००. वृश्चिकालिके बीज. See वृश्चिकाली. The seed of वृश्चिकाली.

वृश्चिकाली. १२–९४. वर्हन्टा: Fragia involucrata, Linn.

वेगाफल. वेगा या महाज्योतिष्यतीलता का फल. ज्योतिष्मती देखिये. A fruit of वेगा or महा ज्योतिष्यती लता. or the large ज्योतिष्मती creeper, see. ज्योतिष्मती.

वेणुयन्त्र. १२–२२५. बांसका यंत्र. Bamboo apparatus.
वेतसाम्ल· ५–८७, ५–१२२. अम्लवेतस देखिए. See अम्लवेतस.
वैक्रान्त. ६–८२, ६–१२५, १२–३४६. इ. हीरा से हलका लेकिन उसके गुणों से मिलनेवाला रत्न. A precious stone inferior to diamond, but resembling it in its properties.
वैक्रान्तक. ६–३, ६–१२६, ८–५८. वैक्रान्त देखिए. See वैक्रान्त.
वैक्रान्तजीर्ण. १८–३४, वैक्रान्त से किया हुआ पारद का चूर्ण. वैक्रान्त देखिए. Mercury calcined with Vaikranta, see वैक्रान्त.
वैक्रान्तनागपाली. १६–४६. कापालीकों की प्रणाली के अनुसार वैक्रान्त और नाग से शुद्ध चांदी को मारने की प्रक्रिया. A proess of dyeing pure silver by he aid of वैक्रान्त, and नाग according to the practice of kapatikas.
वैक्रान्त बन्ध. १५–४८, वैक्रान्त से पारदका बांधना. Biding or fixation of mercury with Vaikranta.
वैदुर्य्य. ६–१२०. वैदुर्य मणि. The lapis lazuli.
वैश्यमारण. ६–१०४. वैश्य जाति के हीरा का मारण. Killing of वज्र of Vaishya class.
व्याघ्रनखी. ६–११. नखी नामक सुगंधी द्रव्य. A sort of perfume. known as nakhi.
व्याघ्र. १२–३४८. करञ्ज देखिए. See करञ्ज.
व्याघ्री. ५–८, २९–२५. कण्टकारी देखिए. रसकामधेनु के मत से एक प्रकार की लता. See कण्टकारी under कण्टकारी रस. Also a creeper according to रसकामधेनु.
व्याधिघातफल. ७–७६. अमलतास का फल. आरग्वध देखिए. The fruit of व्याधिघातफल or आरग्वध see आरग्वध.
व्योम. ६–३१, ८–२०, ११–२२. इ० अभ्रक. Mica.
व्योमजारण. १८–१४. अभ्रक से पारद का जारण करना. Calcination of mercury with mica.
व्योमरजः ६–१४. अभ्रक का चूर्ण Mica powder.
व्योमवल्ली १४–५. आकाशवल्ली. Cassytha filiformis. Linn.
व्योमसत्त्व. १०–६०, ११–४७. इ० अभ्रक का सत्त्व. Essence of mica.

व्योष. ९–२, १०–४१. इ० त्रिकटु or कटुत्रय देखिये. See त्रिकटु or कटुत्रय.

श

शक्ति. ५–४४. पारद के बारे में, अभ्रक, कान्तपाषाण, वज्र और वैक्रान्तिक यह चार शक्ति है, अभ्रक, कान्तपाषाण, वज्र. and. वैक्रान्तक are four शक्ति s or powers or energies emyloyed in dealing with mercury.

शक्तिबीज. १८--१८३. त्रिधा गन्धक जारण. गन्धक का तीन दफा जारण करना. Thrice calcination of Sulphur.

शक्रगोप. १२–९३. इन्द्रगोप. वीर बहुटी.

शक्रनील. ८–९. इन्द्रनील. A saphira.

शक्रलता. ८–८९. इन्द्रवारुणीलता. इन्द्रवारुणी देखिये. See इन्द्रवारुणी.

शक्रवारुणी. १६--११७, १७--७४,. १७--९५. इन्द्रपारुणी देखिए. See इन्द्रवारुणी.

शक्रोदय. १४--४२. सुरगोपक. सुरगोपक देखिए. See सुरगोपक

शङ्कर १५--११८. सफेद मदार. अर्क देखिये. White अर्क. See अर्क.

शङ्ख ५--४०, ६--१२४, ८--६०, ७--९९. शङ्ख. The conch shell.

शङ्खचूर्ण. ९–३, १४–१२२, १४--१३०. शङ्खचूर्ण. Conch powder.

शङ्खदुग्ध. ६--१०५, शंख का दूध. The milky exudation of conch.

शङ्खनाभि. ११--१२६, ११--१३२, १३--१७. एक प्रकार का सुगंधी द्रव्य. A sort of perfume.

शंखपुष्पी. ५--८, ५--१८, १४--८२, १४--१२८. शंखाहुल. D. R. शरपुंखा. Canscora decussata. R. et. Sch.

शंखशुक्तिका. ९--१८. शंख का कवच. The shell of the conch.

शतमूली = शतावरी. Asparagus racemosus Willd.

शतावरी. ५--२, ५-२४, १०--३९, १०-५३. ११--२४. शतमूली देखिए. See शतमूली.

शमी. ५--११, ६–७९. शमी. Acacia Suma, Ham.

शमीरस. ६–१२. शमी का स्वरस. Juice of Acacia Suma.

शम्बरी. ९–१६ आखुपर्णी देखिए. See आखुपर्णी.

शरपुङ्ख. ६--९१. शरपुङ्खा देखिए. See शरपुंखा.
शरपुङ्खा ५--२. १६--८९. सरपोंख. Tephrosia purpurea, Pers.
शर्करा. १८--१५४. चीनी. Suger.
शल्या. १५--४५ रसकामधेनु के मत से मेदा. मेदा according to रसकामधेनु. Known as meda or mahameda.
शशवसा. ६--१२. खरगोश की चर्बी Marrow of a hare or a rabbit.
शशशोणित. ७--४०. खरगोष का रक्त. Blood of a hare or rabbit.
शशिभाव. १८--१९७. चांदी की तरह सफेद. Silvery aspect. i. e. moon--white.
शाक. ८--७६. Tectona grandis, Linn.
शाकपल्लववारि १७--८२. शाक के कोमल पत्तोंका रस. शाक देखिए. Essence of the tender leaf of शाक. See शाक.
शाकपल्लवसार ११--१०९. शाक के कोमल पत्तों का सत्व. Essence of the tender leaf of शाक.
शाकवृक्ष. ११--१७२. शाक देखिए. See शाक. Teak tree.
शाखोटक. ५--११. सागवान. Streblus asper, Lour.
शाखोटकी. ५--१७. शाखोटक देखिए. See शाखोटक.
शाल्यन्न. १८--८. १८--१३१. पकाया हुआ चावल का नाम शाल्यन्न है. बरसाय में पकने वाले धान्य को भी शाल्यन्न कहते हैं. Boiled rice called sali, its rural name is aman or a corn ripened in autumn.
शिंशपातैल. १७--८६. शीशम का तेल. Oil of शिंशपा or Dalbergia Sissoo, Roxb.
शिखिण्डिनी. ५--३. गुञ्जालता, गुञ्जा देखिए. See गुञ्जा.
शिखिपित्त. ७--४८. ११--१३३. १२--१६०. मोर का पित्त. Bile of the peacock.
शिग्रु. ५--३०. ७--७५. ७--५९. इ० सहजन. शोभाञ्जन देखिए. See शोभाञ्जन.
शिग्रुक. ५--२२. ११--२४. शोभाञ्जन देखिए. See शोभाञ्जन.
शिग्रुतोय. ७--१६. शोभाञ्जन का रस. शोभाञ्जन देखिए. Juice of शोभाञ्जन. See शोभाञ्जन.

शिग्रुमूल. ७--९१. शोभाञ्जन का मूल. शोभाञ्जन देखिए. Juice of शोभाञ्जन. See शोभाञ्जन.

शिग्रुमूलद्रव ९--१५. शिग्रुमूल रस देखिए. See शिग्रुमूल रस.

शिग्रुमूल रस. ९--२. शोभाञ्जन के मूल का रस. शोभाञ्जन देखिए. Juice of the root of शोभाञ्जन. See शोभाञ्जन.

शिफा. ६--१३४. ६--८९ पद्म जन्द. The bulbous root of a water-lily.

शिरीषकुसूमद्रव. १६--१२६. शिरीष पुष्प का रस. Juice of the flower of शिरीष. or Albizzia Lebbeck, Benth.

शिला. ६--२६. ६--८५. ६--१०५. ७--५६. ७--७८. ७--१२६. इ० मनःशिला, मैनशिला.One of the eight उपरस s, or inferior minerals, Realgar.

शिलाक्षार. ९--१८. मनःशिला का क्षार. मनःशिला देखिये. Alkali of मनःशिला. See शिला.

शिलाजतु. ६--८१. ७--१९, ७--२१, ७--१३२. Bitumen of 4 kinds स्वर्ण, रौप्य, ताम्र. and कृष्णायस.

शिलाधातु. ६--८७, १६--५, शिलाजतु देखिए. See शिलाजतु.

शिलाभाण्ड. १५--७. पत्थर का बर्तन. Stone pot.

शिलावत्--चरमुण्डान्त [?] ७--२०. शिलाजतु देखिए. See शिलाजतु.

शिलाशुद्धि ७--७८. शिलाजतु की शुद्धि. Purification of शिला or bitumen.

शिलोदक. शिलाजतु के गुण वाला जल. शिला देखिए. Water having the properties of शिला. See. शिला.

शिवा १६--८९. श्यामलता. D. R. शिखा = मूर्वा. Ichnocarpus frutescens, R. Br.

शिवाबीज. ९--१६. D. R. शिफाबीज = पद्मबीज. Seed of शिवा. See शिवा.

शुकतुण्डक. ७--४६. एक प्रकार का हिंगुल. A sort of दरद or हिंगुल or cinnabar.

शुकतुण्डो १२--१०७. शुकनासा, शुकाजिह्वा.

शुक्ति. ५--४०, १७--९९, १७--१९३. शींप. Pearl-oyster.

शुक्लवर्ग. ४--४५, ५--४०, १७--९९. सफेद रंग पैदा करने वाले पांच पदार्थ. An aggegate of five objects producing white dye.

शुक्लाभ्र. ६--२. सफेद अभ्रक. White mica.

शुण्ठी. १६--६. १४--२२. सौंठ. Dry ginger.

शुद्धाभ्र कपालिन् १५--६९. D. R. शुभ्राभ्रक कपालीन्. Here शुद्ध means शुभ्र. कपालीकों के प्रणाली अनुसार धातु या खनिजों को सफेद अभ्रक के द्वारा मारना. A proceee of dying metals or minerals with the aid of white mica according to the method adopted by the kapalikas.

शुभ. १०–३५. यह ३२ पल का वजन है. A weight of 32 palas.

शुल्ब. ७–३१. 50,00 hues of ८--८. पक्कबाज of ८--६४, calouring of. ८--७४. ताम्र, Copper.

शुल्बक. १३--२२. शुल्ब देखिये, See शुल्व.

शुल्ब कपालिक. १६–५४ कपालिकों के पद्धती अनुसार तांबा की सहायता से धातु या खनिजों को मारने की प्रक्रिया. A process of dying metals or minerals with the aid of copper, accoding to the method adopted by the kapalikas.

शुल्बचूर्ण. ८--४२ तांबे का चूर्ण. Copper powder.

शुल्बजीर्ण. १८--४१. [पारदका] तांबा से जारण करना. [Mercury] calcined with copper.

शुल्बपत्र. ११--११०, १२--१७६, १६–२९, १७–५२. तांबे के पत्र. Copper plates.

शुल्बाभ्र. ८–३१. १५–१५९, १८--१७४ तांबा और अभ्रक का मिश्रण. An amalgam of copper and mica.

शुल्बाभ्रक कपालिन्. १४–१३६. कापालिकों के क्रियानुसार ताभ्र और अभ्रक के द्वारा धातु और खनिजों के मारने की प्रक्रिया. A process of dyeing metals and minerals with the aid of copper and mica, according to the method odopted by the kapalikas.

शुष्कक्षार. ७–११४. धवक्षार. धाय का क्षार. Anogeissus latifolia. Wall, or Conocarpus lalifolia.

शूककन्द. १२--१०६. कीड़ों द्वारा पेड़ के ऊपर बनाया हुआ गोला. The balbous stock of शुक or a sort of ग्रन्थिपर्ण. i. e. a sort of gall caused by an inseet on a certain tree.

शूकरी. ५--२७. वाराही वाराही देखिए. See, वाराही.

शूद्र. ६--१०५. शूद्र जातिका हीरा, वज्र of the. शूद्र class.

शूरणकन्द. ७-६. सूरण का कन्द. A bulbous under ground stem of शूरण. or Amorphophallus companutatus, Blume.

शूर्पपर्णी ११--५४. मुद्गपर्णी. D. R. सूर्य्यपर्णी. मुद्गपर्णी देखिए. See मुद्गपर्णी.

शूलिनी. ११--५४. शूलिनी. जङ्गाली नाम सोला.

शृगालजिह्वा. २--९. यह शृगाल कण्टक होगा. पहिचानना दुःशकः Probably शृगाल कण्टक. It is not easy to identify this plant.

शृंग. ८--३५ शृंगवेर, शृंगवेर देखिए. See शृंगवेर. It may mean cow horn also.

शृंगतैल ६-१२, शृंगवेर से निकाला हुआ तेल. शृंगवेर देखिए. The oily liquid substance exuded from शृंगवेर, see शृंगवेर.

शृंगवेर. ७--७२, ११--५२. आदी और शुण्ठी, वह दोनों की अनुक्रमणिका देखो, आर्द्रक. and शुण्ठी. See both of them.

शृंगी. ५--३३. पांच महाबिषों में का एक विष, One of the five virulent poisons called, महाविष.

शृंगी १२-२२३, १७--९. कर्कटशृंगी = कांकडशिंगी, Rhus succedanea Linn.

शैल. ७--२, ७--२२, ९--३३, ११--१९२. शिलजतु, शिलाजतु देखिए. See शिलाजतु.

शैलज. ७--१०, १७--९. शिलाजतु. शिलाजतु देखिये. see शिलाजतु.

शैलवारि. १२--३६९. शैलोदक. शैलोदक देखिए, See शैलोदक.

शैलशुद्धि. ७--२२ शैल माने शिलाजतु. उसका शोधन शैल देखिए. Purifiaation of शैल. See शैल.

शैलाम्बु. १२--२९३, १२--३०१, १२--३७४, शैलोदक देखिये See शैलोदक.

शैलोदक. चार प्रकार का जल of four sorts. १२--२७७, origine of १२--२८७. पर्वतीय जल. Mountain water.

शोणित शिला. १७--६. लाल मनःशिला. Red realgar.

शोधन त्रितय. ५--४२. तीन शोधन द्रव्य. An aggregate of three purifiers-viz. कांच, टङ्कण और सौवीर. See them under their respective heads.

शोभाञ्जन. १८--१२६. सहजन. Moringa Pterygosperma, Gaertn.

श्मामा. ६--७९. त्रिवृत्. Penicum frumentaceum Roxb.

श्रीखण्ड. १७--१३. १८--२००. हरिचन्दन, पीतचन्दन, Yellow variety of Sandal wood.

श्वेत. ६--१०१, १५--१९३. सफेद अर्क. अर्क देखिये. White अर्क. See अर्क.

श्वेतकाच. १४--१५६. सफेद कांचलवण. कांच देखिये. See कांच. White काच salt.

श्वेतगुञ्जा. ५--१६. सफेद घुंगुची. गुञ्जा देखिए. White गुञ्जा. See गुञ्जा.

श्वेता. ६--१०१, १५--१९३ सफेद घुंगुची. गुञ्जा देखिए. White गुञ्जा. See गुञ्जा.

श्वेताभ्रक. १४--१३०. सफेद अभ्रक देखिए. See शुक्लाभ्र.

श्वेतार्क ५--१५, १७--९५. सफेद मदार. अर्क देखिए. White अर्क See अर्क.

ष

षष्टिकाम्ल. ६--१८. सांठी चावल की कांजी. Acid of षष्टिक rice which is so called for its being riped within sixty days.

स

सङ्कल १४--८, १४--१७. मिश्रण करना या एकत्रीकरण. Combining or blending to-gether.

सङ्कलिका. १४--९, १४--१२. मिश्रण या एकत्रीकरण. Combination or collection.

संकली १४--९, १४--१३. संकलिका देखिए. See सङ्कलिका.

सण्डशी. ११--१७०. सण्डशी देखिए. See सण्डशी.

सण्डसी. ४-४. सण्डसी. A pair of tongs, pincers.

सन्दंशन. १७--३. D. R. सन्दंशक. सण्डशी देखिए. See सण्डसी.

संस्कार. १०--३७. ११--१९८. पारद के आठ प्रकार के संस्कार. पान. Purification of mercury by eight different modes. See Page 10-10.

सक्तुक. ५--३३. पांच महाविषों में का एक विष. One of the five virulent poisons or महाविष.

सङ्कर. ८-३८. धातु या खनिजों का मिश्रण. An amalgam of metals or minerals.

सञ्जीवनी. (origin of) १२--२३२. सञ्जीवन जल. Animative water.

सटीरी. ५--२४. सटी हो सकती है Probably सटी, or cercuma zerumbet, Roxb.

समावर्त्त १४--७, १८--२११. भंवर या चक्कर. Act of revolving, whirling round.

समुद्रज. १७--१३०. सामुद्रलवण.=सामुद्र नोन. सामुद्र देखिए. See सामुद्र.

सरल. ८--८०. देवदार. Pinus longifolia, Roxb.

सर्ज. ८--३७, १५--१६५. राल के पेडका निर्यास. सर्जनिर्यास देखिए. The rasinous exudation of Sal tree or Shorea robusta Gaertn. see सर्जनिर्यास.

सर्जनिर्यास. ७--९२. राल. The racinous exudation of Sal tree.

सर्जिका. ५--३०. ७--९२, ९--२, १७--६७. सज्जी. See सज्जिकाक्षार.

सर्जिकाक्षार. १८--१४१. सज्जीक्षार. Natron alkali or the impure carbonate of Soda.

सर्जिक्षार. ६--३४. १५--१६५. सर्जिकाक्षार देखिए. See सर्जिकाक्षार.

सर्जी. १७--९२. सर्जिका देखिए. See सर्जिका.

सर्पाक्षी. २७--२, १०--५७, ११--१८९, १६--१६, गन्धनाकुली. Ophiorrhiza Mungos, Linn.

सर्पिः ४२--७, १८--१४, घी. ghee or clarified butter.

सर्षप. ७--७५, ७--९३, राई. Mustard seed.

सर्षप. १०--३३, राई. ६ राजका वजन, इसे सिद्धार्थ भी कहते हैं. A mustard seed, a weight of six rajas. Also called सिद्धार्थक.

सर्षपज. ५–३४. राई का तेल. Oil of mustard seed.

सस्य. ७–४४. मयूर तुत्थ या मयूरग्रीवतुत्थ. दोनों में का एक देखिए. See either of them.

सस्यक. ७–२, ७–१३, ७–४५, ८–३, ८–५८, १६–१७ सस्य देखिए. See सस्य.

सस्यकशुद्धि. ७–४६. सस्यका शोधन. सस्यक देखिए. Purification of sasyaka, see सस्यक.

सहकार. १८–१२६. सुगन्धयुक्त आम. A fragrant sort of Mango.

सहचरा. ५-४. पीलीझिंटी. Yellow Barleria cristata, Linn.

सहदेवी.१० -३९, ११-१९७. पीलेपुष्प की बला. Sonchus aruenois.

सहादेवी. ५-४. सहदेवी देखिए. See सहदेवी.

सामुद्र. ५--३२. १४--८७, ११--११७, १४--१२२, १७--११५. समुद्र जलसे बनाया हुआ नमक. Sun-dried sea salt, manufactured in the Madras presidency.

सारण. २--५, १०--१२, १७-१, सारणा देखिए. See सारणा.

सारणा. ८--५३. "सारणा पुनर्जारणानुसारणक्रामणवेधविधि" "सूते सतैल-यन्त्रस्थे स्वर्णादिक्षेपणं हि यत्। वेधाधिक्यकरं लोके सारणा परिकीर्तिता ॥ समबीजजीर्णे सूतैक्यकरणं सारणा" रस कामधेनु.

सारणा (सारण) तैल. ८--८५, Oil used in the process called, सारणा.

सारणायन्त्र. १०--२७ सारणा क्रिया में काम आने वाला यन्त्र. An apparatus used for the process of सारणा.

सारलोह. ८--९८. सोना और चांदी के समान सर्वोत्कृष्ट धातु. The best of the metals, gold and silver.

सिंहवल्ली. ५--२७, ११--१७४, सिंहीलता "सिंहिका नाम विख्याता श्वेतपुष्पा पयस्विनी। कुलत्थपत्रवत् पत्रा क्षीरकन्दा लता भवेत्।" वासा इति रसकामधेनु.

सित. ८--१७, सितवर्ग. शुक्लवर्ग देखिए. See शुक्लवर्ग.

सित. ९--१४ श्वेतचंदन.

सित गुञ्जा. १२--१८५. श्वेतगुञ्जा देखिए. See श्वेतगुञ्जा.

सितमुस्ता. ५--३३. सफेदमोथा. White mutha.

सित रामठ. १३--१७. सफेद हींग. White asafoetida.

सितसर्षप. १०--४६. सरसों (सफेद राई). White mustard.

सिता. १२--३६४. चीनी. Sugar.

सिताङ्कोल. ५--१६. सफेद अंकोल. देखिए. See अङ्कोल.

सितार्कपत्रतोय. १७--१३०. सफेद मदार के पत्तेका दूध. अर्क देखिए Milky juice of the leaf of white अर्क. See अर्क.

सितेषुपुङ्खा. ११--३९. सफेद शरपुंखा, शरपुङ्खा देखिए. White शरपुङ्खा See शरपुंखा.

सिद्धार्थ. ११-१८८ सरसों. A mustard seed.

सिनाडिका. ६--६१. D. R. द्विनाडिका, रसकामधेनु. D. R. शिनाटिका. रक्तपुनर्नवा. It is not easy to identify this plant.

सिन्दुर. १२--२२३. सेन्दुर Red oxide of lead minium.

सिन्धु. ४--४८, ८--३१, ११--२७, ११--५६, ११--१८९, १५--१७५ सैन्धव-लवण. सेंधानोन. सैंधव देखिए. See सैंधव.

सिन्धुदत्त. १७--६७. सैन्धवलवण, सेंधानोन. सैन्धव देखिए. See सैन्धव.

सिन्धूत्थ. ९--५, १७--८३, १८--७, सैन्धव लवण. See सैन्धव.

सीस. ११--५७. शीसा. Lead.

सीसक. १८--१७४ शीसा. Lead.

सुदण्ड. ५--२६. D. R. सुदण्डी = गोरक्षी.

सुधा. ५--४०. चूना. Lime.

सुभग. १८--१८२. सुहागा. छडीला. A fragrant spice called. शैलज, or Borax.

सुमुख. ६--१३. राजिका = राई. या सफेद तुलसी. White mustard or white तुलसी.

सुरगोप. ७--१२०. इन्द्रगोप देखिए See इन्द्रगोप.

सुरगोपक. ८--३२. इन्द्रगोपक देखिए. See इन्द्रगोपक.

सुरतरूद्भव. १८--९. सुरतरु या देवदारु से निकाला हुआ. Exuded from सुरतरु or देवदारु.

सुरदालीरज. ७--१८, देवदाली या बन्दाल के उपके रजःकण. देवदाली देखिए. The polleu of the देवदाली fruit. See देवदाली.

सुरसा. ८-३५, १७-१०. लाल या काली तुलसी. तुलसी देखिए. Red or black तुलसी. See तुलसी.

सुरा. १७-६४, १७-६६, दारू, मद्य. Spirit.

सुरायुध. १२-३४६, १२-३५०. वज्र, हीरा. Diamond.

सुरेन्द्रगोप. १७-१२. इन्द्रगोप देखिए. See इन्द्रगोप.

सुवर्चल. १८-१२६. सौवर्चल नमक. सौवर्चल देखिए. See सौवर्चल.

सुवर्ण १७-७. सोना. हेम देखिए. Gold. See हेम.

सुवर्णा. १७-७४. हरिद्रा. Turmeric.

सुवीर. ७-१५२. सौवीराञ्जन. सौवीर देखिए. See सौवीर.

सूत. १-३६. पारद. रस देखिए. Mercury. See रस.

सूतक. १-५३, १०-६. सूत देखिए. See सूत.

सूतकराजेन्द्र १५-२००. सूत देखिए. See सूत.

सूतराज. १२-१२७. सूत देखिए. See सूत.

सूतेन्द्र. १२-१४१. सूत देखिए. See सूत.

सूरण. ६-९९. सूरणकन्द. Amorphophallus campanulatus, Blume.

सूरणकन्द. ७-१४०. शूरणकन्द देखिए. See शूरणकन्द.

सूरणकन्दक. ६-२२, ६-८०. शूरणकन्द देखिये. See शूरणकन्द.

सूरणकन्द सम्पुट. ७-१२. सूरणके कन्द में गढ्ढा करके उसमें दवा रखके सम्पुट देना. A sort of casket or hollowcup made of the bulbous stem of सूरण.

सूर्यभक्ता. ५-१३. हुरहुर. आदित्यभक्ता. Clcomea viscosa Linn.

सूर्य्यावत. ५-२२, ५-१३८. गजपिप्पली. Gynandropsis pentadhylle DC.

सृष्टित्रय. ११-१३. लवणत्रय. इति रसकामधेनु, Viz. विड़, सैन्धव and सौवर्चल.

सृष्ट्यम्बुज. १०-५७. किसीके मतसे सैन्धवलवण. दूसरों के मतानुसार स्त्रियों का मूत्र, मासिक धर्म और शुक्र. जैसा कि लिखा है. "नारीमूत्रं रजः शुक्रं सृष्ट्यम्बुजमिति केचित्" रस कामधेनु. According to some authorities सैन्धवलवण but according to others the urine, the menstrual cxcretion and semen virile of the females.

सैन्धव. ५--३२, ६--३२, ७--९०. इ० सिन्धु से उत्पन्न हुआ सेंधा नमक. Rock salt, originally obtained from the country called सिन्ध.

सैरिभ. १७--१०९, यहाँ म्हैंस के या हेला के शिङ्ग से तात्पर्य है. Here maens the horn of a सैरिभ or buffalo.

सोम. १५--१५३. सोमलता, सोमलता देखिए. See सोमलता.

सोमलता. ५--११, ५--१७. सोमबल्ली. Sareostemma brevistigma. W. A.

सोमवल्ली. ११--३७. सोमलता देखिए. See सोमलता.

सौभाग्य. ७--४१, ७--८७, ७--९१. टङ्कण सोहागा. See टङ्कण.

सौभाञ्जनरस. ११--१८५. सहजन का स्वरस. शोभाञ्जन देखिए. Juice of शोभाञ्जन. See शोभाञ्जन.

सौराष्ट्री. ६--९७, ७--५६, ७--८०, ९--१३. तुवरी बम्बई प्रान्तमें सूरत में मिलनेवाली मीठे सुगन्धकी मट्टी. A sweet scented earth of Surat in the Bombay Province. It is of two sorts खण्ड and चूर्ण.

सौराष्ट्री शुद्धि. ७--८१. सौराष्ट्री का शोधन. सौराष्ट्री देखिए. Purification of सौराष्ट्री. See सौराष्ट्री.

सौवर्चल. ५--३२, ६--२९, ६--३१. इ० कालानोन. Sonchal or sochal salt called by up-country Physicians as kalanimak.

सौवीर. ५--३३, ७--१४१, ९--२. इ० सौवीराञ्जन Galena or sulphide of lead, a sort of collyrium. Its name is सौवीराञ्जन being obtained from mountains of सौवीर, a country along the Indus.

स्तनक्षीर. १४--१६१, ५--९४, १७--८. स्त्री का दूध. Milk of a woman's breast.

स्त्रीस्तन्य. ८--३२, ८--३७, ११--१८७. इ० स्तन्यक्षीर देखिए. See स्तनक्षीर.

स्थलकुम्भी. ६--११८. स्थलपर्णी. Bengali (dangar pana.)

स्थलपद्मिनी. ५--१९, १९--१२२. स्थलकमल. Hibiscus mutabilis, Linn.

स्नपन. ४--५३, अभिषेक. पिघले हुवे धातुपर पानी फेंकना. Throwing water to melted metals on fire. द्रुते वह्निस्थिते लोहे सलिलस्य परिक्षेपः ।

स्निग्धखल्ल. १५--६५. दवाई घोटने के लिये शीतखल्ल जो कि तप्तखल्ल से बिल्कूल निराला है । Cold vessels for grinding medicines, opposite to तप्तखल्ल. See तप्तखल्ल.

स्नुक्' ६--८१. सेहुण्ड देखिए. See स्नुही.

स्नुकक्षीरे. ७--७५, ७--११४, १६--१०१. सेहुण्ड का दूध. स्नुही देखिए. Milky juice of स्नुही. See स्नुही.

स्नुहीक्षीर. ६--२४, ७--१३, इ० सेहुण्ड का दूध. स्नुही देखिए. See स्नुही.

स्नुही. ५--३४, ७--१४०, इ० सेहुण्ड. Euphorbia nerifelia, Linn.

स्नुहीक्षीर. ६--१०२, ७--८. इ० सेहुण्ड का दूध. स्नुही देखिए. Milky juice of स्नुही. See स्नुही.

स्नुहीदुग्ध. ११--८९. स्नुहीक्षीर देखिए. See स्नुहीक्षीर.

स्नुहीपयः १४--१५२, ११--१८४. स्नुहीक्षीर देखिए. See स्नुहीक्षीर.

स्नेह. ४--५, ७--३५, ७--९० इ० स्निग्ध पदार्थ. जैसे घी, तेल इत्यादि. Oily substances. Such as oil, ghee ete.

स्फटिकादि. ६--१२०. सूर्यकान्त आदि चन्द्रकान्त की तरह फलकदार पदार्थ. Crystals or crystal like precious stones and the rest such as सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त etc.

स्रोतोज. ७--५३. स्रोतोञ्जन देखिये. See स्रोतोञ्जन.

स्रोतोञ्जन. ७--२, १२--३८१, ५--११, १५--१५०. सफेद सुरमा. A sort of collyrium, probuced in the bed of the Jamuna and other rivers. It is called suffed or white surma where as सौवीराञ्जन is called Kala or black surma.

स्रोतऽञ्जनशुद्धि. ७--५५. स्रोतोञ्जन का शोधन. स्रोतोञ्जन देखिए. Purification of स्रोतोञ्जन. See स्रोतोञ्जन.

स्वरस. ७--११८. १२--४४. इ० रस. Expressed jujce. prepared by pounding fresh vegetables in a mortar, and strained through cloth. "व्याहृतात्तत्क्षणोत्कृष्टाद् द्रव्यात् क्षुण्णात् समुद्भवेत् । वस्त्रनिष्पीडितो यस्तु रसः स्वरस उच्यते ॥ योगतरङ्गिणी.

स्वर्णगैरिक. १७--१२४ = उत्कृष्ट गैरिक. A sort of ochre, golden ochre.

स्वर्णपत्ररस. १४-१४६. सनाय का स्वरस. Juice of senna or सोनामुखी.

स्वेदन १०--१०. पसीना लाने के लिये दी जाने वाली उष्णता Application of heat to the skin or any substance for inducing persperation. "क्षाराम्लैरौषधैर्वापि दोलायन्त्रे स्थिरस्य हि। पाचनं स्वेदनाख्यं स्यान्मलशैथिल्यकारकम् ॥" रसकामधेनु. "मलापकर्षणं स्वेदः" रसमार्तण्ड.

ह

हंसदावी = हंसपादी. ५--२४. हंसदाही होगा = अगुरुचंदन. अगुर देखिए, Probably हंसदाही = अगुरुचंदन. see अगुरु.

हंसपाक. ४--२९, ९--१२. ९--१८. पारद के जारण का यन्त्र. An apparatus for calcination of mercury. This is identical with the apparatus described in रसरत्नाकर.

हंसपाद. ७--४६, १७--८१. इ० D. R. हंसपाक. एक प्रकार का हिंगुल. A sort of दरद. दरद देखिए. See दरद.

हंसपादी. ५--२४, ६--९९, ७--१०८. इ० D. R. हंसपदी. गोधावती देखिए. See गोधावती.

हंसपादीरस. १२--१०६. हंसपादी का स्वरस. हंसपादी देखिए. Juice of हंसपादी See हंसपादी.

हंसाङ्घ्रि. १२--१०७. लाल लज्जावती. Red Mimosa pudica Linn.

हवाग्नि. १६--१५. प्रबलाग्नि. Intense fire.

हनूमती. ५--१२. ५--१८. १२--४३. वानरी = शूकशिम्बी.

हयघ्न. १७--९५. अश्वमार देखिए. See अश्वमार.

हयनख. १७--१०९. अश्वखुर. Horse hoof.

हयलाला. ७--१२१. घोड़े की लाला. Saliva of a horse.

हरगौरी. १२--१२५, पारद और गन्धक. पान. ३१--२ देखिए. Probably mercury and sulpher. See page ६-2

हरबीज. १--२८, ७--१४५, १२--२१६, १३--१२, १५--१०५. पारद. Mercury.

हरिंदरीरस. १२--६८. हरिंदरी का रस. juice of हरिंदरी. It is very difficult to identify this plant. If हरि means here a horse, then the plant becomes अश्वमार.

हरिताल. ८--३०, ८--५८, १२--२८०, १२--३१८. हरताल. Orpiment.

हरितालक्षार. ९--१८. हरताल का खार. Alkali of orpiment.

हरिद्रा. १२--३२२. १७--६०, १८--१७. हल्दी Turmeric.

हरिद्राद्वय. १७--११७. दो प्रकार की हल्दी हरिद्रा और दारुहरिद्रा. Two sorts of हरिद्रा viz हरिद्रा and दारुहरिद्रा.

हलिनी. ७--११६, ७--१४०. विषलांगली.

हाटक. १२--३४२, १२--३७३, १४--५७, १४--१५६, १५--११४ सुवर्ण. Gold.

हालाहल. १७-७५. एक प्रकार की विषैली वनस्पति. A sort of poisonous plant, found in himalaya, in Concan and in the Kiskindhya mountain.

हिंसा. १७--९७. जटामांसी. Nardostachys jatamansi, DC.

हिङ्गु. ९--१४, १६--६, १७--२२. हिंग. Ferula Asafaetida, Linn.

हिङ्गुल, ६--१०३, ७--५१, ७--१४८. सिंगरफ. Cinnabar.

हिमावती. ५--११. एक प्रकार की वनस्पति. A plant known as himavati.

हिलमुचा. ११--२५. Enhydra fluctuans, Lour.

हेम. ७--९९. ७--१०२. सोना. Gold.

हेमजीर्ण. १८--२३. सोना से पारद का जारण. Mercury calcined with gold.

हेमदल. १७--१७, १७--३४. सुवर्ण का पत्रा या सोने का वर्ख. A sort of preparation of gold with other minerals.

हेमपर्णी. ५--२७. हेमपत्र. A plant called हेमपत्र or धुतूर.

हेमपुष्पी. ५--१३. स्वर्णयूथिका. Jusminum humile Linn.

हेममाक्षिक. ८--४३, १७--३३. इ० स्वर्णमाक्षिक. माक्षिक देखिए. See माक्षिक.

हेमवल्लरी. ५--१९. हेमलता. स्वर्ण जयन्ति.

हेमबीज. ८--६९. एक प्रकार का सोने का प्रयोग. A sort of preparation of gold, purified by yellow and red वर्गs or aggregates of yellow and red dyeing plants or objects.

हेमशोधन. ७--१०२, सोने का शोधन. Purification of gold.

हेमाकृष्टि. व्याख्या; Definition of १७--५३. सुवर्ण का निष्कासन. Extraction of gold from the minerals

९--२५, ८--३१. इ० सोना और अभ्रक का मिश्रण. An algam of gold and mica.

"समाप्त. End."